भारतीय राष्ट्रवाद के विकास

को

हिन्दी-साहित्य में अभिव्यक्ति

[दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा पी एच० डी० उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध प्रबन्ध]

डॉ० सुषमा नारायण
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
इन्द्रप्रस्थ कालिज फॉर विमन
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली ७ पटना-४

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य संसार
दिल्ली ७
ब्रांच
खजान्ची रोड पटना ४

मूल्य
बीस रुपये
(२० ०)
प्रथम सस्करण १९६६

परिचय

श्रीमती डा० सुषमा नारायण के "भारतीय राष्ट्रवाद के विकास की हिन्दी साहित्य मे अभिव्यक्ति" शीर्षक प्रस्तुत अध्ययन का मैं स्वागत करता हूं। मूल रूप म यह अध्ययन दिल्ली विश्वविद्यालय की डाक्टरेट उपाधि के लिए प्रस्तुत किया गया था। वतमान ग्रन्थ उसी का सशोधित तथा परिवर्धित रूप है।

ग्रन्थ दो खडो म विभक्त है (क) भूमिका खड तथा (ख) शोध-खड। भूमिका खड मे राष्ट्रवाद के स्वरूप के वैज्ञानिक विश्लेषण के उपरान्त १८५७ स १९२० तक की राजनीतिक एव सामाजिक परिस्थितियों के चित्रण के साथ उस काल के साहित्य मे राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का स्वरूप निरूपित किया गया है। ये प्रारम्भिक तीन अध्याय शोध खड की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हैं।

शोध खड चौथे अध्याय से नवम अध्याय तक है। चौथे अध्याय म १९२० से १९३७ तक की राजनीतिक परिस्थितियो का चित्रण किया गया है तथा पाँचवें अध्याय में इसी काल के हिन्दी साहित्य म राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति का दिग्दर्शन है। आगे के तीन अध्याय (६—८) पूर्णतया मौलिक है और इनम प्रचुर उदाहरणो की सहायता से राष्ट्रवाद के रागात्मक पक्ष प्रभावात्मक पक्ष तथा भावात्मक पक्ष के अनेक रूपो पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है अंतिम नवम् अध्याय मे इस काल के हिन्दी साहित्य मे भारत के भविष्य और स्वराज्य की रूपरेखा के सबध में पाए जाने वाले विचार सक्षेप में दिए गए हैं।

इस ग्रन्थ की कई विशेषताएँ हैं। प्रथम मुख्य अध्ययन को प्रारम्भ करने के पूर्व सुयोग्य लेखिका ने राष्ट्रवाद के स्वरूप तथा राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास प्रामाणिक सामग्री के आधार पर दिया है। दूसरे शोध-खड के निष्कर्षों का आधार उस काल के हिन्दी साहित्य का विस्तृत और गभीर अध्ययन है। प्रचुर उदाहरण इसके प्रमाण हैं। तीसरे लेखिका ने निष्कर्ष अत्यत सतुलित रूप म दिए हैं—भावुकता से अपने को दूर रखा है।

विषय से संबंधित प्रचुर विचार सामग्री प्रस्तुत करने के लिए मैं सुयोग्य लेखिका को हार्दिक बधाई देता हूं। मुझे विश्वास है कि भारतवर्ष के इस काल के राजनीतिक तथा साहित्यिक इतिहास में दिलचस्पी रखने वाले पाठक ग्रंथ को अत्यंत रोचक, ज्ञानवर्धक तथा उपयोगी पावेंगे। इस प्रकार के अन्य अध्ययनों के लिये प्रस्तुत रचना आदर्श स्वरूप है।

जबलपुर

धीरेन्द्र वर्मा

प्राक्कथन

सन् १९२० से १९३७ के साहित्य में राष्ट्रवाद के विकास की अभिव्यक्ति का स्वरूप विश्लेषण इस शोध प्रबंध का विषय है। निःसंदेह भारतेन्दु युग से ही हिन्दी साहित्यकार युगीन राष्ट्रीय चेतना के प्रतिबिंबन के प्रति सजग एवं सचेष्ट हो गए थे और द्विवेदी युग तक राष्ट्रीयता हिन्दी-साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई थी। लेकिन सन् १९२० के पश्चात् समग्र हिन्दी-साहित्य पर राष्ट्रवाद की स्पष्ट छाप लग गई। इसका कारण यह है कि भारतीय इतिहास का यह विशेष काल राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गांधी जी ने सन १९२० में राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रवेश कर देश-जीवन की रग रग में राष्ट्रवाद का संचरण कर दिया था। उन्होंने भारत देश को ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को युग-युग के लिए राष्ट्रवाद का आदर्श रूप प्रदान किया। आलोच्य काल के हिन्दी साहित्य-स्रष्टा भी इस क्षेत्र में पीछे नहीं रहे। उन्होंने साहित्य के माध्यम से राष्ट्रवाद के सभी अंगों की सशक्त एवं पुष्ट अभिव्यक्ति की यह इस शोधप्रबंध से स्पष्ट है। हिन्दी साहित्य के विविध रूपों एवं अनेक कला-शैलियों में राष्ट्रवाद की जितनी कलात्मक अभिव्यक्ति इस विशेष युग में की गई वह अपूर्व है।

अब तक राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से हिन्दी साहित्य का अनुशीलन नहीं हुआ था। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से श्रीमती कीर्तिलता ने 'भारत का स्वतन्त्रता प्राप्ति-संबंधी आन्दोलन और हिन्दी-साहित्य पर उसका प्रभाव १८८५-१९४७ ई०' विषय पर शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति का आन्दोलन राष्ट्रवाद का लक्ष्य मात्र था अतः इस विषय का संबंध राष्ट्रवाद के विकास के सम्यक विवेचन से नहीं है। उसी विश्वविद्यालय में शैलकुमारी गुप्त ने 'हिन्दी-काव्य में राष्ट्रीय भावना' विषय लेकर शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है किन्तु उसमें आदिकाल से भारतेन्दु युग का ही समय लिया है। अतः यह आवश्यक था कि सन् १९२०-१९३७ जैसे महत्वपूर्ण काल पर कार्य किया जाता।

विषय की स्पष्टता के लिए प्रथम अध्याय में ही राजनीति-शास्त्र के मान्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रवाद का स्वरूप विश्लेषण किया गया है। इस प्रबंध की पृष्ठभूमि सन् १८५७ से १९२० ई० तक मानी गई है क्योंकि सन् ५७ के विद्रोह के पश्चात् ही भारत पूर्णतया अंग्रेजी साम्राज्यवाद के

अधीन हुआ और हिन्दी-साहित्य में भी आधुनिक काल का सूत्रपात हुआ। हिन्दी साहित्य म राष्ट्रवाद के विकास की अभिव्यक्ति को अधिक स्पष्ट करने के लिए इस युग का इतिहास देना आवश्यक था जिसकी सामग्री के लिए इतिहास के मान्य विद्वानों के ग्रन्थो से बहुत सहायता मिली है। इस प्रकार ऐतिहासिक और तात्विक विवेचन के अतिरिक्त जितना भी साहित्यिक विवेचन विश्लेषण है वह प्राय मेरा अपना ही मौलिक प्रयास है।

कविता नाटक उपन्यास एव कहानियो से सबधित सामग्री अत्यधिक मात्रा मे मिल जाने के कारण निबध साहित्य को इसके अन्तगत नही लिया जा सका है। इसके अतिरिक्त हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधि लेखको की प्रतिनिधि रचनाओ का ही आधार ग्रहण किया है।

अन्त म गुरुवर आचाय डॉ नगेन्द्र के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करती हू जिनके सम्यक निर्देशन के फलस्वरूप यह कठिन काय पूण हुआ। अपने पूज्य पिता प्रोफेसर डा० विश्वेश्वर प्रसाद अध्यक्ष इतिहास विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय के लिय मैं शब्दो म कुछ भी नही कहना चाहती क्योकि पितृ हृदय सदा सन्तान उन्नति चाहता है मेरी उन्नति के लिए उनका आशीर्वाद आजीवन मेरे साथ है। जबलपुर विश्व विद्यालय के उपकुलपति डा धीरेन्द्र वर्मा एव रायपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ० बाबूराम सक्सेना की अमूल्य सहायताओ के प्रति भी मैं विशेष आभारी हू और अपनी कृतज्ञता व्यक्त करती हू। इस शोध प्रबन्ध के प्रकाशन म डॉ देवराज चानना रीडर सस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय तथा डॉ० ओमप्रकाश शास्त्री की सहायता के प्रति धन्यवाद देना मेरा कत्तव्य है। अन्त उन सभी कलाकारो एव समालोचको के प्रति आभार प्रकट करती हू जिनकी कृतियो से इस प्रबन्ध म सहायता मिली है।

हिन्दी विभाग
इन्द्रप्रस्थ कालिज फार विमेन
दिल्ली।

सुषमा नारायण

ममतामयी माता
एवं
वात्सल्यमय पिता को—

विषय-सूची

भूमिका-खण्ड

१

राष्ट्रवाद का स्वरूप-विश्लेषण

राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद की मान्य परिभाषायें

सभ्यता तथा बुद्धि के निरन्तर विकास ने मानव को कुटुम्ब ग्राम तथा छोटे राज्य की सीमा के पार देश के विस्तृत भूखंड के मोह पाश में बांध लिया है। राष्ट्रीय भावना से युक्त देश को ही एक राष्ट्र की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। राष्ट्र के प्रति तीव्र एवं गहन अपनत्व तथा ममत्व की भावना में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ है। यद्यपि वर्तमान युग में व्यक्ति का व्यक्तित्व राष्ट्र अथवा राष्ट्रीयता की दीवार को तोड़कर अन्तर्राष्ट्रीयता के क्षेत्र में आना चाहता है तथापि राष्ट्रीयता की भावना इतनी प्रबल एवं आकर्षक है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना अप्राप्य आदर्श मात्र रह गई है। राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की विभिन्न मान्य परिभाषाओं का विवेचन विषय की स्पष्टता के लिए आवश्यक है।

हैंस कोहन् ने अपनी पुस्तक 'आइडिया आफ नेशनलिज्म' में राष्ट्रवाद की भावना को १८वीं शताब्दी से अधिक पुराना नहीं माना है।[1] तत्कालीन यूरोप की राजनैतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों ने राष्ट्रवाद की उत्पत्ति तथा विकास में महत्वपूर्ण योग दिया था। इस काल के पूर्व न केवल यूरोप वरन् समस्त भूखंड छोटे छोटे राज्यों में विभाजित हो चुका था जिसमें सामंतवादी समाज-व्यवस्था प्रचलित थी। राजनैतिक सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से ये छोटे छोटे राज्य स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर होते थे। सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में आबद्ध करने वाली शासन-सत्ता का अभाव था—अर्थात राष्ट्रवादी राज्यों का सूत्रपात नहीं हुआ था। राज्य के भीतर तथा अन्य देशों से व्यापार होता था, किन्तु बड़ी बड़ी मिलें तथा बड़े बाजार नहीं थे। मध्यम वर्ग अथवा जिसे शिक्षित वर्ग भी कहा जा सकता है और जिसका उस समय उद्भव हो रहा था इस सामंतवादी समाज-व्यवस्था का विरोधी था। उसने छोटे छोटे राज्यों को मिटा कर देश में एक शासन सत्ता की नींव डालनी चाही। देशीय प्रति

---

1 Nationalism as we understand it is not older than the second half of the eighteenth Century
Hans Kohn—Tha Idea of Nationalism—P 3,
1956 edition

बधा के उन्मूलन के साथ-साथ स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व के आधार पर बूज वा—क्रान्तिकारी वर्ग ने संघर्ष प्रारम्भ किया। यातायात और आवागमन के साधन बढ़े नवीन आविष्कारों का जन्म हुआ बड़े बाजार खुले तथा इन सबके समन्वय से देश एक शृंखला में बंध गया। व्यापार की प्रगति ने उत्पादन की अभिवृद्धि की तथा अन्य देशों में इसकी खपत के प्रयत्न किये जाने लगे। इसके लिए राज्य-सहयोग तथा सैन्यशक्ति की भी आवश्यकता हुई। इस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं ने नवीन समाज व्यवस्था की ओर इंगित किया और पुरानी समाज-व्यवस्था के पैर उखड़ने लगे। सम्पूर्ण देश का जनसमुदाय नवीन व्यवस्था के कारण अधिक निकट सम्पर्क में आया और परिणामस्वरूप एक देश के निवासियों का ध्यान अपने इतिहास सभ्यता संस्कृति तथा भाषा की समानता या एकता की ओर गया। यद्यपि जनजीवन सामंतवाद के चंगुल से मुक्ति पाकर भी पूंजीवादी-व्यवस्था की कठोर जंजीर में जकड़ गया था राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता का पूर्ण विकास हुआ। इस नवीन समाज व्यवस्था में ही राष्ट्रवाद की भावना का उदय हुआ जिसका ध्येय एक देश—एक राष्ट्र था। वस्तुतः राष्ट्रवाद की जड़ में गौरवमय अतीत की स्मृति है पर उसकी दृष्टि वर्तमान पर केन्द्रित है जिसमें भविष्य के सुन्दर स्वप्न संजोये रहते हैं। हैंस कोह्न ने इसी कारण राष्ट्रवाद की उत्पत्ति मस्तिष्क की एक विशेष दशा बतलाई है।[1] हैंस कोह्न की भांति जी० पी० गूच ने भी राष्ट्रवाद का सूत्रपात १९वीं शताब्दी में फ्रांस की क्रान्ति से माना है।[2] इन विद्वानों के अनुसार फ्रांस की क्रान्ति के उपरान्त मानव समुदाय में राष्ट्रवाद की भावना अथवा राष्ट्रीय-चेतना का अधिक प्रचार हुआ।

राष्ट्रवाद के जन्म तथा विकास के सम्बन्ध में निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि जो चिनगारी आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के उलट-फेर के कारण सामंतवाद की समाज-व्यवस्था को भस्मीभूत करने के लिए सुलग उठी थी उसे फ्रांस की क्रान्ति के तीव्र झकोरों ने आग की लपटों में परिणत कर राष्ट्रवाद के ज्वलंत रूप को यूरोपीय राष्ट्रों के सम्मुख रखा। १८वीं शताब्दी में फ्रांस की क्रान्ति व्यक्ति की स्वतन्त्रता का ध्येय तथा विश्वमैत्री की भावना लेकर प्रारम्भ हुई थी, किन्तु १९वीं शताब्दी में यह विचारधारा राष्ट्रवाद तक परिसीमित हो गई। फ्रांस में इस क्रान्ति की सफलता ने अन्य देशों में भी अपनी सभ्यता संस्कृति इतिहास साहित्य और कला के प्रति विशेष श्रद्धा और गर्व की भावना विकसित की। अनेक राष्ट्र फ्रांस की देखा-देखी अपनी संस्कृति भाषा इतिहास साहित्य आदि राष्ट्र की इकाई को

---

1 Nationalism is first and foremost a State of mind Hans Kohn
The Idea of Nationlism—P 10 11

2—Nationlism is the child of French Revolution
G P Gooch—Studies in Modern History P 217
London—Longmans

महानता देने वाले तत्वों की श्रेष्ठता प्रतिपादन के हेतु प्रयत्नशील हुए। अन्य यूरोपीय देशों, विशेषतया जर्मनी तथा इटली में पितृभूमि के प्रति गर्व की भावना जागृत हुई और उनका जन-समाज अपने राष्ट्र की उन्नति एवं एकता की भावना को सुदृढ करने के लिए कटिबद्ध हो गया। परन्तु अपने राष्ट्र के अंगों में एकता तथा सौहार्द की भावना की अभिवृद्धि में अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना भी निहित थी। पुनः जब पश्चिमी जगत् की राष्ट्रवादी लहरें एशिया में भूखंड पर भी तरंगित होने लगीं तब पराधीन देशों में भी जागृति का नवसन्देश प्रवाहित हुआ। वहाँ विद्रोह व आन्दोलन प्रारम्भ हुए तथा अन्य स्वतन्त्र राष्ट्रों के समान स्तर तक पहुंचने के लिए प्राणों की बाजी लग गई।

१६वीं शताब्दी में 'धर्म की एकता' राष्ट्रीयता का आधारभूत सिद्धान्त मानी जाती थी, किन्तु समय के साथ विचारों में परिवर्तन हुआ और धर्म के अतिरिक्त अनेक नवीन सिद्धान्तों को भी मान्यता दी गई। इनमें प्रधान भूमि शासन तथा संस्कृति की एकता है। भूमि की एकता अर्थात् राष्ट्र का स्वतन्त्र निजी भूभाग और राजनैतिक तथा सांस्कृतिक एकता के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप निर्मित होता है। भौगोलिक एकता राष्ट्रीयता का बाह्य आकार कहा जा सकता है। राजनैतिक एकता प्राण, सांस्कृतिक एकता मानस और आर्थिक एकता शक्ति। इनमें से एक के भी अभाव में राष्ट्र का जीवित रहना दुष्कर हो जाता है।[2]

डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'फन्डामेंटल यूनिटी आफ इंडिया' में भारतवर्ष की एकता के सम्बन्ध में लिखते हुए राष्ट्रीयता के उदय के लिए भौगोलिक एकता को प्राधान्य दिया है। उनका कथन है कि जिस प्रकार शरीर के अभाव में कपड़ों का कोई अस्तित्व ही नहीं हो सकता उसी प्रकार स्थायी भूमि के अभाव में राष्ट्रीयता की भावना निरर्थक है। निःसन्देह, इतिहास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि निश्चित भौगोलिक सीमा के अभाव में राष्ट्र की कल्पना स्वप्नमात्र है। राष्ट्रीयता की भावना अथवा राष्ट्र बनाने की इच्छा को देश की कठोर भूमि साकार रूप प्रदान करती है। कतिपय विद्वान भौगोलिक आधार को प्रधानता नहीं देते हैं तथा अपने पक्ष के समर्थन के लिए यहूदी लोगों का उदाहरण देते हैं। किन्तु यहूदियों की राष्ट्रीयता में भी भौगोलिक एकता की तीव्र इच्छा निहित थी। उनकी राष्ट्रीयता का आधार भी सीमाओं से घिरा हुआ एक भूखंड था जहाँ वे अपनी संस्कृति, सभ्यता, भाषा आदि का विकास कर सकते। स्थायी भूमि प्राप्ति के अथक प्रयत्न तथा संघर्ष के पश्चात् अब इस्राइल में उनका अपना देश मिल गया है। वर्तमान युग में धर्म

---

1 A form of corporate sentiment of peculiar intensity intimacy and dignity related to a definite home-country

Zimmer

2 A common memory and a common ideal—these are more than a blood—make a nation,

Burn

जाति, भाषा संस्कृति की एकता राष्ट्रवाद के लिए अनिवार्य रूप में अपेक्षित नही है किन्तु भू भाग की अवहेलना नही की जा सकती।

जिमर ने राष्ट्रीयता की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार राष्ट्रीयता किसी एक देश स सम्बद्ध समष्टि चेतना का नाम है जिसम विशेष प्रकार की तीव्रता अन्तरगता तथा गौरव की भावना सन्निहित रहती है।[1] बन का मत है कि—राष्ट्र के निर्माण के लिए रक्त की एकता स अधिक महत्वपूण तत्व ध्येय की एकता और ऐतिहासिक समानता है।[1] मिल के अनुसार राष्ट्रीयता के चार मुख्य तत्व है —

१—पूवजो की एकता
२—भौगोलिक एकता
३—भाषा और जाति की एकता
४—राजनतिक-लक्ष्य की एकता

रम्जे म्यार ने अपनी पुस्तक नेशनेलिज्म' म राष्ट्रीयता क सम्बन्ध म इन तत्वो का उल्लेख किया है—जाति की एकता साम्कृतिक एकता शासन की एकता आर्थिक एकता राजनैतिक लक्ष्यो की एकता तथा महापुरुषो की जीवन गाथाओ व विजय गाना की मान्यता आदि। उन्होन इन तत्वों के सम्बन्ध म यह स्पष्ट कर दिया है कि एक या अनेक के सयोग से राष्ट्रीयता सम्भव है। प्रोफसर मजूमदार क अनुसार वह जनसमूह जो यह अनुभव करता है कि उसका एक निजी सामाजिक व्यक्तित्व है अपना साहित्य है अपनी भाषा है एक ही ध्येय है एक से रीति रिवाज हैं और जो अन्य राष्ट्रों स इन विशेषताओं के कारण एक भिन्न अस्तित्व रखता है—एक राष्ट्र का निर्माण करता है। उसकी निजी एकता और अन्य राष्ट्रा से भिन्नता की भावना ही राष्ट्रवाद है। प्रोफसर हेज ने राष्ट्रवाद की परिभाषा दी है—मौलिक रूप म राष्ट्रवाद स्वदेश प्रेम है परन्तु मुख्यतया राष्ट्रवाद अपने राष्ट्र के प्रति गर्व और अन्य राष्ट्रो के प्रति उपेक्षा की भावना है। यह भावना इस विश्वास स भरी हुई होती है कि उसके राष्ट्र के सदस्यो के साथ सदव उचित होते हैं।[1] शूमैन न अपनी पुस्तक इन्टरनेशनल पालिटिक्स म लिखा है कि राष्ट्रवाद जातिवाद का विकसित रूप है जिसमे एक वृहद् भूखंड म बसने वाली जाति विशेष की सामाजिक एकता की सीमायें भाषा और सस्कृति की सीमाओ से एकाकार रहती है।[1] डा० सुधीन्द्र के अनुसार राष्ट्रवाद एक व्यक्तिगत नही समष्टि

---

1 'Nationalism is an advanced form of ethnocentrism in which the limts of social cohesion are coteminous with the boundrf the language and culture of people in a large community inhabiting extensive territories

by Frederick L. Schuman —International politics—P 424 Fourth edition New York

गत (सामूहिक) चेतना है—जिसकी दृष्टि समूह या सब के अभ्युदय और प्रगति पर है। और वह प्रगतिशील तत्व भी है। देशभक्ति राष्ट्रीयता का सनातन स्वरूप है और राष्ट्रवाद है और राष्ट्रवाद उसका प्रगतिशील (ऐतिहासिक) स्वरूप है।[1]

राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद की विभिन्न मान्य परिभाषाओं का सूक्ष्म विवेचन करने पर उसके विकासशील तत्वों के सम्बन्ध में निश्चित मत स्थापित करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। प्रायः सभी विद्वानों ने राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीयता की परिभाषा तथा उसके तत्वों का निरूपण अपने ढंग से किया है। जिमर की परिभाषा में राधा कुमुद मुखर्जी की भाँति निश्चित भौगोलिक सीमा उस राष्ट्रीयता का आवश्यक तत्व है। जिमर ने राष्ट्रीयता की परिभाषा की परिधि को छूने का प्रयास किया है क्योंकि राष्ट्रीयता के लिये केवल भौगोलिक उपकरण पर्याप्त नहीं हैं जब तक विशेष रूप से राष्ट्र बना कर रहने की इच्छा न हो। राष्ट्र की सत्ता से विहीन देश के जन समूह में पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध हो सकता है तथा दो या अधिक राष्ट्रों में भी ऐसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते हैं। गौरव की तीव्रतम सामूहिक चेतना के पीछे इतिहास की एकता तथा अतीत गौरव गान भी आवश्यक तत्व हैं। वन ने रक्त की एकता की अपेक्षा ध्येय की एकता को अधिक महत्व दिया है। निःसन्देह रक्त की एकता का मिलन असम्भव तथा कठिन है क्योंकि आज सभी जातियों के रक्त आपस में इतने घुलमिल गये हैं कि रक्त की पवित्रता का मिलना नितान्त असम्भव है। इसके अतिरिक्त स्विटजरलैण्ड के उदाहरण से इनके मत की पुष्टि हो जाती है क्योंकि वहाँ तीन जातियों के लोग तथा तीन भाषायें हैं और फिर भी वह एक सफल राष्ट्र है। वन की परिभाषा तथ्य के अधिक निकट है। राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता को इस परिभाषा की कसौटी पर कसा जा सकता है।

मिल के मत का समर्थन अधिकांश विद्वानों ने किया है। पूर्वजों की एकता या ऐतिहासिक समानता राष्ट्रीयता के विकास में सहायक है इसमें सन्देह नहीं—किन्तु अमरीका एक ऐसा राष्ट्र है जिसने इस तत्व की भी अवहेलना कर दी है। अमरीका के राष्ट्रवाद के एकमात्र तत्व—एक शासन में रहने की इच्छा का सिद्धान्त—अन्य राष्ट्रों द्वारा मान्य होना कठिन है क्योंकि अन्य देशवासियों में इस प्रकार के विचार नहीं पाये जाते। भौगोलिक एकता दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है जिसकी महत्ता सिद्ध की जा चुकी है। भाषा और जाति की एकता अवश्य महत्व रखती है क्योंकि इसके द्वारा विचार विनिमय तथा घनिष्ठता सहज हो जाती है। ऐतिहासिक एकता तथा भाषा की समानता का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होता है। बस अपवाद-स्वरूप स्विटजरलैण्ड का नाम लिया जा सकता है जहाँ तीन भाषायें राष्ट्रीय कार्य-संचालन में महत्व रखती हैं। जातीय एकता की अपेक्षा एक शासन अथवा राजनैतिक तत्व की एकता अधिक आवश्यक तत्व है। अतः मिल द्वारा निश्चित तत्व उल्लेखनीय है किन्तु इनमें

१—डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर। पृ० २१७ प्रथम संस्करण

से किसी एक तत्व के आधार पर भी राष्ट्रवाद के विकास में पर्याप्त सहायता प्राप्त हो सकती है।

रेम्जे म्योर की परिभाषा इतनी विस्तृत है कि उसमे किसी भी राष्ट्र की राष्ट्रीयता का आधार सुगमता से ढूढा जा सकता है। वे एक राष्ट्र को केवल इसलिए राष्ट्र मानते हैं कि उसके निवासियो का एसा विश्वास होता है और उनके आपस के घनिष्ट सम्बन्ध इस विश्वास की जड में निहित होते है। निःसन्देह लक्ष्य तथा स्वार्थों की समानता घनिष्ठ सम्बन्ध समष्टिगत स्वार्थ तथा सुख के लिए व्यक्तिगत-स्वार्थों का त्याग राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक हैं किन्तु इसके लिए अन्य तत्व अप्रत्यक्ष रूप से क्रियाशील रहते हैं। रेम्जे म्योर ने राष्ट्रीयता की कोई निश्चित एव मान्य परिभाषा नही दी है। प्रोफसर मजूमदार की परिभाषा भी आवश्यकता से अधिक विस्तृत है। रीति रिवाज अथवा रहन सहन म समानता न होने पर भी एक राष्ट्र म राष्ट्रवाद की भावना मिल सकती है। प्रोफसर हैज की परिभाषा मे राष्ट्रवाद का अधिक विस्तृत एव उज्ज्वल रूप नही मिलता। यद्यपि राष्ट्रवाद का जन्म फ्रास म राष्ट्र के प्रति गव की भावना से हुआ था किन्तु आज अन्य राष्ट्रो के प्रति उपेक्षा की भावना उपयुक्त नही समझी जाती। सच्चे राष्ट्रवाद मे अपने राष्ट्र के प्रति गर्व की भावना के साथ अन्य राष्ट्रों के सम्मान का उच्च आदर्श रहता है। यह तो एक राष्ट्र के जन समुदाय को कस कर बाध रखने की शृंखला मात्र है जिससे वह छिन्न भिन्न न हो जाये।

शूमन की परिभाषा भी सीमित और सकुचित है। वतमान युग का राष्ट्रवाद जातिवाद का विकसित रूप नही कहा जा सकता। राष्ट्रवाद विशिष्ट सामाजिक आर्थिक राजनतिक परिस्थितियो का फल है तथा उसे हम मानव बुद्धि की प्रगति का परिणाम कह सकते है। जातिवाद अथवा जातीय एकता तो उसका एक तत्व मात्र बन सकता है। भाषा तथा सस्कृति की एकता भी आवश्यक नही है। डा सुधीन्द्र ने राष्ट्रवाद और राष्ट्रीयता का सूक्ष्म विवेचन न करके स्थूल रूप स समझाने का प्रयत्न किया है।

एक देश देश की सज्ञा से ऊपर उठकर राष्ट्र की सज्ञा को तभी प्राप्त करता है जबकि उसके निवासियो म कुछ सामान्य विशेषताओ के आधार पर घनिष्ट सबध स्थापित हो जाता है तथा व सब अपने को देश की इकाई के रूप म देखते हैं। जब एक निश्चित सीमा मे आबद्ध भूभाग क लोगों का इतिहास एक होगा—उनम अतीत गौरव-गाथाओ के प्रति गव होगा तथा भविष्य म अपने राष्ट्र को सदृढ करने वाली योजनाओं के प्रति उत्साह होगा—तभी राष्ट्रीयता की भावना सभव हो सकेगी। एक राष्ट्र म जन अपनी राष्ट्रीय भावना को साहित्य शिल्पकला चित्रकला सगीत आदि कला माध्यमो के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं जिससे अन्य राष्ट्र उनकी राष्ट्रीयता से परिचित हो सकें। इस प्रकार राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रीय भावना का सम्बन्ध केवल बाह्य शरीर अथवा जड भूमि मात्र स न होकर आन्तरिक होता है। अन्त मे यह

स्पष्ट है कि राष्ट्रवाद के अनेक तत्व है जिनम से एक या अनेक के सयोग से इसका उद्भव एव विकास होता है। ये तत्व हैं—जाति की एकता धम की एकता भाषा की एकता इतिहास की एकता सामाय स्वाथ की एकता आदि। इनके केद्र मे एकता बिदु रूप म अवस्थित रहती है। नाजी लोग आकति की समानता अथवा शारीरिक समानता पर बल देते थ अग्रजो के लिए भाषा इतिहास तथा सस्कति की एकता राष्ट्रीयता के लिये आवश्यक है अमरीका निवासियो के लिये एक शासना धिकार मे रहन की इच्छा ही पर्याप्त है। अत कदाचित् ही ससार क कोई दो राष्ट्र राष्ट्रवाद के समान तत्वा के विषय म एकमत हो।

आज विश्व-जीवन की शाति के लिए नितात आवश्यक है कि राष्ट्रवाद के शुद्ध रूप की स्थापना की जाये। यदि वह उग्र रूप ले लेता है तो विश्व शान्ति भग होने की सम्भावना बढ जाती है। राष्ट्रवाद को जातीयता धम साम्प्रदायिकता सकीणता स्वाथपरता स ऊपर उठकर राष्ट्र की सीमा म विश्वास रखत हुय भी मानव-कल्याण की भावना स अभिप्रेरित होना चाहिये। गाधीजी ने राष्ट्रवाद का जो रूप देश को दिया था वह अत्यन्त व्यापक उदार तथा प्राणिमात्र के कल्याण की भावना से परिपूर्ण था। उनके सिद्धान्तो का विवेचन विस्तार के साथ शोध खड के अन्तगत किया गया है।

राष्ट्रवाद, देशभक्ति जातिवाद अथवा सम्प्रदायवाद स भिन्न है प्राय इन शब्दो को एक म मिलाने का प्रयत्न किया जाता है। अत इनका अन्तर स्पष्ट कर देन से राष्ट्रवाद का स्वरूप अधिक स्पष्ट हो जायगा।

राष्ट्रवाद और देशभक्ति

भक्ति का क्षत्र भावना अथवा हृदय है तथा वाद का सम्बध बुद्धि स है। अत देशभक्ति देश के प्रति एक प्रकार का अनुराग है और राष्ट्रवाद मस्तिष्क के तक से उत्पन्न विचार। राष्ट्रवाद क मूल म देशभक्ति बीज रूप म सुरक्षित रहती है। अनेक अन्य प्रकार की भक्ति की भाति देशभक्ति भी देश की रज के प्रति भक्ति की भावना है। प्रारम्भ म मनुष्य की भक्ति तथा ममत्व की भावना जमभूमि तक सीमित थी किन्तु शन शन उसका विस्तार राज्य की सीमा म बढा। शिक्षा के प्रसार तथा यातायात की सुविधाओ के साथ मनुष्य का परिचय एक बड भूखड के अय भागो से भी हुआ। सामाय विशेषताओ रीति रिवाज और सस्कृति की एकता क आधार पर आपस म सम्बध स्थापित हुये। इसी कारण आज देशभक्ति की भावना जिस विस्तृत रूप म ससार के सम्मुख आयी है वसा इसक पहल कभी न थी। आज हम अपन पूरे देश या राष्ट्र को जमभूमि की सज्ञा देत है। जन्मभूमि का अय स्वदश है जिसके प्रति रागात्मक वृत्ति सजग रहती है। सामतवादी समाज व्यवस्था म व्यक्ति की भक्ति भावना क क्षत्र कवल छोटे-छोटे राज्य थ। उनकी देशभक्ति शासक के प्रति मोह तक ही सीमित थी।

देशभक्ति अथवा राष्ट्रभक्ति का मूलमन्त्र है—हमारा देश, हमारा राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से श्रेष्ठ सुन्दर तथा समृद्ध है। जार्ज बर्नर्डशा ने कहा है कि 'राष्ट्रभक्ति में ऐसा दृढ़ विश्वास होता है कि जिस देश में जन्म हुआ है वही देश संसार में श्रेष्ठ है। डा० राधाकुमुद मुखर्जी के मत में भारत में जन्मभूमि के प्रति भक्ति तथा स्वदेश की भावना वैदिक काल से पायी जाती है—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी—जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से भी महान् हैं मातृभूमि के सम्मुख स्वर्ग-सुख भी त्याज्य है। विष्णु पुराण में भारत भूमि के प्रति महान् भावना मिलती है—

गायन्ति देवा किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषा सुरत्वात्।

बाल्यावस्था में जो स्नेह श्रद्धा भक्ति अपने माता पिता कुटुम्बीजन तथा आसपास के वातावरण के प्रति जाग्रत होती है। वही अवस्था बुद्धि के विकास के साथ कालान्तर में देश के प्रति भक्तिभाव में परिणत हो जाती है। देश की वन्दना गौरवगान जयजयकार जागरण और अभिमान के गान देशभक्ति के विभिन्न पक्ष हैं। राष्ट्र अथवा राष्ट्रवाद के अभाव में भी देशभक्ति वर्तमान रह सकती है।[1] अतः राष्ट्रीयता से देशभक्ति का मौलिक अन्तर है। इन शब्दों को एक अर्थ में प्रयुक्त करना असंगत है।

राष्ट्रवाद और जातिवाद

राष्ट्रवाद, सम्प्रदायवाद साम्राज्यवाद व्यक्तिवाद समष्टिवाद आदि विभिन्न वादों के सदृश जातिवाद का १९वीं शताब्दी में महत्त्व दिया गया। एक जाति के व्यक्तियों के संगठन में इसका प्रादुर्भाव हुआ। इसका प्रमुख सम्बन्ध शरीरशास्त्र से है अर्थात् इसने आकृति वर्ण तथा रक्त के आधार पर समस्त संसार को अनेक जातियों उपजातियों में विभाजित किया है। इसमें अपनी जाति तथा वर्ण के व्यक्तियों के अभ्युदय एवं प्रगति की शुभकामना वर्तमान रहती है।

जातिवाद तथा राष्ट्रवाद में विशेष अन्तर है। राष्ट्रवाद जाति वर्ण रक्त भेद को भुलाकर राष्ट्र के कल्याण की भावना से अभिप्रेरित होता है। रक्त की एकता अथवा जाति की एकता राष्ट्रवाद की पुष्टि में सहायक एक तत्व मात्र बन सकती है। कदाचित इसी कारण शूमन ने राष्ट्रवाद को जातिवाद का विकसित रूप कहा है। किन्तु यह नितान्त आवश्यक तत्व भी नहीं है जैसा कि राष्ट्रीयता की मान्य परिभाषाओं के विवेचन में सिद्ध किया जा चुका है। वस्तुतः आज के अधिकांश राष्ट्रों की राष्ट्रीय भावना के पीछे केवल जातिवाद की भावना नहीं है।

१—देशभक्ति जन एकता और जन संस्कृति राष्ट्र के तीन पाये हैं—परन्तु देश भक्ति आधारभूत है, उसके बिना 'राष्ट्रीयता' की कल्पना नहीं की जा सकती। डा० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० २३६

राष्ट्रवाद और सम्प्रदायवाद

कुछ विशिष्ट सिद्धान्तों को कट्टरता के साथ ग्रहण करने वाले जनसमुदाय को सम्प्रदाय की सज्ञा प्रदान की जाती है। राजनतिक आर्थिक सामाजिक स्थूल या सूक्ष्म मतभेदो के आधार पर छोटे बड़े सम्प्रदायो की नींव पड़ता है। एक देश या राष्ट्र म सद्धान्तिक विभिन्नता के आधार पर निर्मित छोटे मोटे अनेक सम्प्रदाय मिल सकते हैं। धम संस्कृति तथा आचार विचार म समझौता न हो सकने के कारण कभी कभी सम्प्रदाय वश उग्र रूप धारण कर लेते हैं। विशेषतया धार्मिक मतभेदो के आधार पर ऐसे सम्प्रदायो का निर्माण होता है। भारत म सम्प्रदायवाद अधिक लोकप्रिय रहा है। धम क्षेत्र म केवल नाममात्र क मतभेदो के कारण मान कर नवीन सम्प्रदायो का सृजन कर लेना अति साधारण बात थी। इसम मनोवृत्ति अधिक सकुचित हो गई। भारत देश क विभाजन का प्रमुख कारण यही सम्प्रदायवाद रहा है जिसका मूलाधार धार्मिक सकीणता था।

राष्ट्रवाद तथा सम्प्रदायवाद दोनो ही मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है लेकिन राष्ट्रवाद का जन्म अनुकूल परिस्थितियों म हुआ और सम्प्रदायवाद का प्रतिकूल परिस्थितियो तथा मतभेदो मे। मतभेद तथा साम्प्रदायिकता राष्ट्रीयता राष्ट्रीय एकता अथवा राष्ट्रवाद क विकास म अवरोधक हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्र की एकता तथा विशिष्टता की समतल भूमि पर आधारित है—भिन्नता म अभिन्नता भेदो म अभेद का इच्छुक है। सम्प्रदायवाद अभिन्नता स भिन्नता अभेद से भेद एकता म अनेकता की ओर जाने की प्रेरणा देता है और राष्ट्र के एकत्व को छोटी-छोटी साम्प्रदायिक टुकडियो मे विभक्त करन म विश्वास रखता है। राष्ट्रवाद की अपेक्षा सम्प्रदायवाद अधिक सीमित, सकुचित तथा सकीर्ण है। प्राय सम्प्रदायवाद राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद की भावना पर कुहरा बन कर छा जाता है जिससे उसका शुद्ध रूप स्पष्ट दृष्टिगत नही होता। कभी-कभी तो सम्प्रदायवाद की आधी राष्ट्रवाद की सशक्त जड़ो को उखाडने म भी समथ हो जाती है और राष्ट्रीय एकता को छिन्न भिन्न कर परा धीनता की बेडिया में जकड देती है। भारत का इतिहास इसका साक्षी है। सकाण सम्प्रदायवाद राष्ट्र राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद के लिए अमृत की अपेक्षा गरल का ही काय करता है किन्तु विरोधाभास यह है कि राष्ट्रवाद क भीतर ही सम्प्रदायवाद पनपता है। अन्त म यह कहा जा सकता है कि सम्प्रदायवाद तथा राष्ट्रवाद म अन्तर ही नही विरोध भी है।

राष्ट्रवाद और साम्यवाद

राष्ट्रवाद तथा साम्यवाद दोनो ही व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि म विश्वास रखते हैं। राष्ट्रवाद राष्ट्रीयता का प्रगतिशील रूप है। यह एक प्रकार की चेतना है जो राष्ट्र के एक व्यक्ति म स्पन्दित रहती है जिसम एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र से स्वतन्त्र एव पृथक् अस्तित्व बना रहता है। इसम एक निश्चित भूभाग की सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनतिक सीमाए एक ही दिशा म चलती हैं, यहीं भी विरोध नहीं होता, किसी प्रकार की विषमता अथवा कटुता नहीं आने पाती। स्वदश प्रम राष्ट्र

वाद का आवश्यक अंग है जिसके अभाव में राष्ट्रवाद अपूर्ण एवं विकलांग हो जाता है। राष्ट्रवाद की अपेक्षा साम्यवाद ने जीवन को नवीन दृष्टि से देखा है। उसने भौतिक आवश्यकताओं को महत्वपूर्ण स्थान देकर उसे सभी परिवर्तनों का मूल कारण माना है। साम्यवाद ने राजनैतिक सामाजिक धार्मिक, आर्थिक सांस्कृतिक साहित्यिक अर्थात् जीवन की समस्त प्रणालियों को एक बार फिर से छिन्न भिन्न करके नवीन ढंग से सजाने का प्रयत्न किया है। उसने आज तक चली आती हुई व्यवस्था को हिंसात्मक क्रान्ति द्वारा जड़ से उखाड़ फेंकने का संकल्प ले रखा है। साम्यवाद कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों पर आधारित है। यह राज्य क्रान्ति सन् १९१७ में रूस में प्रारंभ हुई थी। इसका मूल सिद्धान्त है वर्गहीन समाज की स्थापना व्यक्तिमात्र की स्वतन्त्रता तथा अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर पग बढ़ाना। यह संसार की मानवता को राष्ट्रीयता रक्त जाति वर्ग अथवा अन्य छोटी छोटी सीमाओं में बाँटने में विश्वास नहीं रखता। पूंजीवाद की प्रतिक्रिया स्वरूप इसका जन्म हुआ था अतः उसे मिटा कर वर्गहीन समाज की स्थापना इसका एकमात्र लक्ष्य है। इसका विचार है कि मजदूर शासन सत्ता की स्थापना की जाय। तत्पश्चात् सम्पूर्ण विश्व में समानता के आधार पर कार्यक्रम प्रसारित हो। साम्यवादी हिंसात्मक क्रान्ति का चक्र तब तक चलाना चाहते हैं जब तक समाज सच्चे अर्थों में जनकल्याणकारी जनस्वतन्त्रता का पोषक राज्य विहीन अन्तर्राष्ट्रीय वैमनस्य तथा विद्वेष की भावना से रहित न हो जाय।

साम्यवाद एक सुन्दर स्वप्न है जिसे वास्तविकता में परिणत करना अथवा मूर्त रूप प्रदान करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। मनुष्य के स्वभाव अथवा मनोरचना से भी इसके सिद्धान्तों का मेल नहीं हो पाता। इसके अनुसार सम्पूर्ण समाज में दो प्रमुख वर्ग हैं—शोषक और शोषित पूंजीपति और श्रमिक। इसके विपरीत राष्ट्रवाद मनुष्य को अलग अलग श्रेणियों नहीं बनाता। तथा उसका मनुष्य की रागात्मक प्रवृत्ति के साथ भी सहज ही सामंजस्य हो जाता है। इसके अस्तित्व में साम्यवाद की उपस्थिति असम्भव है और साम्यवाद में राष्ट्रवाद की। परन्तु आज के सभी साम्यवादी राष्ट्र अपनी निश्चित भौगोलिक सीमाओं में घिरे हैं और अन्तर्राष्ट्रीयता की ओर पग बढ़ाने में असमर्थ हैं। राष्ट्रीय सीमा में आबद्ध साम्यवादी राष्ट्र अन्तर्राष्ट्रीय भावना के विकास में बाधक हैं। वैसे साम्यवाद का आदर्श राष्ट्रवाद की अपेक्षा अधिक उच्च उदात्त एवं महान् है। वह तो राष्ट्रवाद के आधारमूल तत्वों—जाति रक्त भाषा आचार विचार सभ्यता संस्कृति इतिहास की एकता भौगोलिक सीमा आदि को तोड़ने में विश्वास रखता है। यदि राष्ट्रवाद एक विशिष्ट भूखंड के निवासियों की उन्नति तथा प्रगति के संयोजक तत्वों को ही महत्व देता है अन्य भूखंडों में बसने वाले जनसमुदाय की उपेक्षा करता है तो साम्यवाद विश्व ऐक्य मानवमात्र की समानता को जनकल्याण के लिए उपयुक्त समझता है।

साम्यवाद और राष्ट्रवाद में साम्य की अपेक्षा विषमता ही अधिक है। जहां राष्ट्र की मान्यता नहीं वहां राष्ट्रवाद असम्भव है तथा जहाँ अपने राष्ट्र के प्रति मोह

व ममत्व है वहाँ साम्यवाद कठिन है। यदि साम्यवाद अपने सच्चे अर्थों में विशुद्ध रूप में मान्यता पाता है तो राष्ट्रवाद की भावना दूर हट जाती है। दोनों की विचारधारा व मूल दर्शन में विरोध है। राष्ट्रवाद की सीमा में साम्यवादी विचारधारा का आरोपण भ्रम मात्र है।

राष्ट्रवाद की आधुनिक विकृतियाँ

राष्ट्रवाद के साथ भिन्न भिन्न राष्ट्रों की विभिन्न सभ्यता तथा संस्कृतियाँ आईं इतिहास और गौरव गाथाओं का गान हुआ तथा राष्ट्रों के अभ्युदय व विकास की योजनाएं बनी। इसके विकास के साथ विभिन्न राष्ट्रों में स्वार्थवश स्पर्द्धा तथा प्रतिद्वन्द्विता की मात्रा बढ़ती गई। फलत विकृतियां आई जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं—प्रथम तथा द्वितीय महायुद्ध। श्री अप्पादोराय ने अपनी पुस्तक में राष्ट्रवाद की विकृतियों पर प्रकाश डाला है। उनके मत में राष्ट्रवाद सम्पूर्ण विश्व की आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से मानव के लिए अहितकर है।[1] वैज्ञानिक यातायात के साधनों के कारण विश्व के सभी भाग निकट आ गये हैं लेकिन राष्ट्रीय प्रतिबन्धों के कारण सम्पूर्ण विश्व के आर्थिक उत्पादन का मानव मात्र के लिए अधिक से अधिक उपयोग असम्भव हो गया है। इनके मत में भी राजनैतिक दृष्टि से युद्ध सबसे बड़ी विकृति है जिसका उल्लेख किया जा चुका है।

स्वतन्त्र राष्ट्रों से प्रेरणा ग्रहण कर पराधीन राष्ट्रों ने भी अपने छिन्न भिन्न अंगों को समेट कर सुदृढ़ राष्ट्र में परिणत होने के लिए क्रान्ति प्रारम्भ की। मध्यम श्रेणी के राष्ट्र उन्नत राष्ट्रों की पंगत में बठने के लिए अपने राजनैतिक सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रों को दृढ़ बनाने लगे और उन्नत राष्ट्रों ने राष्ट्रवाद के विकृत रूप से प्रेरित होकर साम्राज्यवाद का विस्तार करने के लिए निर्बल राष्ट्रों पर आक्रमण किया। अतः इसकी प्रथम विकृति है राष्ट्र-संघर्ष जिसको इससे प्रोत्साहन मिलता है।

राष्ट्रवाद में स्वार्थ भावना अधिक प्रबल होती है। इसकी प्रबलता अन्य राष्ट्रों के लिए घृणा की भावना का संचार करती है जिससे मानव जाति के कल्याण की अपेक्षा ध्वंस ही अधिक होता है। निरीह मानवता स्वार्थ एवं विकृत राष्ट्रवाद की चक्की में बुरी तरह पिस जाती है। प्रोफेसर हेज ने इसी कारण अपनी परिभाषा में राष्ट्रवाद को अपने राष्ट्र के प्रति गर्व तथा अन्य राष्ट्रों के प्रति उपेक्षा की भावना माना है। साम्यवाद का जन्म इसकी विकृति की प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ। विकृत राष्ट्रवाद के परिणामस्वरूप उन्नत समृद्ध तथा शक्तिशाली राष्ट्र पराधीन राष्ट्रों के साथ बर्बर और नृशंस व्यवहार करने में तनिक भी संकोच नहीं करते।

भारत और राष्ट्रवाद

राजनीतिशास्त्र के मान्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रवाद की ग्राह्य परिभाषाओं

1 A Appadorai—The Substance of Politics—P 150 154 Eighth Edition—Oxford University Press 1957

की कसौटी पर यदि भारत को देखा जाय तो अंग्रेजी शासन के पूर्व यहाँ राष्ट्रवाद नहीं मिलता। १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में राष्ट्रीय महासभा ने जिस राष्ट्रीय *कार्यक्रम का प्रचार किया उसने राष्ट्रीय चेतना के विकास में पर्याप्त सहायता पहुंचाई।* भारत में इस भावना अथवा चेतना का जन्म धार्मिक सामाजिक तथा राजनीतिक सुधारों में हुआ। अंग्रेजी शासन काल में यातायात की सुविधाओं तथा एक शासन के कारण देश की मनःस्थिति ऐसी हो सकी जिसमें सम्पूर्ण देश की उन्नति तथा प्रगति के लिए कार्य प्रारम्भ हुआ। देशवासियों का ध्यान राष्ट्रनिर्माण के अवरोधक तत्वों की ओर आकृष्ट कर उसके विकास के लिए उपयोगी वातावरण निर्मित किया गया।

भारत एक विशाल देश है जिसे स्वयं प्रकृति ने भौगोलिक सीमाएं प्रदान की हैं। *उसका इतिहास संस्कृति साहित्य आचार विचार रहन-सहन अति पुरातन है।* पराधीनता की बेड़ियों में कसे होने पर भी वह निरन्तर स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करता रहा और अन्त में विदेशी दासता से मुक्ति पाकर ही निश्चिन्त हुआ। २०वीं शताब्दी से राष्ट्रीय एकता तथा स्वतन्त्रता के लिए जो आन्दोलन हुए उन्हें लक्ष्य का एकता कहना चाहिए।

मिल द्वारा उल्लिखित राष्ट्रीयता के चारों तत्व आज भारत में उपलब्ध हैं— अर्थात् पूर्वजों की एकता भौगोलिक एकता भाषा और जाति की एकता राजनैतिक लक्ष्य की एकता। बर्न की परिभाषा पर भी भारत की राष्ट्रीयता तथा राष्ट्रवाद खरा उतरता है। अतः भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व स्वतन्त्रता को ध्येय बनाकर राष्ट्रवाद का पूर्ण विकास हो गया था। आधुनिक हिन्दी साहित्य में इसकी पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है जो इस शोध प्रबंध का विषय है।

२

राजनैतिक सामाजिक-परिस्थिति तथा राष्ट्रीय चेतना

१८५७-१९२० ई०

वैदिक एवं संस्कृत-साहित्य में आर्यावर्त की भौगोलिक एकता की भावना स्पष्ट है, किन्तु उसे राष्ट्रीय भावना या चेतना कहना अनुचित होगा। कतिपय विद्वानों के मत में-भारतवर्ष नाम तथा चक्रवर्ती राजा बनने की महत्वाकांक्षा राजनैतिक एकता का सूचक है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र पतंजलि के महाभाष्य (१५० ई० पू०) रामायण, महाभारत वराहमिहिर की बृहत्संहिता तथा कालिदास के ग्रन्थों में भारत के अनेक भागों का वर्णन मिलता है।[1] तुर्कों के आगमन के पूर्व देश की भौगोलिक एकता के बावजूद उसको एकसूत्र में बाँधने के प्रयत्न तथा धार्मिक एकता की भावना पाई जाती है लेकिन देश के भिन्न भिन्न भागों में आचार विचार रहन-सहन तथा भाषा का अन्तर भी था। मुगल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् भी सम्पूर्ण भारत भूमि एक शासन सूत्र में पूर्णतया न बंध सकी और अनेक स्वतन्त्र राज्य शेष रहे। इस काल में सभी शक्तिशाली शासकों ने सम्पूर्ण भारतदेश को एक छत्र के नीचे लाने के प्रयत्न किये और वे किसी अंश में सफल भी हुए लेकिन जैसे ही केन्द्रीय शासन शिथिल होता था देश पुनः अनेक भागों में बंट जाता था। अतः आज राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद शब्द का प्रयोग जिस अर्थ में किया जा रहा है उस रूप में राष्ट्रीय भावना आधुनिक काल के पूर्व नहीं मिलती। यूरोप में भी यह भावना इसी काल की देन है।

अंग्रेजी शासनकाल में शासनिक एकरूपता अंग्रेजी भाषा के सार्वदेशिक प्रयोग तथा यातायात की सुविधा के फलस्वरूप उत्तर से दक्षिण तथा पूर्व से पश्चिम तक देशवासी एकता के सूत्र में आबद्ध हो निकट सम्पर्क में आये जिसमें राष्ट्रीयता की नवीन चेतना का उदय हुआ। यद्यपि भारत की भौगोलिक एकता पर्वतों तथा सागरों की विशाल लहरों द्वारा सुरक्षित थी और राष्ट्र निर्माण में सहयोगी सभी उपकरण

---

1 Radha Kumud Mukerjee —The Fundamental Unity of India-P 17 63, 110 1914 Edition—Longmans Green & Co

विद्यमान थ किन्तु सगठन के अभाव म राष्ट्र का निर्माण न हो सका था । सहस्रों वर्षों म उपन्य राष्ट्रनिर्माण की आधारभूमि भौगोलिक एकता निष्प्रयोजन सी ही थी । अग्रजी साम्राज्यवाद ने इस चेतना के उद्बोधन हेतु अनुकूल वातावरण तथा उपयुक्त सामग्री प्रदान की । शनै शन सुप्त भारतवासियो ने जागृत हो अपनी दीन हीन दशा की ओर दृष्टिपात किया और वे विक्षुब्ध हो उठे । अत अग्रजी साम्राज्यवाद बाधक क साथ साधक भी सिद्ध हुआ क्योकि इसी शासन काल में भारतीयो ने नव जागृति का सन्देश सुना ।

१८५७ ई से पूव ईस्ट इडिया कम्पनी के सौ वष के शासन-काल म भारतीयो के साथ व्यवहार रूप मे लाई गई राजनतिक, धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक नीति के कारण देश में विद्रोह के लक्षण स्पष्ट हो रहे थे।[1] लार्ड डलहौजी की देशी राज्यो के विलय की नीति और अवध प्रदेश का अग्रेजी साम्राज्य म समाहार महत्वपूर्ण घटनाए थी जिनसे जनता की स्वाधीन भावनाओ पर कठोर प्रहार हुआ था । विदेशी शासन की शिक्षा आयोजना रेल-तार-डाक का प्रचार नहरो तथा सडको के निर्माण आदि ने विद्रोहाग्नि प्रज्ज्वलित करने मे समिधा का काम किया । देशी राज्यो तथा अवध के सिपाहियो की आजीविका छिन गई थी वे किसी भी क्षण विद्रोह करने के लिए तत्पर बठे थे । भारतीय नरेशों की स्वत त्रता के अपहरण के साथ अग्रजी अधिकारी वग ने उन्हें अपमानित भी किया था । अत असतोष तथा विक्षोभ के अतिरेक ने १८५७ ई० म विद्रोह का रूप ले लिया जिसने हिन्दी प्रदेश मे उग्रतम रूप धारण किया ।

सन् १८५७—१८८५ ई०

१८५७ ई० के विद्रोह के कारणों के सबध मे मतभेद है । अनेक पश्चिमी इतिहासकार इसे सिपाही विद्रोह की सज्ञा देते हैं किन्तु बहुधा भारतीय इतिहासकार इसको स्वतन्त्रता सग्राम की ओर ले जाने वाला प्रथम सोपान मानते हैं ।[2] निसन्देह १८५७ ई का विद्रोह अंग्रेजी सत्ता को मिटा देने का महान् उद्योग था जिसका प्रभाव

१—अंग्रजो का भारतीयों के प्रति व्यवहार कठोर और अमानुषिक हो चला था और पादरियों का धार्मिक प्रचार पूण वेग से बढ़ रहा था । शासन म सभी सम्मानित पदों से भारतीय अलग कर दिये गये थे । भूमि कर-व्यवस्था के नये नये कानूनों और परिवतनों से पुरान शासकीय वग की स्थिति बहुत गिर गई और कृषक वग पर भारी आर्थिक बोझ पड़ा ।

डा० रघुवशी—भारतीय सांवधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० २२

२—अग्रजी लेखक इस युद्ध को बगावत कहते हैं परन्तु यह गलत है । यह कुछ सिर फिरे देशी नरनों की छुटपुट बगावत नहीं थी, बल्कि सामन्तवाद की अन्तिम और सगठित कोशिश थी अपने को जीवित रखने के लिए ।

—कृष्णदास स्वतन्त्रता सग्राम ६० वष पृ० १०

कालान्तर में स्पष्ट हुआ।[1] इसके पश्चात् ही भारत का शासन-सूत्र ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल के माध्यम द्वारा सीधा इंगलैण्ड की पार्लियामेण्ट के हाथ में आया। महारानी विक्टोरिया ने भारतीय जनता के असन्तोष अविश्वास तथा विदेशी शासकों के प्रति घृणा एवं कटुभावनाओं को शान्त करने के लिए घोषणा की कि अंग्रेजी शासनान्तर्गत योग्यतानुसार भारतीय सभी पदों पर नियुक्त होंगे तथा सामाजिक एवं धार्मिक विषयों में शासकों का हस्तक्षेप नहीं होगा।[2] देशी शासकों के विक्षोभ को शान्त करने के लिए उन्हें विश्वास दिलाया गया कि उनके राज्य, उनके वंशजों के लिए सुरक्षित रहेंगे। इस विद्रोह को राष्ट्रीय आन्दोलन न कहा जा सकता हो फिर भी इसने आन्दोलन के बीजारोपण के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण कर दिया था और भारतीयों की विदेशी शासन से मुक्त होने की आकांक्षा स्पष्ट हो रही थी।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा तथा शासनसूत्र का ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के अधिकार में आ जाने से विद्रोहाग्नि पर राख डालने का प्रयत्न किया गया था किन्तु यह आग अन्दर ही अन्दर धधकती रही। १८५७ के विद्रोह के पश्चात् बीस वर्षों तक ऊपरी शांति बनी रही लेकिन जनता का असन्ताप तथा क्षोभ प्रच्छन्न रूप से अंग्रेजी साम्राज्यवादी स्वार्थपूर्ण नीति के कारण उग्र रूप धारण करते जा रहे थे।

भारतीय शासन का सीधा सम्बन्ध ब्रिटिश पार्लियामेंट से हो गया था फिर भी भारतीय जनता की दशा में अधिक सुधार न हुआ विदेशी सरकार की गति विधि पूर्ववत् ही कठोर बनी रही। अंग्रेज शासक दृष्टि से भारतीयों को देखते थे और भारतीय उनको घृणा की दृष्टि से। इसके फलस्वरूप अंग्रेजी सेना की संख्या में अभिवृद्धि हुई तथा सेना के कुछ विभागों में भारतीयों को स्थान न दिया गया। इसके अतिरिक्त विदेशी शासकों ने अपनी सुरक्षा की क्षुद्र भावना से प्रेरित होकर सम्पूर्ण देश का निःशस्त्रीकरण भी किया और शस्त्र अधिनियम बड़ी दृढ़ता के साथ क्रियान्वित किया गया। समय समय पर राष्ट्रीय जीवन के निर्माण विकास में योग देने वाले समाचारपत्रों की स्वाधीनता पर भी प्रेस अधिनियम द्वारा बन्धन लगाया गया जिससे जनता अपनी व्यथा की कथा कहने में भी असमर्थ हो गई। साम्राज्यवादी शोषण नीति के कारण ग्रामीण व्यवस्था तथा गृह उद्योगों को

१— पट्टाभिसीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ५

2—We hold ourselves bound to the native of our Indian territories by the same obligations of duties which bind us to all our other Subjects In their prosperity will be our strength in their content ment our security and in their gratitude our best rewards
Mahatma Life of Mohan Das Karam Chand Gandhi—P 3 Vol 1 published by Vithal Bhai K. Zhaveri & D G Tendulkar 64, Walkeshwar Road Bombay—6

भारी आघात पहुँचा कर में निरन्तर वृद्धि हुई तथा महारानी विक्टोरिया की घोषणा के विपरीत जाति भेद तथा रंग भेद का विष-बीज बोया गया। आर्थिक शोषण का भीषण परिणाम था दुर्भिक्ष तथा महामारी का नग्न ताडव। जिस समय मृत्यु की विभीषिका भारतीयों के जीवन को आक्रान्त किए हुए थी अंग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि देश के धन को दिल्ली दरबार तथा अफगान युद्ध जैसे निरर्थक कार्यों में मुक्तहस्त व्यय कर रहे थे। धार्मिक क्षेत्र में भी निरन्तर ईसाई धर्म का प्रचार हो रहा था। देश की इस विषम परिस्थिति में एक ओर तो जनता में कटुता घृणा और अवज्ञा की भावना बढ़ी जिसने कुछ सुशिक्षित भारतीयों का ध्यान देश दशा की ओर आकृष्ट किया तथा दूसरी ओर उनके हृदय में देश प्रेम की भावना का जन्म हुआ जो राष्ट्रीय चेतना का कारण बन बैठा। इलबर्ट बिल सम्बन्धी आन्दोलन के पश्चात् तो इस शिक्षित वर्ग की धारणा प्रबल हो गई कि बिना संगठन और संगठित भारतीय आन्दोलन के उनके अधिकारों की रक्षा न हो सकेगी।

राष्ट्रीय चेतना के प्रचार तथा प्रसार में भारत की कुछ महान् विभूतियों का विशेष स्थान है जिन्होंने संस्थाओं तथा सभाओं की स्थापना कर जन-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सुधार करना चाहा। उन्होंने निश्चेष्ट निराश एवं निरवलम्ब जनता को अपने उच्च विचारों का दान तथा नवचेतना दान कर उनके जन्मजात अधिकारों की ओर दृष्टि आकृष्ट की। सर्वप्रथम राजा राममोहनराय ने धार्मिक व सामाजिक सुधार आन्दोलन का नेतृत्व कर भारतीय जनता की अन्ध विश्वास तथा रूढ़िवादिता द्वारा होने वाले अनर्थों से मुक्त करने का प्रयत्न किया।[1] बम्बई में बम्बई सभा (१८५२) के प्रमुख संस्थापक दादाभाई नौरोजी तथा विश्वनाथ नारायण माडलिक थे। समाज सुधार का काम बम्बई में प्रार्थना समाज तथा बंगाल में ब्राह्म समाज ने किया। भंडारकर आगरकर तेलंग तथा रानाडे आदि ने भी सामाजिक विषमताओं को मिटाने का सफल प्रयास किया।[2] स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार आन्दोलन के जन्मदाता भी ये ही थे। १८७ ई

१—ब्रिटिश पार्लियामेंट के हाथ में शासनसूत्र चले जाने के बाद भी भारत-सरकार की गतिविधि पहले की ही तरह जारी रही हाँ एक बात जरूर हुई कि उसका शासन २० साल तक बिना खरखशा जारी रहा। इस बीच कोई युद्ध वगैरा नहीं हुआ। परन्तु इसके यह मानी नहीं कि कोई रगड़भगड़ और कोई अशान्ति थी ही नहीं। ब्रिटिश शासन में बड़ी-बड़ी खराबियां थीं जिन्हें मि० ह्यूम जैसे हमदर्द अंग्रेज अफसर दिखाया भी करते थे और कोशिश भी किया करते थे कि वे दूर हों।

—पट्टाभिसीतारमैया कांग्रेस का इतिहास पृ ५

२—डा० रघुवंशी भारतीय सांवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० ४८

३—आठवेरी और तेन्दुलकर महात्मा पृ० ३

में गणेश वासुदेव जोशी ने महाराष्ट्र में सार्वजनिक सभा की संस्थापना कर स्वदेशी वस्तु के प्रचार के हेतु कुछ दुकान खुलवाई तथा देशी करघा के ताने-बाने से बुने वस्त्रों द्वारा देशवासियों को स्वदेश प्रेम के रंग में रंग देना चाहा। इसके अतिरिक्त इनका उद्देश्य भारतीय कलाकौशल को प्रोत्साहन देकर भारत की अर्थव्यवस्था में सुधार करना तथा क्रमशः बढ़ती हुई निर्धनता तथा बेकारी को कम करना भी रहा होगा।

१८७५ ई० में बम्बई तथा १८७७ ई० में लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना कर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धार्मिक आन्दोलन प्रारम्भ किया। इनका ध्येय धर्म को भारतीय राष्ट्रीय जीवन की गत्यात्मक शक्ति बनाकर देशवासियों को धार्मिक रूढ़िवादिता तथा अन्धकार से मुक्त कर वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करना था। जन जीवन में आत्मविश्वास की भावना भरने के लिए उन्होंने प्राचीन जीवन के गौरव तथा आदर्शों को सम्मुख रखा। तत्पश्चात् स्वामी रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने दक्षिण में कुमारी अन्तरीप से उत्तर में अल्मोड़ा तक नवयुवकों को आध्यात्मिक शक्ति द्वारा संसार पर विजय पाने का सन्देश सुनाया।

ये सुधार आन्दोलन मुख्यतः धार्मिक होने के साथ ही राष्ट्रीय भी थे। इन्होंने भारतवासियों को अपने महान् अधिकार के प्रति सचेत किया और उनमें राष्ट्रीय भावना जाग्रत की। धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया।[1] मि० गेटट के अनुसार 'राष्ट्रीयता से शिक्षित वर्ग का अनुराग हमेशा ही कुछ हद तक आर्थिक और कुछ हद तक धार्मिक कारणों से हुआ है'[2] इन धार्मिक नेताओं ने वैदिक साहित्य के प्रति जनता में अभिरुचि तथा श्रद्धा उत्पन्न की। नव शिक्षा में दीक्षित भारत का एक वर्ग पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति की चकाचौंध में अपने इतिहास, धर्म तथा संस्कृति को हेय समझने लगा था। उनकी भ्रान्त धारणा को दूर करने के लिए तथा विदेशी साम्राज्य द्वारा उत्पन्न मानसिक दासता से रक्षा करने के लिये अपने प्राचीन साहित्य, धर्म तथा संस्कृति के उच्चतम तथ्यों को रखने में इन्होंने अपूर्व परिश्रम किया। इस कार्य का बहुत कुछ श्रेय उन विद्वानों को भी दिया जायगा जिन्होंने वैदिक एवं संस्कृत साहित्य के अमूल्य ग्रंथों का अध्ययन कर उनकी प्रशंसा की जिससे भारतीयों को अपने धर्म तथा साहित्य का गौरव ज्ञान प्राप्त हुआ। इसी काल में अंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम बनाई गई और शासन कार्य में प्रयोग की गई। इससे दो प्रभाव हुए, देश के भिन्न प्रान्तों के शिक्षित वर्ग को परस्पर विचार विनिमय के लिए एक सर्वग्राह्य भाषा मिली जिससे राष्ट्रीय संगठन में प्रजातन्त्र के प्रति श्रद्धा बढ़ी और इसकी मांग दृढ़ होती गई। शिक्षित वर्ग में राष्ट्रीयता, स्वतन्त्रता,

१—गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृ० १२७
अनुवादक—सुरेश शर्मा : आत्माराम एंड सन्स, १९५२

२—गुरुमुख निहालसिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृ० १२५

स्वशासन आदि की स्पष्ट धारणाए बनी तथा उनका ध्यान अपनी भाषा सस्कृति व इतिहास के अध्ययन की ओर गया। देश की बढ़ती हुई आर्थिक अवनति ने इस अध्ययन की ओर विशेष रूप से प्रेरित किया।

अत इस युग में कितनी ही शक्तिया एक साथ काय कर रही थी जिनके परिणामस्वरूप देश में राष्ट्रीय चेतना का उद्भव एव विकास हो रहा था। गुरुमुख निहालसिह ने अपनी पुस्तक भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास मे राष्ट्रीय आंदोलन को जन्म देने वाली मुख्य बातों को निम्न शीर्षको म विभाजित किया है —

(१) पश्चिम के राजनीतिक आदर्शों की प्रेरणा।

(२) धार्मिक पुनरुत्थान और भारत के प्राचीन वैभव के प्रति श्रद्धा का भाव।

(३) आर्थिक असन्तोष और ब्रिटिश आश्वासनो के पूर्ण न किये जाने के कारण निराशा भाव।

(४) भारतीय समाचारपत्रो का और साथ ही देशी साहित्य का प्रभाव।

(५) सचारसाधना का विकास और साम्राज्यीय दरबार का आयोजन।

(६) शासक जाति के उद्धत एव अहकारपूर्ण व्यवहार के कारण जातीय भावनाओं की कटुता मे वृद्धि लार्ड लिटन का प्रमत्त एव अविवेकपूर्ण शासन और हतभाग्य इल्बर्ट बिल के सम्बन्ध म यूरोपियनो तथा आंग्ल भारतीयो द्वारा उग्रता और सगठित तीक्ष्ण प्रचार का प्रदर्शन।[1]

राष्ट्रीय भावना से यद्यपि अल्पसंख्या ही प्रभावित हुई थी फिर भी इन थोड़े लोगो ने ही देश के ढांचे को बदलने के लिए उथल-पुथल मचा दी। कलकत्ता बम्बई मद्रास आदि मुख्य स्थानों म अनेक राजनीतिक सस्थाओ की स्थापना हुई साथ ही यह भी विचार दृढ होता गया कि जब तक एक राष्ट्रीय राजनतिक सस्था न बनेगी और वह आन्दोलन को अपने हाथ म न लेगी तब तक जनहित की साधना न हो सकेगी। १८८५ ई में इण्डियन नेशनल कांग्रेस के जन्म से यह अभाव दूर हुआ तथा राष्ट्रीयता के विकास में एक बड़ा कदम उठाया गया।

राष्ट्रीय भावना अथवा राष्ट्रीयता का स्वरूप (१८५७—८५ ई० तक)

राजाराममोहन राय दयानन्द सरस्वती रामकृष्ण परमहस आदि के प्रयत्न प्रयत्नों से तथा पाश्चात्य सभ्यता एव संघर्ष के फलस्वरूप देश म एक नवीन चेतना का जन्म हुआ जिसे राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद की सज्ञा दी गई। इस काल म देश की अनेक शक्तियाँ छोटी-छोटी धार्मिक सस्थाओ तथा स्थानीय सभाओ के रूप में राष्ट्रीय चेतना के प्रसार मे प्रयत्नशील थीं। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप म उनका ध्येय धार्मिक तथा सामाजिक सुधार कर जन-जीवन को एक नवीन दिशा की ओर अग्रसर करना था। अप्रत्यक्ष रूप से यही राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ। राष्ट्रीयता को मूल प्रेरणा धर्म

१—गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ १२५

से मिली। धर्म का व्यक्तिगत पक्ष कुण्ठित था परन्तु राष्ट्रीयता अथवा देश-सुधार का पक्ष प्रबल था। इस काल की धार्मिक राष्ट्रीयता का प्रमुख ध्येय था भारत के अतीत गौरव तथा प्राचीन संस्कृति को नवजीवन प्रदान कर देश में पुनः उसकी स्थापना करना। अज्ञान, मूढ़ता तथा कूपमण्डूकता से मुक्त कर उसमें आत्मविश्वास तथा पौरुष की भावना को जगाना ही तत्कालीन राष्ट्रीयता की परिसीमा थी। धर्म के माध्यम से राष्ट्रीय भावना उद्वेलित हुई जिससे जनता तत्कालीन परिस्थितियों के प्रति सजग हो सकी।

राष्ट्रीय चेतना अथवा भावना जनजीवन के अन्तर में अपनी जड़ें जमा रही थी जिसका व्यक्त रूप था अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति असन्तोष तथा क्षोभ। इस काल के अनेक नेताओं को अंग्रेजी शासन अथवा साम्राज्य में कोई विरोध न था तथापि वे शासन विधान में सुधार चाहते थे और उनकी प्रबल धारणा थी कि सामाजिक सुधार तथा पश्चिमी शिक्षा के प्रचार से ही राष्ट्र की उन्नति हो सकेगी और कालान्तर में शनैः शनैः शासन प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा हो सकेगा। यह राष्ट्रीयता का ऊषाकाल था जबकि भारत के नभ में राष्ट्रीयता की कमल सुखगामिनी लालिमा ही फैली थी। क्रमशः राष्ट्रीय भावना का सूर्य अखिल भारतीय महासभा के रूप में उदित हो दिन प्रति दिन प्रखर होता गया।

राष्ट्रीय चेतना के विकास का इतिहास कांग्रेस स्थापना के कारण १८८५ ई० से १९०५

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १८८५ के पूर्व ही देश के अनेक प्रान्तों में, विशेषकर बंगाल, महाराष्ट्र तथा युक्तप्रान्त में धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सुधार सम्बन्धी संस्थाओं की जड़ें सुदृढ़ हो चुकी थीं। देश के शिक्षित वर्ग में आत्मगौरव तथा आत्मविश्वास के जागरण की भूमिका प्रस्तुत की जा चुकी थी। राजेन्द्र लाल मित्र, रामकृष्ण गोपाल भंडारकर तथा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक संसार के सम्मुख भारतीय इतिहास, धर्म, संस्कृति तथा दर्शन की प्राचीनता तथा भारत की विद्वत्ता की धाक अपनी अमूल्य साहित्य रचना द्वारा जमा चुके थे। दुर्भिक्ष तथा महामारी की विभीषिका में वैभवपूर्ण दिल्ली-दरबार तथा अफगान युद्ध ने जनता के असन्तोष तथा विक्षोभ को तीव्रता प्रदान की थी। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि दिल्ली दरबार में ही भारतीय नेताओं के मस्तिष्क में यह विचार विद्युत-सा चमक गया था कि क्यों न वे भी भारतीय एकता के लिए कोई संगठन बनायें।[1] पाश्चात्य शिक्षा ने विचार स्वातन्त्र्य को जन्म दे ही दिया था तथा वैज्ञानिक आविष्कार इसके प्रसार में सहयोगी बन ये। अन्य आर्थिक शोषण, अराष्ट्रीय आर्थिक नीति, वर्णभेद तथा जातीयता की कटु भावना तथा लार्ड लिटन की साम्राज्यवादी स्वार्थ नीति ने देशवासियों को अपने अधिकारों के प्रति सचेत कर विदेशी शासन के अभिशाप से मुक्त

1 Mahatma A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—P 8

होने के लिए प्रेरित किया। महारानी विक्टोरिया की घोषणाओं द्वारा उत्पन्न आशा पर तुषारापात हो चुका था और निकट भविष्य में उनके पूर्ण होने की आशा न देख शिक्षित समुदाय को बड़ा आघात पहुंचा था। पुनः देश में विद्रोह के बादल दृष्टिगत होने लगे थे केवल सुयोग्य पथ प्रदर्शक और नेतृत्व का अभाव था। इसी समय *भारतीय राष्ट्रीय सभा की स्थापना हुई जिसने हिंसक विद्रोह के स्थान पर शान्तिमय* वैधानिक आन्दोलन को प्रवृत्ति दी।

कांग्रेस महासभा की स्थापना

ई० सन् १८८५ में ए० ओ० ह्यूम के विशेष प्रयत्नों के कारण भारत की इस महान् राष्ट्रीय संस्था की स्थापना हुई थी और उस समय से इस राष्ट्रीय महासभा का इतिहास ही वास्तव में राष्ट्रीय प्रगति एवं आन्दोलन का इतिहास रहा है। ह्यूम ने भारत की तत्कालीन परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में भारतीय जनता की समस्याओं उनकी मनःस्थिति तथा उन पर विदेशी शासन की प्रतिक्रिया का स्वतन्त्रतापूर्वक अध्ययन किया था। उनकी सूक्ष्म दृष्टि ने अज्ञान तथा आलस्य में डूबी जनता के अन्तर में उग्र होते विरोध के भयंकर परिणामों को देख लिया। यह प्रत्यक्ष था कि धार्मिक तथा समाज सुधार सम्बन्धी प्रवृत्तियां राष्ट्रीय चेतना को उद्वेलित करने में प्रयत्नशील थी। मुसलमानों में भी शासनसूत्र छिन जाने के कारण भीतर ही भीतर विद्रोहाग्नि धधक रही थी। यह कहना कठिन है कि किस प्रेरणा से अभिभूत होकर ह्यूम ने राष्ट्रीय आकांक्षाओं की मूर्त रूप इस महासभा की स्थापना की—साम्राज्य की रक्षा के लिए अथवा राष्ट्रीय भावना को निश्चित रूप देने के लिए। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के स्नातकों के सम्मुख जो आदर्श रखा था उसमें राष्ट्रीय भावना तथा देश के एकीकरण पर बल दिया गया था।[1] भारत की प्रगति में प्रयत्नशील ह्यूम ने इस संस्था के संचालन के लिए ऐसे व्यक्तियों की माँग की थी जो सच्चे, निःस्वार्थी, आत्मसंयमी नैतिक साहस से पूर्ण तथा परहितकारी हों। उन्होंने लिखा था—आत्म बलिदान और निःस्वार्थता ही सुख और स्वतन्त्रता के अचूक पथ प्रदर्शक हैं।[2]

ह्यूम के अतिरिक्त सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रभृति बंगाल के नेता भी एक अखिल भारतीय राजनैतिक संस्था की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। १८८४ ई० में कलकत्ता में जो महासभा हुई थी उसमें इस आशय के प्रस्ताव पास हुए थे। मद्रास में भी थियासाफिकल सोसाइटी के महोत्सव के अवसर पर १६ नेताओं ने इस समस्या पर विचार किया था और आगामी वर्ष एक राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन करने का

१—सभा का विधान प्रजातन्त्रात्मक हो सभा के लोग व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से परे हों और उनका यह सिद्धान्त वचन हो कि जो तुममें सबसे बड़ा है उसी को तुम्हारा सेवक होना हो।

—पट्टाभि सीतारम्मया　कांग्रेस का इतिहास　पृ०७

2 Mahatma A life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p 11

निश्चय किया गया था। ह्यूम के प्रयत्न ने इन सभी प्रयत्नों में योग दिया। यद्यपि पहल म केवल समाज-सुधार संस्था ही चाहते थे परन्तु लार्ड डफरिन स परामर्श के पश्चात् उन्होंने इसको राजनतिक रूप दिया। इगलैण्ड मे भी उनको प्रोत्साहन मिला और इस प्रकार भारत सरकार तथा अंग्रेजी नेताओं की शुभकामनाओं के साथ राष्ट्रीय महासभा की स्थापना बम्बई म १८८५ म की गई।

इस कांग्रेस के प्रत्यक्ष रूप से दो उद्देश्य थ प्रथम भारत के सच्च कार्यकर्ताओं को एकत्रित कर राष्ट्रीय प्रगति क हेतु उनम घनिष्ठ सम्पक तथा मत्री भाव बढ़ाना तथा द्वितीय जातीय प्रान्तीय धार्मिक भेदभाव मिटाकर राष्ट्रीय भावना और एकता को सुदृढ़ कर आगामी वर्ष के लिए शासन सुधार-सम्बन्धी योजना प्रस्तुत करना। अप्रत्यक्ष रूप से इस सस्था की स्थापना का ध्येय था प्रतिनिधि शासन क लिए योग्य व्यक्ति तैयार करना।[1] ह्यूम ने तो केवल सामाजिक विषयो पर वाद विवाद करने क लिए इस सस्था की स्थापना करनी चाही थी किन्तु जब देश क भिन्न भागों क राजनीतिज्ञ निकट सम्पक म आए तो राजनतिक विषयो पर ही विचार किया गया।

इस प्रकार देश क कुछ सच्चे जनसेवकों ने सावजनिक सेवा क भाव स प्रेरित होकर इस राष्ट्रीय महासभा का प्रारम्भ किया जिसने प्रति वर्ष अपने अधिवेशनों द्वारा शासक वग के सम्मुख जनता की कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए, उनकी प्रगति म अवरोध नियमो का विरोध किया तथा उनकी दशा-सुधार क सबध म सुझाव प्रस्तुत किये।

कांग्रेस की मांगें —कांग्रेस की प्रारम्भिक मागो पर दृष्टिपात करने स तत्कालीन राष्ट्रीय प्रवृत्ति का इतिहास अधिक स्पष्ट हो जायगा। य माग विशेषकर शासन सम्बन्धी थी तथा कुछ का सम्बन्ध भारतीय जन समाज से था। प्रथम चार पाच वर्ष तक कांग्रेस का लक्ष्य निश्चित नही था। इस कारण अधिक महत्वपूर्ण राजनतिक विषयों पर प्रस्ताव प्रस्तुत न किय जा सके। प्रथम अधिवेशन म कांग्रेस ने भारतीय शासन सम्बन्धी काम की जाच के लिए रायल कमीशन की माग की थी तथा इंडिया कौंसिल को भग करने का प्रस्ताव भी किया था।[2] १८९० क लगभग कांग्रेस का लक्ष्य तथा उसकी नीति स्पष्ट होने लगी थी देश विदेश म यह सस्था अत्यधिक लोकप्रिय होती जा रही थी। अब इस महासभा ने विशाल देशवासी जनता का प्रतिनिधित्व करने वाली तथा उसके प्रति पूणरूपेण उत्तरदायी शासन-व्यवस्था पर बल दिया। चार्ल्स ब्रडला के उस बिल का स्वागत किया गया था—जिसम भारत क मनोनुकूल शासन सम्बन्धी सुधारो की ओर इंगित किया गया था। १८९२ म कौंसिल एक्ट क्रियान्वित होने पर शासक वग की उदारता क प्रति धन्यवाद का प्रस्ताव भी किया गया।

१८३३ के कानून तथा १८५७ की महारानी की उद्घोषणा द्वारा भारतीयों को उच्च सरकारी पदो पर नियुक्त होने का अधिकार मौलिक रूप से दिया जा चुका था

1 Annie Besant How India Wrought her Freedom—P 3,
2 Same, P 13

किन्तु व्यावहारिक रूप में उच्च पद पाने के नियम अति कठिन थे। इस राष्ट्रीय महासभा का विशेष सम्बन्ध उच्च मध्यवर्गीय समाज से था, और सिविल सर्विस की उच्च नौकरियों को प्राप्त करने वाली परीक्षाओं को इंगलण्ड तथा भारत में एक साथ करने की मांग रखी गई। सन् १८९३ में कामन सभा ने यह मांग स्वीकार कर शिक्षित वर्ग को उत्साह व उल्लास से भर दिया किन्तु बाद में अस्वीकृत होने पर निराश भावना तथा असन्तोष का रंग अधिक गहरा हो गया। जातिभेद तथा रंगभेद की भावना की अभिवृद्धि के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्रगति मिली। कांग्रेस की यह इच्छा कि अधिक से अधिक भारतीय शासन कार्य संचालन के हेतु उच्च पदों को विभूषित करें पूर्ण न हो सकी।

अपने प्रथम अधिवेशन में ही कांग्रेस की जागरूक प्रवृत्ति ने अंग्रेजी स्वार्थपूर्ण साम्राज्यवादी नीति के कारण उत्पन्न व्ययपूर्ण सैनिक व्यवस्था का विरोध किया था। देश की अर्थ-व्यवस्था विशृंखलित हो जाने के कारण भारतीय हित-संरक्षा के लिए देशवासियों को सैनिक स्वयं सेवक बनाने की प्रथा पर तथा सेना के उच्च पदों पर भारतीयों को रखने पर बल दिया गया था। १८९१ ई० में कांग्रेस अधिवेशन ने प्रस्ताव रखा था— भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारतवासियों को प्रोत्साहन देकर इस योग्य बनायें कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें।[1]

कानून तथा न्याय में सुधार आन्दोलन का सूत्रपात राजा राममोहनराय ने किया था। कांग्रेस के तत्कालीन सदस्य भी अंग्रेजी कानून तथा न्याय के पक्षपातपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण नीति से भलीभांति परिचित थे। उनके पास उसके प्रमाण भी उपस्थित थे। शासन तथा न्याय के पृथक्करण के सम्बन्ध में दादाभाई नौरोजी ने भी अपने विचार अभिव्यक्त किये थे। कांग्रेस अधिवेशनों में प्रायः प्रतिवर्ष इस प्रश्न पर प्रकाश डाला गया। १८९३ में इस सम्बन्ध में विशेष रूप से नम्रतापूर्वक आवेदन भी किया गया था।[2] इंगलैण्ड तथा भारत सरकार ने इस विषय को विचाराधीन रखकर जनता को आश्वस्त अवश्य किया था किन्तु अन्त में निराशा ही हाथ लगी। न्याय व शासनकार्य सम्मिलित रहे तथा जूरी व्यवस्था में भी कोई संशोधन न हुआ। राजनैतिक नेताओं के प्रति दमन नीति का आरंभ हुआ जिसके प्रथम ग्रास सरदार नातू बन्धु थे जिन्हें बिना मुकदमा चलाये ही कारागार की कड़ियों में जकड़ दिया था। शासकीय नीति कठोर हो गई और लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध में दण्डित किया गया। विदेशी सरकार ने कानून और न्याय को अपनी दमन नीति का मुख्य अस्त्र बनाया। परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षित जन समूह की स्वतन्त्रता की भावना दमन नीति की अग्नि में तप कर अधिक निखर आई। देश में इस दमन नीति

१—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० २९
२—वही पृ० ३३
३—वही : पृ० ३४

का विरोध प्रत्यक्ष हुआ और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की मांग प्रबल हुई । सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने १८८७ ई० म अपनी विशेष शैली म सरकार की नीति का विरोध करते हुए कहा था— अंग्रेजों ने अपने लिए मेग्नाचार्टा और हैबियस कापस प्राप्त किये थे इनके द्वारा उन्हें जो सुविधाएं प्राप्त हैं वे सिद्धान्त रूप मे उनके गौरव विधान मे सम्मिलित हैं पर मुझे यह कहने म कोई हिचकिचाहट नही होती कि यह शासन विधान हमारा पैतृक हक है । हम ब्रिटिश प्रजा हैं इसलिए ब्रिटिश प्रजाजनो को जो विशेषाधिकार मिले हैं उनके हम भी हकदार हैं । इन अधिकारो को हमसे कौन छीन सकता है ? हमने निश्चय कर लिया है और आप स इस बात का प्रण करेंगे आप और हम सब मिलकर इसके लिए एक गम्भीर निश्चय करेंगे । इस सभा भवन से निकल कर उसकी ध्वनि भारत भर की जनता म फैलगी कि हम इस बात के लिए तुल गये हैं इस बात पर जोर देने म हम किसी भी वैध उपाय को बाकी नही छोड़ेंगे, कि ईश्वर की छत्रछाया म ब्रिटिश प्रजाजन की हैसियत से हमारे भी वे ही अधिकार हैं जो अन्य प्रजाजनो के हैं और उनमे भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार किसी तरह कम महत्वपूर्ण नही है ।[1]

विदेशी शासकों की आर्थिक शोषणात्मक नीति के कारण शताब्दियों से चले आ रहे घरेलू उद्योग धंधों का विनाश हो गया था और ग्रामवासी जनता के पास कृषि ही आजिविका का एकमात्र साधन बच रही थी ।[2] शासक वर्ग की स्वार्थपूर्ण नीति के कारण कृषि अवलम्बित जनता भी शान्ति से न बैठ सकी लगान म निरन्तर वृद्धि ने उसका जीवन भार-स्वरूप बना दिया । राष्ट्रीय महासभा ने प्रारम्भ से ही विनीत भाव से कर वृद्धि का विरोध किया था । इस विरोध का परिणाम निराशाजनक ही रहा था । इसके अतिरिक्त कांग्रेस ने आविधान गरीबी तथा प्रवास जैसे तत्कालीन जन जीवन से सबधित महत्वपूर्ण प्रश्नो को भी अपने प्रस्तावो द्वारा शासक वर्ग के सम्मुख रखने का प्रयत्न किया था । दुर्भिक्ष का प्रार्थिक कारण करो और महसूलों की निरन्तर वृद्धि अत्यधिक सैनिक व्यय स्थानीय तथा देशी कला कौशल का नष्ट हो जाना ठहराया गया था । भारत सरकार से दुर्भिक्ष पीड़ितों की सहायता कृषकों की अवस्था के सुधार, निधनता को दूर करने के प्रयास का अनुरोध भी कांग्रेस ने किया था । भारतीयों की आर्थिक अवस्था की जाच कराने के लिए एक कमीशन बैठाने का प्रस्ताव रखा गया था । कांग्रेस ने जगसात के कानून से उत्पन्न कठिनाइयो की ओर भी इंगित किया था पर कुछ समय पश्चात् ये विषय स्वशासन तथा राष्ट्रीयता जैसे महत्वपूर्ण विषय के सम्मुख गौण तथा महत्वहीन हो गये ।

रक्षा, शिक्षा तथा यातायात के सुलभ साधनों की दृष्टि से अंग्रेजी-राज्य ने

१—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ३४

2—A R Desai Social Background of Indian Nationalism—P. 35

मुसलमानी राज्य की अपेक्षा जनता को अधिक सुखी बनाया किन्तु आर्थिक शोषण असह्य था। देश का धन विदेश जाता देख देशवासी विक्षुब्ध हो उठे थे। शासन की आयात निर्यात-नीति मुसलमानी शासन से भिन्न थी, और देश के लिए अत्यधिक अहितकर थी। अंग्रेजी सरकार देश के उदीयमान उद्योग को दबाने के लिए विदेशी कपड़े के आयात पर कोई कर न लगने देना चाहती थी परन्तु जब भारत सरकार की आय वृद्धि के लिए ऐसा करना ही पड़ा तो देश में उत्पन्न नए कारखानों के कपड़े पर चुंगी लगाई गई। राष्ट्रीय महासभा मे सूती माल पर कर लगाए जाने का १८९७ ई० में विरोध किया गया क्योंकि इससे भारतीय हितों का बलिदान हो रहा था। १८९८ ई० में मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रखा था कि—सरकार को देशी उद्योग धंधों एवं कला-कौशल की उन्नति करनी चाहिये।[1] इसके लिए राष्ट्रसेवियों ने प्रयत्न किया और १९०१ ई० में कलकत्ता अधिवेशन के साथ औद्योगिक प्रदर्शनी का प्रारम्भ किया जो कालान्तर मे स्वदेशी प्रदर्शनी के रूप में परिवर्तित हो गई। इसी के फलस्वरूप स्वदेशी आन्दोलन हुआ। राष्ट्रीयता की प्रगति के इतिहास मे इस प्रदर्शनी का विशेष स्थान है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में कांग्रेस की दृष्टि अफ्रीका निवासी भारतीयों की शोचनीय अवस्था की ओर आकृष्ट होने लगी थी। १९०१ ई० में गांधी ने अफ्रीका प्रवासी भारतीयों की ओर से प्रार्थी रूप में दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भेजा था। १९०३ व १९०४ ई० में ये प्रस्ताव पुनः प्रेषित किये गये। इनका परिणाम भी नगण्य ही रहा। इस दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न ने भारतीयों के हृदय में अपने प्रवासी भाइयों के लिए सहानुभूति उत्पन्न की तथा अंग्रेजों के प्रति कटुता की मात्रा में अभिवृद्धि की। डा० मुंजे ने अफ्रीका यात्रा के पश्चात् आकर कहा था—'हमारे शासक हमें मनुष्य नहीं समझते।'[2] बी० एन० शर्मा ने तो यहां तक कह दिया था कि यदि हम अपने प्रति सच्चे रहें तो बड़े-बड़े दार्शनिक महान् राजनीतिज्ञ और वीरवर योद्धाओं को उत्पन्न करने वाली जाति छोटी छोटी बातों के लिए दूसरी जाति के पांव नहीं पड़ सकती।[3] दक्षिणी अफ्रीका के प्रश्न की ओट में देश में आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास की भावना जागी।

इन प्रश्नों तथा मांगों के अतिरिक्त राष्ट्रीय महासभा के अधिवेशनों में कुछ अन्य विषयों पर भी विचार किया गया था जिनका सम्बन्ध देश की जनता के नैतिक मानसिक एवं बौद्धिक स्तर की उन्नति से था। १८८९ ई० में कांग्रेस ने संयम तथा मद्यनिवारण की मांग रखी थी। प्रारम्भ में सरकार ने इस मांग से प्रभावित होकर १८९० ई० में शराब पर आयात कर की वृद्धि की देशी शराब पर कर लगाया

१—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ३७
२—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ४४
३—वही पृ० ४८

बगाल सरकार ने ठेके पर शराब बनाने की पद्धति को दूर करने का निश्चय किया और मद्रास म ७००० दुकानें बन्द की गइ। १६०० ई से पुन मद्यपान म वृद्धि हुई क्योंकि सरकार ने युद्ध यात्राओं म सनिका की छावनियों में स्त्रियां एकत्रित कर मद्यपान को प्रोत्साहन दिया। इसका कांग्रेस ने विरोध किया। भारत सरकार ने पवित्रता सम्बन्धी कानून बनाया जिसके लिये कांग्रेस ने धन्यवाद दिया।[1] इसके अति रिक्त शिक्षा तथा बेगार-सम्बन्धी समस्याओं म भी अभिरुचि ली गई।

आर्य समाज की स्थापना तथा उसका राष्ट्रीय दृष्टिकोण

सन् १८७५ ई० म स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज की स्थापना बम्बई में की थी। यह धार्मिक सस्था के साथ ही उस काल की सवप्रमुख राष्ट्रीय सस्था भी कही जायेगी। धार्मिक आन्दोलन का विशेष सम्बन्ध देश के राष्ट्रीय जीवन से था। धम तथा राष्ट्र पृथक नहीं थे। राष्ट्रीयता धार्मिकता का बाना पहन कर भारत मे जन्मी थी। आर्य समाज ने वदिक आचार विचार धर्म साधना पर विशेष बल दिया। भारतीयो के नतिक स्तर को ऊचा उठाने के लिए भारतीय वदिक धम तथा सस्कृति का आदर्श रखा। वैदिक पुनरुत्थान म ही उन्हें भारत की सोई हुई आत्मा की जागृति का सन्देश मिला। धम के आश्रय में समाज-सुधार तथा देश-कल्याण का पुनीत काय प्रारम्भ हुआ।

आय समाज ने अपने आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय भावना के उत्तेजन म विशष योग प्रदान किया। उसने धार्मिक रूढ़िया अन्धविश्वास तथा विचार सकीणता का मूलोच्छेद कर वदिक हिन्दू धम की पुन प्रतिष्ठा की। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने धम को राष्ट्रीय जीवन की गत्यात्मक शक्ति बना दिया। प्राचीन हिन्दू धम तथा सस्कृति के प्रति विश्वास तथा श्रद्धा उत्पन्न कर भारतीयो म पुन आत्मविश्वास तथा आत्मगौरव की सुदृढ़ भावना भर दी। आय समाज का राष्ट्रीय दृष्टिकोण भारत की अति पुरातन धम तथा समाज व्यवस्था पर केन्द्रित था। अत राष्ट्रीय भावना अथवा चेतना की प्रगति के इतिहास में आयसमाज के धार्मिक राष्ट्रवादी विचारो का विशेष स्थान है।

राष्ट्रवाद का स्वरूप (१८८८ १६०५ ई०)

राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पूव राष्ट्रीय भावना प्रधानत धार्मिक तथा समाज-सुधार सबंधी प्रवृत्ति तक ही सीमित थी। जन-जीवन म राजनैतिक अथवा प्रशासन सबधी अभावो के प्रति विक्षोभ अन्दर ही अन्दर उभर रहा था उसे मूत रूप नहीं मिला था। १८८५ ई० म राष्ट्रीय महासभा की स्थापना के पश्चात् राष्ट्रीय एकता तथा बौद्धिक, नैतिक आर्थिक व व्यावसायिक साधनों के संगठन एव विकास का सुयोग प्राप्त हुआ। अब विभिन्नता म एकता राष्ट्रवादियों का मूलमंत्र हो गया

१—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ४८

था। कांग्रेस सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय महासभा थी इसके पूर्व जिन संस्थाओं का आविर्भाव हुआ था वे अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीयता की साधक थीं।

राष्ट्रीय महासभा द्वारा प्रस्तुत मांगो प्रस्तावो तथा कार्यों पर विहगम दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका प्रमुख लक्ष्य शासन-संबधी न्यूनताओं को मिटा कर भारतीयो को शासन-व्यवस्था मे अधिक से अधिक पद तथा अधिकार दिलाना था। अन्य भारतीय जन-जीवन से संबधित समस्याए गौण थी इस युग के राष्ट्रीय आंदोलन का प्रारम्भ मध्य वर्ग से हुआ था जिसमें अधिक संख्या वकील बरिस्टर व्यापारियो तथा डाक्टरों की थी। कुछ प्रस्ताव किसानों की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए प्रस्तुत अवश्य किये गये थे, किन्तु प्राय प्रमुख मागों का स्वरूप शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय दृष्टिकोण तथा स्वार्थों के ही अनुकूल था।[1]

प्रारम्भ मे राष्ट्रीय संस्था के सदस्यो की नीति ब्रिटिश सरकार के प्रति सहयोग की थी। जनजीवन के हित से संबधित सरकार के प्रत्येक कार्य के प्रति वे विनम्र भाव से अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे। राष्ट्रीय नेतागण नए करों सैनिक-व्यय वृद्धि शासन की अनुदार एवं स्वार्थपूर्ण नीति से असन्तुष्ट थे किन्तु उन्होंने किसी प्रकार का प्रत्यक्ष विरोध प्रदर्शित नहीं किया।[2] शासको द्वारा अधिकतर मार्गें अस्वीकृत होने पर भी उस युग की मनोदशा तथा वातावरण सक्रिय विरोध के अनुकूल न थे। राष्ट्रीयता असन्तोष के उच्छवास के रूप मे व्यक्त होकर ही पूर्ण हो गई।[3] राष्ट्रीय भावना राज

१ पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालों की लड़ाई झगड़ों मे जो कांग्रेसी नेता रहे वे ज्यादातर वकील बरिस्टर और कुछ व्यापारी एवं डाक्टर थे जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि हिंदुस्तान सिर्फ इतना ही चाहता है कि अंग्रेजों और पार्लियामेंट के सामने उनका पक्ष बहुत ही सुंदर और नपी-तुली भाषा मे रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए उन्हें एक राजनतिक संगठन की जरूरत थी और इसके लिए उन्होने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। उसके द्वारा वे राष्ट्र के दुखों और उच्च आकांक्षाओं को प्रकट करते रहे।

—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ ५६

२ Mahatma A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p 12

३ 'वह जमाना और हालतें भी ऐसी थीं कि अपने दुख दर्द दूर करने के लिए हाकिमों के सामने सिवा दलील और प्रार्थना करने के और नई रियायतों और विशेषाधिकारों के लिए मामूली मांग करने के और कुछ नहीं हो सकता था।'

—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास - पृ० ५७

भक्ति का भावल पकड़े थी उसमे पृथक होने का साहस नहीं आ पाया था। ब्रिटिश पार्लियामेंट प्रजातन्त्र पद्धति की जनना होने के कारण इनकी आदर्श थी। अग्रेजों की उदारता न्याय विधान तथा सत्यता से विश्वास पूर्णतया नहीं उठा था। इस युग की राजभक्ति के सबध मे किसी प्रकार का दोषारोपण करना असगत होगा। यदि हम इस काल की राष्ट्रीय भावना का मूल्यांकन युगीन मर्यादाओं की परिसीमा तथा मनो रचना को दृष्टि में रख कर करें तो वह कदापि हीन नही कही जायगी। राजभक्ति राष्ट्रीय भावना की पावन गगा मे यमुना के मिलन के समान अति स्वाभाविक लगेगी। गुरुमुख निहालसिंह के शब्दों मे किंतु यह बात ध्यान रखने योग्य है कि यद्यपि १८८५ १९०७ के युग मे इडियन नेशनल कांग्रेस राजभक्ति प्रदर्शित करती थी, उसकी सुनिश्चित नीति नरमदली थी और उसकी भाषा निवेदनात्मक ही नहीं वरन् भावनापूर्ण भी तथापि, उसने उस युग मे भारतवासियो मे राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने उन्हे एक सूत्र मे बांधने और उनमे राष्ट्रीय एव राजनीतिक जाग्रति फलाने के लिए महत्वपूर्ण मौलिक काम किया था।[1] इसी प्रकार डा० पट्टाभि सीतारम्मया ने इस युग की राजभक्ति के सबध मे लिखा है—हमारे इन पूर्व-पुरुषो ने अग्रेजो और इगलैड के प्रति जो विश्वास रखा वह कभी-कभी दयाजनक और हेय मालूम होता है परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओं को समझें।[2]

राष्ट्रीय भावना का विकास उत्तरोत्तर होता गया। सर्वप्रथम सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों मे सन १८९७ मे स्वराज्य अथवा स्वशासन का अस्पष्ट एव धुधला सा चित्र मूर्त हुआ।[3] व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के विषय मे भी पुकार की गई तथा राज भक्ति का स्वर धीमा पड़ता गया। लोकमान्य तिलक के राष्ट्रीय क्षेत्र मे प्रवेश तथा राजद्रोह मे दण्डित होने से राष्ट्रीय भावना मे उग्रता आई। १९०० ई० के पश्चात् राष्ट्रीय नेताओं की नीति उपनिवेशो के ढग का स्वशासन बन गई तथा कांग्रेस दल के समस्त शिक्षित वर्ग की राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतीक हो गई। शासकों की कठोर नीति तथा दमन प्रणाली के आघात से राष्ट्रीय भावना का विकास अधिक तीव्रगति से होने लगा और बीसवीं शताब्दी ने जनजीवन में नवीन उत्साह का रग डाल दिया। इस नवीन शताब्दी मे लोकमान्य तिलक के रूप मे राष्ट्रीयता मूर्तमती हो उठी। इनके राष्ट्रवादी सिद्धान्त उदारदली नेताओं से भिन्न थे वे पश्चिम की भौतिकतावादी विचारधारा को भारतीय जीवन तथा राष्ट्र की उन्नति के लिए अनुपयोगी मानते थे। वे भारतीयता के पूर्ण पक्षपाती थे स्वधर्म अर्थात् भारतीय जीवन दर्शन आध्या त्मिकता तथा राजनीति की ठोस आधारभूमि पर वे राष्ट्र का निर्माण करना चाहते

१ गुरमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १३५
२ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ५८
३ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ३४

थे।[1] वे धर्म व समाज की रूढ़ियों और अन्धविश्वास के घोर विरोधी थे। उन्होंने देश के नवजागरण के लिए भारतीय राष्ट्रीय मूल्यों की खोज की। अन्य राष्ट्र सेवियों द्वारा भी राष्ट्र की दयनीय अवस्था के विषय में महत्वपूर्ण तथ्य तथा आंकड़े उपस्थित किये गये जिनसे राष्ट्रीयता के विकास में सहायता मिली।[2]

अन्त में यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि १८८५ से १९०५ ई० तक भारतीय राष्ट्रवाद के भव्य प्रासाद के निर्माण हेतु प्रारम्भिक साधन तथा सुदृढ़ नींव प्रस्तुत की गई। भारत के सच्चे कार्यकर्ताओं के साथ घनिष्ठ सम्पर्क एवं मनोभाव की अभिवृद्धि हुई तथा जातीय, प्रान्तीय व धार्मिक भेदभावों को मिटाकर राष्ट्रीय भावना और एकता का संगठन कर शासन-सुधार के लिए कार्य किया गया। शासक वर्ग के विरोध में राष्ट्रीयता का संगठन करना एक कठिन कार्य था। आज हमारी राष्ट्रीयता जिस रूप को धारण करने में समर्थ हुई है उसका समस्त श्रेय इन प्रारम्भिक राष्ट्रीय प्रतिनिधियों को दिया जायगा।[3] सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने शिक्षित मध्यवर्गीय जनता को राष्ट्रीय आन्दोलन की कक्षा में पारंगत किया था जिसके फलस्वरूप सार्वजनिक कार्यों में अभिरुचि रखने वालों की संख्या में वृद्धि हुई थी। इंगलण्ड में प्रतिनिधि मण्डल भेजकर भारतीय राष्ट्रीयता की शंखध्वनि देश देशान्तर में गुंजा दी गई थी। यह राष्ट्रीयता धर्म तथा नैतिकता पर आधारित थी। गोपाल कृष्ण गोखले ने राजनीति में सच्चरित्रता तथा सहिष्णुता के सिद्धान्तों पर विशेष बल दिया था, जिसका चरम विकास गांधी जी द्वारा किया गया। दादा भाई नौरोजी ने नारी की शिक्षा तथा स्वतन्त्रता के संबंध में भी कार्य किया था। इस काल के राष्ट्र भक्तों की प्रथम श्रेणी में दादा भाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नाम आयेगा जिन्होंने राष्ट्रीय भावना के सुगठित तथा सुव्यवस्थित रूपनिर्माण में अपूर्व योगदान दिया था।

राजनीतिक आदर्शों तथा जीवन-दर्शन की दृष्टि से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्र निर्माताओं की दो श्रेणियां थीं। प्रथम वे राष्ट्रवादी नेता जो भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में विश्वास रखने पर भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए पश्चिमी आदर्शों व जीवन दर्शन का अनुकरण आवश्यक समझते थे। द्वितीय श्रेणी तिलक आदि ...

१ It was he who first rediscovered the moral basis by which to define the direction and the goal of the independence movement.
Theodore L. Shay—The Legacy of the Lokmanya Tilak—Introduction—p 19

२ डा० रघुवंशी भारत का संवैधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० १२१

३ तन्दुलकर : महात्मा पृ० १२

विचार वाले राजनीतिक राष्ट्रवादी नेताओं की थी जो भारतीय जीवन स्थान तथा राजनीतिक आदर्शों द्वारा स्वतन्त्रता आन्दोलन का सचालन करना चाहते थे। अन्य शब्दों म इन्हे नरम दल तथा गरम दल पुकारा जाता है। गांधी जी के राजनतिक क्षेत्र म प्रवेश के पूर्व तिलक आदि उग्र राष्ट्रवादियो का अधिक प्रभाव हो गया था जिसका विवेचन आगे किया जायगा। इस काल मे राष्ट्रीय भावना के प्रथम उत्थान की भूमिका का भलीभाति निर्वाह किया गया। सन् १८६६ से १६०४ ई० तक राजनीतिक क्षत्र मे अवरुद्ध शांति रही किन्तु सन् १६०५ म प्रबल वेग से राष्ट्रीयता की आंधी चल पडी तथा एक नवीन अध्याय का प्रारम्भ हुआ।[१]

राष्ट्रवाद के विकास का इतिहास एव स्वरूप (१६०५ १६१६ ई०)

भारतीय राष्ट्रीयता के इतिहास म बीसवी शताब्दी का प्रारम्भ विशेष महत्व रखता है। उन्नीसवी शताब्दी म जिस साहस का प्रत्यक्ष अभाव था उसकी पूर्ति बीसवी शताब्दी न कर दी। राष्ट्रीय उद्गारो को निश्चित रूप म स्वर प्रदान कर जनजीवन म नवचतन्य तथा नवीन क्रान्ति की भावना का प्रसार हुआ। राष्ट्रवादी विचारधारा प्रबल रूप म सम्पूर्ण देश म छा गई। प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की धाक भारतीय मस्तिष्क म बैठाई जा चुकी थी तथा साम्राज्य शक्तियो की निरकुशता स मुक्ति पाने के लिए अतीत-गौरव एक सुदृढ़ रक्षा कवच के समान बन गया था। १६वी शताब्दी की राष्ट्रीयता अधिक व्यापक न थी। उसका अथ हिन्दू पुनरुत्थान अथवा पुनरुज्जीवन मात्र था। स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द न पश्चिमी भौतिकवाद तथा अथवाद की तुच्छ नीति की अपक्षा भारतीय आध्यात्मिकता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन कर जनजीवन म आत्मविश्वास तथा पौरुष की भावना भर दी थी।[२] परन्तु नई शताब्दी के आरम्भ म देश की नवीन परिस्थितियों क अतिरिक्त विदेशो म घटित होने वाली घटनाओ का भी भारतीय राष्ट्रीय चेतना के विकास पर प्रभाव पड़ा। विदेशो म घटने वाली दो प्रमुख घटनाए थी जिन्होन भारतीय राजनीतिक मस्तिष्क का मथन कर उनकी राष्ट्रीय भावना के उद्वेलन म सहयोग प्रदान किया। य घटनाए थी—१८६६ ई० म एबीसीनिया निवासियों द्वारा इटली की पराजय तथा १६०५ ई० म जापान के विरुद्ध रूस की हार। अब यूरोपीय अजयता का भ्रम छिन्न भिन्न हो गया तथा पूर्वीय शक्ति पर पुन विश्वास पुष्ट होन लगा। जापान ने भारत को अग्र जो के निरंकुश एव घातक बन्धन से मुक्त होने की प्ररणा दी तथा उसका पथप्रदर्शन किया। सम्पूर्ण एशिया म नवयुग का प्रारम्भ

१ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास (सन १६०० १६०० तक) पृ० १७२

२ प्रो० शान्तिप्रसाद वर्मा स्वाधीनता की चुनौती पृ० १४१

३ Sir Verney Lovett A History of Indian Nationalist Movement—p 64 65

हुआ।[१] मैजिनी गैरीबाल्डी आदि राष्ट्र निर्माताओं की कृतियों का भी शिक्षित वर्ग पर प्रभाव पड़ा। भारतीय भाषाओं में उनकी जीवन व्याख्याओं का अनुवाद हुआ जिससे स्वदेश प्रेम अत्यन्त वेग से जागृत हुआ।

जनता दैवी विपत्तियों का ग्रास बनी हुई थी निरन्तर दुर्भिक्षों तथा महामारियों से उसे संघर्ष करना पड़ रहा था। शासक वर्ग द्वारा जनता को इन विपत्तियों से मुक्त करने की उचित एवं सन्तोषजनक नीति न अपनाई जाने के कारण असंतोष तीव्र रूप धारण कर रहा था। सरकार की राष्ट्र विरोधी नीति के प्रति जनता पूर्णतया सचेत हो गई थी। शनैः शनैः भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन सच्चे अर्थों में जन आन्दोलन का रूप धारण करने लगा। जनता ने विदेशी शासन में अपनी दरिद्रता तथा कष्टों का मूल कारण खोजा।[२] अतः जन जीवन में स्वतन्त्रता के लिए बलिदान की भावना का जन्म हुआ।[३] युवक वर्ग में परिवर्तन की आकांक्षा तीव्र होती जा रही थी। उसमें यह धारणा भी दृढ़ हुई कि वर्तमान काल से प्राचीन युग कहीं अच्छा था।[४] महारानी विक्टोरिया के शासन काल के चालीस वर्षों के शान्त वातावरण की अपेक्षा १९०३ ई० में सम्राट एडवर्ड सप्तम के राज्याभिषेक के उपलक्ष में आयोजित दरबार में जनता का असन्तोष स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ था।[५] इसके अतिरिक्त कांग्रेस के प्रयत्नों से सार्वजनिक कार्यों में रुचि रखने वालों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। लोकमान्य तिलक विपिनचन्द्र पाल लाला लाजपतराय आदि राष्ट्रीय नेतागण जनता की करुण अवस्था से विक्षुब्ध होकर विदेशी राज्य के कट्टर विरोधी बन बैठे। स्वाधीन भारत के उज्ज्वल स्वप्न ने उन्हें अंग्रेजी शासन के विरुद्ध ठोस कदम उठाने को बाध्य किया।

भारतीय इतिहास में प्रतिक्रियावादी निरंकुश शासक सदैव हितकर सिद्ध हुए हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम पांच वर्ष लार्ड कर्जन की निरंकुशता तथा कठोर नीति के लिए इतिहास में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने कलकत्ता कार्पोरेशन के अधिकारों में कमी की तथा स्थानीय निकायों जैसी सार्वजनिक संस्थाओं को केन्द्रीय नियन्त्रण के अन्तर्गत रखने के लिए केन्द्रीकरण की नीति को अपनाया पुलिस व्यवस्था का पुनः संगठन तथा रेलवे शासन संबंधी विषयों में भी अपना नियन्त्रण सुदृढ़ किया। इसके अतिरिक्त देशवासियों पर यह आरोप लगाया कि वे चारित्रिक सच्चाई की कमी के कारण उत्तरदायित्वपूर्ण

१ Mahatma A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p 14
२ Mahatma A Life of Mohandas Karam Chand Gandhi—p 13
३ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० १४०
४ Lovett A History of Nationalist Movement—p 54
५ Yet in fact this Durbar marked the end of the comparatively restful and untroubled era which had lasted for forty years Lovett A History of Nationalist Movement—p 54

पद पाने के अयोग्य है, जिसे देशवासी सहन न कर सके । अन्त म बगाल का विभाजन किया जिसने राजभक्त देश की कमर तोड दी ।[1] अब शासकों की नीति अपने नगनरूप में देशवासियों के सम्मुख आई और इस रहस्य का उद्घाटन हो गया कि बगाल विभाजन का मूल उद्देश्य प्रशासनिक सुविधा न होकर, साम्प्रदायिक विद्वेष बढ़ा कर नई राष्ट्रीय भावना को कुचलना है । लार्ड रोनाल्ड शे ने इस सम्बन्ध मे लिखा है—प्रांत में जागृत मत के अनुसार इस विभाजन द्वारा बगाली राष्ट्रीयता की बढ़ती हुई दृढ़ता पर आक्रमण किया गया था[2] मजूमदार ने भी लार्ड कर्जन की अत्यधिक स्वार्थ परक एव कुटिल नीति का वर्णन इन शब्दों में किया है— नई चेतना को कुचलने के उद्देश्य से लार्ड कर्जन पूर्वी बगाल गये । वहा पर इसी उद्देश्य से एकत्रित की हुई मुसलमानों की सभाओं म उन्होंने कहा कि यह विभाजन केवल शासन की सुविधा के लिये ही नही किया जा रहा था वरन् उसके द्वारा एक मुस्लिम प्रान्त भी बनाया जा रहा था जिसमे इस्लाम और उसके अनुयायियो की प्रधानता होगी ।[3] गुरुमुख निहाल सिंह ने लिखा है कि लार्ड कर्जन दोनों जातियों के बीच एक खाई तैयार करना चाहते थे और साथ ही बगाल की नई राष्ट्रीयता को कुचलना चाहते थे ।[4] इस प्रकार न केवल बगाल वरन् सम्पूर्ण देश की राष्ट्रीय भावना को चुनौती दी गई थी । इसने व्यापक आन्दोलन को जन्म दिया । विदेशी सरकार का प्रत्यक्ष विरोध हुआ ।

बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो म भी जलूस सभाओं तथा प्रदर्शनों द्वारा विक्षोभ की भावना को मूर्त रूप प्रदान किया गया । विद्यार्थी वर्ग ने विशेष उत्साह के साथ राजनतिक क्षेत्र म प्रवेश कर आन्दोलन की तीव्रता को सहयोग दिया था । राजनीति म भाग लेने के कारण उन्हें स्कूलो मे निकाल दिया गया । स्कूलों को सरकारी सहायता बन्द कर देने की धमकी दी गई ।[5] सरकार के दमन चक्र के तीव्र एव कठोर हो जाने पर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप देश की रग रग म नवीन राष्ट्रीयता का प्रवाह अधिक व्यापक तीव्र एव गम्भीर रूप मे हुआ ।[6] अनुकूल परिस्थिति का लाभ उठाने के लिए सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिनचन्द्र पाल जसे नेताओं ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण

---

१ पट्टाभि सीतारम्मया काँग्रेस का इतिहास भाग—१ पृ० ६४

२ Ronald Shaw Life of Lord Curzon—p 332

३ A C. Mazumdar Indian National Evolution—p 207

४ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १७२

५ वही : पृ० १७४

६ 'सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्न रूप धारण करने वाली दमन नीति के कारण नव जागृत चेतना भी सचमुच व्यापक विस्तृत और गहरी होती गई। बग के एक कोने में जो घटना होती थी वह सारे देश मे फल जाती थी।
—पट्टाभि सीतारम्मया काँग्रेस का इतिहास भाग—१ पृ० ६४

कर राष्ट्रीयता राष्ट्रीय शिक्षा और नयचतय का प्रवल वेग से प्रचार किया। उन्होंने विराट सभाओं में भाषण देकर स्वदशी और बहिष्कार की शपथ ग्रहण कराई।[1] विद्यार्थियोको राष्ट्रीय सघ शिक्षा देने का आयोजन भी किया गया। इस प्रकार बीसवी शताब्दी के प्रथम दशाब्द मे भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में राष्ट्रीय शिक्षा का अध्याय भी जुड गया।

इन विविध विरोधी कारणों के अतिरिक्त कुछ अय कारण भी राष्ट्रीय भावना की प्रगति में सहायक थ जस आग्ल भारतीय पत्रो का भारत विरोधी प्रचार स्कूल और कालेजा की शिक्षा का प्रभाव आय समाज रामकृष्ण मिशन थियोसाफिकल सोसाइटी भारत सेवक समिति जसी संस्थाओं का प्रभाव बकिमचद्र चटर्जोपाध्याय जसे उपन्यासकारों रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे राष्ट्रीय कवियो भारतीय सगीत साहित्य तथा सस्कृति के पुनरुत्थान का प्रभाव भी जनजीवन को राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर कर रहा था।[2] इन सबके फलस्वरूप १६ ७ ई म स्वदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा की पुस्तको पर विशेष बल दिया गया। राष्ट्रीय नेताओ ने यह स्पष्ट कर दिया था कि विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओ के प्रचार से ही देश पुन विगत समृद्धि तथा राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त कर सकता है। श्री अरविन्द घोष तथा श्री बिपिनचद्र पाल का स्वदेशी आदोलन की प्रगति म महत्वपूण स्थान है। विदेशी सरकार ने स्वदेशी सभाओं को बलपूर्वक विच्छिन्न किया तथा स्वदेशी प्रचार को रोका।[3]

निरन्तर शासक वर्ग के दमन तथा दण्ड नीति को सहन करने का भारतीय जनजीवन अभ्यस्त हो गया था। अब राजद्रोह अथवा दण्ड का भय जनता के हृदय से उठ गया था। भारत म युवकों का एक एसा वर्ग भी उत्पन्न हुआ जिसन हिंसात्मक क्रान्ति के मार्ग को स्वतत्रता प्राप्ति का साधन बनाया। राष्ट्रीय महासभा की वैधानिक विचारधारा के साथ राष्ट्रीयता की इस नवीन विचारधारा न क्रान्तिकारी दल का सगठन किया जिसके नेता बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे।[4] देश के विभिन्न भागा म हिंसात्मक क्रान्ति के चिह्न प्रकट हुए। इस दल के कायक्रम म छ बातो पर बल दिया गया जिनके विषय म गुरुमुख निहालसिह ने अपनी पुस्तक में लिखा है। व बातें थीं—

१—पत्रो की सहायता से प्रबल प्रचार द्वारा शिक्षित लोगों के मस्तिष्क म दासता के प्रति घृणा जाग्रत कर दी जाए।

२—लोगो के मस्तिष्क स बेकारी और भूख का डर दूर कर दिया जाए और

१ गुरुमुख निहालसिह भारत का वधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ १०३
२ वही पृ० १६२
३ वही पृ १७४
४ वही पृ० १७६

उनम मातृभूमि व स्वतन्त्रता का प्रेम भर दिया जाए। इसके लिए सगीत व नाट्यकला को साधन बनाया गया। राष्ट्रीय वीरो और शहीदों के जीवनचरित्र का अभिनय द्वारा चित्रण करने के लिए कहा गया और साथ ही देशभक्ति से ओतप्रोत गाथाओ को हृदयस्पर्शी सगीत द्वारा लोगो तक पहुचाने के लिए कहा गया।

३—शत्रु को प्रदर्शनों और आन्दोलन—वन्देमातरम जलूस स्वदेशीसम्मेलन बहिष्कार—सभा आदि में व्यस्त रखा जाये।

४—नवयुवकों की भर्ती की जाए छोटे छोटे जत्थो म उनका सगठन किया जाए, उन्हें शारीरिक व्यायाम शस्त्रापयोग और शक्ति उपसना की शिक्षा दी जाए। क्रांतिकारी साहित्य पढ़ाया जाए और उन्हें अनुशासन पालने और दल के भेद को गुप्त रखना सिखाया जाये।

५—बम बनाये जाए। बन्दूका और अन्य शस्त्रा की चोरी की जाए विदेशो से शस्त्रों को क्रय करके भारत म गुप्त रूप से लाया जाए।

६—चन्दे तथा दान द्वारा और साथ ही क्रांतिकारी डकतियो द्वारा धन की व्यवस्था की जाये।[1]

बगाल म इस दल क कार्यों का प्रारम्भ हुआ था। १९०८ मे मुजफ्फरपुर क अप्रिय जज की हत्या करने के उद्योग मे गाड़ी पर बम फेंका गया जिसम दो अग्रेज महिलाओं की मृत्यु हुई। खुदीराम बोस के नेतृत्व म यह काय हुआ था अत उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फासी दी गई। उनकी तस्वीर घर घर मे पहुच गई और विदेशी शासन क प्रति विरोध तीव्र हुआ। १० फरवरी १९ ९ को अलीपुर षड्यन्त्र अभियोग और गोसाइ हत्या-अभियोग के सरकारी वकील को गोली से मार दिया गया। २४ जनवरी १९१० को पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० समसुल आलम का गोली से मार दिया गया।[3] बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो म भी यह दल सक्रिय था। १९१२ म लाड हार्डिग पर बम फेंका गया। इस प्रकार पुलिस अधिकारियों अभियोग निणय करने वाले मजिस्ट्रटों, सरकारी वकीलों और सरकारी गवाहों को आतकित करने के लिए इस दल ने हत्याएं की डकतियां डाली और निभयता से काम लिया। भारत के अतिरिक्त यूरोपीय महाद्वीप मे भी भारतीय क्रांतिकारी समुदाय के लोगों ने पूरी शक्ति से काय प्रारम्भ किया, जिसके नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा एस० आर० राना और कामा दम्पत्ति थे।[2]

राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम भारतीयो के हित म हुआ। शीघ्र ही सरकार को राष्ट्रवादियों की शक्ति का आभास हो गया। विदेशी साम्राज्य की नीव हिल

१ गुरमुख निहालसिह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १७६ ८०
२ गुरमुख निहालसिह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास (१९०० १९१९) पृ० १८२

३. वही पृ १८८

कर राष्ट्रीयता राष्ट्रीय शिक्षा और नवचेतना का प्रबल वेग से प्रचार किया । उन्होंने विराट सभाओं में भाषण देकर स्वदेशी और बहिष्कार की शपथ ग्रहण कराई ।[1] विद्यार्थियोंको राष्ट्रीय सत्य शिक्षा देने का आयोजन भी किया गया । इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम प्रारम्भ म भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास मे राष्ट्रीय शिक्षा का अध्याय भी जुड गया ।

इन ब्रिटिश विरोधी कारणों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी राष्ट्रीय भावना की प्रगति में सहायक थे जसे आग्ल भारतीय पत्रो का भारत विरोधी प्रचार स्कूल और कालेजों की शिक्षा का प्रभाव आर्य समाज रामकृष्ण मिशन थियोसाफिकल सोसाइटी भारत सेवक समिति जैसी संस्थाओं का प्रभाव बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय जसे उपन्यासकारों रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे राष्ट्रीय कवियों भारतीय संगीत साहित्य तथा संस्कृति के पुनरुत्थान का प्रभाव भी जनजीवन को राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर कर रहा था ।[2] इन सबके फलस्वरूप १९०७ ई० म स्वदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा की पुस्तकों पर विशेष बल दिया गया । राष्ट्रीय नेताओं ने यह स्पष्ट कर दिया था कि विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार से ही देश पुन विगत समृद्धि तथा राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त कर सकता है। श्री अरविन्द घोष तथा श्री विपिनचन्द्र पाल का स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति म महत्वपूर्ण स्थान है। विदेशी सरकार ने स्वदेशी सभाओं को बलपूर्वक विच्छिन्न किया तथा स्वदेशी प्रचार को रोका ।[3]

निरन्तर शासक वग के दमन तथा दण्ड नीति को सहन करने का भारतीय जनजीवन अभ्यस्त हो गया था । अब राजद्रोह अथवा दण्ड का भय जनता के हृदय से उठ गया था । भारत मे युवकों का एक ऐसा वर्ग भी उत्पन्न हुआ जिसने हिंसात्मक क्रान्ति के मार्ग को स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन बनाया । राष्ट्रीय महासभा की वधानिक विचारधारा के साथ राष्ट्रीयता की इस नवीन विचारधारा ने क्रान्तिकारी दल का संगठन किया जिसके नेता वारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे ।[4] देश के विभिन्न भागों म हिंसात्मक क्रान्ति के चिह्न प्रकट हुए । इस दल के कार्यक्रम म छः बातो पर बल दिया गया जिनके विषय मे गुरुमुख निहालसिंह ने अपनी पुस्तक में लिखा है । वे बातें थी—

१—पत्रो की सहायता से प्रबल प्रचार द्वारा शिक्षित लोगों के मस्तिष्क म दासता के प्रति घृणा जागृत कर दी जाए ।

२—लोगो के मस्तिष्क से बेकारी और भूख का डर दूर कर दिया जाए और

१ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० १०३
२ वही पृ० १६२
३ वही पृ० १७४
४ वही पृ० १७६

उनमे मातृभूमि व स्वतन्त्रता का प्रेम भर दिया जाए। इसके लिए सगीत व नाट्यकला को साधन बनाया गया। राष्ट्रीय वीरो और शहीदो के जीवनचरित्र का अभिनय द्वारा चित्रण करने के लिए कहा गया और साथ ही देशभक्ति से ओतप्रोत गाथाओ को हृदयस्पर्शी सगीत द्वारा लोगों तक पहुचाने के लिए कहा गया।

३—शत्रु की प्रस्तावों और आन्दोलन—वन्देमातरम जलूस स्वदेशीसम्मेलन बहिष्कार—सभा आदि म व्यस्त रखा जाये।

४—नवयुवकों की भर्ती की जाए छोटे छोटे जत्थों मे उनका सगठन किया जाए, उन्हें शारीरिक व्यायाम शस्त्रोपयोग और शक्ति उपसना की शिक्षा दी जाए। क्रांतिकारी साहित्य पढ़ाया जाए और उन्हें अनुशासन पालने और दल के भेद को गुप्त रखना सिखाया जाय।

५—बम बनाये जाए। बन्दूकों और अन्य शस्त्रा की चोरी की जाए विदेशो से शस्त्रो को क्रय करके भारत म गुप्त रूप से लाया जाए।

६—चन्दे तथा दान द्वारा और साथ ही क्रांतिकारी डकैतिया द्वारा धन का व्यवस्था की जाये।[1]

बगाल मे इस दल के कार्यों का प्रारम्भ हुआ था। १९०८ में मुजफ्फरपुर के अप्रिय जज की हत्या करने के उद्योग म गाडी पर बम फेंका गया जिसमे दो अग्रेज महिलाओं की मृत्यु हुई। खुदीराम बोस के नेतृत्व में यह काय हुआ था अत उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हे फांसी दी गई। उनकी तस्वीर घर घर में पहुच गई और विदेशी शासन के प्रति विरोध तीव्र हुआ। १० फरवरी १९०९ को अलीपुर षड्यन्त्र अभियोग और गोसाइ-हत्या अभियोग के सरकारी वकील को गोली से मार दिया गया। २४ जनवरी १९१० को पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० शमसुल आलम को गोली स मार दिया गया।[2] बगाल क अतिरिक्त अन्य प्रान्तों म भी यह दल सक्रिय था। १९१२ म लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। इस प्रकार पुलिस अधिकारियों, अभियोग निणय करने वाले मजिस्ट्रेटों, सरकारी वकीलों और सरकारी गवाहो को आतकित करने क लिए इस दल ने हत्याए कीं डकैतियां डाली और निर्भयता से काम लिया। भारत के अतिरिक्त यूरोपीय महाद्वीप म भी भारतीय क्रांतिकारी समुदाय के लोगों ने पूरी शक्ति से काय प्रारम्भ किया, जिसके नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा एस० आर० राना और कामा दम्पत्ति थे।[3]

राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम भारतीयो के हित म हुआ। शीघ्र ही सरकार को राष्ट्रवादियों की शक्ति का आभास हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य की नीव हिल

१ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १७६ ८०
२ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास (१६०० १९१९) पृ० १८२
३. वही पृ० १८८

कर राष्ट्रीयता राष्ट्रीय शिक्षा और नवचतन्य का प्रबल वेग से प्रचार किया। उन्होंने विराट सभाओं में भाषण देकर स्वदेशी और बहिष्कार की शपथ ग्रहण कराई।[1] विद्यार्थियोंको राष्ट्रीय सैन्य शिक्षा देने का आयोजन भी किया गया। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशाब्द म भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास म राष्ट्रीय शिक्षा का अध्याय भी जुड गया।

इन ब्रिटिश विरोधी कारणो के अतिरिक्त कुछ अन्य कारण भी राष्ट्रीय भावना की प्रगति म सहायक थे जसे आग्ल भारतीय पत्रों का भारत विरोधी प्रचार स्कूल और कालेजो की शिक्षा का प्रभाव आय समाज रामकृष्ण मिशन थियोसाफिकल सोसाइटी भारत सेवक समिति जसी सस्थाओ का प्रभाव बकिमच द्र चटोपाध्याय जसे उपन्यासकारों रवीन्द्रनाथ ठाकुर जसे राष्ट्रीय कवियो भारतीय सगीत साहित्य तथा सस्कृति के पुनरुत्थान का प्रभाव भी जनजीवन को राष्ट्रवाद की ओर अग्रसर कर रहा था।[1] इन सबके फलस्वरूप १९ ७ ई म स्वदेशी बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा की पुस्तको पर विशेष बल दिया गया। राष्ट्रीय नेताओ ने यह स्पष्ट कर दिया था कि विदेशी वस्तुओ क बहिष्कार तथा स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार से ही देश पुन विगत समृद्धि तथा राष्ट्रीय गौरव को प्राप्त कर सकता है। श्री अरविन्द घोष तथा श्री विपिनचद्र पाल का स्वदेशी आन्दोलन की प्रगति म महत्वपूर्ण स्थान है। विदेशी सरकार ने स्वदेशी सभाओ को यत्नपूवक विच्छिन्न किया तथा स्वदेशी प्रचार को रोका।[3]

निरन्तर शासक वर्ग क दमन तथा दण्ड नीति को सहन करने का भारतीय जनजीवन अभ्यस्त हो गया था। अब राजद्रोह अथवा दण्ड का भय जनता के हृदय से उठ गया था। भारत म युवको का एक एसा वग भी उत्पन्न हुआ जिसने हिंसात्मक क्रान्ति के माग को स्वतन्त्रता प्राप्ति का साधन बनाया। राष्ट्रीय महासभा की वधानिक विचारधारा के साथ राष्ट्रीयता की इस नवीन विचारधारा न क्रान्तिकारी दल का सगठन किया जिसके नेता बारीन्द्र कुमार घोप और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे। देश के विभिन्न भागो मे हिंसात्मक क्रान्ति क चिह्न प्रकट हुए। इस दल के कायक्रम म छ बातों पर बल दिया गया जिनके विषय म गुरुमुख निहालसिंह न अपनी पुस्तक में लिखा है। व बातें थी—

१—पत्रों की सहायता से प्रबल प्रचार द्वारा शिक्षित लोगो क मस्तिष्क में दासता के प्रति घृणा जागृत कर दी जाए।

२—लोगों के मस्तिष्क से बेकारी और भूख का डर दूर कर दिया जाए और

१ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० १०३
२ वही पृ० १६२
३ वही पृ० १७४
४ वही पृ १७६

उनमे मातृभूमि व स्वतन्त्रता का प्रेम भर दिया जाए। इसके लिए संगीत व नाट्यकला को साधन बनाया गया। राष्ट्रीय वीरो और शहीदों के जीवनचरित्र का अभिनय द्वारा चित्रण करने के लिए कहा गया और साथ ही देशभक्ति से ओतप्रोत गाथाओं को हृदयस्पर्शी संगीत द्वारा लोगो तक पहुंचाने के लिए कहा गया।

३—जन को प्रदर्शनों और आन्दोलन—वन्देमातरम् जलूस स्वदेशीसम्मेलन बहिष्कार—सभा आदि मे व्यस्त रखा जाये।

४—नवयुवको की भर्ती की जाए छोटे छोटे जत्थो में उनका संगठन किया जाए उन्हें शारीरिक व्यायाम शस्त्रोपयोग और शक्ति-उपासना की शिक्षा दी जाए। क्रांतिकारी साहित्य पढ़ाया जाए और उन्हें अनुशासन पालन और दल के भेद को गुप्त रखना सिखाया जाये।

५—बम बनाये जाए। बन्दूको और अन्य शस्त्रो की चोरी की जाए विदेशों से शस्त्रो को क्रय करके भारत मे गुप्त रूप से लाया जाए।

६—चन्दे तथा दान द्वारा और साथ ही क्रांतिकारी डकैतियो द्वारा धन की व्यवस्था की जाये।[1]

बगाल मे इस दल के कार्यों का प्रारम्भ हुआ था। १९०८ मे मुजफ्फरपुर के अप्रिय जज की हत्या करने के उद्योग में गाड़ी पर बम फेंका गया जिसमें दो अंग्रेज महिलाओ की मृत्यु हुई। खुदीराम बोस के नेतृत्व मे यह काम हुआ था अतः उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फांसी दी गई। उनकी तस्वीर घर घर मे पहुच गई और विदेशी शासन के प्रति विरोध तीव्र हुआ। १० फरवरी १९०९ को अलीपुर षडयन्त्र अभियोग और गोसाइ-हत्या अभियोग के सरकारी वकील को गोली से मार दिया गया। २४ जनवरी १९१० को पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट मि० शमसुल आलम को गोली से मार दिया गया।[2] बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों मे भी यह दल सक्रिय था। १९१२ मे लार्ड हार्डिंग पर बम फेंका गया। इस प्रकार पुलिस अधिकारियो, अभियोग निर्णय करने वाले मजिस्ट्रेटो, सरकारी वकीलो और सरकारी गवाहो को आतंकित करने के लिए इस दल ने हत्याए की डकैतियां डाली और निर्भयता से काम लिया। भारत के अतिरिक्त यूरोपीय महाद्वीप मे भी भारतीय क्रांतिकारी समुदाय के लोगों ने पूरी शक्ति से कार्य प्रारम्भ किया, जिसके नेता श्यामजी कृष्ण वर्मा, एस० आर० राना और कामा दम्पत्ति थे।[3]

राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम भारतीयो के हित मे हुआ। शीघ्र ही सरकार को राष्ट्रवादियों की शक्ति का आभास हो गया। ब्रिटिश साम्राज्य की नीव हिल

१ गुरमुख निहालसिंह भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० १७६ ८०

२ गुरमुख निहालसिंह भारत का संवैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास (१६०० १९१९) पृ० १८२

३ वही पृ० १८८

गई थी। अत १९०६ म कौंसिल सुधार अधिनियम बना। यह केवल उच्च वग तथा मुसलमानो को सन्तुष्ट करने के लिए बनाया गया था। इस सुधार योजना ने मुसलमान जाति को पृथक निर्वाचन और प्रतिनिधित्व का पोषण ही किया।[1] ब्रिटेन की लिबरल सरकार १९०६ से ही विभाजन रद्द करने की चिन्ता मे थी।[2] १९११ मे दिल्ली म दरबार हुआ जिसम इगलैड के सम्राट ने घोषणा कर बग भग रद्द किया। लार्ड हार्डिग ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना म प्रान्तीय स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों को स्वीकार किया। इस कानून से ग्राम्य जनता को आशा की नई किरण चमकती दिखाई दी। राजनतिक जीवन म आत्मविश्वास तथा नवीन उत्साह छा गया अब भारतवासियों को इस बात की आशा बध गई थी कि भारत स्वशासन प्राप्त राष्ट्रो के स्वतन्त्र सघ साम्राज्य का एक अभिन्न अग बन जायगा। जैसे जसे इस आशा को साक्षात रूप प्रदान करने की आकांक्षा प्रबल होती गई वसे ही वस देशव्यापी आन्दोलन की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा।

इसी बीच मुस्लिम लीग का जन्म हो चुका था जिसका कारण था लार्ड कर्जन की बगभंग द्वारा हिन्दू मुसलमानो के बीच फूट डालने की नीति। दिसम्बर १९ ६ म विभिन्न प्रान्तो के मुसलमानो ने ढाका म मुस्लिम शिक्षण सम्मेलन के लिए एकत्रित होकर काग्रेस से पृथक भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की।[3] इसकी शाखाए भारत के विभिन्न प्रान्तो के साथ लन्दन मे भी फल गइ। यह एक राजभक्त सस्था थी। इसम राष्ट्रीय आदर्शों का अभाव था और यह नौकरशाही म विश्वास रखती थी। इसका सगठन भारतीय मुसलमानों के राजनतिक तथा अन्य अधिकारो की रक्षा के लिए किया गया था, जिसस यह मृदु भाषा म उनकी माँगों को सरकार के समक्ष रख सके। यह साम्प्रदायिक सस्था राष्ट्रवाद के पनपते हुए वक्ष पर कुठाराघात थी किन्तु १९१३ म इसने भी ब्रिटिश साम्राज्य क अन्तगत स्वशासन क ध्येय को स्वीकार किया और हिन्दू मुस्लिम-ऐक्य भावना को प्रोत्साहन मिला। मुहम्मद अली के नेतृत्व म उग्र विचारो का एक दल सगठित हुआ जो काग्रेस से समझौता करना चाहता था। इसके अतिरिक्त १९१४ के प्रथम महायुद्ध म टर्की ने अग्रेजो के विरुद्ध जर्मनी का साथ दिया और भारत के मुसलमान इस घटना से अग्रेज विरोधी बन गय।[4]

१९०५ से १९ ७ तक भारतीय राष्ट्रीयता के क्षेत्र म उग्र राष्ट्रवादियो का प्राधान्य था किन्तु सरकार की दमन नीति ने नेताओं को कारावास म बन्द कर आन्दोलन की तीव्रता को दबा दिया था। उग्र पक्ष ने किसी सस्था की स्थापना नही

१ डा० रघुवंशी भारतीय सांवधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० ८८
२ गुरमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० २६१
३ गुरमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० २२६
४ वही पृ० २२७
५. डा० रघुवंशी भारतीय सांवधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० १११

की थी प्रत वह छिन्न भिन्न हो गया। कांग्रेस विशुद्ध रूप से नरमदली संस्था हो गई थी।[1] १६०८ से १६१६ तक कांग्रेस की कार्यपद्धति पूर्ववत् ही थी अर्थात् प्रतिवर्ष अधिवेशन में राजनतिक एव आर्थिक प्रश्नों पर सामान्य प्रस्ताव रख जाते थे।[2] दक्षिणी अफ्रीका म भारतीयों के भाग किया जाने वाला दुर्व्यवहार इस समय का सर्वाधिक महत्वपूर्ण एव उत्तेजक विषय था जिस पर कांग्रेस तथा देश में असंतोष, क्रोध तथा अवमान की भावना से विचार हुआ था। गांधी जी ने वहां भारतीयों की ओर से सरकार तथा उसके काले कानूनो के विरुद्ध सत्याग्रह किया था। दक्षिणी अफ्रीका की क्रूर एव अन्यायपूर्ण सरकार क विरुद्ध वहा क भारतीय समुदाय की वीरता की सारे भारत म प्रशसा की गई। सारे देश में विराट सभाए की गइ।[3]

सन् १६१४ म प्रथम महायुद्ध छिडा। इगलड ने फ्रास रूस तथा अन्य मित्र राष्ट्रो के साथ मिलकर जमनी और टर्की की सम्मिलित शक्ति स युद्ध प्रारम्भ किया। प्रारम्भ म इसके प्रति भारत की साधारण जनता उदासीन थी।[4] किन्तु राष्ट्रीय नेताओं न जनता को सरकार की सहायता के लिए तत्पर किया। नरम दल के साथ उग्र दल के राष्ट्रवादी नेता लोकमान्य तिलक ने भी कारावास से मुक्त होकर भारतीयों का सम्राट-सरकार को यथा-सामर्थ्य सहायता देना कर्तव्य बतलाया।[5] महात्मा गांधी ने भी इस समय लन्दन मे आकर युद्ध सहायता काम का प्रचार किया। युद्धकाल मे दोनों राष्ट्रीय दल अर्थात नरम व गरम दल तथा हिन्दू मुसलमान नेताओं म किसी प्रकार का विरोध नही था और राष्ट्रीय ऐक्य भावना को भी विकास मिला। भारत ने युद्ध म इस आशा से अग्रजों का साथ दिया कि वे उनकी सेवा से प्रसन्न होकर स्वशासन का अधिकार दे देंगे जिससे वह सघ साम्राज्य का एक अग बन जायेगा। भारतीय सनिक दल विदेश म अपनी योग्यता और वीरता का प्रमाण देने के लिए भेजे गए। वहां उन्हें जीवन के नवीन अनुभव हुए। उनम आत्माभिमान तथा आत्मविश्वास का उदय हुआ। अन्त म युद्ध म विजय स भारतीय सनिको मे अपनी वीरता पर पुन विश्वास जम गया देश म नवीन जागृति आई। जापान की रूस पर विजय द्वारा भारतवासियो को प्रेरणा मात्र मिली थी किन्तु इस युद्ध में स्वय भाग लेकर तथा विजय प्राप्त कर एशिया व यूरोप म देश को एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। देश ने महायुद्ध में विदेशी सरकार की सहायता अवश्य की थी किन्तु उसका राष्ट्रीय कार्यक्रम समाप्त नही हुआ था। राष्ट्रीय आन्दोलन की गति पूर्ववत् बनी रही अर्थात् भारतीय शासन-व्यवस्था की नीतियो की तीव्र आलोचना

१ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० ३०४
२ वही पृ० ३०५
३ वही पृ० ३०६
४ डा० रघुपती भारतीय सांविधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० ११२
५ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० ३१५

होती रही और श्रीमती एनी बेसेण्ट तथा लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में स्वशासन के उद्देश्य से वधानिक आन्दोलन क्रियान्वित हुआ।

श्रीमती एनी बेसेण्ट ने होम रूल आन्दोलन के पुनीत काय द्वारा स्वदेशी राष्ट्रीय शिक्षा तथा होमरूल का कायक्रम जीवित रखा। १९१४ में जेल से मुक्त होते ही तिलक का त्रिमुखी कार्य था—कांग्रेस में मेल कराना राष्ट्रीय दल का पुनस्सगठन करना तथा एक दृढ़ एवं सुसगठित होमरूल आन्दोलन चलाना। उन्होने श्रीमती बेसेण्ट का साथ दिया। इस प्रकार होमरूल का विचार देश के प्रत्येक कोने में दावानल-सा फल गया। १९१७ मे यह आन्दोलन अपने चरम पर पहुँच गया। श्रीमती एनीबेसेण्ट अरण्डेल तथा वाडिया को सरकार ने नजरबन्द किया। दमन के अन्य उपाय भी काम में लाये गये। उन्हें मुक्त करने के लिए सत्याग्रह की योजना बनी किन्तु इसी समय अंग्रेजी सरकार ने माटेग्यू द्वारा यह घोषणा कराई कि ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य है कि भारतवर्ष में उत्तरदायित्व पूर्ण शासन की शन शन स्थापना हो और इसका प्रारम्भ प्रान्तों में हो। इस विषय पर और सरकार से राजनीतिक प्रश्नों पर सलाह करने के लिए वे भारत आने वाले हैं। इस घोषणा ने विद्रोह की प्रबलता को क्षणिक शान्ति दी। लेकिन साथ ही कांग्रेस नरम दल और उग्र राष्ट्रवादियों के बीच फूट पड़ गई। श्रीमती बेसेण्ट को मुक्त कर दिया गया था। नवम्बर १९१७ में जब माटेग्यू ब्रिटिश सरकार के अन्य प्रतिनिधियों के साथ दिल्ली पहुंचे तो तिलक और डा० बेसेण्ट ने भी उन्हें मालाएं पहनाई।[1] माटेग्यू ने भारत में स्वशासन प्रणाली की स्थापना की आशा दिलाई।[2] भारतीयों को सेना में उच्च पद मिले व राजनतिक नेता मुक्त किये गये। माण्टेग्यू मिशन ने परामर्श तथा जाच का काय प्रारम्भ किया जिसके फलस्वरूप भारतमंत्री और वाइसराय ने सुधारों की एक सयुक्त योजना प्रस्तुत की। यही योजना बाद में १९१९ के गवनमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट के रूप में प्रस्तुत की गई।

भारतीय वधानिक सुधारों मे सबधित रिपोर्ट ८ जुलाई १९१८ को प्रकाशित हुई। किन्तु काम पूरा करने के लिए तीन कमेटियाँ नियुक्त की गई। जून १९१९ मे नया अधिनियम प्रकाशित हुआ। यह अधिनियम अंग्रेज सरकार ने बडी चतुराई से तैयार कराया था। इसमे तीन महत्वपूर्ण बातें थी—उत्तरदायी शासन का आरम्भ देशी नरेशों का भारतीय शासन में—विशेषकर देशी राज्यों से सबधित विषयों में सहयोग और प्रान्तों में द्वैध शासन व्यवस्था का प्रवर्त्तन।[3] प्रान्तीय स्वायत्तता के लिए दो महत्वपूर्ण बातें प्रारम्भ हुई उच्च सत्ता के नियत्रण से स्वतन्त्रता और जनता के प्रति दायित्व का हस्तान्तरण। प्रान्तीय विषयों को दो वर्गों में विभाजित किया गया

१ डा० रघुवशी भारतीय सांवधानिक तथा राष्ट्रीय विकास। पृ० ११७
२ गुरमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० ३२१
३ वही, पृ० ३३३

था— सरक्षित और हस्तातरित । प्राय सभी महत्वपूर्ण विषय 'सरक्षित' श्रणी में रखे गये थे और हस्तातरित विषयो म ही भारतमत्री व भारत सरकार के नियत्रण म कुछ कमी आई थी। प्रान्तीय सरकारो को पूर्ण रूप से स्वायत्त नही बनाया था। उन्हें अब भी सपरिषद् गवनर जनरल की आज्ञाओ का पूर्णतया पालन करना आवश्यक था।[1] राजनतिक सुधारो की न्यूनता से असतोष बढा और युद्धकाल म देशवासियो ने जिस आशा से सरकार की सेवा और सहायता की थी उसे गहरा आघात पहुचा। इसके अतिरिक्त १९१९ एक्ट क अन्तगत बने नियमो क अनुसार मुसलमानो सिक्खो भारतीय ईसाइयो यूरोपियनो और आग्ल भारतीयो को पृथक प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ और अब्राह्मणो व मराठो के लिए धारासभाओं म स्थान सुरक्षित किय गये। इस प्रकार साम्प्रदायिकता की भावना को उभाडा गया। वसे १९१७ म बडा भारी साम्प्रदायिक दगा हुआ था १९१८ म—हिंदुओ द्वारा मुसलमान मारे गय थे और मद्रास म १९१६ १७ म अब्राह्मण आन्दोलन प्रारभ हो गया था। १९१९ से सिक्खो के साथ यूरोपियनो आग्ल भारतीयो और भारतीय ईसाइयो म भी साम्प्रदायिक भावना बढ़ी।

इन सबके परिणामस्वरूप १८५७ के बाद १९१९ मे भारतवासियो ने ब्रिटिश सत्ता को पुन राष्ट्रीय परिमाण पर चुनौती दी।[2] जलियावाला बाग म विदेशी सत्ता से असन्तुष्ट निशस्त्र एव निरीह भारतीय जनता पर तब तक गोलियाँ बरसाई गई जब तक वे समाप्त न हो गई। पजाब की यह घटना अमानुषिक एव बबरतापूर्ण थी। इससे देश के जनजीवन का रक्त उबल गया। यह दुघटना भारतीय इतिहास मे विदेशी शासको के पाशविक कृत्यो की रक्त से अकित कथा है। गांधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओ को इससे हार्दिक दुख हुआ। राष्ट्रीय शक्ति को अधिक सुदृढ बनाने के लिए हिन्दू मुस्लिम एकय और स्वदेशी प्रचार क काय को प्रोत्साहन दिया गया। गांधी जी ने सावजनिक जीवन म प्रवेश किया जिससे राष्ट्रवाद के इतिहास म एक नवीन गति मिली। उन्होने अहिंसा तथा प्रम का पाठ पढ़ाकर राष्ट्रीय आन्दोलन को नवीन दिशा का दिग्दशन कराया।[3]

प्रथम महायुद्ध आरभ होने क पूव भारत की वित्तीय स्थिति अच्छी थी किन्तु उसक प्रारभ होते ही १९१६ म २६ लाख पौण्ड क घाटे को पूरा करन क लिए सामा शुल्क बढ़ाया गया।[4] विदेशो म भारतीय सना के व्यय का सम्पूर्ण भार देश पर पड़ा और उसके साथ ही ब्रिटिश राज्य कोष को भारत सरकार द्वारा १० करोड पौण्ड की सहायता दी गई जिससे कर भार अधिक हो गया था। इसके अतिरिक्त जीवन के

१ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० ३३९
२ वही पृ० ३८६
३ ठाकुर राजबहादुरसिंह काग्रेस का सरल इतिहास पृ० ३२
४ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास पृ० ३६०

साधारण उपयोग की अधिकतर वस्तुओं के दाम बढ़ गये थे। बड़े व्यापारियों के सट्टे तथा नियन्त्रण के कारण स्थिति अधिक बिगड़ गई थी।[1] नगर तथा ग्रामों की जनता में अशान्ति बढ़ रही थी, औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों ने हड़ताल करनी शुरू कर दी थी।

ब्रिटिश काल में देश की आर्थिक स्थिति भी बिगड़ती ही गई और साधनहीन जनता को उत्तरोत्तर कर वृद्धि का भार भी उठाना पड़ा। सैनिक व्यय बढ़ता रहा और विदेशी सेना की अभिवृद्धि के साथ इसका भार असह्य हो उठा। सीमान्त युद्धों ने भी इसमें योग दिया और भारतीय सेना को विदेश में साम्राज्य के हित में युद्ध में भेजे जाने से व्यय और भी अधिक बढ़ गया। इसके अतिरिक्त देश की औद्योगिक अवनति हुई क्योंकि शासन ब्रिटिश उद्योग को सहायता दे रहा था। नगरों और ग्रामों में उद्योग तथा कला का ह्रास हुआ अतः अन्य जीवकोपार्जन साधनों के अभाव में कृषि अवलम्बित जनता की संख्या में निरन्तर अभिवृद्धि हुई।[2] इस कारण भूमि का विभाजन छोटे-छोटे हिस्सों में हो गया जिससे भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था अव्यवस्थित हो गई। नवीन भूमिकर व्यवस्था का भी अहितकर प्रभाव पड़ा था। जंगल से लकड़ी काटने का अधिकार भी छिन गया था। अतः कृषक की आर्थिक अवस्था दिन प्रतिदिन शोचनीय होती जा रही थी। कष्टकर दिवसों के लिए उनके पास कुछ भी सम्पत्ति शेष नहीं बचती थी। वह अपने तथा अपने परिवार के लिए भरपेट भोजन जुटाने में असमर्थ था।[3]

इन सबके परिणामस्वरूप कृषक अशान्ति के दो प्रदर्शन चम्पारन (बिहार) तथा खेड़ा (गुजरात) में हुए जो राष्ट्रवाद के इतिहास में कृषक वर्ग की जागृति के द्योतक हैं। चम्पारन में कृषक नील की कोठियों के लगाव की वृद्धि विदेशी मालिकों के अत्याचार एकमुश्त रकम तथा अन्य अवध रकमों के बोझ से विक्षुब्ध हो गया था। गांधीजी ने १९१७ अप्रैल में वहाँ पहुँचकर किसानों की शिकायतों की जाँच प्रारम्भ की। अन्त में १९१८ का चम्पारन कृषक-ऐक्ट बनाया गया और सरकार द्वारा कर व्यवस्था में अनेक सुधार हुए। इसी बीच गांधी जी को खेड़ा जाना पड़ा क्योंकि वहाँ अतिवृष्टि के कारण फसल की हानि हुई थी और कृषक वर्ग मालगुजारी देने में असमर्थ था। गांधी जी ने प्रथम बार वहाँ सत्याग्रह प्रारम्भ किया। सरकार की दमन

---

१ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० ३१

२ However the most decisive factor which accelerated the process of subdivision of land and its fragmentation was overpressure on agriculture bought about by aconomic imination of Millions of urban and village handicraftsmen and artisons'
A R. Desai Social Background of Indian Nationalism—p 41

३ A. R Desai Social Background of Indian Nationalism—p 47

४ गुरुमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० ३६३

नीति के कारण सत्याग्रही किसानों की सम्पत्ति कुर्क कराई गई जमीन को जब्त करने की आज्ञा दी गई। तथापि किसानों ने दृढ़ता के साथ इन विपत्तियों का सामना किया। इसी बीच गांधीजी को किसी प्रकार सरकारी निर्णय का भान हो गया कि वह माल गुजारी के सम्बन्ध में छूट देने वाली है। अतः सत्याग्रह आन्दोलन समाप्त किया गया। इस आन्दोलन का परोक्ष रूप से अत्यधिक प्रभाव पड़ा सार्वजनिक जीवन में नया साहस आया और किसानों को अपनी शक्ति का बोध हुआ।[1] विदेशी सत्ता के प्रति विक्षोभ की भावना की अभिवृद्धि के साथ राष्ट्रीय नेता देशदशा के अभावात्मक पक्ष की ओर अधिक सजग हुए।

सामाजिक तथा धार्मिक सुधार कार्य भी पूर्ववत अनेक संस्थाओं—जैसे प्रार्थना समाज आर्य समाज, ब्रह्मसमाज के संरक्षण में चल रहा था। सामाजिक असमानता जाति-वर्णभेद, बाल विवाह विधवाओं की दुरवस्था के विरुद्ध सुधार पर बल दिया गया। भारतीय आदर्शों तथा नैतिकता की रक्षा के साथ बुद्धिवादी समाज सुधारक समुदाय सामाजिक धार्मिक परिवर्तन के लिए आवाज उठा रहा था। १६१६ ई० तक नारी वर्ग में भी विशेष जागृति आ गई थी और वह भी तीव्र गति से राजनीति में भाग लेने लगा।

१६०५-२० तक के राष्ट्रवाद का आधारभूत दर्शन तथा स्वरूप

१६०५ के उपरांत राष्ट्रीय ध्येय की पाने के लिए दो विभिन्न साधन अपनाए गए—वैधानिक तथा क्रांतिकारी। वैधानिक आन्दोलन कांग्रेस तथा उसके संस्था द्वारा अपनाया गया था इसके अन्तर्गत भी दो विचारधाराएं कार्य कर रही थीं, उग्र तथा नरम। उग्र दल के महत्वपूर्ण नेता थे लोकमान्य तिलक अरविन्द घोष विपिन चन्द्र पाल लाला लाजपतराय आदि। नरम दल के प्रमुख नेता थे—गोपाल कृष्ण गोखले दादाभाई नौरोजी फीरोजशाह मेहता आदि। इस दल के नेताओं की राष्ट्रीयता प्रार्थना तथा प्रस्तावों तक ही सीमित था। ये लोग भारतीयता की अपेक्षा पश्चिम की उन्नीसवीं शताब्दी के राजनीतिक आदर्शों तथा जीवन दर्शन से प्रभावित थे। इनके सामाजिक सुधारों का स्वरूप भी बहुत कुछ पाश्चात्य शिक्षा तथा आदर्शों से प्रेरित था।

इनके विपरीत इस काल के उग्र राष्ट्रवादी नेताओं ने भारत के नव निर्माण के लिए भारतीय जीवन दर्शन और राजनीतिक आदर्शों का आधार ग्रहण किया था।[2]

१ गुरमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० १६५

२ Dharma was the integrating principles and Swadharma the speritual and social duty of each individual Here was the guide to social and political action. Projecting these values the new leaders began to build the emerging philosophy of Indian Nationalism

Theodore L. Shay The Legacy of the Lokmanya—The Political philosophy of Bal Gangadhar Tilak—p 60

इनकी राष्ट्रीयता धार्मिक भावना से अभिप्रेरित थी—उनकी दृष्टि से राष्ट्रीयता किसी राजनीतिक उद्देश्य अथवा भौतिक सुधार के किसी साधन से कहीं बड़ी चीज थी। उनकी दृष्टि में उसके चारो ओर एक ऐसा तेजपुंज था जो मध्यकालीन सन्तों की दृष्टि में धर्म पर बलि हो जाने वालों के चारों ओर होता था।[1] लोकमान्य तिलक के राष्ट्रवादी विचारो का प्रभाव अधिकांश देशवासियों पर पड़ा था अतः उनके राष्ट्रवाद के दर्शन का विवेचन आवश्यक है। वस्तुतः इस युग के राष्ट्रवाद का यही प्रमुख रूप था।

लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्त्व था भारतीय सांस्कृतिक आदर्श एवं उसकी पुरातन रीति। प्रत्येक देश का अपना जीवनदर्शन संस्कृति और आदर्श होता है। इस युग के आन्दोलन की भी यह मौलिकता एवं विशेषता थी कि उसे भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के आदर्शों से प्रेरणा मिली थी।[2] १९वीं शताब्दी में ईसाई धर्म के प्रचार और पश्चिमी संस्कृति के आदर्शों की प्रतिक्रियास्वरूप पुनः भारतीय धर्म जीवन-दर्शन और प्राचीन आदर्शों की खोज की गई थी और उनकी पुनः स्थापना के प्रयास का प्रारम्भ हुआ था। बीसवीं शताब्दी में उग्र राष्ट्रवादियों ने तिलक के नेतृत्व में पूर्णतया उसका आधार ग्रहण किया। इनकी दृष्टि भारत के गौरवमय अतीत की ओर गई और भारतीय इतिहास का हिंदू काल इनका आदर्श बना। ये नेतागण अपनी स्वाभाविक प्रेरणा तथा अपनी समस्त चेतना के साथ पुरानी परम्पराओं की ओर झुके थे। इनकी स्वराज्य अथवा स्वायत्त शासन की मांग का मूल कारण था भारतीय सांस्कृतिक जीवनदर्शन को विकास की स्वाभाविक गति प्रदान करना। अतः स्वधर्म की स्थापना के लिए भारत की स्वतन्त्रता को आवश्यक माना गया। इनके अनुसार समाज अर्थात राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को सर्वोच्च आदर्शों की प्राप्ति में सहायता देनी चाहिये क्योंकि राष्ट्र तथा समाज का उद्देश्य भिन्न नहीं होता। इस प्रकार इतिहास धर्म-ग्रन्थों भारतीय जीवन-दर्शन के महत्त्वपूर्ण तथ्यों की खोज की गई तथा गम्भीर अध्ययन हुआ। सत्य स्वभाव का अनुसरण कर मोक्षप्राप्ति इनका ध्येय था। राजनीति धर्म तथा दर्शन के समन्वय में राष्ट्रवाद का क्षेत्र विस्तृत एवं विकसित हुआ। अन्त में यह कहा जा सकता है कि इस युग में राष्ट्रवाद का समुचित विकास हुआ। राष्ट्रीयता धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत थी और राजनीतिक उद्देश्य अथवा भौतिक सुधार से कहीं बड़ी चीज थी।[3] इसके विकास में प्रेस ने विशेष सहयोग दिया था। प्रेस एक्ट लागू होने पर भी राष्ट्रीय विचारों के प्रचार तथा उत्तेजन में समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं से सहायता मिली।

---

१ गुरमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० १६३
२ Shay—The Legacy of Lokmanya—Introduction. p. 13
३ गुरमुख निहालसिंह भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास पृ० १६२

२
साहित्य मे राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति
(१८५७ ई० से १९२० तक)

सन् १८५७ का विद्रोह स्वतन्त्रता प्राप्ति का प्रथम उद्योग कहा जा सकता है जिसका विशेष संबंध हिन्दी प्रदेश से था। यह आश्चर्य का विषय है कि इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकार भारतेन्दु आदि ने अपनी लेखनी द्वारा इसका वर्णन नही किया। राजाओं जमींदारो तथा ताल्लुकदारो आदि के आश्रय में रहने वाले कवि वर्ग ने अवश्य इस विद्रोह मे भाग लेने वाले अपने आश्रयदाताओं की वीरता तथा यश का गान गाया।[1] विदेशी शासन व्यवस्था से सन्तुष्ट तथा उसकी संगठित शक्ति से प्रभावित कवि वर्ग ने विद्रोह की निंदा की। प्रायः इस युग के कवि नवीन शिक्षा में दीक्षित मध्यम अथवा व्यापारी वर्ग के थे जिन्होंने विद्रोह की असफलता के कारण उसे अपनी राष्ट्रीय भावना का मूलाधार नही बनाया। इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि ये कवि या लेखक देश की तत्कालीन परिस्थितियो से अनभिज्ञ थे अथवा राष्ट्रीय भावना या देशभक्ति से शून्य थे। इन्होंने यह भलीभांति जान लिया था कि सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति के अभाव में भारत की एकता को आघात पहुंचा है अतः नवीन वैज्ञानिक साधनों से विभूषित अंग्रेजी साम्राज्यान्तर्गत ही देश एक सूत्र में आबद्ध हो प्रगतिशील हो सकता है। अंग्रेजी शासकवर्ग ने मुसलमान बादशाहों नवाबों हिन्दू राजाओं तथा ताल्लुकेदारों के अधीन देश के अनेक छोटे बड़े भागों को अपने अधिकार में करके, अपनी शक्ति तथा कुशाग्र बुद्धि का परिचय भी दे दिया था। भारतेन्दु युगीन हिन्दी-साहित्य मनीषी इस तथ्य से परिचित हो गये थे कि अंग्रेजी शक्ति का विरोध करना मूर्खता होगी। कांग्रेस का इतिहास में पट्टाभि सीतारम्मैया ने इस समय की मनोवृत्ति के विषय में लिखा है।[2] इसके अतिरिक्त महारानी विक्टोरिया की घोषणा ने भी साहित्यकारों में

---

१ डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० २८६
हिन्दी परिषद् इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १९४८ ई० संस्करण।

२ "अब लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त भाव से अपने कामकाज में लग गये, जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक खासियत है।"

—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० ५

विदेशी शासन के प्रति विरोध भाव को दबा दिया था, घोषणा ने घावों पर मरहम का काय किया था।[1] शासकों के प्रति विरोध भाव न रहने पर भी देश की शासन सबधी तथा आर्थिक कठिनाइयां धार्मिक एव सामाजिक कुरीतियों के प्रति साहित्य में विक्षोभ की भावना मिलती है। अत राजभक्ति युग की माग थी किन्तु देशभक्ति आत्मा की पुकार थी।

सन १८५७ से १९ तक के साहित्य मे राष्ट्रीय भावना

१८५७ ई० के पश्चात का हिन्दी साहित्य राष्ट्रवाद का प्रारम्भिक इतिहास कहा जा सकता है। अब हिन्दी साहित्य परपाटी विहीन तथा रूढ़िग्रस्त साहित्य सृजन को त्यागकर नवीन दिशा की ओर मुड चला था। साहित्याकाश में भारतेन्दु के उदित होते ही नवजीवन का सचार हुआ। तत्कालीन साहित्य ने जीवन की परिस्थितियों का अनुगमन किया। इस युग के साहित्य को सामाजिक एव सास्कृतिक पुनर्जागरण का साहित्य कह सकते हैं।[2] साहित्य के समस्त अग देश की समसामयिक राजनीतिक धार्मिक आर्थिक व नतिक परिस्थितियों का यथातथ्य चेतना-उद्बोधक वणन करना अपना प्रमुख लक्ष्य समझते थे। रीतिकाल की सकीर्ण सकुचित मनोवृत्ति का परित्याग कर साहित्य ने देश की एकता का गान गाया तथा पाखड अधविश्वास रूढ़िवादिता आदि राष्ट्रीय प्रगति के अवरोधक तत्वों को मिटाने का प्रयत्न किया जिससे राष्ट्रीय जागरण की भूमिका प्रस्तुत हो गई।

देश में सावजनिक जीवन की नीव डालने वाली सस्थाओं का निर्माण राजा राममोहन राय स्वामी दयानन्द सरस्वती डा० राजेन्द्रलाल मित्र रामगोपाल घोष दादा भाई नौरोजी नाथूभाई श्रीमती एनीबेसेन्ट आदि के सद्उद्योग से प्रारम्भ हो गया था।[4] यद्यपि इन सस्थाओं द्वारा गतिशील सामाजिक धार्मिक नतिक सुधार जन आदोलन का रूप न ले सके थे किन्तु राष्ट्रीय भावना के प्रसार के लिए अनुकूल वातावरण निर्मित करने का श्रेय इन्हीं को मिलेगा।[5] भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी लेखकों पर इन सस्थाओं तथा व्यक्तियों का विशेष प्रभाव लक्षित होता है। नवयुग ने विचार स्वातन्त्र्य को जन्म दिया था अत इस अनुकूल वातावरण मे लेखकों ने देश की प्रगति के कारणों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया तथा साहित्य द्वारा समाज धर्म

१ "For many years the proclamation acted like a balm and Indian leaders vied with one another in their loyalty to the British Crown

—Mahatma—A life of Mohandas Karam Chand Gandhi

२ डा० वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य (द्वितीय सस्करण) पृ० १६

३ श्री रामगोपाल सिंह भारतेन्दु साहित्य पृ० ९

४ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० १२

५ आवरी और तन्दूलकर- महात्मा पृ० ३ ४ ५

एव शासन सम्बन्धी सुधार का व्रत लिया। देश, समाज तथा संस्कृति को नवीन दृष्टि से देखा। भारतेन्दु इसके प्रतीक थे और जसा डा० वार्ष्णेय ने लिखा है उन्होंने देशभक्ति साकहित, समाजसुधार मातृभाषोद्धार, स्वतन्त्रता आदि की वाणी सुनाई।[१]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व म इस काल में साहित्य का पथ निर्दिष्ट हुआ अत साहित्यिक क्षेत्र म यह हा इस नवोत्थान काल के प्रमुख नेता कहे जायेंगे। इस युग की राष्ट्रीय भावना अपने प्रथम चरण म होने पर भी राजनीति के साथ धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक पक्षो का भी समाहित किये थी। अंग्रेज भारत पर राज नीतिक ही नहीं सांस्कृतिक विजय के भी आकांक्षी थे। पश्चिमी शिक्षा सभ्यता तथा विचारधारा से प्रभावित अधिकांश शिक्षित वग अपनी मातृभाषा, संस्कृति तथा धम का उपेक्षा की दृष्टि स देखने लगा था। भारतेन्दु तथा इस काल के हिन्दी साहित्य कारो की दृष्टि से यह छिप न सका कि अंग्रेजी राज्य केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नही वरन् धार्मिक सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से भी अभिशाप बन कर आया है। उन्होंन सभ्यता संस्कृति तथा ज्ञान के क्षेत्र म अति प्राचीन भारत की सुदृढ़ आधार शिला को हिलत देखा। भारतीयता पर आघात न सहन कर सकने के कारण उनका सम्पूर्ण अन्तस्तल विक्षोभ एव ग्लानि से परिपूर्ण हा गया। इन्होंन अपनी वाणी द्वारा पूवजों की गौरवमय स्मृति का कलापूर्ण सुन्दर चित्रण कर देशवासियो को सचेत किया। इस अतीत गौरवगान क वतमान दुर्दशा तक पहुचाने वाले हानिकारक तत्त्वो की ओर भी सकेत किया। विदेशी सत्ता की जजीरो म जकड़ी जनता परमुखापेक्षी हो गई थी। वह अपनी देशी वस्तुओं क मूल्यांकन का विवेक खो बैठी थी। इन सरस्वती क वरद पुत्रो ने जनता की दृष्टि स्वदेशी क प्रचार तथा विदेशी के बहिष्कार की ओर आकृष्ट की अर्थात् देशवासियो को उनक आर्थिक हित की ओर सचेत किया। अपनी भाषा के महत्व तथा उसके प्रचार का माग भी दिग्दर्शित किया जिससे जनता विदेशी भाषा म मोह क हानिकारक कारणो से सावधान हो जाय।

इस काल के साहित्य म जिन राष्ट्रीयता उद्बोधक तत्वो का विस्तार क साथ वणन मिलता है उनका विस्तृत विवेचन अपेक्षणीय है। वह विशेष तत्त्व हैं—

(क) अतीत गौरव की स्मृति
(ख) वतमान स्थिति के प्रति क्षोभ पतन के कारणो का स्पष्टीकरण
(ग) देश प्रेम भारतीय धम तथा संस्कृति क प्रति श्रद्धा।
(घ) हिन्दी का प्रचार।

राष्ट्रीय भावना राजभक्ति के आवरण म लिपटी हुई है, उससे मुक्त नहीं है। अत राजभक्ति सम्बन्धी उक्तियाँ देशभक्ति तथा राष्ट्रीयता में किस अश तक बाधक हैं इसका वणन भी उपेक्षणीय नही है।

१ डा० वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० २७७

प्राचीन गौरव तथा स्मृति

भारत का गौरव अक्षुण्ण है केवल कुछ काल के लिए वह लुप्त हो गया था। देश के अतीत गौरव उसके प्राचीन ग्रन्थ तथा उसकी वीरगाथाओं के इतिहास की सुरक्षा ही जीवन म नवजागृति का साधन बन सकती थी। राष्ट्रीय चेतना के आरम्भ तथा विकास की स्थितियो के विवेचन से यह स्पष्ट है कि राजेन्द्रलाल मित्र भडारकर तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओं द्वारा रचित विस्तापूण साहित्य ऐतिहासिक अध्ययन तथा नवीन खोजो ने विश्व के सम्मुख यह सिद्ध कर दिया था कि ज्ञान विज्ञान की गूढ तम बातो पर केवल पश्चिम का ही एकाधिकार नही था सवप्रथम भारत ने ही इस क्षत्र म प्रगति की थी। साहित्य क क्षेत्र में भी भारतन्दु हरिश्चन्द्र प्रेमघन प्रताप नारायण मिश्र श्रीनिवासदास राधाचरण गोस्वामी प्रभृति साहित्यकारो ने इतिहास परम्परा तथा साहित्य ग्रथो द्वारा रक्षित अतीत गौरव तथा वीर कृत्यो का उत्तेजना पूण शब्दो मे वणन किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अति आर्त्त स्वर म भारत क प्राचीन एव आध्यात्मिक वीरपुरुषो को वतमान दु खमोचन के लिए स्मरण किया है—

कह गए विक्रम भोज राम बलि कण युधिष्ठिर।
चद्रगुप्त चाणक्य कहां नासे करिक थिर॥
कहं क्षत्रिय सब मरे जरे सब गये कितै गिर।
कहां राज को तौन साज जेहि जानत है चिर॥
कह दुग-सेन धन-बल गयो धूरहि धूर दिखात जग।
जागो अब तो खल-बल-दलन रक्षहु अपनो आय मग॥[1]

इसी प्रकार प्रमघन न जीणजनपद[2] म अपने पूवजो के निवास स्थान दत्ता पुर ग्राम की प्राचीन विभूति और आधुनिक दशा का यथाथ वणन किया है। इस प्रब ध काव्य म देश क अतीत गौरव का वणन प्रतीकात्मक शली म किया गया है। इसके अतिरिक्त पितर विलाप[3] कविता म उन्होने पितृपक्ष म आये पितरजनों द्वारा भारत की वतमान दुदशा पर विलाप कराया है जिससे भूतकालीनगौरव के रग अधिक गहरे हो जात हैं। उत्तर स दक्षिण पूव स पश्चिम तक भारत की भौगोलिक एकता की पुष्टि करन वाल सुविख्यात नगरो—काशी अयोध्या प्रतिष्ठानपुर इन्द्रप्रस्थ मथुरा उज्जैन द्वारिका चित्तौड पाटलिपुत्र पजाब कश्मीर की विशषताओ का

---

१ सकलनकर्ता तथा सम्पादक ब्रजरत्नदास भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६८३ ६८४ दूसरा सस्करण सवत २०१० वि० प्रकाशक—नागरी प्रचारिणी सभा काशी।

२ सम्पादक—श्री प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय श्री दिनेशनारायण उपाध्याय प्रेमघनसवस्व प्रथम भाग पृ० १ प्रथमावृत्ति सवत् १६६६ हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

३ प्रेमघन सवस्व पृ० १५४

उल्लेख करते हुए कवि इनके पतन या विनाश पर शोक प्रकट करता है। यह अतीत गौरव गान वर्तमान दुरवस्था की अनुभूति को अधिक तीव्रता प्रदान करने वाला है—

नहि वह काशी रह गई हती हेम मय जौन।
नहि चौरासी कोस की रही अयोध्या तौन॥
राजधानि जो जगत की रही कभी सुख साज।
सो बिगहा दस बीस मे सिकुड़ी सी जनु आज॥[1]

त्याग धर्म और सत्यता के शुद्ध मार्ग का आचरण करने वाले दिग्विजयी तथा प्रजाप्रतिपालक राजा अब नहीं रहे सलकि जो मरि मिट ना लिया देन का नाम।[2] भारतेन्दु जी के भारत दुर्दशा नाटक के एक गीत म भी अतीत गौरव तथा वर्तमान दुर्दशा का क्षोभपूर्ण शब्दों म तुलनात्मक विवचन मिलता है—

रोवहु सब मिलिके आवहु भारत भाई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीन्हो।
सबके पहिले जो रूप रग रस भीना।
सबके पहिले विद्याफल जिन गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥[3]

यह विचार कर कविहृदय अ य त दु खित होता है कि जहां राम युधिष्ठिर, वासुदेव हरिश्चन्द्र, नहुष ययाति भीम, अर्जुन जसे महान पुरुषों न अपनी छटा दिखाई थी वहा आज मूढ़ता कलह और अविद्या का राज्य है।[4] बालमुकुन्द गुप्त ने 'पुरानी दिल्ली' कविता में भारत के एतिहासिक नगर की प्राचीन गौरव-गाथा का चित्र अकित कर काल के मारक प्रभाव को बताया है।[5]

काव्य के सदृश नाटकों म भी पौराणिक एतिहासिक, परम्परागत वीर चरित्रों

---

१ प्रेमघन सर्वस्व पृ० १५५

२ प्रेमघन सर्वस्व पृ० १५५

३ सम्पादक—ब्रजरत्नदास भारतेन्दु ग्रन्थावली 'भारत दुर्दशा नाटय रसिक व लास्य रूपक'—पृ० ४६६ पहला खंड प्रथम संस्करण, २००७ वि० प्रकाशक—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

४ ब्रजरत्नदास भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग दो पृ० ४६६

५ डा० नत्थनसिंह सम्पादक—बाबू बालमुकुन्द गुप्त जीवन और साहित्य। पृ० १२४

का आख्यान मिलता है। इसका श्रेय भी भारतेन्दुजी को दिया जाता है क्योंकि उन्होंने मुद्राराक्षस' नीलदवी आदि ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित नाटक लिखे। मुद्राराक्षस अनुवाद है लेकिन इसकी विस्तृत भूमिका मे पूवकथा और उपसहार म भारतेन्दु ने इतिहास सम्बन्धी शोध के विवरण दिए हैं जिनसे ऐतिहासिक नाटककारों को नई दिशा का सकेत मिला।[1] नीलदेवी गीतिरूपक है जिसमें मुस्लिम काल की ऐतिहासिक घटना को लेकर भारतीय हिन्दू नारी की वीरता पर प्रकाश डाला गया है। भारतेन्दु का अनुगमन कर इस युग के अन्य नाटककारो ने भी अतीत गौरव की अभिव्यजना के लिए नाटक लिखे। श्रीनिवासदास का सयोगिता स्वयवर' राधाकृष्ण दास के महाराणाप्रताप पद्मावती नाटक, राधाचरण गोस्वामी कृत अमरसिंह राठौर प्रतापनारायण मिश्र कृत हठी हमीर आदि कुछ प्रसिद्ध नाटक है। डा० दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबध में राधाकृष्णदास के महारानी पद्मावती तथा 'महाराणा प्रताप नाटक' को राष्ट्रीयता से ओतप्रोत देश पर बलिदान होने का आह्वान करने वाला माना है।[2] ये सभी नाटक वीर रस प्रधान हैं। इनके अतिरिक्त *पौराणिक कथानको को लेकर भी भारत के चिर पुरातन धम तथा नैतिक* आदर्शों को प्रतिष्ठित करने वाले नाटक लिखे गए जसे श्री निवासदास का प्रह्लाद चरित्र नाटक। इनके द्वारा भारत के चिरपुरातन धर्मादर्श पर प्रकाश डाला गया।

उपन्यास साहित्य तथा छोटी कहानियो का अधिक विकास न होने के कारण अतीत गौरव की अभिव्यक्ति करने वाले उपन्यास अथवा कहानिया नही मिलती हैं।

इस युग के साहित्य मनीषियो न देशभक्ति की भावना की जागृति के लिए भारत के जिस अतीत काल का गान किया था वह हिन्दू-काल का स्वणयुग था। उनकी अवस्था के प्रतीक हिन्दू इतिहास तथा परम्परा के वीर पुरुष तथा नारी थे। और यदि उन्होंने इतिहास के मुसलमान काल से वीर राजपूतो का चरित्र चुना तो उनका प्रयत्न यही था कि उनकी तुलना म मुसलमान पात्रों का चरित्र अधिक श्यामल दृष्टिगत हो। पूर्व शताब्दियो क मुसलमान शासको के अत्याचार तथा अन्याय को विस्मरण करना उनके लिए कठिन था क्योंकि जहा विशेसर सोमनाथ माधव के मन्दिर' थे वहा मस्जिदें बन गई थी और अल्लाह अकबर की ध्वनि सुनाई पडती थी।[3] हिन्दी-साहित्य प्रणेता हिन्दू थे और राष्ट्रवाद के इस अभ्युत्थान काल म उनकी राष्ट्रीय भावना जातीयता या धार्मिकता से मुक्त नहीं हो सकी थी। अत हिन्दू साहित्यिक अपने धम इतिहास सस्कृति वीर चरित्रों की ओर स्वाभाविक रूप म आकृष्ट हुए थ। देशवासियो को अपना मूलता कूपमण्डूकता से मुक्त करने उनमे आत्मविश्वास भरने तथा उन्हें साहस प्रदान करने के लिए अतीत गौरव का यह स्मरण पर्याप्त मात्रा म सहायक हुआ।

१ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ० २२६
२ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ० २६७
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६८४

भारतेन्दु प्रेमघन आदि लेखकों ने अतीत गौरव के विनाश का कारण भारत वासियों के चारित्रिक पतन में ढूंढा था। उनके मतानुसार देशवासियों की फूट आपसी महाभारत, आलस्य आदि का लाभ उठा कर अतीत में यवनों ने मन्दिर फाड़ के मूर्तियां तोड़ी थी और अब अंग्रेजी राज्य में देश पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ गया था। प्राय इस युग का अतीत गौरव-गान वर्तमान दुरवस्था के विक्षोभ की भावना से आच्छादित है। डा० केसरी नारायण शुक्ल के शब्दों में — अतीत के प्रति अनुराग से उद्भूत इनके उद्गार कहीं भारत की सभ्यता की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करते हैं कहीं प्रकट रूप से उज्ज्वल भविष्य बनाने का संकेत करते हैं और कहीं इन कवियों के अन्तर का क्षोभ प्रकट करते हैं। इस प्रकार अतीत का अनुराग काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति बन गई है।[2]

वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ एवं पतन के कारणों का स्पष्टीकरण

इस युग के साहित्य में अतीत गौरव की स्मृति के साथ वर्तमान राजनीतिक सामाजिक आर्थिक धार्मिक दुरवस्था के प्रति क्षोभ की भावना भी मिलती है। लेखकों ने युगीन स्थितियों का यथार्थ शैली में वर्णन किया है जो साहित्य को अपूर्व देन है। प्रेस ऐक्ट जैसे बन्धनों में बद्ध होने पर भी इन लोगों ने तत्कालीन दुर्दशा के कारणों का अपनी रचनाओं में विश्लेषण किया। देश की हीनावस्था के दो मुख्य कारण थे— प्रथम स्वयं भारतीयों का मानसिक नैतिक बौद्धिक अधःपतन द्वितीय पराधीनता का अभिशाप। इस काल के लेखकों ने प्रथम कारण को प्रमुखता दी थी द्वितीय कारण गौण था। इसका कारण था उस युग की परिस्थितियां तथा जनता की विशेष मनोवृत्ति जैसा कि राष्ट्रीयता के विकास के इतिहास में स्पष्ट किया जा चुका है।

तत्कालीन हिन्दी साहित्यकारों ने देश के नैतिक पतन सामाजिक एवं धार्मिक अवनति सांस्कृतिक ह्रास तथा राजनैतिक अभिशाप का विशेष भाव से वर्णन किया है। अज्ञान आलस्य तथा मूर्खता के कारण दीन हीन देशवासियों को देखकर उन्हें मानसिक क्लेश होता है। भारतेन्दु जी ईश्वर से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

> डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो।
> आलस-दव एहि दहन हेतु चहुं दिसि सों लागो॥
> महामूढ़ता वायु बढ़ावत तेहि अनुरागो।
> कृपा दृष्टि की वृष्टि बुझावहु आलस त्यागो॥
> अपनो अपनायो जानि कै करहु कृपा गिरिवरधरन।
> जागो बलि बेगहि नाथ अब देहु दीन हिन्दुन सरन॥[3]

१ प्रेमघन सर्वस्व पृ० ४१ प्रथम भाग
२ डा० केसरी नारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० ११२
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६८३

प्रमघन ने भी इसी प्रकार पितर प्रलाप काव्य में पितृ पक्ष मे आये स्वर्गीय पितर जनो द्वारा देश की दुदशा पर प्रलाप दिखाया है।[१] इसके अतिरिक्त निममता पूवक देश की अवनति के कारणों पर प्रकाश डाला है। भारतेन्दु के सदृश वह भी आपसी फूट परस्पर कलह द्वेष अमितव्ययिता तथा विलासप्रियता को सवनाश का कारण मानते हैं—

भए एक के चार चार घर अलग अलग जब।
भए परस्पर कलह द्वेष तब कुनास होत कब॥
भए दीन बनि सब मिटी या थल की शोभा।
ताहि एक दिन लखन कौन को नहिं मन लोभा॥[२]

इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र ने भी भारतेन्दु तथा प्रमघन के स्वर म स्वर मिलाते हुए भारत के विनाश के कारणो का उल्लेख किया है। उन्हे दुख है कि फूट वैर और स्वाथ-साधन म रत रहने के कारण हिन्दू देश की दुदशा नही देखते और मुसलमान धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओ का अनथ कर रहे हैं। हिन्दुओ के मन्दिर ढहते हैं गायों का हनन होता है और अगरेज सरकार मायाजाल रचा कर धन खीच लिये जा रही है।[३] राधाकृष्ण दास ने देश की दुर्दशा पर दुख अभिव्यक्त करते हुए लिखा है कि भारत ही एक ऐसा देश है जो रोकर अपना समय खो रहा है यूरोप अमरीका फास जर्मनी आदि सभी देश मोद से भरे आनन्द म मग्न हैं। उन्होंने भी भारतेन्दु या प्रेमघन की भांति देशवासियो को रोने का सदेश नही दिया है।[४] उन्होने सवत् १६५३ तथा १६५६ के अकाल का भी वणन किया है।[५]

प्राय राजभक्ति सम्बन्धी कविताओ म भी राजभक्ति की अपेक्षा देशदशा के प्रति विषाद की मात्रा ही अधिक मिलती है। भारतेन्दु ने भारत भिक्षा कविता मे जननी के रूप म देश का मानवीकरण करते हुए भारत जननी से राजकुमार के शुभाग मन पर उनका स्वागत करने का आग्रह किया है। महारानी विक्टोरिया ने करुणा कर राजकुमार को भेजा था किन्तु भारत माता अपने पूव गौरव की स्मृति तथा वतमान को दृष्टिगत कर अति व्याकुल हो कहती है—

लखिहैं का कुमार अब धाई।
गोद बठि हसिहैं इत आई॥

---

१ प्रमघन सवस्व पृ० १५४ प्रथम भाग
२ प्रमघन सवस्व पृ० ५१ प्रथम भाग
३ प्रतापलहरी विषाद पचक पृ० १२६ १३० प्रथम सस्करण
४ राधाकृष्ण ग्रन्थावली भाग १ पृ० १५
सकलन और सम्पादन—श्यामसुन्दरदास प्रथम संस्करण
५. भारतेन्दु ग्रन्थावली भारत दुदशा नाटक
६ राधाकृष्ण ग्रन्थावली भाग १ पृ० २०

परन्तु काव्य की अपेक्षा इस युग के नाटकों में देश के नैतिक पतन सामाजिक तथा धार्मिक अवनति का अधिक विशद चित्र मिलता है। भारतेन्दु के भारत दुर्दशा नाट्य रासक के नाम से ही यह स्पष्ट है कि इसकी कथावस्तु का विशेष सम्बन्ध देशदुर्दशा से है। इसमें देशवासियों की चारित्रिक हीनता आलस्य मूर्खता अन्धविश्वास रूढ़िवादिता भ्रान्ति का विस्तृत उल्लेख मिलता है

जहं भए शाक्य हरिचंद्र नहुष ययाती।
जहं राम युधिष्ठिर वासुदेव सर्याती॥
जहं भीम करन अर्जुन की छटा दिखाती।
तहं रही मूढ़ता कलह अविद्या राती॥
अब जहं देखहु तहं दुखहि दुख दिखाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥[1]

इसी प्रकार वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति नाटक में भारतेन्दु जी ने हिन्दुओं के धार्मिक तथा चारित्रिक पतन पर क्षोभपूर्ण व्यंग्य कसा है। उस समय देश के राजा मंत्री पुरोहित शाक्त वैष्णव सभी की बुरी दशा थी। यमराज की सभा में महाराजा चित्रगुप्त द्वारा गुरु लोगों के सम्बन्ध में कहलाया है— महाराज ये गुरु लोग हैं इनके चरित्र कुछ न पूछिये केवल दम्भार्थ इनका तिलक मुद्रा और केवल ठगने के अर्थ इनकी पूजा कभी भक्ति से मूर्ति को दण्डवत न किया होगा पर मन्दिर में जो स्त्रियां आई उनको सर्वदा तकते रहे।[2] विषस्य विषमौषधम् नाटक में भारतेन्दु ने देश में व्याप्त फूट और वैमनस्य को विदेशी पराधीनता के बन्धन में जकड़े जाने का प्रमुख कारण माना है।[3] भारतेन्दु द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलने के कारण प्रतापनारायण मिश्र ने भारतदुर्दशा नाटक लिखा था जिसमें देशदशा का यथार्थ चित्र मिलता है।

भारतेन्दु युग समाज सुधार तथा धार्मिक आन्दोलन का काल था। स्वयं भारतेन्दु जी ने समाज में आमूल परिवर्तन कर देश की दशा को सुधारना चाहा था। इसी कारण भारतदुर्दशा वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति अंधेर नगरी प्रेमजोगिनी आदि नाटकों में सामाजिक कुरीतियों पर विचार किया है। भारतीयों की कूपमण्डूकता दूर करने के लिए वे समुद्र यात्रा के पक्ष में थे नारी शिक्षा को आवश्यक समझते थे। उनके सरल वक्तव्यता और भारतवर्ष में स्वमत गर्भन्यन विचार शासित हैं। भारतदुर्दशा नाटक में मद्य निषेध पर भी संकेत किया है। पूर्ण प्रकाश व चन्द्रप्रभा उपन्यास भारतेन्दुकृत माना जाता है जिसमें लेखक ने बहुविवाह और अनमेल विवाह को असामाजिक और अकल्याणकारी परम्परा को हिन्दू समाज और देश के लिए अभि

---
१ भारतेन्दु ग्रन्थावली पहला भाग पृ ४६६ -
२ वही पृ० ६
३ वही पृ० १६३

शाप माना है तथा उस पर निष्ठुर व्यंग्य किया है।[1] इस दिशा म भारतेन्दु से अधिक उग्रता बालकृष्ण भट्ट म मिलती है। भट्ट जी राष्ट्र की आधारशिला को सुदृढ़ बनाने के लिये विधवाविवाह के समर्थक थ तथा छुआछूत को मिटाकर देश म नवजीवन का सचार करना चाहत थ। व उस समाज क प्रति विद्रोही हो उठे थे जहा नवयुवको का दम घुटता है और पुरानी पीढी अमरबेल की तरह नई पौध का जीवन शोषण कर लेती है।[2] यद्यपि भारतेन्दुमण्डल द्वारा हिन्दी उपन्यासो का अधिक विकास न हो सका लेकिन किशोरीलाल गोस्वामी के कुसुम कुमारी उपन्यास मे हिन्दू समाज की कुरीतियो का यथार्थ चित्र मिलता है। १८८८ ई० म देवीप्रसाद शर्मा तथा राधा चरण गोस्वामी ने मिलकर विधवाविपत्ति नामक उपन्यास निकाला था जिसम विधवा की दयनीय अवस्था का वर्णन मिलता है।

सामाजिक एव धार्मिक पतन के साथ देश सास्कृतिक हीनता को भी प्राप्त हो रहा था। देशवासी अपनी भाषा तथा आचार विचार का परित्याग कर अग्र जी वेश भूषा अपना रहे थ। प्रेमघन न इसी की ओर सकेत किया है —

अगरेजी पढ़ि राजनीति यूरप आजादी।
सीखि हिन्द म बसि निरख्यो अपनी बरबादी॥
करि भोजन मैं कमी किते अगरेजी बानो।
बनवत प नहि बनत कसहू ढग विरानो॥[3]

अगरेजी शिक्षा देश के लिए अहितकर थी तथा देश की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिये आवश्यक था कि शिल्पकला की शिक्षा भी दी जाती। इस सम्बन्ध में प्रेमघन जी न लिखा था—

विद्या उपकारी जितो ताहि पढ़ै कोउ नाहिं।
कथा कहानी सिखन हित इसकूलन मे जाहिं॥
कला कुशलता शिल्प की क्रिया न सीखन जांय।
कर अनत व्यापार नहिं निज घर बठै खाय॥[4]

भारतेन्दु जी ने भी अपनी भाषा की उन्नति को ही सब उन्नति का मूल माना था— निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।[5] प्रतापनारायण मिश्र ने भी हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल' का राग छेड़ा था। श्रीधर पाठक भी हिन्दी प्रमी थ। अग्रेजी पढ लिखे बाबुओ स पाठक जी

१　डा० राजेन्द्र शर्मा हिन्दी गद्य के निर्माता पडित बालकृष्ण भट्ट पृ० ४१
२　वही पृ० २५४
३　प्रेमघन सवस्व पृ० ५७ प्रथम भाग
४　प्रेमघन सवस्व पृ० १५६
५　भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ७३१

की अरुचि थी क्योंकि अंग्रेज भक्त होकर वे हिंदी की उपेक्षा करते थे—

अंग्रेजी पढ़े बाबू को हिंदी से क्या गरज।
इंगलिश की बराबर तो किसी में मजा नहीं॥[1]

देशवासियों का मानसिक पतन इतना अधिक हो चुका था कि विदेशी सरकार से 'राजा' 'सितारे हिन्द' रायबहादुर आदि आनरेबुल खिताब अथवा उपाधियाँ पाने के लिये लालायित रहते थे।[2] स्टार आफ इण्डिया पाने के लिए अंगरेजी सरकार के चित्तानुसार आचरण करते थे।[3]

भारतेन्दु युग राष्ट्रीय भावना के प्रादुर्भाव का युग था अतः विदेशी शासकों के प्रति विरोध की मात्रा अधिक व्यक्त नहीं की गई। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनमें राष्ट्रीय चेतना का उन्मेष नहीं हुआ था। तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओं की भांति वे भी विदेशी शासकों के अभिशाप से पूर्णतया अनभिज्ञ थे। अंगरेजी साम्राज्य मुगल शासन के अस्तव्यस्त होने के पश्चात् आया था तथा महारानी विक्टोरिया ने देशहित की घोषणा की थी इस कारण प्रारम्भ में वह सुखदायी प्रतीत हुआ था। हिन्दू जनता के साथ ही हिंदी साहित्यकारों को भी उसमें विश्वास था—

जैसे आतप तपित को छाया सुखद सुहात।
जवन राज के अंत तुव आगम तिमि दरसात॥
मसजिद लखि बिसु नाथ ढिग परे हिए जो घाव।
ता कहं मरहम सरिस यह तुव दरसन नर राय॥[4]

लेकिन साथ ही विदेशी सत्ता ने भारत की रीढ़ भी तोड़ दी थी। केवल शारीरिक दृष्टि से ही नहीं मानसिक एवं सांस्कृतिक रूप से भी वह देशवासियों की पराधीनता की बेड़ी में जकड़ने के लिए क्रियाशील था। भारतेन्दु जी ने नृपगण नवाब अमीरों द्वारा भारतीय संस्कृति के त्याग पर कटु व्यंग किया है—

कहाँ सब राजा कुंवर और अमीर नवाब।
आज राज दरबार में हाजिर होहु सिताब॥
सिरन झुकाइ सलाम करि मुजरा करहु जुहारि।
उदितहु भूतन त्यागि कै स्वच्छ बूट पग धारि॥
जानु सु पानि नवाइ कै पद पै धरि उसनीस।
घूमि घूमि दर अमय प्रब कर जुग नावहु सीस॥

---

१ हिन्दी गद्य के निर्माता पंडित बालकृष्ण भट्ट पृ० २०
२ प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग पृ० १७७
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली प्रथम भाग पृ० ८६
४ भारतेन्दु ग्रन्थावली द्वितीय भाग पृ० ६९९

परम मोक्ष फल राज-पद-परसन जीवन माँहि।
बटन-देवता राज सुत पद परसहु चित माँहि॥[1]

होलकर सिंधिया भूपाल की बेगम काशीपति राजा परिमाल मेवाड़ के मानी नृप, कोल्हापुर ईजानगर जोधपुर जयपुर, त्रावणकोर कछार भरतपुर धौलपुर के शासकों और दक्षिण के निजाम सभी को सम्बोधित कर भारतेन्दु ने व्यंग्यात्मक शैली म कहा था—

राजसिंह छूटे सबै करि निज देस उजार।
सेवन हित नप बर कुअर धाये बाँधि कतार॥
तजि अफगानिस्तान को धाये पुष्ट पठान।
हिमगिर को द पीठ किए काश्मीरेश पयान॥
नाभा पटियाला अमृतसर जम्बू अस्थान।
कच्छ सिंधु गुजरात मेवाड़रु राजपुतान॥
कोल्हापुर ईजानगर काशी अरु इंदौर।
धाए नृप एक साथ सब करि सूनो निज ठौर॥[2]

करि निज देस उजार' हिमगिरि को दे पीठ करि सूनो निज ठौर आदि शब्दो से यह स्पष्ट है कि कवि को देशी राजाओ द्वारा विदेशी सरकार की सेवा प्रिय नही थी। इस कविता म राजभक्ति की अपेक्षा पराधीनता के कारण उदभूत पीडा का स्वर ही प्रधान है।

विदेशी शासन के प्रति उग्र विरोध न होने पर भी शासको की नीति असह्य हो गई थी। देश का आर्थिक शोषण सर्वाधिक कष्टकर था जसा कि स्पष्ट किया जा चुका है राष्ट्रीय नेताओ ने इस ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया था। भारतेन्दु जी ने भी इस सम्बन्ध म कहा कि अगरेज राज सुख साज सजे सब भारी। पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।[3] भारतेन्दु की अपेक्षा प्रेमघन' ने अधिक तीव्र शब्दो म स्पष्टतया कह दिया था कि मुसलमानी राज्य की अपेक्षा अगरेजी राज्य अधिक दुखद है।[4] उन्होंने देशवासियों के पतन का कारण विदेशी दासता म खोजा था।[5] लार्ड रिपन के समय म कई सुधार हुए थ अत वे अधिक लोकप्रिय हो गये थ किन्तु उनके पश्चात् लार्ड डफरिन की टक्स प्रिय नीति ने विदेशी शासन को अप्रिय बना दिया

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ७०३
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ० ७०४
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली पहला भाग पृ ४७०
४ प्रेमघन सवस्व पहला भाग। पृ १६२
५ वही पृ० १५६

था।[1] बढ़े हुए कर के प्रति जो असन्तोष तथा क्षोभ की भावना जनता म व्याप्त थी उसे प्राय सभी साहित्यिको की रचनाग्रो म अभिव्यक्ति मिला है—

जब से लागल इ टिकस हाय उड़ा होस मेरा।
रौब के चाही हसी ठो ठी ठठाना कैसा॥[2]

प्रेमघन' शासको की स्वार्थपूर्ण नीति का उद्घाटन करत हुए लिखते हैं —

लूटि विलायत भारत खाय। माल ढाल बहु बिधि फलाय।
ताको मासूलो छूटि जाय। जामैं लाग लाभ दिखाय॥
देसी माल म इहां बिचाय। घाटा भारत के सिर जाय।
रोम्रो सब मिलि हाय हाय। हय हय टिक्कस हाय हाय॥[3]

देशी वस्तुग्रो पर कर बढ़ जाने से व्यापारियो को लाभ के स्थान पर मूलधन की भी प्राप्ति नहीं हो पाती थी।[4] देश का कला कौशल समाप्त प्राय हो गया था। भारतेन्दु जी ने भी विदेशी वस्तुग्रो के उपयोग के सम्बन्ध म देश की विवशता लक्षित कर ईश्वर का स्मरण किया था—

जावत विदेश की वस्तु ल ता बिनु कछु नहिं कर सकत।
जागो जागो अब सांवर सब कोउ रुख तुमरो तकत॥[5]

भारत की आर्थिक विपन्नता का कारण यह भी था कि विदेशी सरकार अपने सभी युद्धों का व्यय भारत म टक्स बढ़ा कर पूरा करती थी। सन् १८८६ म 'अपर बर्मा' क राजा तावो स युद्ध कर अग्रेजो न उन्हें पेन्शन देकर भारत भेज दिया था। उसके सम्पूर्ण व्यय की पूर्ति भारतवासियो पर टक्स बढ़ा कर की गई थी। इसी प्रकार जब रूस बढ़ा चला आ रहा था उस समय भी टक्स बढाया गया था। प्रेमघन' न अपनी रचना द्वारा इस ओर देशवासियो का ध्यान आकृष्ट किया था। अन्त म महारानी के हृदय म ममने के समान चिल्लाती प्रजा क लिए दया उत्पन्न करने की ईश्वर स प्रार्थना की थी।[6] भारतीय जीवन पर कर की अभिवृद्धि स नौकरशाही का स्वार्थ साधन हो रहा था। घूस की अनिष्टकारी प्रथा बढ़ती जा रही थी—

रोग्रो! अब मुह बाय बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय॥
रोज कचहरी धाय धाय। अमलन क ढिग जाय जाय॥
रोग्रा! सब मुह बाय-बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय॥
रोकड़ जाकड़ स्याय स्याय। सेस्ता वही मिलाय आय॥

१ प्रेमघन सर्वस्व पहला भाग पृ० १८५
२ वही पृ० १८३
३ वही पृ० १८५
४ वही पृ० १८४
५ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६८४
६ प्रेमघन सर्वस्व पृ० १८६

धुरकी उत्तर पाय पाय। खिसियाने घर प्राय प्राय ॥
रोम्रो ! सब मुँह बाय बाय। हय हय टिक्कस हाय हाय ॥
प्रामला सब हरखाय हाय। दूना टिकस बताय हाय ॥
स्यान सरिस मुँह बाय बाय। घूस भली विधि खाय हाय ॥
पीछे धता बताय हाय। टिक्कस ले धरि घाय घाय ॥[1]

प्रेमघन में कचहरी दीवानी में भी न्यायालयों में फैले व्यभिचार का उल्लेख मिलता है।[2]

भारतेन्दु के भारत दुर्दशा वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति प्रताप नारायण मिश्र के भारत दुर्दशा आदि नाटकों में भी विदेशी राजत्व के कारण दुःखी प्रजा का सच्चा चित्र मिलता है। भारतेन्दु के भारत दुर्दशा नाटक में भारत दुर्दैव प्रवेश कर कहता है —

कौड़ी कौड़ी को करूँ मैं सबको मुहताज।
भूखे प्रान निकालूँ इनका तो मैं सच्चा राज ॥
काल भी लाऊँ महँगी लाऊँ और बुलाऊँ रोग।
पानी उलटा कर बरसाऊँ धाऊँ जग में सोग ॥
फूट बैर और कलह बुलाऊँ ल्याऊँ सुस्ती जोर।
घर घर में आलस फैलाऊँ धाऊँ दुख घनघोर ॥
काफिर काला नीच पुकारूँ, तोड़ूँ पैर और हाथ।
दूँ इनको सतोष खुशामद, कायरता भी साथ ॥
मरी बुलाऊँ देस उजाड़ूँ महँगा करके अन्न।
सबके ऊपर टिक्कस लगाऊँ धन है मुझको धन्न ॥
मुझे तुम सहज न जानो जी मुझे इक राक्षस मानो जी ॥[3]

वस्तुतः पराधीनता भारत का दुर्भाग्य था। इसी कारण इस नाटक में विदेशी शासन का प्रतीक भारत दुर्दैव है। देश में चारित्रिक पतन तथा आर्थिक शोषण का मूल कारण यही था। भारत दुर्दैव के द्वारा ही भारतेन्दु जी ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि देश दशा में सुधार के लिए जो व्यक्ति अथवा संस्थाएँ कार्य कर रही थीं उन्हें डिसलायल्टी में पकड़ा जाता था।[4] काव्य की भाँति नाटकों में भी इस बात का संकेत मिल जाता है कि कचहरियों में घूस ली जाती थी। वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति नाटक में यमराज के दरबार में चित्रगुप्त पुरोहित से कहते हैं— अरे दुष्ट यह

१ प्रेमघन सर्वस्व पृ० १८३
२ वही पृ० १४
३ भारतेन्दु ग्रन्थावली पहला भाग पृ० ४७३
४ वही पृ० ४७४

भी क्या मृत्युलोक की कचहरी है कि तू हम घूस देता है और क्या हम लोग यहा के यायकर्त्ताओं की भाति जगल से पकड कर आए हैं कि तुम दुष्टो के व्यवहार नही जानते । जहा तू आया है और जो गति तेरी है वही घूस लेने वालो की भी होगी ।[1] भारतेन्दु काल म राजनीतिक पराधीनता के कारण उद्भूत देश दुदशा का चित्राकन करने वाले उपयास और कहानियो का प्राय अभाव है। भारत की भाग्यवादिनी जनता अग्र जी साम्राज्य द्वारा बलात लादे गये दुख और कष्ट को अपने जीवन म समट निश्चष्ट पडी थी । उसकी कोई आत्मा को देशभक्ति की भावना को जगाने के लिए साहित्य के माध्यम से देश दशा के प्रति करुणा की धारा बहाना आवश्यक था। करुण रस से अधिक उपयुक्त अय अस्त्र नही था । अत उस युग की सर्वागीण दुदशा के चित्रण म साहित्यकारा न करुण रस को मूत रूप प्रदान किया है। भारतेन्दु प्र मघन' प्रतापनारायण मिश्र आदि हिन्दी साहित्य मनीषियो न जिस निशक एव निभय भाव से देशदशा का वणन किया था वह उनकी परिस्थितिया को दृष्टि म रखते हुए अत्यन्त प्रशसनीय काय था ।

देश प्रम

भारतेन्दु युगीन साहित्य म राष्ट्रवाद का अय प्रबल पक्ष है देशप्रेम । यह राष्ट्रीयता का मूलाधार है। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी इस भावना से ओतप्रोत थे । कवियो न देश की प्राकृतिक सुषमा का सुन्दर एव कलापूण चित्रण किया । श्रीधर पाठक ने भी इसी समय काव्य द्वारा देश की नदियों पवता वृक्षो आदि का स्तवन किया । उनकी उस समय की भारतप्रशसा' तथा हिन्दवन्दना म उन्होंने लिखा —

जय जयति विध्य—कदरा हिद
जय मलय—मेरु—मदरा हिद
जय चित्रकूट—कैलास हिद ॥[2]
—हिद-वन्दना—(सवत १९४२)

नागपचमी रामलीला विजयादशमी आदि हिन्दू त्योहारा क प्रति आस्था देशभक्ति का प्रमुख अग थी ।[3] प्रेमघन न वर्षा ऋतु व्यवस्था' म मघ की गजना क साथ ढोल पर गाय जात आल्हा द्वारा देशवासिया की वीरता की लहरा से आच्छादित सागर म डुबा दना चाहा था ।[4] भारतेन्दु जी ने भी देश की ऋतुमा का मनोहारी वणन किया था ।[5]

---

१ भारतेन्दु ग्रथावली पहला भाग पृ० ६८
२ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ० ४६ सम्पादक—श्री दुलारेलाल भागव गगा पुस्तक माला का छठा पुष्प द्वितीय सस्करण
३ प्रेमघन सवस्व पृ० १४३
४ प्रेमघन सवस्व पृ० २७
५ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६६८

देश का मानवीकरण कर 'जननी' के प्रति पुनीत पद पर प्रतिष्ठित करना इस युग की देशभक्ति का चरम उत्कर्ष था। देश अब भौगोलिक सीमाओं में बद्ध जड़भूमि मात्र नहीं रह गया था। वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है कि माता भूमि नए युग की देवता है।[1] साहित्यक्षेत्र में भी सरस्वती के वरद पुत्रों की प्रतिभा तथा हृदय की पवित्र भावनाओं के स्पर्श से देश अति पुनीत एवं गौरवमय मातृपद को प्राप्त हुआ। भारतेन्दु ने भारत भिक्षा कविता में भारत का जननी के रूप में मानवीकरण किया है यद्यपि इस काव्य में राजभक्ति देशभक्ति की पुनीत भावना पर कुहरा सी छाई हुई है।[2] उनका भारत जननी नाटक भी इसी के अन्तर्गत रखा जायगा। भारतेन्दु के भारत दुर्दशा नाटक तथा प्रेमघन के भारत सौभाग्य नाटक में भारत नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रतीकवादी रूपक द्वारा भारत के दुर्बल अध्यायों का इतिहास दिखाकर अंगरेजी साम्राज्य की स्थापना में पुनः आशातीत सुव्यवस्था की कल्पना की गई है।[3] अतः भारतेन्दु युगीन देशप्रेम जड़ न होकर चेतन या निर्जीव न होकर सजीव था। देश प्रेम के स्पन्दन से वे स्वयं गतिमान् हुए थे तथा उसकी ऐसी तान छेड़ी थी कि निद्रित भारतीय जनता भी जाग कर गतिशील हो उठी। इनके जीवन के सभी पक्ष सभी भाव देशभक्ति के रंग में रंगे थे। इसी कारण उन्होंने अपनी व्यक्तिगत ईश्वर भक्ति को भी देशव्यापी रूप प्रदान किया। भक्तिभाव पूर्ण कविताओं में व्यक्तिगत मोक्ष की अपेक्षा देश के उद्धार की कामना प्रमुख दृष्टिगत होती है। आध्यात्मिकता तथा देश प्रेम का समन्वय अपूर्व है। भारतेन्दु जी की यह पंक्ति 'डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो' इसका सुन्दर उदाहरण है। अतीत गौरव की अनुभूति तथा वर्तमान स्थिति के प्रति क्षोभ देशभक्ति के विकसित रूप हैं जिन्होंने राष्ट्रीयता का पोषण किया। इस प्रकार अपने व्यक्तिगत हित को देशहित में अन्तर्भूत कर देना इस युग की प्रमुख विशेषता है। इनकी देशभक्ति मुसलमानों को अपनत्व की सीमा रेखा में न बांध सकी थी वह हिन्दू धर्म हिन्दू जनता आचार विचार तथा हिन्दू संस्कृति तक सीमित थी। इसके अतिरिक्त जैसा कि कई स्थलों पर संकेत किया जा चुका है यह देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय चेतना राजभक्ति से मुक्त नहीं थी। अतः इस युग के साहित्य में राजभक्ति किस रूप में मिलती है इसका विवेचन अति आवश्यक है।

राजभक्ति

भारतेन्दु तथा उनके सभी सहयोगी साहित्यिकों की राष्ट्रीय भावना राजभक्ति से प्लावित थी। राजभक्ति देशभक्ति का अंग बन गई थी। यह इस युग की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता थी क्योंकि महारानी विक्टोरिया की घोषणा के उपरान्त बीस वर्ष तक शान्ति पूर्ण वातावरण बना रहा। साथ ही यवनों के अत्याचार धार्मिक पक्षपात तथा

१ वासुदेवशरण अग्रवाल मातृभूमि (लेख संग्रह) पृ० १
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ ७ ६
३ डा० वीरेन्द्रकुमार शुक्ल भारतेन्दु जी का नाट्य साहित्य

देशी राजाओं के अव्यवस्थित अराजकतापूर्ण शासन की अपेक्षा अंगरेजी राज्य में जन जीवन अधिक सुरक्षित समझा जाता था। रेल, तार डाक आदि नवीन वैज्ञानिक आविष्कारों ने जीवन को अधिक सुविधाजनक बना अंगरेजी राज्य के प्रति विश्वास को पुष्टि प्रदान की थी। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ में प्रत्यक्ष रूप से अंगरेजी सरकार भारतीयों के शुभचिंतक की भावना व्यक्त करती रही। समय-समय पर शासन तथा देश के सुधार का झूठा दंभ भरती रही। अतः इस युग के साहित्य में राजवंश के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति की अंजलि समर्पित की गई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन राधाकृष्णदास आदि ने महारानी विक्टोरिया तथा उनके वंशजों का गुणगान किया है।

भारतेन्दु जी ने सर्वप्रथम प्रिंस एलबर्ट की मृत्यु पर सन् १८६१ में कविता लिखी थी। कतिपय विद्वानों के मत में यह कवि की बाल-क्रीडा मात्र थी। इसके उपरान्त संवत १८२६ में ड्यूक आफ एडिनबरा के भारत आगमन के अवसर पर 'राजकुमार सुस्वागत पत्र' लिखा गया था।[2] राजकुमार एडिनबरा ग्रहण के अवसर पर काशी भी गये थे जहां उनके स्वागतार्थ संवत् १९२७ में भारतेन्दु जी के प्रतिनिधित्व में सुमनांजली (स्वागत-पत्र) भेंट की गई थी।[3] यद्यपि सुमनांजली में भारतेन्दु जी की कोई रचना न थी, लेकिन राजकुमार सुस्वागत पत्र लिखने का यही कारण रहा होगा कि उन्हें काशी में राजकुमार के स्वागत का कार्य भार मिला था। वस्तुतः यह काव्य कवि हृदय की सच्ची भावना न था और सामंतवादी संस्कारवश राजवंश के सम्मानार्थ रची गई होगी। संवत १९२८ में प्रिंस आफ वेल्स के पीड़ित होने पर भी उन्होंने कविता लिखी थी और जगदाधार प्रभु से महाराजकुमार के शीघ्र नीरोग होने की प्रार्थना भी की थी।[4] भारतेन्दुजी ने भारत की प्रजा का यह कर्तव्य समझा था कि राजा के सुख में सुखी तथा दुख में दुखी होना चाहिये। राजा ईश्वर का अंश होता है यह विचारधारा इस राजभक्ति की रचनाओं की ओट में कार्य करती लक्षित होती है। इसी कारण भारतेन्दु जी ने संवत् १९३१ में महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र ड्यूक आफ एडिनबरा के विवाह के उपलक्ष में मुंह दिखावनी कविता लिखी थी —

> तब हम भारत की प्रजा मिलि के सहित उछाह।
> लाए ल्याना बासिका सीस एहि नर-नाह॥
> सेवा में एहि राखियो मयन वधू के साथ।
> बहु भाग निज मानिके छनक न तजिहैं साथ॥

---

१ किशोरीलाल गुप्त भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि पृ० २०७
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६२५
३ वही पृ० ६३०
४ वही पृ ६३१

× × ×

जो यासो जिय नहिं रम या कछु जिय अकुलाय ।
सोत वधू वा एहि लख तौ हम कहत उपाय ॥
जब हम सब मिलि एक मत ह्वै तोहिं करहिं प्रनाम ।
फेरि दीजिय तब हमैं द कछु और इनाम ॥[1]

अंतिम दो पंक्तियो से यह स्पष्ट है कि राजभक्ति कुछ और इनाम पाने की आशा स की गई थी । कदाचित इस इनाम स उनका संकेत स्वतन्त्रता से रहा होगा । भारत भिक्षा (१८७५ ई)[2] कविता म भारतेन्दु की राजभक्ति म देशभक्ति का स्वर अधिक प्रखर हो गया है । भारत वीरत्व विजय वल्लरी आदि कविताओ म जिनका रचना काल सन् १८७५ ई के पश्चात् है राजभक्ति के आवरण म देशभक्ति ही प्रमुख हो गई है । डा वार्ष्णेय के मतानुसार १८७७ ई के दिल्ली दरबार म विक्टोरिया को साम्राज्ञी घोषित कर अगरेजो ने भारत तथा इगलड के बीच परिवर्तित परिस्थिति का स्पष्ट परिचय द दिया था अब उनकी नीति स्पष्ट थी कि भारत केवल साम्राज्यवादी इगलड का उपनिवेश मात्र था अत राजभक्ति का उत्साह धीमा पड गया था ।[3] राजवन के अतिरिक्त केवल लार्ड रिपन का यशगान भारतेन्दु के रिपनाष्टक काव्य म मिलता है । क्योंकि इसी काल विशेष म इलबर्ट बिल का प्रस्ताव हुआ था अफगान युद्ध समाप्त हुआ था वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट तोड दिया गया था और शिक्षित भारतीयो को राज्य प्रबन्ध म लाने का प्रयत्न किया था ।

भारतेन्दु क सदृश उस युग के प्राय सभी कवियो ने महारानी विक्टोरिया युवराज अथवा उदार शासक वग के प्रति अपनी कृतज्ञता तथा भक्ति का प्रदर्शन किया था । प्रेमघन ने सवत् १६४६ म अग्रेजी राज्य की प्रशसा करते हुए लिखा था—

जाकी कृपा प्रभाय गयो भारत को दुरदिन ।
यह अगरेजी राज इत आयो प्रयास बिन ॥
स्वस्थ भये स्वच्छन्द स्वाद लहि हर्षित हम सब ।
पाय ज्ञान विद्या नव उन्नति लखन लगे अब ॥
हरे अनेकन दुख राजा बिन रहे हमारे ।
अबे अहैं या नए भए जे टरत न टारे ॥[5]

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ० ६७६
२ वही पृ० ७०१
३ डा वार्ष्णेय आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० ६६
४ भारतेन्दु ग्रन्थावली दूसरा भाग पृ ८१५
५ प्रेमघन सर्वस्व प्रथम भाग पृ० २४८

उन्होंने लाड रिपन की प्रशसा भी की थी[1] तथा अग्रेजी शासन के अन्तगत स्वच्छ दता, स्वाधीनता और लिबरल एसोसिएशन की श्रेय बताते हुए ब्रिटिश राज्य के सुशन का समस्त श्रेय लिबरल दल को दिया था।[2] अत जब भी देश के कल्याण की कामना से अभिप्रेरित हाकर कोई भी काय विदेशी शासकों द्वारा किया जाता था तो कांग्रेस तथा राष्ट्रीय नेताओ के साथ साहित्यकार भी अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते थे। इसी कारण दादाभाई नौरोजी के भारत प्रतिनिधि बन कर इगलड जाने पर कवि ने मगलाशा व्यक्त की थी। प्रेमघन को भी यह विश्वास था कि देशवासियो की यथाथ स्थिति का सच्चा ज्ञान इगलड के राजा को नहीं है।[4] स १६५७ म उन्होंने महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती पर हार्दिक हर्षादश काव्य रचा था।[4] इसम महारानी विक्टोरिया के प्रताप यश तथा विशाल देश भारत पर अनुशासन की प्रशसा के साथ भारत के पतन के कारणो का उल्लेख तथा महामारी अकाल आदि देश-दुदशा का चित्रण भी मिलता है।[6] उनकी राजभक्ति देशभक्ति म शून्य नहा थी। प्रेमघन ब्रिटिश राज्य की प्रजातत्रात्मक प्रणाली स भी प्रभावित थ। किन्तु उन्ह यह कष्टकर प्रतीत होता था कि ब्रिटेन की प्रजा अपने स्वाथ क लिए भारतीय शासन सबधी सब नीति नियम बनाती थी और वही भारत की भाग्यविधाता बनी हुई थी। उनकी सम्मति म भारत के दुर्भाग्य का यह कारण था कि राजा क प्रतिनिधि राज्य करत हैं स्वय राजा उनके विरुद्ध कुछ नहीं कर सकता।

प्रतापनारायण मिश्र ने युवराज स्वागतं[7] अ डला स्वागत तथा लाड रिपन स सबधित कतिपय राजभक्ति की रचनाए की थी। राधाकृष्ण दास न १६०० ई० म न्यायालयो म हिन्दी प्रचार पर प्रसन्न होकर मकडानेल पुष्पाजलि[8] तथा महारानी विक्टोरिया की मृत्यु पर विजयनी विलाप[9] कविताए लिखी थी। मिश्र जी तथा राधाकृष्ण दास की म कविताए राजभक्ति की अपेक्षा अग्रेजी शासको की उदारवृत्ति के प्रति कृतज्ञता की भावना को ही अधिक अभिव्यक्त करती हैं।

काव्य क समान उस युग क नाटको म भी राजभक्ति का प्रदशन किया गया

---

१ प्रेमघन सवस्व प्रथम भाग पृ० १८५
२ वही पृ० २५०
३ वही पृ० २४६
४ वही पृ० २४६
५ वही पृ० २६५
६ वही पृ० ९८३
७ वही पृ० २४८
८ राधाकृष्ण ग्रन्थावली भाग १ पृ० १
६ वही पृ० ६

था। विपस्य विपमौपधम् के अन्त म ता भारतन्दु जी ने भरतवाक्य के रूप म कहा है —

परतिय परधन देखि न मपगान चित्त चलावें।
गाय दूध बहु देहि, मेघ सुभ जल बरसावें॥
हरिपद में रति होई न दुख कोऊ कहूं व्याप।
अगरेजन को राज ईस इत थिर करि थाप॥
श्रुति पथ चल सज्जन सब सुखी होंहि तजि दुष्ट भय।
कवि बानी थिर रस सों रहै भारत को नित होइ जय॥[1]

इन पक्तियों पर एकाएक दृष्टिपात करने पर ऐसा आभास होता है कि भारतेन्दु जी कट्टर राजभक्त थ। पर केवल इन पक्तियों के आधार पर भारतेन्दु जी के सबध म ऐसा विचार असगत होगा। काव्य की भाति नाटका म भी प्रच्छन रूप में उनकी देशभक्ति राजभक्ति के आवरण म व्यक्त हुई है। सूक्ष्म दृष्टि से इसका अध्ययन करने के पश्चात इन पक्तियों की सत्यता सदिग्ध हो जाती है। नाटककार ने इसी नाटक म भारतीय नरेशों के आत्मिक नतिक पतन पर क्षोभ प्रकट किया है। देशी राजाओं की आपसी फूट वैमनस्य तथा कलह के कारण अगरेजो ने किस प्रकार बुद्धि चातुय के बल पर बिना रक्तपात के देश में अपना पर जमा लिये थ इसका व्यग्यात्मक शब्दों म उल्लेख करते हुए उन्होंने यह भी स्पष्ट कह दिया है कि ऐसे ही सारे भारतवष की प्रजा का सरकार ध्यान नही रखती। देशभक्ति हर राजभक्ति का मुलम्मा चढ़ाते हुए उन्होने लिखा है— सरकार बेचारी कुछ देखन थोड़े ही आती है। धन्य है ईश्वर सन् १५९९ म जो लोग सौदागरी करने आय थे व आज स्वतत्र राजाओ को या दूध की मक्खी बना देते हैं।[2] इसके अतिरिक्त नाटक सस्कृत नाट्य शली पर लिखा गया था जिसम राजवश की प्रतिष्ठा तथा स्थायित्व की मगल-कामना स सबधित भरतवाक्य लिखने की परम्परा थी।

भारतन्दु युग म प्राय एतिहासिक पौराणिक तथा देश दुदशा से सबधित नाटक लिख गय थ। नाटकों म देशभक्ति तथा राष्ट्रीय चेतना को वाणी मिली है। डा० दशरथ ओझा ने अपने शोधप्रबध हिन्दी नाटक उद्भव और विकास' म एतिहासिक पौराणिक सामाजिक नाटकों का विस्तृत उल्लेख करते हुए राष्ट्रीय नाटकों के सबध म लिखा है—सभी नाटकों म देश-दैन्यरूपी रोग का निदान पराधीनता और सज्जन आलस्य फूट प्रमाद और पश्चिमी सभ्यता का अधानुकरण बताया गया है।[3]

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १ पृ० ३६८
२ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १ पृ० ३६०
३ डा० दशरथ ओझा हिन्दी नाटक—उद्भव और विकास पृ २७७

इनकी देशभक्ति अथवा राष्ट्रीयता को शासकवर्ग से विरोध नहीं था। इसी कारण उनकी राजभक्ति देशदशा की सुधार भावना से आच्छादित थी। धनजय विजय नाटक का भरत वाक्य है—

राजवर्ग मद छोड़ि निपुन विद्या में होई।
आलस मूरखतादि तज भारत सब कोई॥
पंडितगन परकृति लखि के मति दोष लगाय।
छुट राजकर मेघ सम पै जल बरसाय॥[1]

नाटकों में राजभक्ति का प्रदर्शन अधिक मात्रा में नहीं मिलता। साहित्य में अभिव्यक्त राजभक्ति के विशेष कारणों का उल्लेख किया जा चुका है। अत में यह कहा जा सकता है कि कतिपय रचनाओं के पीछे देश के आतिथ्य सत्कार की भावना काम कर रही थी क्योंकि अतिथि का स्वागत तथा सत्कार देश की प्रधान विशेषता है कुछ रचनाएं महारानी के पुत्र तथा पति के स्वागत में लिखी गई थी इस क्षेत्र में साहित्यकार कैसे पिछड़ सकते थे। राजा ईश्वर का अंश है यह ध्यान कर उन्होंने राजवंश के कल्याण की कामना से अभिप्रेरित होकर भी कुछ रचनाएं की थी। इसके अतिरिक्त कांग्रेस में भी शासकों के प्रत्येक अच्छे काम के लिए कृतज्ञता प्रशंसित की जाती थी। उसे स्वर प्रदान करना साहित्यकारों ने अपना कर्तव्य समझा। साहित्यकार स्वभाव से अधिक उदार होता है। अतः इनकी राजभक्ति राष्ट्रभक्ति में बाधक नहीं है।

राष्ट्र निर्माणात्मक कार्यों का साहित्य में उल्लेख

राष्ट्रीय निर्माण सम्बन्धी जो काम किया जा रहा था उसका इस युग के साहित्यकारों को विशेष हर्ष होता था। यद्यपि १८८५ ई० के पूर्व अनेक धार्मिक, सामाजिक संस्थायें राष्ट्र निर्माण में सहायक थी किन्तु सर्वप्रथम कांग्रेस की स्थापना में एक महान राष्ट्रीय संस्था का जन्म हुआ था। राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास में कांग्रेस की स्थापना उद्देश्य तथा मांगों का विस्तृत विवेचन करते हुए यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इसके प्रथम अधिवेशन में ही साम्राज्यवाद की स्वार्थपूर्ण नीति का विरोध हुआ था तथा राष्ट्रीय एकता के विकास का प्रयास किया गया था। हिन्दी साहित्य में प्रतापनारायण मिश्र ने कांग्रेस अधिवेशन को महापर्व कहा तथा उसके सम्मान में काव्य रचा।[2] दुखी भारत देश के लिए इस प्रकार की राष्ट्रीय संस्था की स्थापना अति उत्तम काम था। उन्होंने लिखा था —

जुटिहैं सोरपराज में कांगरेस के लोग।
महापर्व सुभ जोग यह मिलिहि न बारहि बार।

---

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग १ पृ ११७

२ प्रतापलहरी पृ० ३५

सात धावहु वेगि सब भारत सुत सम्वार ॥[1]

इसी प्रकार दादाभाई नौरोजी के इगलड की पार्लियामेंट म निर्वाचित होने पर प्रेमघन को प्रति प्रसन्नता हुई थी। उन्होंने यह 'मगलाशा व्यक्त की थी कि उनके द्वारा लोकसभा म यहा की दुदशा का वणन होने से देश की दशा सुधरगी।[2] भारत को निज प्रतिनिधि भेजने का जो सम्मान ब्रिटिश लिबरल दल ने दिया था। उसकी प्रशसा के साथ भारतवासियों को दादाभाई नौरोजी पर अभिमान हुआ था। प्रेमघन ने उन्ह सच्चे अर्थों म भारत का सपूत कहा था।

विजय तुमारी अहै विजय जातीय सभा की।
सिगरे भारत की सासों गौरव अति मा की॥[3]

आगे चलकर काग्रेस ने जो मागें ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखी थी उनका पूर्वाभास प्रेमघन के काव्य म मिल जाता है —

ब्रटिश राज की प्रजा ब्रटिन औ हिन्द उभय की।
लखहु दशा पर मुगल भाग के अस्त उदय की॥
वे निज देश हेतु विरचत हैं नीति नियम सब।
बिन उनकी सम्मति कछु राजा करत भला कब॥[4]

प्रतापनारायण मिश्र की राष्ट्रीय भावना राजनैतिक जीवन से अधिक सबधित थी। इल्बर्ट बिल आन्दोलन के सबध म उन्होने एग्लो इडियन के मुख से कहलवाया था कि इस बिल ने अनय किया है और छाती का जलाने वाली सौत के समान है। उन्होंने प्राय व्यग्यात्मक शैली म अपने विचार अभिव्यक्त किये हैं इसी कारण सीधे शब्दों म इल्बर्ट बिल का अनुमोदन नहा किया है।

राष्ट्रीय भावना शन शन धार्मिक तथा सामाजिक सुधार कार्यों के माध्यम से मूत रूप पाने लगी थी। भारतेन्दु युग के अन्तिम चरण म उसका स्वरूप प्रत्यक्ष होने लगा था। साम्प्रदायिक भेदभाव इस भावना म बाधक था। शासकों की चाटुकारिता को बुरी दृष्टि से देखा जाने लगा था। अत बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने सर सयद की साम्प्रदायिक भावना तथा नामकों की चाटुकारिता की प्रतिक्रियास्वरूप जातीय राष्ट्रीय भावना की रचना की थी।[5]

भारतेन्दु युगीन साहित्य म राष्ट्रवाद के सभी प्रमुख तत्व अपने प्रारंभिक रूप में मिल जाते हैं जसे अतीत गौरव गान वतमान दुर्दशा की अनुभूति राष्ट्र निर्माणात्मक

१ भारतेन्दु ग्रन्थावली पृ ३७ ३८
२ प्रेमघन सवस्व पृ २४६
३ वही पृ० २५६
४ प्रताप लहरी पृ० १६६
५ गुप्त निबधावली पृ० ६२१

कार्यों का उल्लेख आदि। अपने युग की राष्ट्रीय चेतना की पूर्ण अभिव्यक्ति साहित्य ने की है। राष्ट्रीय नेताओं के विचारों को साहित्य में मुखरित कर तत्कालीन लेखकों ने अपने दायित्व का पूर्णतया निर्वाह किया है। इस प्रकार साहित्य तथा देशदशा का अनन्य सबध स्थापित हुआ।

सन् १९०० १९२० ई तक के साहित्य में राष्ट्रीय भावना

१९०० ई० के बाद उत्तरोत्तर राष्ट्रीय भावना विकसित होती गई और राष्ट्रीय उद्गारों को विशेष रूप में अभिव्यक्त करने का साहस आ गया। अब अग्रेजी साम्राज्यवाद के प्रति किसी प्रकार की श्रद्धा अथवा भक्ति नही रह गई थी। हिन्दी साहित्य ने भी अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा को विशुद्ध रूप में प्रतिबिम्बित किया। राष्ट्रवाद के विभिन्न अगो का पुष्टि काव्य नाटक एव कथा साहित्य द्वारा हुई। जैसा कि राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास एव स्वरूप (१९०५ १९१९ ई०) में स्पष्ट किया जा चुका है कि राष्ट्रवादी विचारधारा प्रबल रूप में सम्पूर्ण देश में छा गई थी प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता की धाक भारतीय मस्तिष्क में बैठाई जा चुकी थी और साम्राज्यवादियो की निरकुशता से मुक्ति पाने के लिए अतीत-गौरव एक सुदृढ़ रक्षा-कवच के समान था। अत हिन्दीसाहित्य में भी भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक नैतिक भौतिक उत्कर्ष के सुन्दर प्रभावोत्पादक पुराण तथा इतिहास सम्मत विषय चुने गये। अतीत-गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति में तीव्रता आई। भौगोलिक एकता एव मातृभूमि स्तवन पर विशेष बल दिया गया। वर्तमान के अभावो—राजनीतिक अभिशाप सामाजिक कुरीतियो आर्थिक शोषण सांस्कृतिक हीनता का चित्रण किया गया। राष्ट्रवाद के भावात्मक पक्ष स्वदेशी आन्दोलन तिलक की उग्र राष्ट्रक्रान्ति, होमरूल आन्दोलन अहिंसात्मक सत्याग्रह बलिदान की भावना की साहित्य में अभिव्यक्ति की गई। भारत के भविष्य के सुन्दर स्वप्न सजोये गये।

अतीत गौरव गान

अतीत-गौरव जन-जीवन में आत्म विश्वास एव स्वाभिमान की भावना भरने में अधिक सहायक होता है। इसी कारण स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द तथा राष्ट्रीय नेताओ ने भारतीय जीवन-दर्शन एव आध्यात्मिक विचारधारा का आधार ग्रहण किया था। लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्व भारतीय सांस्कृतिक आत्मा एव उसकी पुरातन रीति थी। इनके अध्ययन के निमित्त इतिहास सम्बन्धी भारतीय जीवन-दर्शन के महत्वपूर्ण तथ्यो का अनुसधान आरम्भ हो गया था।

हिन्दी-साहित्य में भी भारतीय सांस्कृतिक आत्मा अर्थात् भारत के विगत आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के चित्र मिलते हैं।

हिन्दी कविता में अतीत गौरव गान

भारत के विगत-गौरव का हिन्दी कविता म वणनात्मक एव इतिवृत्तात्मक रूप मे चित्रण मिलता है। इस युग के काव्य की विशेषता यह है कि पौराणिक प्रागतिहासिक एव ऐतिहासिक आख्यान लेकर कथा काव्य अधिक सख्या मे लिखे गए जसे—मथिलीशरण गुप्त का रग म भग (१६ ६) जयद्रथ-वध (१६१) अयोध्यासिह उपाध्याय का प्रिय प्रवास सियारामशरण गुप्त का मौय विजय (१६१४) जयशकरप्रसाद का महाराणा का महत्व लोचनप्रसाद पाण्डेय का मेवाड-गाथा आदि। मथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीय काव्य-पुस्तक भारत भारती' की रचना भी इसी काल म की जिसम वतमान अधोगति का अतीत गौरव गान से उत्कष की प्रेरणा मिली। अनेक स्फुट रचनाए भी भारत के गत गौरव से सबधित मिलती हैं। इस युग के कवियो ने भारत की पुरातन आध्यात्मिकता दाशनिकता नतिक मान्यता पर विशेष बल दिया जिसने पूवजो के भौतिक उत्कष को नियमित कर रखा था।

आध्यात्मिक उत्कष

भारत के आध्यात्मिक उत्कष के उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत कर दशवासियो को उनकी आध्यात्मिक उच्चता का सदेश दने के लिए राम एव कृष्ण के चरित्र पर प्रकाश डाला गया। रामचरित्र की विशेषताआ के उद्घाटन के लिए माखनलाल चतुर्वेदी ने सन् १६ ६ और सन् १६१६ म दो रामनवमी कविताआ की सजना की। रामनवमी क पुण्य पव पर पुन रामजन्म का आह्वान करता हुआ कवि आयधम के विस्तार की आकाक्षा रखता है। १६०६ म रचित रामनवमी कविता मे चतुर्वेदी जी ने यह आशा व्यक्त की है कि राम के आगमन स मघनाद सम शत्रु दब जायगे और भारत भूमि पुन पवित्र हो जायगी।[1] इस कविता म मर्यादा पुरुषोत्तम राम को आध्यात्मिक वीर-पुरुष के रूप म दृष्टिगत किया गया है। नाथूराम शकर शर्मा ने पवित्र रामचरित पर काव्य रच दशवासियो स उसे उर म धारण करने का आग्रह किया है।[2] रामलीला कविता म राम की लीला गाई है।[3] कृष्णचरित्र की गौरव गरिमा का गायन अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध के प्रिय प्रवास महाकाव्य म मिलता है। इस ग्रथ म हरिऔध जी ने कृष्ण को एक आदश चरित्र के रूप म प्रस्तुत किया है। यशोदा मातृत्व रस म पगे हुए शब्दो द्वारा कृष्ण के चरित्र

---

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता प्रथम सस्करण स० २००८ पकज प्रकाशन खडवा
२ नाथूरामशकर शर्मा शकर सवस्व पृ ६६
३ नाथूरामशकर शर्मा शकर सवस्व पृ० २७४

की दिव्य विशेषताओं—शील सौजन्य परदुःखकातरता मृदुभाषिता आदि का उल्लेख करती है।[१]

भारत भारती' मैथिलीशरण गुप्त की प्रसिद्ध राष्ट्रीय कृति है। प्रो० सुधीन्द्र ने इस ग्रंथ के संबंध में लिखा है- भारत भारती' ने अतीत-गान का एक गौरव गर्वित वातावरण बनाया और उसकी प्रतिध्वनि कई वर्षों तक कवियों के कण्ठों से स्फुट कविताओं के रूप में होती रही।[२] इस काव्य-पुस्तक को कवि ने तीन खण्डों में विभाजित किया है अतीत वर्तमान एवं भविष्य। अतीत खंड में पूर्वजों का कीर्ति गान मिलता है। कवि ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हमारे पूर्वज धर्मवीर गंभीर कर्मवीर तथा धुववीर थे। उनका मानसिक स्तर अति उच्च था। उन्नति के उत्तुंग शिखर पर पहुँच कर भी हमारे पूर्व-पुरुष विनीत परदुःखकातर एवं परमार्थी थे।[३]

देखो हमारा विश्व में कोई नहीं उपमान था।
नर देव थे हम और भारत देव लोक समान था॥[४]

पुरुष-वर्ग ही नहीं नारी-वृन्द भी आध्यात्मिक एवं दैवी गुणों से विभूषित था। प्रिय प्रवास की राधा इसका सुंदर निदर्शन है। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती में सावित्री, सुलभा अनुसूया जैसी सती एवं सेवामय जीवन व्यतीत करने वाली नारियों का उल्लेख किया है। नारी वर्ग में भी दिव्य रत्न था जैसे गान्धारी दमयन्ती आदि में।[५]

भारत में अध्यात्म विद्या का आलोक फैला हुआ था। सृष्टि के गूढ़ रहस्य को सर्वप्रथम भारत में समझा गया था। यौगिक विद्या में पारंगत योगी आज भी मिल जायेंगे।[६] गुप्त जी के मत में जगत् में सर्वप्रथम दार्शनिक सिद्धान्त गौतम, कपिल जैमिनि, पतंजलि व्यास और कणाद से प्राप्त हैं। जब संसार में इंजील और कुरान की रचना नहीं हुई थी वेद ग्रन्थ रचे जा चुके थे।[७]

सियारामशरण गुप्त ने मौर्य विजय नामक काव्य ग्रन्थ में इतिहास प्रसिद्ध वीर नृपवर चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा ली है। इस आख्यान-काव्य में सियाराम जी ने भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के संबंध में लिखा है कि अन्य देशों ने

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध प्रिय प्रवास पृ० ७१ ७२ पंचम बार प्रकाशक—खड्ग विलास प्रेस, बाँकीपुर, बा० रामप्रसाद सिंह द्वारा मुद्रित
२ प्रो० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० २५८
३ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १६ चौबीसवाँ संस्करण २००८ वि०
४ वही पृ० १६
५ वही पृ० १३ १४
६ वही पृ० २८
७ वही पृ० ४३

इसी देश से सदुपदेश-पीयूष का पान किया है —
है क्या कोई देश यहां से जो न जिया है ?
सदुपदेश पीयूष सभी ने यहां पिया है।
नर क्या इसको अवलोक कर कहते हैं सुर भी यही—
जय जय भारतवासी कृती जय जय जय भारत मही ॥[1]

हिन्दी साहित्य म अतीतकालीन भारत क आध्यात्मिक उत्कष के चित्र पुरातन हिन्दू धम हिन्दू दशन एव आध्यात्मिक भावना को दृष्टि मे रखकर रच गये हैं। वस्तुत भारत का आध्यात्मिक ज्ञान अति पुरातन है। अन्य अल्पसंख्यक भारतीय जनता के धम की उपेक्षा न करने पर भी हिन्दू आध्यात्मिकता क सम्मुख उन्ह अधिक प्राचीन नहीं माना गया है। इस युग क काव्य से यह भी स्पष्ट ध्वनित होता है कि अन्य धम भी भारत की ही पुरातन आध्यात्मिक विचारधारा से अनुप्राणित हैं।

नतिक उत्कष

नैतिकता आध्यात्मिक उत्कष तक पहुचने का आवश्यक साधन है। इन दोना का अन्योन्याश्रित सबध है। इस युग के काव्य मे पूवजों के नैतिक उत्कष एव आदश जीवन क वणन भी मिलत हैं। राम और कृष्ण जस ईश्वरावतारों को आधुनिक युग म यथासभव मानव चरित्र क रूप म चित्रित किया गया और उनक माध्यम से मानव के उच्च नतिक गुणों को प्रकाशित कर राष्ट्र जीवन क उत्थान के लिये मान्य ठहराया गया। आय-समाज जसी सस्थाए और स्वामी विवेकानन्द जसी महान आत्मायें देश की आध्यात्मिक नतिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील थी ही।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध' के प्रिय प्रवास म कृष्ण का आदश चरित्र मिलता है। कृष्ण चरित्र द्वारा नैतिक आदर्शों की पूर्ति की गई है। वे एक आदश मानव समाज सेवक क रूप म सत्याचरण का महान् आदश रखते हैं। व्रज म घनघोर वृष्टि होने पर परोपकार भावना से व्रज की रक्षा करने के लिए असीम साहस भर कर, ... और गौओं को ... की सुरक्षित कदराओं मे पहुचाते हैं —

... करते र
सद
कहत

1
सदन, १५

सकल लोग लगे कहने उसे
रख लिया उगली पर श्याम ने ॥[1]

राम का चरित्र तो नतिकता का प्रतिरूप है । उन्होंने अधम अन्याय अत्याचार को मिटाकर अपना राज्य स्थापित किया था। आज भी रामनवमी का पुण्य पर्व देशवासियों को नतिकता का महत्वपूर्ण सदेश देता है। इस युग मे राम-चरित्र को लेकर कई कविताए लिखी गई हैं। माखनलाल चतुर्वेदी की रामनवमी कविताएं[2] और पवित्र रामचरित्र[3] कवि शकर की।

१६०० २० ई० के काल म पुरातत्व विभाग और कनल टाड के राजस्थान के फलस्वरूप राजस्थान के अनेक वीरत्व एव नतिक उच्चादर्शों से पूण चरित्रो का उद्घाटन हुआ। साधारण हिन्दू जनता को अपने देश की वीर जाति राजपूतो पर गव होना स्वाभाविक था। कवियो ने इनकी वीरता का गान कर पराधीन हतोत्साह अवनत भारत जनता को ओज स ही नही भरा वरन् वीर पात्रो के नतिकतापूण चरित्र द्वारा जनता को सयम और नियम का पाठ भी पढ़ाया। मथिलीशरण गुप्त ने रग मे भग (१६०६) नामक ऐतिहासिक कथाकाव्य लिखा। इसकी भूमिका म महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है देश के विशेषकर राजपूताने के इतिहास म ऐसी अनन्त वीरोचित गाढ़ देशभक्ति-दशक और गम्भीर गौरवास्पद घटनाए हुई हैं जो चिरस्मरण योग्य हैं। उनको भूलना उनसे शिक्षा न लेना उनके महत्व को लेख पुस्तक और कविता द्वारा न बढ़ाना दुख की बात है—दुर्भाग्य की बात है। द्विवेदी जी क इस परिताप का साहित्यकारो पर विशेष प्रभाव पड़ा होगा और रग म भग के पश्चात् शिक्षा प्रद नतिकता एव वीरतापूण ऐतिहासिक आख्याना को लकर काव्य नाटक कथा-साहित्य लिखने की परम्परा द्रुत गति स चल पड़ी। रग म भग' काव्याख्यान मे कवि ने नारी के नतिक उच्चादश की स्थापना की है। बूदी नरेश नरसिह के भाई लालसिह की कन्या का विवाह सीसादिया वश के भूप चेतल स होता है लेकिन विदा के समय लालसिह नपाल ने वरपक्ष के राजकवि से कह दिया कि मूर्ति को दखकर जो उसने अपन महाराजा की प्रशसा की थी वह मात्र चाटुकारी थी। राजकवि ने सतापवश शीश काट डाला जिसने वर पक्ष को कन्या-पक्ष से युद्ध के लिए प्रेरित किया। वर को भी वीर गति मिली। नव विवाहिता वधू का सौभाग्य

---

१ अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध प्रिय प्रवास पृ १५६
२ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ११
३ शकर शकर सवस्व पृ० ६६ प्रथमावलि सम्पादक—श्री हरिशकर शर्मा प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड सस आगरा
४ मथिलीशरण गुप्त रग में भग भूमिका प्रारम्भ सस्करण प्रकाशक—साहित्य सदन चिरगांव, झांसी

इसी देश से सदुपदेश-पीयूष का पान किया है —

है क्या कोई देश यहां से जो न जिया है ?
सदुपदेश पीयूष सभी ने यहां पिया है।
मर क्या, इसका अवलोक कर कहते हैं सुर भी यही—
जय जय भारतवासी कृती जय जय जय भारत मही ॥[1]

हिन्दी साहित्य म अतीतकालीन भारत के आध्यात्मिक उत्कष के चित्र पुरातन हिन्दू धम हिन्दू दशन एव आध्यात्मिक भावना को दृष्टि म रखकर रच गये हैं। वस्तुत भारत का आध्यात्मिक ज्ञान अति पुरातन है। अन्य अल्पसंख्यक भारतीय जनता के धम की उपेक्षा न करने पर भी हिन्दू आध्यात्मिकता के सम्मुख उन्हें अधिक प्राचीन नहीं माना गया है। इस युग क काव्य से यह भी स्पष्ट ध्वनित होता है कि अन्य धम भी भारत की ही पुरातन आध्यात्मिक विचारधारा से अनुप्राणित हैं।

नतिक उत्कष

नतिकता आध्यात्मिक उत्कष तक पहुचने का आवश्यक साधन है। इन दोनो का अन्योयाश्रित सबध है। इस युग के काव्य म पूवजो के नैतिक उत्कष एव आदश जीवन क वणन भी मिलते हैं। राम और कृष्ण जसे ईश्वरावतारो को आधुनिक युग म यथासभव मानव-चरित्र के रूप मे चित्रित किया गया और उनक माध्यम स मानव के उच्च नतिक गुणो को प्रकाशित कर राष्ट्र जीवन क उत्थान के लिये मान्य ठहराया गया। आय-समाज जसी सस्थाए और स्वामी विवेकानन्द जसी महान आत्मायें देश की आध्यात्मिक नतिक उन्नति क लिए प्रयत्नशील थी ही।

अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के प्रिय प्रवास मे कृष्ण का आदश चरित्र मिलता है। कृष्ण चरित्र द्वारा नैतिक आदर्शों की पूर्ति की गई है। वे एक आदर्श मानव समाज सेवक के रूप में सत्याचरण का महान आदश रखते हैं। ब्रज म घनघोर वृष्टि होने पर परोपकार भावना स व्रजवासियो की रक्षा करने के लिए असीम साहस भर कर मनुष्यो और गौओं को गोवद्धन पवत की सुरक्षित कदराओ म पहुचाते हैं —

भ्रमण ही करते सबने उन्हें
सकल काल सखा सप्रसन्नता।
रजनि भी उनकी कटती रही
स विधि रक्षण मे व्रज-लोक के।
सत अपार प्रसार गिरीन्द्र में
व्रज धराधिप के प्रिय-पुत्र का

१ सियारामशरण गुप्त मौय विजय पृ० ११ २ ०५ विक्रम, प्रकाशक—साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी

सकल लोग लगे कहने उसे
रख लिया उंगली पर श्याम ने ॥[१]

राम का चरित्र तो नैतिकता का प्रतिरूप है। उन्होंने अधम अन्याय अत्याचार को मिटाकर अपना राज्य स्थापित किया था। आज भी रामनवमी का पुण्य पर्व देशवासियों को नैतिकता का महत्वपूर्ण सन्देश देता है। इस युग में राम चरित्र को लेकर कई कविताएं लिखी गई हैं। माखनलाल चतुर्वेदी की रामनवमी कविताएं[२] और पवित्र रामचरित्र[३] कवि शंकर की।

१९००-२० ई० के काल में पुरातत्व विभाग और कर्नल टाड के राजस्थान के फलस्वरूप राजस्थान के अनेक वीरत्व एवं नैतिक उच्चादर्शों से पूर्ण चरित्रों का उद्घाटन हुआ। साधारण हिन्दू जनता का अपने देश की वीर जाति राजपूतों पर गर्व होना स्वाभाविक था। कवियों ने इनकी वीरता का गान कर पराधीन हतोत्साह, अवनत भारत जनता को ओज से ही नहीं भरा वरन् वीर पात्रों के नैतिकतापूर्ण चरित्र द्वारा जनता को संयम और नियम का पाठ भी पढ़ाया। मैथिलीशरण गुप्त ने रंग में भंग (१९०९) नामक ऐतिहासिक कथाकाव्य लिखा। इसकी भूमिका में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है 'देश के विशेषकर राजपूताने के इतिहास में ऐसी अनन्त वीरोचित गाढ़ देशभक्ति-दर्शक और गम्भीर गौरवास्पद घटनाएं हुई हैं जो चिरस्मरण योग्य हैं। उनको भूलना, उनसे शिक्षा न लेना, उनके महत्व को लेख पुस्तक और कविता द्वारा न बढ़ाना दुःख की बात है—दुर्भाग्य की बात है।' द्विवेदी जी के इस परिताप का साहित्यकारों पर विशेष प्रभाव पड़ा होगा और 'रंग में भंग' के पश्चात् शिक्षा प्रद नैतिकता एवं वीरतापूर्ण ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर काव्य नाटक कथा-साहित्य लिखने की परम्परा द्रुत गति से चल पड़ी। 'रंग में भंग' काव्याख्यान में कवि ने नारी के नैतिक उच्चादर्श की स्थापना की है। बूंदी नरेश नरसिंह के भाई लालसिंह की कन्या का विवाह मीसोदिया वंश के भूप 'चित्तम' से होता है लेकिन विदा के समय लालसिंह नृपाल ने वरपक्ष के राजकवि से कह दिया कि मूर्ति को देखकर जो उसने अपने महाराजा की प्रशंसा की थी वह मात्र चाटुकारी थी। राजकवि ने सत्यापनार्थ योद्धा काट डाला जिसने वर पक्ष का कन्या-पक्ष से युद्ध के लिए प्रेरित किया। वर को भी वीर गति मिली। नव विवाहिता वधू का सौभाग्य

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध प्रिय-प्रवास पृ० १५६

२ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ११

३ शंकर शंकर सर्वस्व पृ० ६६ प्रथमावृत्ति सम्पादक—श्री हरिशंकर शर्मा प्रकाशक—गयाप्रसाद एण्ड संस आगरा

४ मैथिलीशरण गुप्त रंग में भंग भूमिका द्वारा सम्पादक प्रकाशक—साहित्य सदन चिरगांव, झांसी

लुट गया लेकिन उसने पति के साथ भस्म होकर सतीत्व का महान् आदर्श रखा। भारतीय नारी की नैतिकता का यह अनुपम उदाहरण भारत की विश्वख्याति का कारण है —

> धन्य है तू आर्य कन्ये। धन्य तेरा धर्म है,
> देवि तू ! स्वर्गीय है स्वर्गीय तेरा कर्म है।
> प्राण देना धर्म पर तेरे लिये क्या बात है
> कीर्ति भारत की तुझी से विश्व में विख्यात है।[1]

मैथिलीशरण गुप्त की भारत भारती के अतीत-खण्ड में भी पूर्वजों के नैतिक उच्चादर्शों का उल्लेख किया गया है। भारत वह देश है जहां अतीत काल में जब वह किसी भी विदेशी शासक से आक्रान्त नहीं हुआ था राजा भी भोग से मुक्त रहा करते थे। भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता एवं नैतिकता जीवन का लक्ष्य था। प्रजा को अपनी सन्तान समझते थे— होते प्रजा के अर्थ ही वे राज्यकार्यासक्त थे[2] गुप्त जी के अभिमत में भारतवासियों ने शक्ति का उपयोग अन्याय एवं अत्याचार के दमन के लिए किया था। वह कभी अशान्ति और क्रान्ति का कारण नहीं बना।[3] भारत भारती को राष्ट्रीय गीता की संज्ञा से विभूषित करना अनुचित न होगा क्योंकि इसमें भारतीयों के उद्बोधन का सफल प्रयास हुआ है।

जयशंकर प्रसाद का महाराणा का महत्व और सियारामशरण गुप्त का मौर्यविजय अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीराख्यानक काव्य-ग्रन्थ हैं। प्रसाद जी के महाराणा का महत्व की मूल भावना महाराणा प्रताप के चरित्र की नैतिक श्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराना है। महाराणा का शारीरिक बल विक्रम नैतिकता की अग्नि में तपकर स्वर्ण-सा दमक गया था। इसी कारण इस काव्य ग्रन्थ में महाराणा कृष्णसिंह द्वारा बन्दिनी नवाब की पत्नी को सादर नवाब को लौटा देते हैं। उनकी दृष्टि में अनुचित बल से काम लेना सुकर नहीं था —

> कहा समझ कर तब प्रताप ने—' क्या कहा
> अनुचित बल से लेना काम सुकर है।
> इस अबला के बल से होंगे सबल क्या ?
> रण में कटे दास तुम्हारी जो कभी
> तो बचने के लिये शत्रु के सामने
> पीठ करोगे ? नहीं कभी ऐसा नहीं

१ मैथिलीशरण गुप्त रंग में भंग पृ २४
२ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ ५३
३ वही पृ० ५३

दृढ़ प्रतिज्ञा यह हृदय तुम्हारी ढाल बन
तुम्हें बचायेगा। इस पर भी ध्यान दो।"[1]

प्रसाद जी ने महाराणा द्वारा यह भी कहलाया है कि परम सत्य को छोड़ न हटते वीर हैं।[2] यवनों से महाराणा की शत्रुता थी युद्ध था लेकिन यवनीगण से द्वेष नहीं था।

महाराणा प्रताप ने अपने आदर्श चरित्र का प्रमाण देकर नतिमत्ता के युद्ध में नवाब को पराजित कर दिया था। कर्मयोग—रत वीर को मिलती सिद्धि सदा अपने सत्कर्म से यही इस कथा का मूल मन्त्र है।

सियारामशरण गुप्त ने मौर्यविजय नामक ऐतिहासिक-काव्य में चन्द्रगुप्त मौर्य के तेज विक्रम प्रजावत्सलता न्याय आदि का उल्लेख किया है।

भारत भूपति चन्द्रगुप्त थे तेजोधारी
शासन उनका प्रजावर्ग को था सुखकारी।
थे वे सदगुणशील और बल विक्रम वाले।
मद-मर्दित सब शत्रु उन्होंने थे कर डाले॥[3]

मौर्य-कालीन देशवासियों की चारित्रिक श्रेष्ठता के सम्बन्ध में कवि ने लिखा है —

दुश्चरित्रता नहीं देखने में आती थी
नहीं किसी की वृत्ति अकार्यों पर जाती थी।
सब प्रेम सहित थे चाहते एक दूसरे को सदा
सदभाव-पदुम परिपूर्ण थे सबके मानस सर्वदा॥[4]

कवि के मतानुसार उस समय देश अत्यधिक समुन्नत था जैसा कि अन्य कोई भी देश न था सब नियमपूर्वक रहते थे कोई झूठी बात न कहता था और शासन का सब कार्य इस प्रकार होता था जैसे स्वयं धर्म ही राजकाज करता हो।[5] अद्ध एशिया खण्ड को विजित करने वाला सिल्यूकस भी भारत के चारित्रिक उत्कर्ष को देख अति प्रभावित होकर कहता है —

धीर-वीर ये भारतीय होते हैं कैसे
किसी देश के मनुज न देखे इनके जैसे।

---

१ जयशंकर प्रसाद महाराणा का महत्व पृ० ११ तृतीय संस्करण सं० २००५ प्रकाशक तथा विक्रेता भारती भण्डार, लीडर प्रेस इलाहाबाद
२ जयशंकर प्रसाद महाराणा का महत्व पृ० १२
३ सियारामशरण गुप्त मौर्य विजय पृ० ५ २००५ वि०
४ वही पृ० ६
५. वही पृ० ७

क्या ही उज्ज्वल, गेय चरित इनके होते हैं
ग्रीकों का भी गव काय इनके खोते हैं।[1]

इतिहास हमारे इस अतीतकालीन उत्कर्ष का साक्षी है। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने भी मेवाड-गाथा (१६१४ ई०) नामक ऐतिहासिक काव्य म मध्यकालीन देश के नतिक उत्कर्ष का उल्लेख इन पक्तियो म किया है —

शुचि स्वदेश वात्सल्य सत्य प्रियता सहिष्णुता।
आत्मत्याग श्रमान्वित समर दक्षता रण पटुता॥
विमल धीरता वीरता स्वाधीनता अखण्ड।
करती है जिस भूमि की उज्ज्वल भारत खण्ड,
अखिल भूलोक में॥[2]

रत्नाकर ने भी काव्य द्वारा नैतिकता धार्मिकता, सत्यता का उच्च आदश ब्रजभाषा में रखा है। हरिश्चन्द्र नामक काव्य में पौराणिक कथा म देशभक्ति की झलक स्पष्ट है। राजा हरिश्चन्द्र का सत्यनिष्ठ चरित्र आज भी आदर्श एव अनुकरणीय है।[3]

मैथिलीशरण गुप्त अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जयशकर प्रसाद सियारामशरण गुप्त लोचन प्रसाद पाण्डेय प्रभृति कविगणो को देश के प्राचीन नतिक आदर्शों म पूण विश्वास था। वे देश की आध्यात्मिक नैतिक श्रेष्ठता के आकाक्षी थे। अत इतिवृत्तात्मक कथा काव्य अथवा वणनात्मक स्फुट कविता द्वारा पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आख्यानों द्वारा देश को आध्यात्मिक नैतिक आदर्शों से परिचित कराया।

भौतिक उत्कर्ष

भारत शताब्दियो से अपनी आध्यात्मिकता दाशनिकता एव नतिकता के लिए प्रसिद्ध है। इसका यह अथ नही कि भौतिक प्रसाधनों कला-कौशल ऐश्वय वभव में वह किसी देश से पिछडा था। पूव काल म वह भौतिक दृष्टि से भी सुसम्पन्न था। शिल्पकला का इतना विकास हो चुका था कि हमारी प्राचीन मूर्तियां भी ऊँचे चढ़ने और आगे बढ़ने का सन्देश देती थी जसा कि रग म भग म मथिलीशरण जी ने एक पक्ति में इसका सकेत कर दिया है।[4] भारत भारती म मथिलीशरण गुप्त जी ने विशेष रूप से अनेक विषयो म अतीतगत देश की भौतिक समृद्धि, कला-कौशल, वाणिज्य आदि का विस्तृत वणन किया है। कवि के अभिमत में शिल्प विद्या का चरमोत्कर्ष ही

१ सियारामशरण गुप्त मौर्य विजय पृ० ६
२ लोचनप्रसाद पाण्डेय मेवाड़ गाथा पृ० ६
३ रत्नाकर नागरी प्रचारिणी सभा काशी पृ ५५
४ मथिलीशरण गुप्त रग में भंग पृ० ७

महाभारत का कारण बना था। पुरातत्त्व विभाग की ओर से खुदाई का काय प्रारम्भ होने पर अनेक चिह्न प्राचीन शिल्प-कला के मिले हैं। सिंधु सेतु दक्षिण के मन्दिर प्राचीन भारत की कला कौशल की वृद्धि के स्मारक हैं। चित्रकारी मूर्ति निर्माण, संगीत, अभिनय आदि कलाएँ अत्यधिक विकसित हो चुकी थी। पुरुष ही नहीं स्त्रियां भी चित्रकारी में निपुण थी।[1] कवि के अनुसार हमारा साहित्य अति प्राचीन है। वेद, उपनिषद् सूत्र-ग्रन्थ दर्शन गीता धर्मशास्त्र नीति ग्रन्थ ज्योतिष अंकगणित रेखा गणित, सामुद्रिक और फलित ज्योतिष भाषा और व्याकरण, वैद्यक सभी विषयों के ग्रन्थों की रचना सब प्रथम भारत में हुई थी जिसका अनुकरण एशिया के साथ पश्चिमी देशों ने भी किया था। इस उल्लेख का पुष्ट तर्कों के साथ गुप्तजी ने रखा है। वाल्मीकि, वेदव्यास और कालीदास के साहित्य-ग्रन्थों की समानता शेक्सपीयर होमर और फिरदौसी नहीं कर सकते।[2] हमारा प्राचीन इतिहास आज भी बहुत कुछ सुरक्षित है जो हमारे पूर्वजों के जीवन के गौरवमय पृष्ठों का उन्मूलन करता है। मौर्य विजय में सियारामशरण गुप्त ने मौर्यकालीन भारत की भौतिक समृद्धि का सुन्दर वर्णन किया है

उसकी सु राजधानी विदित पाटलिपुत्र मनोज्ञ था
जिसकी उपमा के अर्थ बस अमरपुरी ही योग्य थी ॥[3]

भौतिक-उत्कर्ष के वर्णन में कवियों का सर्वाधिक ध्यान भारत की प्राचीन वीर भावना की ओर आकृष्ट हुआ है। इस वर्णन में ओज की मात्रा का प्राधान्य है। यह लोकमान्य तिलक जैसे उग्र राष्ट्रवादियों का प्रभाव था जिन्होंने देशवासियों को अपनी छिपी हुई शक्ति पहचानने के लिए, देश के वीर-चरित्रों की ओर देखने को प्रेरित किया था। राम और कृष्ण जैसे ईश्वरीय पौराणिक चरित्रों के अंकन में भी इस युग के कवि ने, वीरत्व के प्रबल आग्रह से काम लिया है। माखनलाल चतुर्वेदी रामनवमी (१९०६ ई०) कविता में लिखते हैं —

पधारो एक बार फिर सुनें धनुष की वह अद्भुत टंकार
पधारो मेघनाद वध जाय हो पड़ कहाँ कठिन हुंकार ॥[4]

प्रियप्रवास के कृष्ण वीर महापुरुष हैं। मैथिलीशरण गुप्त ने रंग में भंग की कथा राजपूताने के इतिहास से लेकर और जयद्रथ-वध की कथा महाभारत से लेकर दो सुन्दर वीर रस पूर्ण करुण कथा काव्य लिखे हैं। 'रंग में भंग कथा-काव्य में वीर-हाड़ा-कुम्भ की वीरता का मार्मिक चित्र चित्रित किया गया है। प्राण और मान पर मर जाने वाला वीर राजपूत जाति हमारे देश का गौरवमय पद है। बूंदी निवासी

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ४६
२ वही पृ० ४३
३ सियारामशरण गुप्त मौर्यविजय पृ० ५
४ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० १०

कुम्भ की वीर भावना और देश भक्ति को यह सहन नहीं था कि बूंदी के किले की प्रतिकृति बनाकर उसे तोड़ा जाय —

> स्वर्ग से भी श्रेष्ठ जननी जन्म भूमि कही गई
> सेवनीया है सभी की वह महा महिमामयी।
> फिर अनादर क्या उसी का मैं खड़ा देखा करूं ?
> भीरु हूं क्या मैं अहो। जो मृत्यु से मन में डरूं।[1]

उसने नकली किले के लिए प्राणोत्सर्ग कर अपनी वीरता का ज्वलंत उदाहरण रखा था। जयद्रथ वध नामक खंड-काव्य महाभारत युग की वीर भावना को मुखरित करता है। इसमें चक्रव्यूह तोड़ने के प्रयास में वीरगति पाने वाले षोडश वर्षीय वीर अभिमन्यु तथा अर्जुन द्वारा जयद्रथ वध कर उसकी मृत्यु का प्रतिशोध लेने की कथा है। आर्य-वीर विपक्ष के वैभव को देखकर डरते नहीं थे। उनमें अतुलनीय साहस एवं पराक्रम था —

> अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं
> क्या आर्यवीर विपक्ष-वैभव देख कर डरते कहीं ?
> सुन कर गजों का घोष उसको समझ निज-अपयश कथा
> उन पर झपटता सिंह शिशु भी रोष कर जब सर्वथा।।[2]

अभिमन्यु की वीरता की प्रशंसा विपक्षियों ने भी की थी। अर्जुन की वीरता का वर्णन कवि ने आलंकारिक भाषा में किया है —

> आज्वल्य ज्वालामय अनल की फलती जो कान्ति है
> कर मार अर्जुन की छटा होती उसी की भ्रान्ति है।
> इस युद्ध में जैसा पराक्रम पार्थ का देखा गया
> इतिहास के आलोक में है सर्वथा ही वह नया।।[3]

पुरुषों की भांति नारियां भी वीर थीं। स्वयं ही प्रियजनों को युद्ध के लिए सुसज्जित कर भेजती थीं। जयद्रथ-वध में उत्तरा कहती है—

> मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवितेश लड़ें नहीं
> तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं ?
> मैं जानती हूं नाथ यह मैं मानती भी हूं तथा—
> उपकरण से क्या, शक्ति में ही सिद्धि रहती सर्वथा।

१ मैथिलीशरण गुप्त रंग में भंग पृ० २४
२ मैथिलीशरण गुप्त जयद्रथ-वध पृ० ६
३ वही पृ० ६६ ६७

क्षत्राणियों के अब भी सबसे बड़ा गौरव यही
सज्जित करें पति-पुत्र को रण के लिए जो आप ही ।।[1]

'भारत भारती' में भी कवि ने देश की विगत वीरता का वर्णन किया है। 'हमारी वीरता' कविता में कवि ने लिखा है कि भारत में चारों प्रकार के वीर थे—कर्मवीर, युद्धवीर, दानवीर, धर्मवीर। इतिहास साक्षी है कि पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी यहाँ लड़ी हैं। हमारे वीर-पुरुषों के समर सिद्धान्त भी धौदात्य पूर्ण तथा पवित्र थे, जिनमें केवल युद्ध-क्षेत्र में ही शत्रु वैरी था अन्यथा मित्र।[2]

जयशंकरप्रसाद का 'महाराणा का महत्व' और सियारामशरण गुप्त का 'मौर्य विजय' भारत का अतीतकालीन वीर भावना के परिचायक काव्य ग्रन्थ हैं। राजपूत वीरों की आकृति ही उनके वीरत्व की झलक दिखाने वाली थी। महाराणा के वीर सैनिक लू सदृश विरोधी यवनों पर आक्रमण करते थे।[3] महाराणा प्रताप तो आर्य जाति के तेज, देशभक्त जननी के सच्चे वीर पुत्र थे।[4] सियारामशरण गुप्त ने इतिहास प्रसिद्ध चन्द्रगुप्त मौर्य की कथा लेकर 'मौर्य विजय' में भारतवासियों की सिल्यूकस जैसे विश्व विजय के आकांक्षी वीर पर विजय दिखाई है। इस पुस्तक की भूमिका में मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है—"यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण हो और वह उस पर अभिमान करे तो उसका भविष्यत भी गौरवपूर्ण हो सकता है। जो जिस बात पर अभिमान करता है—अथवा अभिमान करना सीखता है—वह एक न एक दिन उसके अनुकूल कार्य करने की चेष्टा भी कर सकता है। पतित जातियों को उनके उत्थान में उनके अतीत गौरव का स्मरण बहुत बड़ा सहायक होता है।"[5] निःसन्देह 'मौर्यविजय' जैसी अतीत गौरव-स्मरण के हेतु लिखी गई कृतियाँ पराधीन एवं दलित भारतवासियों को स्वाभिमान एवं उत्साह से भरने में सहायक थी। कवि ने काव्य के अन्त में लिखा है—

जग में अब भी गूंज रहे हैं गीत हमारे
शौर्य-वीर्य गुण हुए न अब भी हम से न्यारे।
रोम, मिस्र, चीनादि काँपते रहते सारे
यूनानी तो अभी अभी हम से हैं हारे।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय,
फिर एक बार हे विश्व! तुम गाओ भारत की विजय ।।[6]

---

१ मैथिलीशरणगुप्त जयद्रथ वध पृ० ७
२ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ५२
३ जयशंकर प्रसाद महाराणा का महत्व पृ० ५
४ वही, पृ० ६
५ सियारामशरण गुप्त मौर्य विजय भूमिका
६ वही, पृ० १०

चन्द्रगुप्त मौर्य की वीरता पर मुग्ध होकर ग्रीक सम्राट ने उनसे अपनी सुता का विवाह किया था। प्रच्छन्न रूप से प्रसाद जी ने इस इतिहास प्रसिद्ध घटना द्वारा भारतीयों को प्रोत्साहित किया है कि उनके पूर्वजो ने विदेशी शक्तियो को परास्त किया था अत उनके लिए भी विदेशी शासकों से मुक्त होना असभव अथवा कठिन नही है।

भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग मे अतीत के अधिक भव्य चित्र कवियों की लेखनी द्वारा प्रस्तुत किये गये। इस युग के कवियों का मनोभाव बदल गया था इस कारण अतीत की दुर्बलताओं अथवा भूलो पर बल न देकर उज्वल पक्ष के अकन पर दृष्टि रही। भारतेन्दु युग की निराशा के स्थान पर आशा और विश्वास से भरा हुआ अतीत सम्मुख आया। यह चित्रण देशवासियो की शिराओ मे आध्यात्मिकता नैतिकता एव वीर भावना का रक्त-सचार करने म पूर्ण समर्थ था। अतीत गौरव-गान मे भारतीय जीवन-दर्शन आदर्श मूल्य और मान्यताओ की प्रतिष्ठा की गई।

काव्य म वर्णित अतीत-गौरव-वर्णन पर यह दोष लगाया जा सकता है कि यह केवल हिन्दू जाति अथवा हिन्दू सम्प्रदाय की स्वाभिमान की भावना के उद्रेक अथवा जागृति में सहायक है।[1] हिन्दी के कविगणों ने देश म बसने वाली अन्य अल्प संख्यक जातियों का विचार नहीं रखा जैसा कि इस युग की राष्ट्रीवादी विचारधारा के विकास के इतिहास म स्पष्ट किया जा चुका है मुसलमानो ने राष्ट्रीय भावना के विकास मे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान नही किया था और लार्ड कर्जन की बग भग नीति ने हिन्दू मुस्लिम-वैमनस्य का बीज वपन कर मुस्लिम-लीग जैसी साम्प्रदायिक सस्था को जन्म दिया था। इस कारण इतिहास के मुस्लिम काल और मुसलमान पात्रों के प्रति हिन्दी कवियों की संवेदना जाग्रत न हो सकी थी। मथिलीशरण गुप्त न भारत भारती मे यह स्पष्ट कह दिया है कि मुसलमान शासकों के युग म ही भारत की स्वतन्त्रता सो गई थी।[2] युग की ऐतिहासिक परिस्थिति मे कवि इतना उदार न बन सका कि देश के मुसलमानों की सांस्कृतिक चेतना को अपना सकता। वसे इस युग के काव्य म यवनों के प्रति विद्रूप का भाव नहीं मिलता। आर्य समाज स्वामी विवेकानन्द और राष्ट्रवादी नेतागण उदाहरणाथ लोकमान्य आदि की प्राचीन भारतीय सस्कृति हिन्दू धर्म वेद-ग्रन्थो पर अटूट श्रद्धा थी जिनसे अधिकांश कवि प्रभावित थे। इसके अतिरिक्त गांधी जी क आगमन के पूर्व राष्ट्रवाद का विस्तृत रूप भी नहीं आ पाया था। तत्कालीन परिस्थितियो को दृष्टिगत कर कवियों की अतीतकालीन हिन्दू सांस्कृतिक चेतना क्षम्य एवं सगत लगती है।

---

१ डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत : पृ० ११६
२ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ७४

अतीत-गौरव की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

इस युग के कवियों की अतीत-गौरव की तुलना मे वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति भी अधिक तीव्र थी। अतीत-गौरव-गान का सबसे बड़ा उद्देश्य यही होता है कि दुर्दशाग्रस्त देशो मे अपनी अवनति के प्रति क्षोभ का भाव जाग जाये। इस प्रकार अतीत-गौरव से सम्बन्धित सभी काव्य-ग्रन्थ प्रत्यक्ष रूप म इस ध्येय की पूर्ति करते हैं। मैथिलीशरण गुप्त माखनलाल चतुर्वेदी अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध जयशंकर प्रसाद सियाराम शरण गुप्त सभी ने अतीत-गौरव स भारत के तत्कालीन वर्तमान की तुलना की है।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'रग में भग' के प्रारम्भ में ही विगत गौरव का वर्णन करते समय वर्तमान परिवर्तित दशा का सकेत कर दिया है —

जिस समय से इस कथा का है यहाँ वर्णन चला
था अनल निधि गुण अवनि तब विश्रमो सबस भला।
उस समय से इस समय की कुछ दशा ही और है
पलटता रहता समय ससार में सब ठौर है ॥[1]

भारत भारती की रचना का उद्देश्य ही प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन और भविष्यत के लिए आत्माह्वान है। अतीत गौरव का स्मृति की पृष्ठ भूमि म कवि ने वर्तमान पर विचार किया है और भविष्य का स्वप्न देखा है। कवि ने लिखा है कि भारत भूमि का उत्कर्ष अति प्राचीन है आज भी इससे पुरातन देश विश्व म नही है।। विद्या कौशल के प्रथम आचार्य यही हुए यहाँ के निवासी आर्य-जन हैं लेकिन आज उनकी सन्तान अधोगति म पड़ी है।[2] कवि ने अपने देश की पुरातन सभ्यता संस्कृति राजनीति आदि की श्रेष्ठता का वर्णन कर अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी शासकों की कुटिल नीति की निन्दा भी की है।[3] कवि इस तुलनात्मक विवेचन स निष्कर्ष निकालता है कि आज हम पराधीन हैं तो क्या हुआ जो स्वाधीन जातियाँ हैं उनकी स्वाधीनता की शक्ति भारत से उधार ली हुई है। यूनान के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि उस दार्शनिकता और अलौकिक ज्ञान का प्रकाश भारत से मिला है।[4] कभी कभी कवि अपने पूर्वजो के शुद्ध बुद्ध स्वरूप एवं कर्तव्य की दृढ़ता से पूर्ण जीवन का स्मरण कर और वर्तमान जीवन के आलस्य व्यभिचार तथा व्याधियों से पूर्ण

---

१ मैथिलीशरण गुप्त रग मे भंग पृ० ५
२ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ५
३ वही पृ० १६
४ वही, पृ० २१

जीवन से तुलना कर मति खिन्न हो जाता है।[1] पतन के कारणो पर भी प्रकाश डाला गया है।[2]

माखनलाल चतुर्वेदी ने भी अतीत से वतमान की तुलना करते हुए क्षोभपूर्ण शब्दों म लिखा था —

कहाँ देश मे हैं वसिष्ठ जो तुमको ज्ञान बतायें ?
किये गये नि शस्त्र, किसे कौशिक रण-कला सिखायें ?[3]

सियारामशरण गुप्त ऐतिहासिक कथा-काव्य मौय विजय म अतीत-गौरव की स्मृति के प्रकाश म वतमान अवनति की कालिमा को नहीं भूले हैं—

धीर वीर उस समय सभी थे भारतवासी
थे अब के-स नहीं दीन जड़ दुग्ण विलासी।
आर्योचित ही काय सभी कोई करते थे
रणक्षत्रमे नहीं काल से भी डरते थे।
आलस्य अनुद्यम आदि का पता न लगता था कहीं,
था देश समुन्नत विश्व मे ऐसा कोई भी नहीं॥
सब कोई उस समय नियमपूवक रहते थे
कभी न कोई झूठी बात मुह से कहते थे।
शासन का सब काय सदा होता था ऐसे—
स्वय धम ही राज-काज करता हो जसे॥[4]

भारतेन्दु युग की निराशा की अपेक्षा द्विवेदी युगीन काव्य म अतीत-गौरव का वर्णन एव वतमान दुदशा की अतीतोत्कष से तुलना आशा से भरी हुई है। देश के पुनरुत्थान के लिए दश-जीवन म ऐसा उत्साह था कि काव्य म भी कवियो की वाणी म हाहाकार और रोदन नहीं रह गया था —

जग में अब भी गूज रहे हैं गीत हमारे
शौय वीय गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे॥[5]

भारतीय सदा अमम हैं उनका जय-जयकार सदैव विश्व म गूजता रहेगा।

हिन्दी नाटकों मे अतीत-गौरव का चित्रण

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् कुछ काल तक हिन्दी नाट्य-साहित्य की

---

१ मथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ ४७
२ वही पृ० ७३ ७४
३ माखनलाल चतुर्वेदी माता
४ सियारामशरण गुप्त मौयविजय पृ० ६ ७
५ वही, पृ० ३०

परम्परा मे उच्च कोटि के कलापूर्ण नाटकों का अभाव-सा रहा। जयशंकर प्रसाद के आगमन के पश्चात ही पुन हिन्दी नाटकों को सुदृढ़ नेतृत्व मिल सका। इस बीच पारसी थियेटस के कारण नाटकों का ेर तो अवश्य लगा लेकिन नाट्यकला के विकास एव राष्ट्रीय भावना के प्रसार की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नही है। नारायण प्रसाद 'बेताब' हरिकृष्ण जौहर तुलसीदत्त शदा राधेश्याम कथावाचक ने अनेक नाटक लिखे हैं। इस समय लिखे गए नाटकों म सबसे अधिक संख्या पौराणिक नाटकों की है। नाट्यकला के त वों से पुष्ट नाटक है—बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरु-वन दहन' (१६१२ ई०) माधव शुक्ल रचित महाभारत (१६१५) नारायण प्रसाद बेताब का महाभारत (१६१२) जयशंकरप्रसाद का सज्जन आदि। इन पौराणिक नाटकों से अतीतकालीन भारत की धार्मिक श्रेष्ठता का प्रतिपादन होता है। अतीत गौरव के अन्य पक्षों का चित्रण नहीं मिलता। सज्जन नाटक म जयशंकर प्रसाद ने युधिष्ठिर की सज्जनता एवं सत्यता पर प्रकाश डाला है।

भारत के विगत नैतिकादर्श अथवा वीर भावना का चित्रण करने वाले ऐतिहासिक नाटकों की परम्परा जयशंकर प्रसाद से प्रारम्भ हुई, उनसे पूर्व इस प्रकार के नाटकों की भी कमी थी।

हिन्दी कथा साहित्य म अतीत गौरव का वर्णन

इस युग में उपन्यास कला का भी यथेष्ट विकास न हो सकने के कारण पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आख्यानों को लेकर अतीतोत्कर्ष की झलक दिखाने वाले उपन्यासों का नितान्त अभाव था। किशोरीलाल गोस्वामी ने अवश्य इतिहास से कुछ प्रसग लेकर तारा रजिया बेगम द्रौपदी आदि उपन्यास लिखे थे लेकिन ऐतिहासिक तत्वों की न्यूनता के कारण राष्ट्रवाद की दृष्टि से भी इनका विशेष महत्व नहीं है। स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त का 'महाराष्ट्र वीर'[1] उपन्यास मिलता है जो युगीन परिस्थितियों के प्रकाश म लिखा गया दृष्टिगत होता है। इसमें शिवाजी के साथ महाराष्ट्र के एक अन्य वीर युवक कुमार की देशभक्ति और वीरता का ओजस्वी वर्णन मिलता है।

१६०० ई० के पश्चात् सरस्वती मासिक पत्रिका के सहयोग से हिन्दी कहानियों का विकास द्रुत-गति म प्रारम्भ हो गया था। वृन्दावनलाल वर्मा मैथिलीशरण गुप्त, जयशंकरप्रसाद ने भारत के गत वैभव की झाँकी दिखाने वाली सुन्दर लघु कहानियों की रचना की थी। वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखी बन्द भाई' (१६०८) कहानी म यवन द्वारा भारतीय नारी की रक्षा करवाई गई है। यह दोनों जातियों की एकता का अद्भुत प्रयास भी है। एक यवन एक कुमारी की राखी स्वीकार कर

१ स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त महाराष्ट्र वीर तृतीय संस्करण स० १६७८ वि० प्रकाशक—रामलाल वर्मा ३७१ अपर चितपुर रोड, कलकत्ता

कर्तव्य पालन का उच्चादर्श रखता है। मैथिलीशरण गुप्त के 'नकली किला' (१९०६ ई०) में वीर कुम्भा द्वारा मातृभूमि के लिए प्राणोत्सर्ग का महान् दृष्टान्त रखा गया है। इसमें राजपूतों की आन मर्यादा और वीरभावना पर प्रकाश डाला गया है।

जयशंकर प्रसाद की १९२० ई० के पूर्व की कहानियों का संकलन 'छाया' है। नाटक की भांति प्रसाद जी ने कहानियों में भी भारत के अतीत गौरव के विभिन्न पक्षों का चित्रण किया है। प्रसाद जी ने नैतिक श्रेष्ठता और परि भावना को अधिक महत्व दिया है। सिकन्दर की शपथ 'अशोक' चित्तौर का उद्धार कहानियां इसका निदर्शन हैं। सिकन्दर की शपथ कहानी में राजपूत पुरुष और नारियों की वीरता के साथ नैतिक आदर्शों का अपूर्व सम्मिश्रण मिलता है। वीर राजपूतों ने मृत्यु को अंगीकार किया लेकिन अपने भाइयों पर अत्याचार करने में ग्रीकों का साथ नहीं दिया।[1] अफगान रमणी और भारतीय नारी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए प्रसाद जी ने भारतीय नारी को नैतिकादर्श का मूर्त रूप और रणचंडी घोषित किया है। रणचण्डियाँ भी अकर्मण्य न रहीं जीवन देकर अपना धर्म रखा। इसी प्रकार अशोक कहानी में कुणाल एवं उसकी पत्नी धर्मरक्षिता के नैतिकतापूर्ण आचरण कष्ट-सहन त्याग पर प्रकाश डाला है।[2] धर्मरक्षिता' पत्नी धर्म का पूर्ण निर्वाह करती है। चित्तौर उद्धार[3] में वीर हम्मीर अपना स्वत्वाधिकार चित्तौड़ अपनी पत्नी की सहायता से ले लेते हैं। प्रसाद जी की धर्म-सहिष्णु प्रवृत्ति तथा राष्ट्रीय भावना ने मुस्लिम काल के आदर्श मुसलमान पात्रों को भी नहीं छोड़ा था। जहानारा कहानी में मुगल शाहजादी के जीवन की विशेषताओं का प्रकाशन हुआ है। तानसेन कहानी मुस्लिम काल की संगीत-कला के उत्कर्ष की द्योतक है।

उपन्यास की अपेक्षा इस युग की कहानियों ने अतीतोत्कर्ष के चित्रण में अपना विशेष सहयोग प्रदान किया था। अप्रत्यक्ष रूप से इन कहानियों ने देशवासियों को अतीत के वैभवमय आलोक में वर्तमान दुर्दशा को देखने के लिए बाध्य किया होगा। प्रसाद जी की कहानियों के अवलोकन के पश्चात् यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि कहानी साहित्य ने राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक पक्ष की अभिवृद्धि में पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष—देशभक्ति

देश के भौतिक पक्ष के प्रति अनन्य अनुराग से उद्वलित होकर भी साहित्यिक रचना हुई। हिन्दीकविता में विशेष रूप से देश की भौगोलिक एकता प्राकृतिक

१ जयशंकर प्रसाद छाया पृ० ५६
२ वही पृ० ६७
३ वही पृ० ५६
४ जयशंकर प्रसाद छाया पृ० १

सुषमा एवं अतुल निधि का निष्पक्ष एवं उन्मुक्त भाव से चित्रण किया गया।

इस क्षेत्र मे श्रीधर पाठक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत देश की वन्दना, जय-जयकार एवं प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कई कविताओं मे मिलता है। देश गीत (सं० १६७५)[1] जय जय भारत (संवत १६७४)[2] जय जय भारत (सं० १६७४)[3] नौमि भारतम् (सं० १६७०)[4] भारताष्टक[5] भारत-स्तव (सं० १६७४)[6] स्वदेश पंचक[7] आदि प्रसिद्ध रचनाएं हैं। उनकी दृष्टि में मातृभूमि भारत धरनि 'सकल जग-मुख-योनि, सुषमा-सुमति सम्पति-सरनि है, ज्ञान धन विज्ञान धन निधि प्रेम निर्झर झरनि है और त्रिजग-पावन-हृदय भावन भाव जन मन भरनि है। भारत की प्राकृतिक शोभा उसके हिमश्रृंग सुरसरि गंगा साधु समाज का जय जयकार करते हुए पाठक जी का देश प्रेम पराकाष्ठा पर पहुंच कर मातृभूमि को तीनों लोकों का स्तम्भ रूप मानता है, जो अत्यधिक सुन्दर सुख की खान, सती, स्वयम मंगल और जगत् की ज्योति, जग सृष्टि धुरसरि है।[8] पाठक जी की देशभक्ति में 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'— की भावना मिलती है। उन्होंने देश को परम पुनीत मातृ रूप में देखा है। उनका प्रेम केवल देशवासियों पर ही नहीं देश की नदियां पर्वतों पेड़ पत्तियां पर भी है। उनकी देशभक्ति अति उदार थी जिसका ब्रिटेन से कोई विरोध नहीं था— |

प्रिय भारत देश हमारा है। है हम स्वर्ग से प्यारा
त्यों ही ब्रिटेन भी सारा। है प्यारा मित्र हमारा
हम दोनों के सेवक हैं सेवाधर्म निभावेंगे
हम सेवा कर सब भांति जगत् सुख पहुंचावेंगे।[9]

पाठक जी की देशभक्ति विश्वप्रेम तथा सेवा की भावना से पूर्ण और अति उदार थी। इसी कारण उनका ब्रिटेन से विरोध नहीं था। इसे राजभक्ति नहीं कहा

१ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ० २७ सम्पादक —श्री दुलारेलाल भार्गव, गंगा पुस्तकमाला का छठा पुष्प द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण
२ श्रीधर पाठक भारतगीत पृ० ३०
३ वही पृ० ३२
४ वही पृ० ३१
५ वही पृ० ३६
६ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ० १८
७ वही पृ० ४१
८ वही पृ० २
९ वही पृ० १२३

जा सकता। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'जननी जन्मभूमि' का यशोगान किया है।[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'रंग में भंग' कथा-काव्य में जननी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी महान् कहा है।[2] उनकी देशभक्ति का सांस्कृतिक पक्ष अधिक प्रबल है। भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा के वर्णन की अपेक्षा उसकी सांस्कृतिक श्रेष्ठता के प्रतिपादन में उनकी वृत्ति अधिक रमी है। सियारामशरण गुप्त ने 'मौर्यविजय' में भारतभूमि के बाह्य सौन्दर्य का सुन्दर वर्णन किया है।[3] लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'मेवाड़ गाथा' में भारतभूमि का यशोगान करते हुए लिखा है —

शुचि स्वदेश वात्सल्य, सत्य प्रियता सहिष्णुता।
आत्मत्याग श्रमशक्ति, समरदृढ़ता रणपटुता॥
विमल धीरता वीरता स्वाधीनता अखण्ड।
करती है जिस भूमि को उज्ज्वल भारत खण्ड॥
अखिल भूलोक में॥[4]

नाथूराम शंकर की देशभक्ति में वर्तमान दुर्दशा के विषाद का रंग अधिक गहरा है। देश के भौतिक पक्ष—मातृभूमि का स्तवन भारत माता की विशेषताओं का स्वच्छन्द चित्रण नहीं मिलता।

गिरिधर शर्मा नवरत्न ने वन्देमातरम् की धुन पर अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था —

मेरा देश, देश का मैं, देश मेरा जीव प्राण
मेरा सम्मान मेरे देश की बड़ाई में।
जियूंगा स्वदेश हित, मरूंगा स्वदेश काज
देश के लिये न कभी करूंगा बुराई मैं॥[5]

माधव शुक्ल की 'स्वदेश गीतांजलि' और 'भारत गीतांजलि' स्वदेश के प्रति भक्तिभावना की अंजलियां हैं।

भारतेन्दु युग की अपेक्षा द्विवेदी युग में देशभक्ति की अधिक सुपुष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। देश के मानवीकरण के साथ दैवीकरण भी किया गया। अधिक आत्म विश्वास और अनन्य अनुराग के साथ देश की वन्दना, स्तुति, आराधना, पूजन एवं भक्ति-भाव का समर्पण किया गया। देश की उसकी भौगोलिक एकता की पीठिका में

१ जन्मभूमि भारतभूमि सरस्वती फरवरी-माघ १९ ३
२ मैथिलीशरण गुप्त रंग में भंग पृ० ३४
३ सियारामशरण गुप्त मौर्य विजय पृ० ११
४ लोचनप्रसाद पाण्डेय मेवाड़ गाथा पृ ६ (सन् १९१४)
५ गिरिधर शर्मा : पद्यपुंज पृ० ७८ सम्पादक—श्रीरामाज्ञा द्विवेदी 'समीर', प्रकाशक—वस्त्र ब्रदर्स, अजमेर—प्रथम संस्करण, सन १९३३ ई०

देखा गया।[1]

हिन्दी नाटको मे देशभक्ति की भावना

हिन्दी साहित्य के इस युग विशेष म राष्ट्रीय भावनायुक्त नाटको की रचना का प्राय अभाव रहा। पौराणिक नाटकों की रचना का प्राधान्य रहा। देश की भौगोलिक एकता वन्दना, मानवीकरण अथवा दवीकरण आदि राष्ट्रवाद के रागात्मक पक्ष का विवचन प्राय नहीं मिलता।

हिन्दी कथा साहित्य में देशभक्ति का वर्णन

इस समय तिलस्मी ऐय्यारी जासूसी उपन्यास लिखने की धूम थी। बाबू रामप्रताप गुप्त क महाराष्ट्रवीर नामक वीर रसपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास म प्रच्छन्न रूप म युगीन परिस्थितियो को प्रकाशित किया गया है। इसमे सन्यासी द्वारा वीर कुमार को देशभक्ति का उपदश दिलाया गया है जिसस भारत तथा भारतवासियो की भलाई हो।[2] वह दश भक्त, धम सेवक और जीव प्रमी है।

दश के प्रति रागात्मक अनुभूति की अभिव्यजक कहानिया भी केवल एक दो ही मिलती हैं। लक्ष्मनारायण वाजपेयी की 'जननी जन्मभूमिश्चस्वर्गादपि गरीयसी कहानी देशभक्ति से सबधित है। अधिकाश कहानियां ऐतिहासिक अथवा सामाजिक लिखी गई थी।

राजभक्ति

ईसवी सन् १६०० के पश्चात् दश की स्थिति म बहुत परिवतन हो गया था। आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान की भावना आ जाने से विदेशी शासको की अनुनय विनय की नीति म विश्वास नही रह गया था। 'स्वराज्य जन्मसिद्ध अधिकार था उसके लिए भिक्षा क्या मांगी जाये। इसी कारण हिन्दी साहित्य म भी राजभक्ति से मुक्त देशभक्ति अथवा राष्ट्रीय भावना का उद्भव और विकास प्रारम्भ हुआ था। नरम दली राष्ट्रीयता म विश्वास रखने वाल कवियो की वाणी मे ही अगरेजी राज्य के प्रति मैत्री भावना का स्वर मिलता है। श्रीधर पाठक और राय दवीप्रसाद 'पूर्ण उदारवादी साहित्यिक नेता थे।

श्रीधर पाठक की राष्ट्रीय भावना विश्वमैत्री अथवा विश्व प्रेम की भावना म पगी हुई थी। अत उन्हें ब्रिटेन से भी कोई विद्वेष नही था।[3] पूर्ण जी न स्वदेशी के साथ राजभक्ति का भी गान गाया था। उन्होने प्रत्यक्ष कहा था 'राजभक्ति भी चाहिए सच्ची सहित सुरस। हिन्दू विश्वविद्यालय क डेप्यूटेशन क स्वागत म

१ प्रो० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० २१८

२ स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त महाराष्ट्र वीर पृ० ६

३ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ० १२३

४ पूर्ण पराग पृ० १७१

उन्होंने अंगरेजी राज्य को औरंगजेबी राज्य से अच्छा कहा था —

है अंगरेजी राज नहीं अब औरंगजेबो
सुनौ कर उपदेश देश की वसुधा देवी।
अवसर है अनुकूल किये जो कुछ बनि आवे
आरत भारत पुनः पुरानी महिमा पावे।[1]

प्रथम महायुद्ध के अवसर पर राष्ट्रीय नेताओं के साथ देश ने अंग्रेजों की पूरी सहायता की थी। इस बीच विदेशी शासन का विरोध बहुत कम हो गया था। अतः इस समय परिस्थितिवश शासकों की कुछ प्रशंसा हो गई थी। भारतेन्दु युग के अतिरिक्त अन्य युगों में राजभक्ति से सम्बन्धित अधिक रचनाएं मिलती।

राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष : वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

बीसवीं शताब्दी ने जन-जीवन में एक नवीन आकृति भर दी थी। वह सरकार की राष्ट्र विरोधी नीति के प्रति पूर्णतया सचेष्ट हो गई और अब विदेशी शासन में आस्था एवं विश्वास की भावना विच्छिन्न हो गई। देश की राजनीतिक आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक दुर्दशा का पर्यवेक्षण कर उसके कारणों का अन्वेषण किया गया। हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के इस अभावात्मक पक्ष की पूर्ण एवं निर्भीक अभिव्यक्ति मिलती है।

लार्ड कर्जन की बंग विभेदक नीति ने अंग्रेजी साम्राज्यवाद की दूषित एवं स्वार्थपूर्ण नीति को खोलकर रख दिया था। राष्ट्रीय नेताओं को यह भली भांति समझ में आ गया था कि स्वराज्य प्राप्ति की आशा दुराशा मात्र है। राजनीतिक पराधीनता का असह्य अभिशाप उग्र राष्ट्रवादिता का कारण बनी। देश का युवक वर्ग विदेशी शासकों की नीति से सर्वाधिक विक्षुब्ध हुआ। हिन्दीसाहित्य में विशेष रूप से काव्य में तत्कालीन दुर्दशा के विविध रूपों का वर्णन अधिक मिलता है।

हिन्दी कविता में दुर्दशा का चित्रण

माखनलाल चतुर्वेदी ने लार्ड कर्जन की बंग भंग जैसी विदेशी सत्तावादियों की नृशंस नीति का क्षोभपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है।[2] जुलूस सभाओं तथा प्रदर्शनों द्वारा शासन व्यवस्था के प्रति विरोध प्रकट किया गया था। राष्ट्रीयता में साधकों को देश निकाले का दण्ड मिलता था अथवा चक्की पीसनी पड़ती थी। इस राजनीतिक संघर्ष में उनका धर्म भी संकट में पड़ गया था।[3] देश के वीर पुरुषों की गिनती डाकू और लुटेरों में की जाती थी। प्रथम महायुद्ध में भारत ने अपने तन-मन धन से अंग्रेजों की सहायता इस आशा से की थी कि कदाचित् उन्हें स्वराज्य का पुरस्कार मिल जायेगा।

१ पूर्ण पराग पृ० १६५
२ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ६१
३. वही पृ २३

सन् १९१७ म माटेग्यू का वक्तव्य पढ़ कर देश दुखित हो गया था क्योंकि पुरस्कार के स्थान पर कठोर प्रतिबंध ही मिले थे। माखनलाल चतुर्वेदी ने देश की राजनीतिक परिस्थितियों को काव्य द्वारा व्यक्त किया है।[1] सर सत्येन्द्र प्रसन्न द्वारा भारत को राजभक्ति का उपदेश देने पर कवि-हृदय की ग्लानि अभिव्यक्त हुई थी।[2] भारत सरकार ने सन् १९१७ म भी जब अपनी पुरानी बात दुहराई कि हमारे हाथ म भारत का भाग्य सुरक्षित है तो चतुर्वेदी जी ने व्यग्यात्मक शली म उनकी कूटनीति का उल्लेख किया था।[3]

राजनीतिक पराधीनता का भीषण परिणाम आर्थिक दुदशा म घटित हुआ था। माखनलाल चतुर्वेदी ने प्रच्छन्न रूप म रामनवमी (सन् १९०६) म पराधीनता के कारण उत्पन्न आर्थिक दुदशा से मुक्त करने के लिए राम का आह्वान किया है —

लगा वह सागर पार अशोक
शोक ! भारत लक्ष्मी जा पड़ी
देश ने छोड़े हैं निज स्वत्व
विश्व कर रहा दुखों की झड़ी।[4]

इसी प्रकार सन् १९१९ म रचित रामनवमी कविता म कवि ने लिखा है कि देश के जंगल ही नहीं नगर और ग्राम भी अस्थि के ढेर हो गए थे। राम की पुण्य कथा मे देश की पराधीनता एव अन्य अभावों का भावात्मक चित्रण माखनलालजी की विशेषता है। देश तत्कालीन आर्थिक विपन्नता का करुण वणन कर अर्थाभाव को देश के अपमान का कारण माना है।[5]

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती के वतमान खण्ड म देश के आर्थिक सकट का विशद एवं मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है। भारत क अमित अपकष की कथा कहते हुए कवि के हृदय का रोदन फूट पड़ा है कि श्रीहीन भारत में कमल क्या जल तक नही है केवल पक ही शेष है। विदेशी शासकों ने इसके वैभव का शोषण कर अत्यधिक दीन हीन अवस्था म पहुचा दिया है।[6] भारत के दारिद्रय का वणन करते हुए राष्ट्रकवि ने कहा था कि जो भारत स्वणभारत के नाम से सम्पूण विश्व म विख्यात था आज वहीं दारिद्र्य का दुर्धट नृत्य चल रहा है। दुर्भिक्ष जसी दैवी

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० २६
२ वही पृ० ४१
३ वही पृ० ८१
४ वही, पृ० ११
५ वही पृ० ४५
६ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ८६

विपत्तियों से ग्रसित जनता की अवस्था शोचनीय थी, चहु ओर से हा अन्न ! हा अन्न ! की पुकार उठती थी माना स्वय दुर्भिक्ष देह धारण कर घूम रहा था।[1] गुप्त जी न अपना यह स्पष्ट अभिमत दिया था कि दुनिया की लडाई म सौ वर्षों म जितने मरे हैं उससे चौगुने भारत में दस वर्षों मे अकाल और भूख के कारण मरे थे। भूख के कारण देश की जो दशा हो गई थी उसका यथाथ एव रोमांचकारी वणन किया था।[2] अभी भी कवि को विदेशी शासन-व्यवस्था म कुछ विश्वास था इसी कारण उन्होने दुर्भिक्ष काल की अव्यवस्था का दोष विदेशी शासको पर नही मढ़ा था।[3] अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य इसका कारण पराधीनता म ही खोजा था। सात सागर पार जिन विदेशी शासकों का मार्केट था और जो अपने को अति सभ्य समझते थ गुप्त जी न उन पर तीव्र व्यग्य कसा था।

रामनरेश त्रिपाठी ने मिलन नामक काव्यात्मक प्रम कहानी म विदेशी शासन क कारण उत्पन्न आर्थिक विपन्नता अत्याचार कुनीति आदि का मार्मिक शब्दों में वणन किया है —

किया जिन्होंने स्वणभूमि को
 कौड़ी का मुहताज।
किया पद-दलित हाय ! हमारा
 देव-समर्पित ताज॥
कण कण मे जिनकी कुनीति की।
 कथा हो चुकी व्याप्त।
हाय ! अभी तक हुआ न जिनका
 अत्याचार समाप्त।[4]

पराधीनता के कारण उत्पन्न देश-दुर्दशा म सबसे अधिक सतप्त भारतीय कृषक वग था। कृषकों की दयनीय अवस्था के कारणों का उन्मूलन करते हुए मथिली शरण गुप्त न लिखा था कि अब देश म पूर्व-सा अन्न उत्पादन नहीं रह गया था। वज्ञानिक साधनों के अभाव मे भूमि उवर हाती जा रही थी और साथ ही कर-वृद्धि के कारण उन्हें किसी प्रकार का लाभ नही रह गया था। भारत का अन्न अन्य देशों में भेजा जाता था जबकि पचासो प्रतिशत जनता आधे पेट भोजन पर निर्वाह करती थी। कभी अकाल पड़ता था कभी अति वर्षा और यदि फसल अच्छी भी हो जाती थी तो बहीखाते बीज ऋण मे रगे होने के कारण सारा अन्न महाजन के घर चला जाता था।[5] व्यापार की दशा भी बुरी होने के कारण देश पूणतया परमुखापेक्षी हो

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ८७
२ वही पृ० ८८
३ वही पृ० ९०
४ रामनरेश त्रिपाठी मिलन प ४ पांचवां सस्करण—हिन्दी मन्दिर प्रयाग
५ मथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० ९६

गया था।[1] मैथिलीशरण गुप्त ने कृषक की दीन-हीन कष्टकर कथा किसान में लिखी है। अन्नदाता किसान आँसू पीकर रहता था।[2] जमींदार और महाजन रूपी चक्की के दो पाटों में पिस कर वह कृषक से मजदूर बना फिजी भेज दिया जाता है। जमींदारी व्यवस्था में कृषक को बेगारी भी करनी पड़ती थी। कृषक का जीवन अति कष्टकर था। इसी प्रकार सनेही' जी का काव्य कृषक क्रन्दन तथा आर्त्त कृषक भी कृषक जीवन का करुण क्रन्दन है। इसमें कवि ने स्पष्ट कर दिया है कि जमींदार साहूकार, महाजन की स्वार्थ घृणित लाभवृत्ति के कारण कृषक स्वत्वविहीन हो गया था।[3] उनकी आर्थिक स्थिति अति हीन थी —

भूख भूख चिल्लाय कभी बालक रोते हैं।
टुकड़े सौ सौ हाय कलेजे के होते हैं ॥[4]

नित्य शीत, धूप सहकर भी कृषक के जीवन को जिल्लत और हैरानी थी। उसे भूस्वामी की डाँट लात और कुवाणी चुपचाप सहन करनी पड़ती थी। आर्त्त कृषक में कवि ने कहा है —

गये गुजरे संसार मे हीन हैं हम।
सुदामा से भी सौगुने दीन हैं हम॥
पड़ी भाड़ में हो जो वह मीन हैं हम।
महा घोर अज्ञान मे लीन हैं हम ॥[5]

कृषक की इस दुर्दशा का कारण था उसकी अशिक्षा एव अज्ञान जिसके कारण उसे अपनी उन्नति का मार्ग नहीं सूझता था।[6]

राजनीतिक दासता ने देश की विवेक बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया था। देशवासियों की मानसिक अवस्था भी विकृत होने लगी थी। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती' में लिखा है कि यह देश का अभिशाप था कि शरीर की लाज रखने के लिए विदेशी वस्त्रों का प्रयोग होता था और नारियों के सौभाग्य चिह्न चूड़ियाँ भी विदेशों से मँगवाकर आती थीं। विदेशी के अनुसरण स्वदेशी वेश भूषा, भाषा आदि की उपेक्षा हो रही थी।[7] माखनलाल चतुर्वेदी ने भी इस सम्बन्ध में काव्य द्वारा दुःख प्रकट किया

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १०५
२ मैथिलीशरण गुप्त किसान पृ० ८ पञ्चावलि साहित्य प्रेस चिरगाँव झाँसी
३ सनेही कृषक क्रन्दन तथा आर्त्त कृषक पृ० ६ प्रताप कार्यालय कानपुर १६१६
४ वही पृ० ७
५ वही पृ० १४
६ मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती पृ० ६६
८ वही, पृ० १०१

था कि देशवासी मानसिक ह्रास को प्राप्त होकर पश्चिमीकरण की ओर प्रवृत्त हो रहे थे।[1] पूर्ण जी ने भी भारत की अवनति देखकर स्वदेशी के प्रयोग का उपदेश दिया था।

कविवर शंकर ने भी पराधीनता के अभिशाप का विक्षोभपूर्ण वर्णन किया है।[2] उन्हें भी देश की आर्थिक दुर्दशा, राज कर्मचारियों द्वारा घूस लिया जाना और परतन्त्रता के कारण बढ़ती हुई तुच्छ भावना असह्य थी।[3] उन्होने राजनीतिक दुर्दशा की अपेक्षा सामाजिक दुर्दशा के प्रकाशन पर अधिक बल दिया था। शंकर जी ने सामाजिक दुर्दशा के प्रत्येक पक्ष पर लेखनी उठाई थी। कवि को दुःख था कि समाज में आचार विचार धर्मनिष्ठा प्रण पालन प्रेम प्रतिष्ठा विद्या-बल आदि का अभाव हो गया था।[4] देश जीवन अन्धविश्वास रूढ़ियों और पाखण्ड में जकड़ा हुआ था।[5] धर्म के नाम पर व्यभिचारी पुजारी बाल-ब्रह्मचारी बने हुए थे। विधवाओं की समाज में बुरी दशा थी। विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित न होने के कारण निराश्रय अशिक्षित विधवा नारी देश के नैतिक पतन में सहयोग दे रही थी।[6] कवि ने बाल विवाह की बुराइयों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। बूढ़ों द्वारा कुमारी श्यामा से विवाह कवि की दृष्टि में अनैतिक था। छुआछूत और पाखण्ड के कारण ईसाई धर्म के प्रसार में सहायता मिल रही थी। साम्प्रदायिक विद्वेष राष्ट्रहित में घातक था।[8] अतः शंकर ने सामाजिक अधःपतन का भण्डाफोड़ किया है। अविद्यानन्द का व्याख्यान[9] समाज पर कटु व्यंग्यात्मक भाष्य है। इसी प्रकार एरण्ड-वन विडाल-व्याघ्र[10] पंच-पुकार[11] आदि कविताएँ राजनीतिक सामाजिक आर्थिक दुर्दशा से सम्बन्धित हैं।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी सामाजिक ह्रास पर क्षोभ व्यक्त किया था। रईस ने भारत के राजा रईसों के भोग विलासमय जीवन के प्रति दुःख प्रकट

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ४४
२ नाथूराम शंकर शर्मा शंकर सर्वस्व पृ० १४७
३ वही पृ० १५२
४ वही पृ० १४७
५ वही पृ० १४८
६ वही पृ० १४६
७ वही पृ १५७
८ वही पृ० १४६
९ वही, पृ १५५
१० वही पृ० १५६
११ वही पृ० १६४

किया है। युद्ध धनिक वर्ग राष्ट्रीय हित को भूलकर स्वार्थ-साधन में संलग्न था। देशी राजाओं ने विषयाधीन होकर ही प्रधानता की बेड़ियाँ कस ली थी। कवि हृदय वेदना के भार से बोझिल हो कठोर वचन कह उठता है— होवे न ऐसा पुत्र चाहे हो कुल क्षय हे हरे।[1] अविद्या ही सब दुर्गुणों का मूल है। नारियों की दुर्दशा कवि से देखी नहीं जाती। गुप्त जी ने भारतेन्दु के सदृश देशवासियों को नारी के इस पतन पर रोने के लिए मार्मिक किया है। कवि की दृष्टि में समाज बेजोड़ विवाह अन्ध परम्परा, वर-कन्या विक्रय का अड्डा बना हुआ था। गुप्त जी ने शिक्षा और साहित्य की दुर्दशा पर भी प्रकाश डाला था। शिक्षा तो दासत्व की बेड़ियाँ कठोर करने के लिए दी जाती थी। विदेशी शासन में दी जाने वाली शिक्षा, धर्म एवं राष्ट्रीयता से च्युत कर दासत्व की ओर प्रेरित करती थी।[2] हिन्दी साहित्य में अश्लील ग्रन्थों की भरमार हो रही थी जो राष्ट्रजीवन में अविचार की नींव डाल रहे थे। कवि को दुःख था कि चन्द्रशेखर आजाद जैसे राष्ट्रीय क्रांतिकारियों की कथा से साहित्य भंडार को क्यों नहीं भरा जाता।[3]

शुकदेव बिहारी मिश्र ने भारतविनय में भारतवासियों ने आपसी विद्रोह धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियाँ फूट आदि का वर्णन किया था।[4] इन्होंने भारत की अवनत दशा का कारण भारतीयों को माना था। उदारवादी दल के प्रभाव के कारण इन्हें १९१६ ई० में भी ब्रिटिश शासकों से बहुत आशा थी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी श्रीधर पाठक गयाप्रसाद शुक्ल सनेही रामचरित उपाध्याय ने भी सामाजिक दुर्दशा विशेषकर नारियों की स्थिति पर अपनी वेदना काव्य के रूप में मुखरित की थी।[5]

भारत की दुर्दशा के विविध पक्षों के प्रति कविगण ने क्षोभ, आक्रोश, व्यंग्य, वेदना की तीव्र अनुभूति को व्यक्त किया है। कभी उसने समाज अथवा देश के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है कभी दुःख और कभी कटु व्यंग्य कसे हैं। शंकर कवि के व्यंग्य अधिक तीखे हैं।

हिंदी नाटकों में वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस समय साहित्य के अन्य अंगों की तुलना में हिन्दीनाट्यकला का समुचित विकास नहीं हुआ था अतः युगीन जीवन की राजनीतिक

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १११
२ वही पृ० ११३ १४५
३ वही पृ० ११८
४ वही, पृ० १२५
५ शुकदेव बिहारी मिश्र भारत विनय पृ० ४
६ प्रो० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० २०६, २१०

था कि देशवासी मानसिक ह्रास को प्राप्त होकर पश्चिमीकरण की ओर प्रवृत्त हो रहे थे।[१] पूर्ण जी ने भी भारत की अवनति देखकर स्वदेशी के प्रयोग का उपदेश दिया था।

कविवर शकर ने भी पराधीनता के अभिशाप का विक्षोभपूर्ण वर्णन किया है।[२] उन्हें भी देश की आर्थिक दुर्दशा, राज कर्मचारियो द्वारा ग्रस लिया जाना और परतन्त्रता के कारण बढ़ती हुई तुच्छ भावना असह्य थी।[३] उन्होने राजनीतिक-दुर्दशा की अपेक्षा सामाजिक दुर्दशा के प्रकाशन पर अधिक बल दिया था। शकर जी ने सामाजिक दुर्दशा के प्रत्येक पक्ष पर लेखनी उठाई थी। कवि को दुख था कि समाज में आचार विचार धर्मनिष्ठा प्रण पालन प्रेम प्रतिष्ठा विद्या-बल आदि का अभाव हो गया था।[४] देश जीवन अन्धविश्वास रूढ़ियों और पाखण्ड में जकड़ा हुआ था।[५] धर्म के नाम पर व्यभिचारी पुजारी बाल ब्रह्मचारी बने हुए थे। विधवाओ की समाज में बुरी दशा थी। विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित न होने के कारण निराश्रय अशिक्षित विधवा नारी देश के नैतिक पतन में सहयोग दे रही थी।[६] कवि ने बाल विवाह की बुराइयों की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। बूढ़ों द्वारा कुमारी कन्याओ से विवाह कवि की दृष्टि में अनैतिक था। छुआछूत और पाखण्ड के कारण ईसाई धर्म के प्रसार में सहायता मिल रही थी। साम्प्रदायिक विद्वेष राष्ट्रहित में घातक था।[८] अत शकर ने सामाजिक अधःपतन का भण्डाफोड़ किया है। अविद्यानन्द का व्याख्यान[९] समाज पर कटु व्यग्यात्मक भाष्य है। इसी प्रकार एरण्ड-वन विडाल-व्याघ्र[१०] पथ-पुकार[११] आदि कविताएँ राजनीतिक सामाजिक आर्थिक दुर्दशा से सम्बन्धित हैं।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी सामाजिक ह्रास पर क्षोभ व्यक्त किया था। रईस ने भारत के राजा रईसों के भोग विलासमय जीवन के प्रति दुख प्रकट

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ४४
२ नाथूराम शकर शर्मा शकर सर्वस्व पृ० १४७
३ वही पृ० १४२
४ वही पृ० १४७
५ वही पृ० १४८
६ वही पृ० १४६
७ वही पृ० १५७
८ वही, पृ० १४६
९ वही पृ १५५
१ वही पृ० १५६
११ वही, पृ० १६४

किया है। युह धनिक वग राष्ट्रीय हित को भूलकर स्वाथ-साधन मे सलग्न था। देशी राजाओं ने विषयाधीन होकर ही प्रधानता की धडिया कल ली थी। कवि हृदय वेदना के भार से बोझिल हो कठोर वचन कह उठता है— होव न ऐसे पुत्र चाहे हो कुल क्षय हे हरे।[1] अविद्या ही सब दुगुणो का मूल है। नारियों की दुदशा कवि से देखी नही जाती। गुप्त जी ने भारतेन्दु के सदृश देशवासियो को नारी के इस पतन पर रोने के लिए आमन्त्रित किया है। कवि की दृष्टि म समाज बेजोड विवाह अन्ध परम्परा वर-कन्या विक्रय का अड्डा बना हुआ था।[2] गुप्त जी ने शिक्षा और साहित्य की दुरव स्था पर भी प्रकाश डाला था। शिक्षा तो दासत्व की बेडिया कठोर करने के लिए दी जाती था। विदेशी शासन मे दी जाने वाली शिक्षा, धम एव राष्ट्रीयता से च्युत कर दासत्व की ओर प्रेरित करती थी।[3] हिन्दी साहित्य म अश्लील ग्रन्थो की भर मार हो रही थी जो राष्ट्रजीवन म अविचार की नीव डाल रहे थ। कवि को दुख था कि चन्द्रशेखर आजाद जसे राष्ट्रीय क्रान्तिकारियो की कथा से साहित्य भडार को क्यों नही भरा जाता।[4]

शुकदेव विहारी मिश्र ने भारतविनय में भारतवासियो के आपसी विद्रोह धार्मिक एव सामाजिक कुरीतियो फूट आदि का वणन किया था।[5] इन्होंने भारत की अवनत दशा का कारण भारतीयों को माना था। उदारवादी दल क प्रभाव के कारण इन्हें १६१६ ई० म भी ब्रिटिश शासको से बहुत आशा थी।

महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक गयाप्रसाद शुक्ल सनेही रामचरित उपाध्याय ने भी सामाजिक दुदशा विशषकर नारियो का स्थिति पर अपनी वेदना काव्य के रूप मे मुखरित की थी।[6]

भारत की दुदशा के विविध पक्षो के प्रति कविवग न क्षोभ, आक्रोश, व्यग्य वेदना की तीव्र अनुभूति को व्यक्त किया है। कभी उसने समाज अथवा देश के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की है कभी दुख और कभी कटु व्यग्य कस हैं। दक्षर कवि के व्यग्य अधिक तीक्ष्ण हैं।

हिन्दी नाटको म वतमान दुदशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस समय साहित्य के अन्य अगो की तुलना म हिन्दीनाट्यकला का समुचित विकास नही हुआ था अत युगीन जीवन की राजनीतिक

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १११
२ वही पृ० ११३ १४५
३ वही, पृ० ११८
४ वही पृ० १२५
५ शुकदेव विहारी मिश्र भारत विनय पृ० ४
६ प्रो० सुधीन्द्र हिन्दी कविता म युगान्तर पृ० २०६, २१०

सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पक्षों के प्रभावों को दिग्दर्शित कराने वाले नाटक प्राय नहीं मिलते।

हिन्दी कथा साहित्य में वर्तमान दुर्दशा के प्रति क्षोभ और आक्रोश

हिन्दी कथा-साहित्य में राजनीतिक दुर्दशा की अपेक्षा सामाजिक दुर्दशा के ही चित्र मिलते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी ने समाज के सजीव चित्र खींचने वाले उपन्यास लिखे थे लेकिन वासनाओं के रूप रंग और चित्ताकर्षक वर्णनों की प्रमुखता के कारण उन्हें राष्ट्रीयता उद्बोधक उपन्यास के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। लज्जा राम मेहता ने धूर्त रसिकलाल हिंदू रहस्य आदि पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित लिखे थे। इन उपन्यासों में राष्ट्र की समस्याएँ नहीं थी। इस क्षेत्र में भी सर्वप्रथम प्रेमचन्द जी ने सेवासदन उपन्यास की रचना द्वारा राष्ट्रवाद के प्रभावात्मक पक्ष से सम्बन्धित वेश्यावृत्ति दहेजप्रथा रिश्वत जैसी राष्ट्रीयता में बाधक समस्याओं को लिया।

हिन्दी कहानियों में अवश्य तत्कालीन दुर्दशाग्रस्त स्थिति के अनेक पक्षों को लिया गया था। मास्टर भगवानदास ने सन् १९०२ में 'प्लेग की चुड़ैल'[1] कहानी सामाजिक अंधविश्वास के दिग्दर्शन के हेतु लिखी थी।

जयशंकर प्रसाद ने ग्राम कहानी में देश की राजनीतिक दुर्दशा की ओर संकेत किया है। विदेशी साम्राज्यवाद में कृषक वर्ग की दशा अति दीन थी। छल से महाजन उनकी जमीन पर अधिकार कर लेते थे।[2] मदन मृणालिनी में प्रसाद जी ने भारत की विधवा नारी की दयनीय अवस्था की ओर संकेत करते हुए क्षोभ प्रकट किया है कि हासोन्मुखी समाज बगुला भक्तों को परम धार्मिक समझता था।[3] सामाजिक अंधविश्वास जैसे समुद्र यात्रा निषेध और अन्तर्जातीय विवाह न होने का उल्लेख भी उनकी इस कहानी में मिल जाता है।

चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की कहानियों में भी सामाजिक दुर्व्यवस्था का वर्णन मिल जाता है। अपनी सुखमय जीवन (१९११) नामक प्रेम-कथा में गुलेरी जी ने बालविवाह जैसी प्रथा पर आक्षेप करते हुए लिखा है—हिंदू समाज ही इतना सड़ा हुआ है कि हमारे उच्च विचार कुछ चल ही नहीं सकते। अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। हमारे सद्विचार एक तरह के पशु हैं जिनकी बलि माता पिता की जिद और हठ की वेदी पर चढ़ाई जाती है। ... भारत का उद्धार तब तक नहीं हो सकता।[4] इसी प्रकार 'बुद्धू का काँटा'[5] में भी बालविवाह की प्रथा की ओर ध्यान

१ हिन्दी कहानियों का विवेचनात्मक अध्ययन पृ० १२६
२ जयशंकर प्रसाद छाया पृ० २३
३ वही पृ० १११
४ गुलेरी जी की अमर कहानियाँ पृ० १ सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी
५ वही पृ० १७

आकृष्ट किया है। यद्यपि समाज म कुछ लोग बाल विवाह के विरोधी हो गये थे लेकिन प्राय समाज म उनकी बदनामी होती थी। विवाह म लोग मकान और जमीन गिरवी रखकर जीवन भर के लिए कगाली का कम्बल ओढ़ते थे।[1] इसी प्रकार ज्वाला दत्त शर्मा ने 'विधवा' कहानी मे भारतीय विधवा की दयनीय अवस्था की ओर सकेत किया है। शर्माजी न समाजसुधार की भावना से प्रेरित होकर अपनी विधवा को 'सेल्फ हैल्प पुस्तक' की सहायता से शिक्षित कर स्वावलम्बन की महत्ता सिद्ध की है। नारी शिक्षा द्वारा समाज की दुदशा का निराकरण हो सकता था। प्राय यह कहानियां वणनात्मक शली म लिखी गई थी।

अन्त म यह कहा जा सकता है कि देश दुदशा का सर्वाधिक वणन कविता द्वारा किया गया। तत्पश्चात् कथा साहित्य द्वारा। सामयिक समस्याओ को लेकर लिखे गए नाटकों का अभाव था।[2]

राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष राष्ट्रीयता उद्बोधक विभिन्न साधनो की हिन्दी साहित्य में अभिव्यक्ति

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों म ही देश की राष्ट्रवादी विचारधारा कांग्रेस के सभामण्डप से निकलकर जन-जीवन म प्रसारित होने लगी थी। कांग्रेस न भी अनुनय विनय की नीति का परित्याग कर आत्मतेज और आत्मावलम्बन की नीति ग्रहण कर ली थी। अब अंग्रेजो की न्याय प्रियता उदारता आदि से विश्वास उठ गया था। अब राष्ट्रीय नेताओ ने देश की दयनीय अवस्था के सुधार के लिए ठोस कदम उठाया। लाड कजन की बग भग नीति न विद्राहाग्नि म घृताहुति का काम किया था। बगाल का प्रश्न सम्पूण भारत का प्रश्न बन गया था। राष्ट्रीयता राष्ट्र शिक्षा और नवचैतन्य का काम बाबू विपिनचन्द्र पाल ने सम्पूर्ण देश म घूम घूम कर किया। राष्ट्र की आर्थिक स्थिति सुदृढ करने के लिए स्वदेशी आंदोलन छेड़ा गया। अपने युग की राष्ट्रीयता उद्बोधक काय प्रणाली की हिन्दी लेखको ने पूण अभिव्यक्ति दी है।

स्वदेशी आन्दोलन

इस युग के प्राय सभी राष्ट्रीय साहित्यकारो ने देशवासियों को स्वदेशी के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित किया है। व जानते थ कि स्वदेशी से ही भारत का कल्याण हो सकता है। विदेशी वस्तुओं के विक्रय के कारण ही भारत का धन विदेश चला जा रहा है और देश दिन प्रति दिन निधनता स ग्रसित हो रहा है। राय देवीप्रसाद पूर्ण न स्वदेशी कुण्डल की रचना कर स्वदेशी हिंदू मुस्लिम एकता सामाजिक समृद्धि का

१ गुलेरी जी की अमर कहानियां पृ० १८ सम्पादक—शक्तिधर गुलेरी
२ डा० श्रीकृष्णलाल आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ० ११६ प्रकाशक—हिन्दी परिषद्, विश्वविद्यालय प्रयाग ततीय संस्करण

प्रयास किया था। उन्होंने स्वदेशी के विषय में लिखा था —

देशी प्यारे भाइयो ! हे भारत सन्तान।
अपनी माता भूमि का है कुछ तुमको ध्यान ?
है कुछ तुमको ध्यान ? दशा है उसकी कैसी ?
शोभा देती नहीं किसी को निद्रा ऐसी।।[1]

पूर्ण जी की राष्ट्रीय भावना अति उदार थी। अतः उन्होंने परमेश्वर की भक्ति राजभक्ति के साथ सुवम सहित सच्ची देशभक्ति का उपदेश दिया था—

मन की सेवा के सुनो मुख्य चिह्न हैं चार
१ देश दशा का मनन शुभ २ उन्नति-पथ विचार।
३ न्याय समय विश्वास विदित जो धर्म न्याय का।।[2]

साम्प्रदायिक एकता भी स्वदेशी का ही प्रमुख अंग थी। अतः 'पूर्ण' जी ने उसके विषय में लिखा था —

बन्दे हो सब एक के नहीं महल दरकार
है सब कौमों का वही खालिक और करतार।
खालिक और करतार वही मालिक परमेश्वर,
है अजान का भेद नहीं मानी में अन्तर।।[3]

उनका स्वदेशी का आदर्श था—

पानी पीना देश का खाना देशी अन्न
निर्मल देशी रुधिर से नस नस हो सम्पन्न
नस नस हो सम्पन्न तुम्हारी उसी रुधिर से,
हृदय यकृत सर्वांग नखों तक लेकर शिर से।।[4]

उन्होंने देशवासियों से कहा था कि गाढ़ा झीना जो भी मिले पर स्वदेशी ही पहनो। इस भारत देश के कोरी और जुलाहे भूखे मर रहे हैं और कला-कौशल विनष्ट हो रहा है क्योंकि स्वदेशी की उपेक्षा हो रही है।

कवि ने स्वदेशी की पुकार मचाते हुए कहा था कि दैनिक व्यवहार की छोटी से छोटी वस्तु भी या तो स्वदेशी होनी चाहिये अथवा उनका प्रयोग न करना चाहिए।[5]

---

१ हरदयालुसिंह पूर्णपराग पृ० १७६ प्रकाशक—इंडियन प्रेस लिमिटेड प्रयाग, प्रथमावृत्ति सन् १९४१ ई०
२ वही, पृ १७६
३ पूर्ण पराग पृ० १८५
४ वही पृ० १८६
५ वही पृ० १९१

श्रीधर पाठक और मैथिलीशरण गुप्त ने भी स्वदेशी से प्रभावित होकर काव्य-रचना की थी। पाठक जी ने स्वदेशी विज्ञान[1] लिखा था। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती में विदेशी प्रचार पर क्षोभ-व्यक्त कर अप्रत्यक्ष के रूप से स्वदेशी प्रचार पर बल दिया था।[2]

हिन्दी कथा-साहित्य में प्रसाद जी की शरणागत[3] कहानी में भारतीय सभ्यता संस्कृति, आचार विचार की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया था। पाश्चात्य नारी एलिस ठाकुर किशोर सिंह की पत्नी सुकुमारी से प्रभावित हो अन्त में भारतीय वेशभूषा में विदा होती है। अतः कथा-साहित्य में भी भारतीयता अथवा स्वदेशी का स्वर गूंजना आरम्भ हो गया था।

उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा की साहित्य में अभिव्यक्ति

सन् १९०५ से १९०७ तक उग्र राष्ट्रवादियों का प्राधान्य था। सरकार की कठोर दमन नीति ने लोकमान्य तिलक द्वारा प्रसारित उग्र राष्ट्रवादिता को दबाने के लिए कारावास के कठोर दण्ड का विधान किया। यह आन्दोलन दबा दिया गया लेकिन तिलक के महान् एवं दृढ़ व्यक्तित्व ने गांधी जी के आगमन के पूर्व तक भारत की राष्ट्रीय विचारधारा का नेतृत्व किया। हिन्दीसाहित्य अपने युग की उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित अवश्य हुआ था लेकिन प्रेस एक्ट की कठोरता के कारण, इसकी अभिव्यक्ति में अधिक समर्थ नहीं था।

हिन्दी कविता में माखनलाल चतुर्वेदी माधव शुक्ल ने अपने युग की इस राष्ट्रीय विचारधारा की सशक्त अभिव्यक्ति की है। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक विपिनचन्द्र पाल और लाला लाजपतराय —राष्ट्रीय जागरण के तीन प्रमुख नाम थे। इनसे भारत माता को बहुत आशा थी। लोकमान्य तिलक की राष्ट्रीयता का मूल प्रेरक तत्व भारतीयता थी। वे गीता की कर्मण्यता में विश्वास रखते थे। उन्होंने देश को कर्म का सन्देश देते हुए पूर्ण स्वतंत्रता की मांग की थी। माखनलाल चतुर्वेदी की कविता देश में ऐसे बालक हो[4] अथ गीत कविताएं तिलक की विचारधारा का व्यक्त रूप हैं। प्रियप्रवास में कृष्ण और राधा के चरित्रांकन में हरिऔध जी तिलक की राष्ट्रवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। उन्होंने कृष्ण का चरित्र नितान्त नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। कृष्ण स्वजाति और स्वदेश के उद्धार में संलग्न दिखाए गए हैं।[6] वियोगी हरि ने गीता रहस्य[7] में गीता को राष्ट्र-जहाज कहा था।

१ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ० ९७
२ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १०१
३ जयशंकर प्रसाद छाया पृ० ४१
४ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ४२
५ वही पृ० ४८
६ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध प्रियप्रवास पृ० १७४
७ वियोगी हरि वीर-सतसई। पृ० ७५

तिलक के राष्ट्रवाद का मूल प्रेरक तत्व था भारतीय सांस्कृतिक आदर्श एवं उसकी पुरातन रीति। अतीत-गौरव-गान के अन्तर्गत यह स्पष्ट किया जा चुका है कि माखनलाल चतुर्वेदी मैथिलीशरण गुप्त जयशंकर प्रसाद सियारामशरण गुप्त ने भारतीय आदर्श संस्कृति पुरातन रीति के प्रकाशन के लिए पूर्वजों के चरित्रों का अनुलेखन किया था। साहित्य में भारतीय सांस्कृतिक आदर्शों की प्रतिष्ठा के लिए उन्हें लोकमान्य तिलक से प्रेरणा मिली होगी। रूपनारायण पाण्डेय ने 'तिलक तिरोधान'[1] लोकमान्य तिलक के निधन पर लिखा था। नि:सन्देह उनकी मृत्यु का साहित्यिकों को भी अतीव दुःख हुआ था।

स्वर्गीय बाबू रामप्रताप गुप्त ने *महाराष्ट्र वीर* नामक ऐतिहासिक उपन्यास में तिलक की विचारधारा को प्रच्छन्न रूप से प्रतिध्वनित किया गया है। तिलक भी महाराष्ट्र वीर थे इस उपन्यास में उनके सदृश कुमार भी महाराष्ट्र में ही नहीं सम्पूर्ण भारत में वीरता की पताका फहराना चाहता है। सन्यासी जी कमण्यता का उपदेश देते हैं— महाराष्ट्र वीर पुंगवो! *प्राणों की माया त्याग भारत-जननी की* सेवा करो। यह तुम्हारा ऐश्वर्य-शाली देश नीच यवनों से कलंकित हो रहा है। तुम्हारे पुरातन धवल-यश में धब्बा लग रहा है। आर्यों की संचित कीर्ति का विनाश हो रहा है। शोक है कि उत्तर भारत में कोई भी भारत का सच्चा सेवक नहीं देख पड़ता। नहीं नहीं! ऐसा क्यों कहूँ? वीर अवश्य है पर सब अवसर की ताक में लगे हुए हैं।[2]

हिन्दी साहित्य में सर्वाधिक प्रयत्न प्राचीन संस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए किया गया था। यही भारतीय जीवन-दर्शन की स्थापना तिलक का इष्ट थी।

होमरूल आन्दोलन

श्रीमती एनीबीसेण्ट और लोकमान्य तिलक की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी के साथ स्वराज्य की माँग भी प्रबल रूप से रखी गई थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने इस आन्दोलन के स्वर में स्वर मिलाते हुए लिखा था—

> न्याय-कीर्ति का स्तम्भ अयोध्या में अब गड़ जाने दे,
> राम राज्य का झंडा, नभ-से पुन: रगड़ जाने दे।[3]

नारी को भी इस संग्राम में सहयोग प्रदान करने के लिए प्रेरणा दी गई थी। वीरन्दाजी में सीता राम से तीर चलाने के लिए माँगती है। काव्य-कला के सुन्दर रूप में चतुर्वेदी जी ने अपने युग की नारी जागृति को अभिव्यक्त किया है। स्वराज्य

१ रूपनारायण पाण्डेय *पराग* पृ० ८५ *प्रथमावृत्ति, सं० १९८१ गंगा पुस्तक* माला कार्यालय २९ ३० अमीनाबाद पार्क लखनऊ

२ रामप्रताप गुप्त महाराष्ट्र वीर पृ० ५५

३ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० २७

४ वही पृ० २८

प्राप्ति के लिए तिलक ने देशवासियों का कम करने के लिए शान्तिचरण आराधना के लिए तत्पर कर दिया था।[1] निराशा छोड़कर देश के वीर बच्चों को स्वराज के प्रण के लिए प्रयासित किया।[2] रामनरेश त्रिपाठी ने भी मिलन नामक प्रेम-कहानी में युगीन स्वाधिकार प्राप्ति की दृढ़ पुकार की थी —

पद पद-दलित स्वदेश भूमि का
चलो करें उद्धार।।
हम मनुष्य होकर क्यों छोड़ें
निज पैतृक अधिकार।।[3]

गांधीजी का अहिंसात्मक सत्याग्रह

महात्मा गांधी ने अफ्रीका से लौटकर भारत की राजनीतिक गतिविधि का सूक्ष्म निरीक्षण प्रारम्भ किया। कृषकवर्ग में जागृति फैलाकर राष्ट्रीय आन्दोलन को जन आन्दोलन का रूप प्रदान करने का श्रेय गांधी जी को है। १९२० ई० के पूर्व ही कृषक अशान्ति के दो प्रदर्शन चम्पारन तथा खेड़ा में सन् १९१७ और १९१८ में हो चुके थे। गांधी जी ने भारतीय किसानों को सत्याग्रह का पाठ पढ़ाकर बढ़े हुए लगान, एकमुश्त रकम तथा अन्य अवैध रकमों का अहिंसात्मक विरोध करना सिखाया था। भारतीय राष्ट्रवाद के इतिहास में सत्य एवं अहिंसा पर आधारित आन्दोलन का सूत्रपात गांधी जी की नवीन देन था।

हिन्दी काव्य क्षेत्र में माखनलाल चतुर्वेदी ने गांधी जी की सत्य अहिंसात्मक नीति का जय जयकार किया था। अयोक्ति भाषा में उन्होंने लिखा था —

जय जय विश्व-स्वरूप
पाप के प्यारे जय जय
गरज न सूना बाह
सारथी प्यारे जय जय
जगमग भारत जगे
नये कृतिकारी जय जय
पूज्य प्रजापति रूप
भये धनधारी जय जय!
जय आँख मिचौनी चलते
जग की के आवेग जय

---

1 माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ३०
2 वही, पृ० ३७
3 रामनरेश त्रिपाठी मिलन पृ० ६ संशोधित पाँचवाँ संस्करण, सं० १९८५ प्रकाशक—हिन्दी मन्दिर प्रयाग

जय गुमराहों की राह—
जय, उठतों के आवेग जय।[1]

१९१६ ई में गांधी जी के दश आगमन के पश्चात ही चतुर्वेदी जी ने जीवित जोश कविता लिखी थी। गाधी जी न सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा कष्ट सहन का अपूर्व आदर्श रखा था। सत्याग्रही वीरों को सवस्व बलिदान कर सहय कारावास दण्ड सहन करने का आदश दिया था। चतुर्वेदी जी ने उनकी नीति की पुष्टि मे प्रतीकात्मक शैली मे कहा था —

देश के वदनीय वसुदेव कष्ट में लें न किसी की ओट
देवकी मातायें हों साथ पदो पर जाऊगा मैं लोट।
जहां तुम मेरे हित तयार, सहोगे ककश कारागार।
वहां बस मेरा होगा धाम जन्म का प्रियतर कारागार॥[2]

रामनरेश त्रिपाठी के मिलन कथाकाव्य की विजया सत्य प्रेम और सेवा का व्रत धारण कर गाव-गाव म घूम कर सवा-काय साधती है।[3] यहां पर गांधी जी का प्रभाव लक्षित होता है।

गाधी जी ने प्रारम्भ से ही साम्प्रदायिक एकता पर बल दिया था। माखनलाल चतुर्वेदी ने हिन्दू और मुसलमानो को हिन्दमाता की 'दोनों आंख' कहा था।[4] सनेही और मैथिलीशरण गुप्त का आत्त कृषक तथा किसान लिखने की परणा गांधी जी से मिली होगी। सत्याग्रह आन्दोलन से सम्बन्धित इन कविया की अन्य रचनाओं का रचनाकाल नही मिलता है अत उन्हें शोध विषय के अन्तगत नही लिया गया है।

बल और बलिदान का प्राधान्य

लोकमान्य तिलक ने कर्मयोग की दीक्षा दी थी। गीता म कृष्ण ने अर्जुन को आत्मा की अमरता और अन्याय के निराकरण के लिए बल प्रयोग का उपदेश दिया था वही तिलक का भी मूलमंत्र था। तिलक के सिद्धान्तो का पोषण करते हुए सनेही जी ने लिखा था —

जो साहसी नर है जगत में कुछ वही कर जायगा
निज देश हित साधन करेगा अमर यश धर जाएगा
आत्मा अमर है देह नश्वर है है समझ जिसने लिया।
अन्याय की तलवार से वह क्यों भला डर जायगा ?

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ५१
२ वही, पृ० ६६
३ रामनरेश त्रिपाठी मिलन पृ ६६
४ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ६५

मैथिलीशरण गुप्त ने 'जयद्रथ-वध' की रचना तिलक द्वारा प्रस्तुत बल की प्रधानता की पुष्टि के लिए की होगी अभिमन्यु-वध से संतप्त अर्जुन को कृष्ण आश्वस्त करते हुए गीता के उपदेश की ओर संकेत करते हैं। बल की महत्ता उद्घोषित करते हुए कृष्ण कहते हैं —

रण में मरण क्षत्रिय जनों को स्वर्ग देता है सदा
है कौन ऐसा विश्व में जीता रहे जो सर्वदा ?

कृष्ण अर्जुन को वैरियों से अन्याय का बदला लेने का आदेश देते हैं। इस खण्ड-काव्य के प्रारम्भ में ही गुप्त जी ने कह दिया था —

अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कर्म है
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है ॥[1]

युद्ध में अभिमन्यु का प्राणोत्सर्ग बलिदान का महत्त्व प्रतिष्ठित करता है।

रामनरेश त्रिपाठी ने प्रणय कथा के माध्यम से 'मिलन' नामक कथा-काव्य में अपनी राष्ट्रीय भावना अति कुशलता एवं कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त की है। इस काव्य ग्रन्थ में स्वदेश-सेवा-व्रत में तत्पर युवा विदेशी शासकों को बल द्वारा अभिभूत करने में विश्वास रखता है —

अणु अणु में हैं व्याप्त इस समय उनके विमल विचार।
उन्हें बंद सब भी उठते हैं उनकी आर्त पुकार॥
प्रतिफल देना उन्हें उचित है धर विकराल कृपाण
निश्चय है उनका भय होगा बहुत शीघ्र अवसान॥[2]

बल और बलिदान का मूल स्रोत स्वराज्य प्राप्ति की अनन्य आशा थी जिसकी झलक भी इस काव्य खण्ड में मिल जाती है।

माखनलाल चतुर्वेदी ने भी सफलता प्राप्ति के लिए बल और बलिदान को आवश्यक माना था —

प्रलय-कारिणी युवक शक्ति की कथा सुन पाये बात नहीं ?
भीष्म प्रतिज्ञा सब कुल-कौशल पाप-पुंज-बल ज्ञात नहीं ?
भूलो मत लिख लो निःसंशय इसे हृदय में पक्की मान
भारत का सब दुःख हरेंगे भारत के भावी विद्वान ॥[3]

प्रो० सुधीन्द्र ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि उस समय बहुत सी उग्र कविताएं केवल जनता के कण्ठों से ही मुखरित हुई थीं, कठोर प्रतिबन्धों के कारण पत्र पत्रिकाओं में छप नहीं सकी थीं।

---

१ मैथिलीशरण गुप्त जयद्रथ वध पृ० ३
२ रामनरेश त्रिपाठी मिलन पृ० ५
३ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ४६
४ प्रो० सुधीन्द्र हिन्दी कविता में युगान्तर पृ० २७७

गाँधी जी का राष्ट्रवाद शारीरिक बल की अपेक्षा आत्म बल पर आधारित था इस कारण बल की अपेक्षा केवल आत्मबलिदान पर उन्होंने विशेष बल दिया था। सत्याग्रह के लिए बलिदान आवश्यक शर्त थी। उनके बलिदान का स्वरूप असहयोग आन्दोलन के समय अधिक स्पष्ट हुआ। अत साहित्य म गांधीवादी बलिदान की अभिव्यक्ति का विवेचन शोध विषय के अन्तर्गत किया गया है।

भारत का भविष्य

आशा और आत्मविश्वास के नवीन वातावरण म देशवासियों की कल्पनाशक्ति ने स्वराज्य और भारत के भविष्य का भी स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया था। कवियो की लेखनी भी अतीत से वतमान पर आकर ठहरी नही वह भविष्य के आलोक से भी अनुरजित हो गई। मथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती म अतीत खण्ड और वतमान खण्ड क साथ भविष्यत् खण्ड भी लिखा है। उन्होने भारतवासियों को जागृति का सदेश सुनाकर आशामय भविष्य की कल्पना की है। उनके मतानुसार यदि भारतवासी अपने पूवजो के अलौकिक सत्यशील आदि सद्गुणो को अपना लें तो भारत का गौरव दीप पुन आलोकित हो सकता है। वह एकता की भावना को अपना कर उन्नति के आसन पर आरूढ हो सकता है।[1] गुप्त जी ने भारत के भविष्य को साम्प्रदायिक भेदभाव से मुक्त देखना चाहा था।[2] उनका कथन था कि नवीन वज्ञानिक साधनो से देश को भविष्य मे लाभ हो सकेगा।[3]

भारत के भविष्य के सम्बन्ध में प्राय सभी साहित्यकार आशान्वित थे जैसा कि इस युग के साहित्य की राष्ट्रीय विचारधारा के विवेचन से स्पष्ट है।

निष्कष

भारतेन्दु युग मे राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ था। अत उस युग के साहित्य ने भी अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के प्रारम्भिक रूप को प्रतिबिम्बित किया। द्विवेदी युग मे राष्ट्रवाद का समुचित विकास हो चुका था इस कारण साहित्य म भी अतीत-गौरव-गान वर्तमान के प्रति क्षोभ और आक्रोश, स्वराज्य प्राप्ति के लिए विविध साधनों और लक्ष्य की एकता आदि राष्ट्रवाद के विविध पक्षों की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। भारतेन्दु काल मे आशावादिता का अभाव था कर्मण्यता के स्थान पर रोने का आह्वान था लेकिन द्विवेदी युग का साहित्य आशा, कम और बल-बलिदान से सर्वलित है। अपने युग की विकसित राष्ट्रवादिता की अभिव्यक्ति म साहित्य पूणतया सचेत है। कुछ साहित्यकार नरम-दल की राष्ट्रीयता के समथक हैं और अन्य उग्र राष्ट्रवाद के। भारतेन्दु युग की अपेक्षा अग्रेज शासकों की दमन नीति

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १४६
२ वही पृ० १४७
३ मथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १६२

भी अधिक कठोर हो गई थी। कठिन प्रतिबंधो के बीच माखनलाल चतुर्वेदी प्रभृति विद्वानों ने अपने युग की राजनातिक गतिविधि शासन सम्बन्धी अन्याय अत्याचार को जितने निर्भीक रूप से अभिव्यक्त किया है वह प्रशसनीय है। राष्ट्रवाद के विकास के प्रत्येक चरण को वाणी प्रदान कर हिन्दीसाहित्य प्रणेताओ ने केवल युग धर्म का ही निर्वाह नहीं किया था, अपितु देशवासियों की राष्ट्रीयता के उद्रेक में भी सहायता पहुंचाई थी।

इस काल के हिन्दीसाहित्य म राष्ट्रवाद की सर्वाधिक अभिव्यक्ति काव्य एव निबंध अथवा लेखों में हुई थी। नाटक अथवा कथा साहित्य द्वारा राष्ट्रीय भावना के प्रतिबिंबन म अधिक सहायता नहा मिल सकी। इसका कारण यह था कि कुछ काल तक नाटकों के विकास की गति रुक-सी गई थी और कथा-साहित्य का भी समुचित विकास नही हुआ था।

गाँधी जी का राष्ट्रवाद शारीरिक बल की अपेक्षा आत्म बल पर आधारित था इस कारण बल की अपेक्षा केवल आत्मबलिदान पर उन्होंने विशेष बल दिया था। सत्याग्रह के लिए बलिदान आवश्यक शर्त थी। उनके बलिदान का स्वरूप असहयोग आन्दोलन के समय अधिक स्पष्ट हुआ। अत साहित्य मे गांधीवादी बलिदान की अभिव्यक्ति का विवचन शोध विषय के अन्तर्गत किया गया है।

भारत का भविष्य

आशा और आत्मविश्वास क नवीन वातावरण मे देशवासियों की कल्पनाशक्ति ने स्वराज्य और भारत के भविष्य का भी स्वप्न देखना प्रारम्भ कर दिया था। कवियो की लखनी भी अतीत से वतमान पर आकर ठहरी नहीं वह भविष्य के आलोक मे भी अनुरजित हो गई। मथिलीशरण गुप्त ने भारत भारती म अतीत खण्ड और वतमान खण्ड क साथ भविष्यत् खण्ड भी लिखा है। उन्होंने भारतवासियो की जागृति का सदेश सुनाकर आशामय भविष्य की कल्पना की है। उनके मतानुसार यदि भारतवासी अपने पूवजो के अलौकिक सत्यशील आदि सद्गुणो को अपना लें तो भारत का गौरव-दीप पुन आलोकित हो सकता है। वह एकता की भावना को अपना कर उन्नति के आसन पर आरूढ हो सकता है।[१] गुप्त जी ने भारत के भविष्य को साम्प्रदायिक भेदभाव स मुक्त देखना चाहा था।[२] उनका कथन था कि नवीन वज्ञानिक साधनो से देश को भविष्य में लाभ हो सकेगा।[३]

भारत के भविष्य के सम्बन्ध में प्राय सभी साहित्यकार आशान्वित थे जैसा कि इस युग के साहित्य की राष्ट्रीय विचारधारा के विवेचन से स्पष्ट है।

निष्कर्ष

भारतेन्दु युग मे राष्ट्रवाद का बीजारोपण हुआ था। अत उस युग के साहित्य ने भी अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के प्रारम्भिक रूप को प्रतिबिम्बित किया। द्विवेदी युग म राष्ट्रवाद का समुचित विकास हो चुका था इस कारण साहित्य म भी अतीत-गौरव-गान वर्तमान के प्रति क्षोभ और आक्रोश, स्वराज्य प्राप्ति के लिए विविध साधनों और लक्ष्य की एकता आदि राष्ट्रवाद के विविध पक्षो की सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। भारतेन्दु काल म याचनावादिता का प्रभाव था अकर्मण्यता के स्थान पर रोदन का आह्वान था लेकिन द्विवेदी युग का साहित्य उत्साह, कम और बल-बलिदान से सर्वादित है। अपने युग की विकसित राष्ट्रवादिता की अभिव्यक्ति म साहित्य पूणतया सचेत है। कुछ साहित्यकार नरम-दल की राष्ट्रीयता के समर्थक हैं और अन्य उग्र राष्ट्रवाद के। भारतेन्दु युग की अपेक्षा अग्रेज शासकों की दमन नीति

---

१ मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १५६

२ वही पृ० १५७

३ मथिलीशरण गुप्त भारत भारती पृ० १६२

भी अधिक कठोर हो गई थी। कठिन प्रतिबधो के बीच माखनलाल चतुर्वेदी प्रभृति विग्नाना ने अपने युग की राजनीतिक गतिविधि शासन सम्बन्धी अन्याय अत्याचार को जितने निर्भीक रूप से अभिव्यक्त किया है वह प्रशसनीय है। राष्ट्रवाद के विकास के प्रत्येक चरण को वाणी प्रदान कर हिन्दीसाहित्य प्रणेताओ ने केवल युग धर्म का ही निर्वाह नही किया था अपितु देशवासियो की राष्ट्रीयता के उद्रेक मे भी सहायता पहुचाई थी।

इस काल के हिंदीसाहित्य म राष्ट्रवाद की सर्वाधिक अभिव्यक्ति काव्य एव निबंध अथवा लेखो म हुई थी। नाटक अथवा कथा साहित्य द्वारा राष्ट्रीय भावना के प्रतिबिंबन मे अधिक सहायता नही मिल सकी। इसका कारण यह था कि कुछ काल तक नाटकों के विकास की गति रुक-सी गई थी और कथा-साहित्य का भी समुचित विकास नही हुआ था।

४

राजनीतिक परिस्थितिया
(१६२० से १६३७ तक)

भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में गाधी जी के प्रवश क पूव ही लोकमान्य तिलक जैसे महापुरुष देशवासियो के सम्मुख भारतीय आध्यात्मिकता की सुदृढ आधारशिला पर आधारित राष्ट्रीयता का समुन्नत रूप प्रस्तुत कर चुके थ। जसा कि भूमिका खड म उल्लिखित है सवप्रथम तिलक ने राष्ट्रवाद को उदारवादियो की घोषणाओं तथा वक्तताओं की परिसीमा से मुक्त कर व्यावहारिक सत्य का रूप प्रदान किया था।[1] उनके व्यक्तित्व का राष्ट्र निर्माण पर बहुत प्रभाव पडा था। उनकी राजनीति काग्रेस मण्डल तथा कौंसिल भवन की सीमा म बधी न रह कर जनता तथा गली बाजारो में फल चुकी थी। देश के राजनीतिक क्षेत्र म स्वार्थरहित देशभक्ति त्याग तथा नवीन आत्मविश्वास की भावना भर गई थी। तिलक की राष्ट्रीयता प्रजातन्त्रात्मकता थी।[2] वह अधिक मनोवैज्ञानिक भी थी क्योकि वे इस तथ्य से भली भांति परिचित थ कि जनता से ऐसा निवेदन करना चाहिए जो उनकी बुद्धि का नहीं, उनके हृदयतल का स्पश करने वाला हो, उनके राजनैतिक चातुय को नही, आध्यात्मिक चेतना को छुए।[3] अत उन्होंने भारतीयो का ध्यान उनके अतीत गौरव की ओर आकृष्ट किया, जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन में एक नई आस्था, एक नई जागृति और एक नया विश्वास भर दिया।

तिलक के पश्चात भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का सचालन गांधी जी ने किया। वे तिलक के परिवर्तित एव परिशोधित सस्करण थे। उन्होंने अपने युग की विभिन्न राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक विचारधाराओं का समन्वय कर राष्ट्रवाद का सुविकसित एव समुन्नत रूप देश के सम्मुख रखा। स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द की धार्मिक राष्ट्रीयता तथा प्राचीन सांस्कृतिक पुनरुत्थान सम्बन्धी आन्दोलन म उनकी पूर्ण आस्था थी तिलक की प्रजातन्त्रात्मक राजनीति म

1 Tilak has contributed more by his life and character than by his speeches or writings to the making of the new nationalism
Dr M.A Buch The Development of Indian Political Thought
Page 24

2 ibid Page 25
3 ibid Page 26

उनका अटूट विश्वास था। अरविन्द घोष की भाँति उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए आध्यात्मिकता से प्रेरणा ग्रहण की और गोपालकृष्ण गोखले के समान वे अत्यधिक उदार विचारों के थे।[1] वे विरोधियों के साथ घृणा नहीं प्रेम करते थे। गांधी जी की राष्ट्रीयता में नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की मात्रा अधिक थी।[2] उसमें कुटिलता कूटनीतिज्ञता अथवा चालाकी का कोई स्थान नहीं था।[3] उनकी विचारधारा गीता से विशेष प्रभावित थी तथा टाल्सटाय और थूरो से भी उन्हें उसके निर्माण में सहायता मिली थी।

सन १९२० ई० से सन १९२७ ई०

गाँधीजी के राजनीतिक क्षेत्र में आगमन के साथ ही देश में तीन महत्वपूर्ण घटनाएं घटी जिन्होंने सम्पूर्ण देश को एक स्वर तथा एकमत से उनके साथ कर दिया वे तीन महत्वपूर्ण घटनाएं थी १९१९ में जनता की इच्छा के विरुद्ध रालेट ऐक्ट का पास होना[4] जलियांवाला बाग की नृशंस एवं अमानुषिक घटना तथा खिलाफत का प्रश्न। महात्मा गाँधी ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी थी कि रालेट ऐक्ट भारत वासियों के जन्मसिद्ध अधिकारों का बाधक है। ० माघ १९१९ को इस कानून के विरोध में दिल्ली में प्रदर्शन तथा हड़ताल की गई जो बहुत सफल रही किन्तु सरकार की दमन नीति के कारण गोलियां चली। १३ अप्रैल को अमृतसर के जलियांवाला बाग में विराट सभा का आयोजन किया गया। अब विदेशी सरकार की क्रूरता सीमा का उल्लंघन कर गई। निरस्त्र जनता पर तब तक गोलियों की वर्षा हुई जब तक कि सेना के पास उनका भंडार समाप्त न हो गया। जलियांवाला बाग की दुखद घटना घटी जिसमें निरी भारतीय जनता निरपराध मारी गई। पंजाब में मार्शल ला द्वारा शासन हुआ। इससे सम्पूर्ण देश में एक तूफान सा आ गया और अपराधी शासकों को दण्ड देने की मांग चतुर्दिक उठी। देशवासियों की उत्तेजना को शान्त करने के लिए और पंजाब की घटनाओं की जांच के लिए हंटर कमेटी की स्थापना हुई किंतु वह अपनी निष्पक्ष राय न दे सकी। भारतवासी असन्तोष तथा विक्षोभ की अग्नि में जल उठे। उन्होंने विदेशी सरकार में न्याय की आशा त्याग दी। जनता ने विद्रोह के उन्माद में

---

1 It is only when politics becomes our religion and religion becomes our politics that we in India can solve all our problems
Dr M A Buch Rise and Growth of Indian Nationalism Page 5

2 ibid Page 17

3 ibid Page 15

४ 'कांग्रेस में रालेट ऐक्ट की भर्त्सना की गई परन्तु सरकार ने इसकी कोई परवाह नहीं की। भारत सन ५७ के बाद—पं० शंकरलाल तिवारी बेधड़ पृ० ७५

कुछ स्थानों पर हिंसात्मक क्रांति का आभास भी दिया तथा अहमदाबाद मे जोरो का संघर्ष हुआ। गाँधी जी को इन सब घटनाओं से अत्यधिक मानसिक क्लेश पहुचा। उन्होंने देश की राजनीतिक परिस्थिति को सुधारने के लिए जनता को अनुशासन का पाठ पढ़ाना चाहा। सत्य, अहिंसा तथा आत्म बलिदान द्वारा लक्ष्य प्राप्ति की ओर अग्रसर करने के लिए असहयोग आन्दोलन का प्रचार किया। अब तक वे विदशी सरकार से सहयोग द्वारा भारत को स्वतन्त्रता की ओर ले जाना चाहते थे किंतु अब वे असहयोग के दृढ समर्थक हो गये थे।[१] खिलाफत के प्रश्न पर भारत की मुस्लिम जनता अंगरेजो के प्रति विक्षुब्ध हो उठी क्योंकि उससे उनकी धार्मिक भावना को ठेस पहुची थी।[२] देश का यह सौभाग्य था कि पुन हिंदू तथा मुसलमान दोनो ने राष्ट्रीय आन्दोलन म समान रूप से भाग लिया। गाँधी जी ने सम्पूर्ण देश की जनता का नेतृत्व किया। उन्हें अली भाइयों का सहयोग प्राप्त हुआ तथा सन १९२० ई० म बहुमत से असहयोग आन्दोलन का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। इस हिंदू मुस्लिम ऐक्य के अनुकूल वातावरण म भी राजनैतिक दलबन्दियो का हो जाना एक अप्रिय तथा खेदपूर्ण घटना थी। यह दलबन्दी पजाब के अत्याचार तथा खिलाफत के प्रश्न के सम्बन्ध में हुई थी। कुछ नेतागण गाधी जी के असहयोग से असहमत होने के कारण कांग्रेस से पृथक हो गये थे। कौंसिल प्रवेश के प्रश्न पर भी सभी नेता एकमत नही थे। असहयोग से सहमत होने पर भी जो नेता कांग्रेस के नेतृत्व मे कौंसिल प्रवेश द्वारा विदेशी साम्राज्यवाद को मिटा डालना चाहते थे उन्होने असहयोग आन्दोलन का जोश धीमा पड़ने ही सन १९२२ म स्वराज्य पार्टी के नाम से कांग्रेस के कार्यक्रम का पालन करते हुए एक नई पार्टी या दल की रचना कर ली थी। इसके समर्थक देश बन्धु चित्तरंजनदास पण्डित मोतीलाल नेहरू आदि थे।

गाधी जी के नेतृत्व में अब कांग्रेस का लक्ष्य औपनिवेशिक स्वतन्त्रता न रह कर पूर्ण उत्तरदायित्वपूर्ण शासन बन गया था। कांग्रेस मे एक निश्चित कार्यक्रम

१ The dramatic shift of Gandhi from Co operation to non co-operation changed the whole face of Indian Politics
Dr M A Buch —The Rise and Growth of Indian Nationalism Page 30

२ Gandhi soon took the leadership of the Indian Muslims He felt that grave injustice had been done to the Mohammedans in India Their religious susceptibilities had been deeply wounded Here was an opportunity to the Hindus to stand by the side of their Muslim brethren and thus advance the cause of Hindu Muslim Unity
Dr Buch—The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 27

निर्धारित किया गया जिसके आधार पर राष्ट्रीय आन्दोलन का संचालन हुआ। इस रचनात्मक कार्यक्रम को सुचारु रूप से चलाने के लिए एक करोड़ रुपये के एकत्रीकरण का तथा बीस लाख घरों में चर्खा चलवाने का निश्चय किया गया।[1] गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन की सफलता के लिए जनता को त्याग सहनशीलता तथा अहिंसा का पाठ पढ़ाना प्रारम्भ किया। उनके असहयोग का तात्पर्य था, आत्मबल द्वारा विदेशी सत्ता से असहयोग। सरकारी उपाधियों तथा सम्मानों का त्याग इस आन्दोलन की विशेषता थी।[2] हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, स्वदेशी हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा बना कर राष्ट्रीय एकीकरण का प्रयास इस आन्दोलन के लक्ष्य थे। उनका मूल अस्त्र था अहिंसा। इसी कारण गांधी जी ने राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार तथा राजनैतिक मताधिकार पर विशेष बल दिया। राष्ट्रीय विद्यापीठ खोले गये, तथा भारतीय विद्यार्थियों को नवीन ढंग की राष्ट्रीय शिक्षा दी जाने लगी, यद्यपि इस दिशा में अधिक सफलता न मिल सकी।[3]

असहयोग आंदोलन

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का ध्येय था सत्य तथा अहिंसात्मक प्रणाली द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना में सम्पूर्ण राष्ट्र की समस्त शक्ति का प्रयोग करके भारत को विदेशी शासनाधिकार से मुक्त करना। गांधी जी के शब्दों में—"वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इंगलैंड और भारत जिस में प्राकृतिक रूप से रह रहे हैं मैंने असहयोग के द्वारा उससे उद्धार पाने का मार्ग बता कर दोनों की सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मति में जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्तव्य है उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करने वाले को क्षति पहुंचाने के लिए असहयोग को हिंसात्मक ढंग से प्रकट किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियों को यह बताने की चेष्टा कर रहा हूं कि हिंसा बुराई को कायम रखती है इसलिए बुराई की जड़ काटने के लिए यह आवश्यक है कि हिंसा से बिल्कुल अलग रहें। अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी दण्ड मिले उसे स्वीकार कर लें।" वह राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए सुधारों की अपेक्षा सत्य तथा अहिंसा को प्रमुखता देते थे। उनका विश्वास था कि इस साधन को अपना कर स्वशासन सुलभ हो सकता है जिससे अन्य सुधार-कार्य स्वतः पूर्ण हो

१ पं० शंकरलाल तिवारी बेढब भारत सन् ५७ के बाद पृ० ८३
२ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० १५१
हमें धीरे-धीरे बढ़ना होगा जिससे बड़े से बड़े उत्तेजन पर भी हम अपना आत्म-संयम बनाये रख सकें।
३ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ३७
४ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० १६७

जायेंगे ।[1] कांग्रेस मे प्रेषित असहयोग प्रस्ताव निम्नलिखित थे।[2]

(१) सरकारी उपाधियां अवैतनिक पदों और म्युनिसिपल बोर्ड व अन्य संस्थाओं को लोग छोड दें।

(२) सरकारी दरबारो स्वागत समारोहो तथा अन्य सरकारी तथा अर्द्ध सरकारी उत्सवो में भाग लेने से इन्कार कर दिया जाये।

(३) सरकारी तथा सरकार से सहायता पाने वाले स्कूल व कालेजो का वहिष्कार और राष्ट्रीय विद्यालयो की स्थापना की जाय।

(४) वकील और मुवक्किलो द्वारा ब्रिटिश अदालतो का बहिष्कार और पंचायती अदालतों की स्थापना की जाय।

(५) फौजी क्लर्कों व मजदूरी करने वाले लोग मसोपोटामिया में भर्ती होने से इन्कार कर दें।

(६) नई कौंसिलो के चुनाव के लिए खडे उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें।

(७) विदेशी माल का बहिष्कार। हाथ कताई व भारतीय उद्योग धंधो को प्रोत्साहन।

यह प्रस्ताव कांग्रेस द्वारा अनुमोदित हो जाने के पश्चात् गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की एक विस्तृत सूची बनाई थी। इस रचनात्मक कार्यक्रम के अनुसार राष्ट्रीय जीवन के नवनिर्माण का उन्होंने सफल प्रयत्न किया। इसके विशेष केन्द्र ग्राम थे। इसकी सफलता के लिए गांधी जी ने स्वयंसेवकों का एक विशाल दल संगठित किया था जिसने नगरो के साथ ग्रामों में भी रचनात्मक कार्य प्रणाली की सफलता का उद्योग किया। आदर्श भारत की रूपरेखा में गांधी जी ने रचनात्मक कार्यों की सूची इस प्रकार दी है।[3]

(१) हिन्दू मुस्लिम या साम्प्रदायिक एकता
(२) अस्पृश्यता निवारण
(३) मादक द्रव्य निषेध
(४) खादी
(५) दूसरे ग्राम उद्योग
(६) गावों की सफाई
(७) नई अथवा बुनियादी शिक्षा

---

१ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० १५१

२ वही पृ० १५६

३ मोहनदास करमचंद गांधी आदर्श भारत की रूपरेखा पृ० २१ अनुवादक—देवराज उपाध्याय

(८) प्रौढ़ शिक्षा
(९) नारियो की उन्नति
(१०) स्वास्थ्य और सफाई सम्बन्धी शिक्षा
(११) राष्ट्रभाषा का प्रचार
(१२) स्वभाषा प्रेम की शिक्षा
(१३) धार्मिक समानता की चेष्टा

उन्होने असहयोगी के कर्तव्य भी निश्चित कर दिये थे—

(१) चर्खा चलाना जानता हो।
(२) विदेशी कपड़ा त्याग चुका हो।
(३) खद्दर पहनता हो।
(४) हिन्दू मुस्लिम एकता म विश्वास रखता हो।
(५) अहिंसा म विश्वास रखता हो।
(६) हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को राष्ट्रीयता के लिये कलंक समझता हो।

सन् १९२० २१ म असहयोग आन्दोलन का उत्साह सम्पूर्ण देश पर छा गया। श्री पट्टाभि सीतारम्मया के शब्दो म १९२१ म सरकार का मुकाबला करने की प्रवृत्ति देश के सार्वजनिक जीवन म मुख्य बात थी, और जनता इस प्रवृत्ति का परिचय भिन्न भिन्न प्रान्तो म अपने आसपास की स्थिति को देखकर तथा वहा की स्थानिक और नागरिक समस्याओ के अनुसार दे रही थी।[१] सत्य तथा अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन न हो सकने पर भी देश हित के लिए स्वेच्छया तथा सहर्ष प्राणोत्सर्ग करने वालो की संख्या कम न थी। जेल जाना एक खेल हो गया था और सजा काटना मेहमानदारी। असहयोगियो के लिए ब्रिटिश सरकार की जेलों म जगह बाकी न रह गई थी।[२] गांधी जी ने अपने काय का प्रचार आन्दोलन और संगठन द्वारा गतिशील बनाया। उन्होने इस आन्दोलन के समुचित प्रचार के लिए भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण किया और असहयोग का सन्देश भारत के ग्राम-ग्राम म पहुंचा दिया। स्वातन्त्र्य आन्दोलन के इतिहास म प्रथम बार एसी उत्तेजनादायक घटना घटी थी कि किसी राष्ट्रीय नेता के उपदेश को सुनने के लिए सहस्रों की संख्या म साम्प्रदायिक भेदभाव त्याग कर जनता एकत्रित हो।[३] भारतीय जनता ने गांधीजी को उस अवतार

१ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० १७९
२ ठाकुर राजबहादुरसिंह कांग्रेस का सरस इतिहास पृ० ५६
3 'The call to open rebellion was an entirely new one in the history of India and the people were swept off their feet by his whirl wind propaganda The march of Hindus and Muslims under one common political leader was also equally new and since the great days of Akbar and the days of the Indian Mutiny India had never seen such a spectacle
Dr Buch The Rise and Growth of Indian Nationalism, Page 31

या पैगम्बर के रूप में देखा जो भारत की स्वतंत्रता तथा उसके उत्थान के लिए प्रकट हुआ था। गांधी जी ने जनता को यह विश्वास दिलाया कि विदेशी सरकार भारतीय जीवन घातक है। उससे मुक्ति प्राप्ति का एक मात्र ईश्वर-सम्मत साधन अहिंसात्मक असहयोग है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि इस साधन के उपयोग से शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त होगा। जनता ने भी उनके इस विश्वास की पुष्टि अपने सहयोग द्वारा की।[1] गांधी जी का व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि सी० आर० दास मोतीलाल नेहरू जवाहरलाल नेहरू लाला लाजपतराय विट्ठल भाई पटेल वल्लभभाई पटेल, एन०सी केलकर डा० मुंजे राजेन्द्रप्रसाद राजगोपालाचारी रंगस्वामी सत्यमूर्ति प्रकाशम् मुहम्मद अली शौकतअली अबुल कलाम आजाद अन्सारी सभी ने उनका नेतृत्व ग्रहण किया। अतः भारतीय जागृति आंशिक नहीं सामूहिक थी।[2] विदेशी कपड़ा के बहिष्कार तथा मद्य निषेध के क्षेत्र में अतीव सफलता मिली। नारियों की जागृति एवं असहयोग आन्दोलन में सक्रिय सहयोग इस युग की सबसे बड़ी विशेषता थी।

इस नव जागृति का परिणाम यह हुआ कि सन् १९२ ई० में ड्यूक आफ कनाट का भारतागमन स्वागत की दृष्टि से अत्यन्त विरस रहा। इसके पश्चात् युवराज प्रिंस आफ वल्स के भारत आगमन का पूर्ण बहिष्कार हड़ताल द्वारा किया गया। उनका बहिष्कार भारतीयों की निर्भीकता तथा विदेशी सत्ता के प्रति उग्र विरोध भावना का प्रतीक था। राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में इस प्रकार की घटना अपूर्व थी जिसने विदेशी शासन सत्ता की जड़ हिला दी।[3] देश में कुछ मान्य व्यक्तियों ने अपनी पदवी तथा उपाधि त्याग दी थी। सैकड़ों की संख्या में विद्यार्थी सरकारी स्कूलों और कालेजों का परित्याग कर राष्ट्रीय विद्यालयों में प्रविष्ट हो रहे थे तथा राष्ट्रीय स्वयं सेवक बन रहे थे।

सरकार देश में इस नवीन तथा उग्र राष्ट्रीयता की लहर को देख आतंकित हो गई। इसके दमन के लिए उसने सेडिशस मीटिंग क्रिमिनल ला अमेंडमेंट

१ A new spirit of political self consciousness and political self reliance was born and people under the matchless leadership of Gandhi boldly began to take their destiny into their own hands

Dr Buch The Rise and Growth of Indian Nationalism Page 31

२ पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० १६६

३ 'The non co operation movement was meant to weaken the prestige of the Government and put a new spirit of self reliance into the people !'

Dr Buch The Rise and Growth of Indian Nationalism Page 31

एक्ट, १४४ धारा', का कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया। राष्ट्रीय नेता तथा स्वयं सेवक राजद्रोह के अपराध में दण्डित किये गये तथा जेलखानों में ठूँस दिये गये, जहाँ उन्हें मारना पीटना नंगा करके छोड़ देना आदि सभी पुलिस के साधारण खेल थे।[1] जेलखाना अब पवित्र स्थान तथा दण्ड वरदान बन गया था। जनता ने विदेशी सरकार के अत्याचारों को बड़ी शान्ति के साथ सहन किया।[2] दमन चक्र बड़े भयावह और विस्तृत रूप में जारी था। विशेष रूप से युक्तप्रान्त में उसका बहुत जोरशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए। बहुत से लोग बिना मुकदमा लड़े जेलों में पड़े हुए थे। उन सबको बधाई देते हुए कांग्रेस महासमिति ने घोषणा की कि स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन और सफाई या जमानत दिये बगैर जेल जाने से ही हम स्वतन्त्रता के मार्ग पर अग्रसर होंगे। देश की इस नवीन जागृति तथा नव आन्दोलन का प्रभाव केवल देश तक सीमित न रहा विदेशों से भी गाँधी जी को सद्भावना के सन्देश मिले अमरीका आदि देशों से महात्मा जी के प्रति सहानुभूति के सन्देश आये। भारत के उस महान आन्दोलन पर संसार की आँखें खुल गईं। विदेशों में रहने वाले भारतीयों ने अपनी पूरी शक्ति भारत को प्रदान कर दी।[3]

इस आन्दोलन को नष्ट करने की जितनी ही योजनाओं का आयोजन हुआ उतना ही यह आन्दोलन उग्र रूप धारण करता गया।

'गाँधी टोपी, खद्दर और वन्देमातरम् सरकार के लिए हौआ-सा हो गया। ये तीन वस्तुएँ सख्त राजद्रोह समझी जाने लगीं। सैकड़ों नहीं बल्कि हजारों आदमी इसी अपराध में पकड़े गए।[4] पण्डित मोतीलाल नेहरू श्री सी० आर० दास लाला लाजपतराय को भी इसी आन्दोलन में कारावास दण्ड मिला था।

गाँधी जी ने देश में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य तथा अहिंसात्मक असहयोग का वातावरण देख बारडोली में सामूहिक सविनय आज्ञा भंग आन्दोलन की तैयारी प्रारम्भ की किन्तु दुर्भाग्यवश इसी समय उत्तरप्रदेश के चौरीचौरा स्थान में हिंसात्मक घटना घटी जिससे वे दुखित हो गये तथा तत्क्षण आन्दोलन स्थगित कर दिया।[5] जनता की उत्तेजना को गाँधी जी के इस निर्णय से ठेस पहुँची और उसकी आग पर ठंडा पानी पड़ गया जिससे आग बुझ तो गई पर धुएँ का गुबार छोड़ती गई। सरकार

१ भारत सन् ५७ के बाद पृ० ८६

२ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० १७५

३ प० नरदत्त तिवारी बेदब भारत सन ५७ के बाद पृ० ८६

४ प० नरदत्त तिवारी बेदब भारत सन ५७ के बाद पृ० ८५

५ At Chauri Chaura 21 constables and a Sub Inspector perished in the flames as a result of a fire set to the Police Station by a mob.'

Dr Buch—The Rise and Growth of Indian Nationalism Page33

ने इस अवसर का लाभ उठाया और गांधीजी को कैद कर लिया गया। १९२३ के पश्चात सन् १९२७ ई० तक देश में स्वराज्य पार्टी की धूम रही ये लोग साम्राज्य शाही के गढ़ में प्रविष्ट होकर आक्रमण करना चाहते थे। गांधी जी को अस्वस्थता के कारण जेल से मुक्त कर दिया गया किन्तु उन्होंने स्वराज्य पार्टी के मार्ग में विरोध नहीं डाला। वह स्वयं कांग्रेस के लिए रचनात्मक कार्यक्रम बनाने में संलग्न रहे। इस प्रकार देश का राजनीतिक वातावरण असहयोग आन्दोलन के पश्चात १९२७ ई० तक शान्त बना रहा अर्थात उत्तेजना के चिह्न देश के बाह्य वातावरण में दृष्टिगत नहीं होते थे किन्तु राष्ट्रीय भावना अन्दर ही अन्दर पुष्ट हो रही थी। इसका एक अन्य कारण भी था कि सरकार ने कांग्रेसियों के लिए यह असंभव कर दिया था कि वे स्थानिक संस्थाओं द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम आगे बढ़ा सकते। वे जेल हो आने वालों को नौकरी नहीं दिला सकते थे, खादी नहीं खरीद सकते थे, हिन्दी की शिक्षा नहीं दे सकते थे, शालाओं में चर्खा नहीं चला सकते थे, राष्ट्रीय नेताओं को मानपत्र नहीं दे सकते थे और न म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों पर राष्ट्रीय झंडा फहरा सकते थे।[1]

असहयोग आन्दोलन के उत्साह की समाप्ति के साथ ही साम्प्रदायिक विद्वेष प्रबल हो गया। हिन्दू मुस्लिम दंगे प्रारम्भ हो गये। सन् १९२५ तथा २६ में ये दंगे प्रमुखतया दिल्ली कलकत्ता और इलाहाबाद में हुए। मुस्लिम लीग कांग्रेस से पृथक हो गई जिसके प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दू महासभा द्वारा संकीर्ण हिन्दू राष्ट्रवाद का प्रचार किया जाने लगा।[2]

१९२५ में सिक्खों ने पंजाब-कौंसिल में गुरुद्वारा बिल प्रस्तुत किया। सरकार गुरुद्वारा आन्दोलन के कैदियों को इस बात पर मुक्त करने पर प्रस्तुत हुई कि वे नये कानून मानें। गुरुद्वारा कमेटी में इस बात को लेकर फूट पड़ गई और अधिकांश कैदी सरकारी कानून को मानने की बात पर मुक्त किये गये। अतः अकाली दल का राष्ट्रीय उत्साह भी क्षीण पड़ गया।[3]

इस अवधि में देश में क्रान्तिकारी आतंकवादियों का हिंसात्मक कार्यक्रम भी पुनः संगठित हुआ। सम्पूर्ण देश में उनके गुप्त दलों का जाल फैल गया। शस्त्र के बल पर स्वतन्त्रता प्राप्ति के आकांक्षी वीरों के साहसपूर्ण कृत्यों द्वारा भी देश के जीवन में अधिक उत्साह आया और राष्ट्रीय भावना को विकास का मार्ग मिला। सन् १९२७ में कुछ घटनाएं घटीं जो राष्ट्रीयता के इतिहास में महत्वपूर्ण हैं। इनमें प्रमुख हैं प्रथम सर्व दल सम्मेलन द्वारा नेहरू कमेटी की नियुक्ति जो देश के लिए संविधान बनाने के लिए थी, द्वितीय मद्रास कांग्रेस में पूर्ण स्वतन्त्रता पर विचार और भगतसिंह द्वारा केन्द्रीय असेम्बली में बम फेंकना। तृतीय भारतीय जीवन में शासकों की राज

१ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २३४

२ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २३६

३ Palme Dutt India Today Page 329

नीतिक तथा आर्थिक नीति के प्रति बढ़ते हुए विक्षोभ को दृष्टिगत कर ब्रिटिश सरकार ने साइमन कमीशन की स्थापना की घोषणा की जिसका प्रयोजन था ब्रिटिश भारत का भ्रमण कर शासन कार्य शिक्षा वृद्धि प्रतिनिधि संस्थाओं के विकास तथा तत्संबंधी विषयों की जांच करके यह निर्णय देना कि भारत उत्तरदायी शासन के योग्य है या नहीं। इस कमीशन में भारतीयों को कोई स्थान नहीं दिया गया था। अतः कांग्रेस तथा अन्य सभी राजनीतिक दल इसके बहिष्कार के लिए कटिबद्ध हो गये।[1]

अखिल भारतीय नरमदली नेताओं ने भी इसके विरोध में एक घोषणा पत्र प्रकाशित किया। मिस विल्किन्सन ने तो यहां तक कह डाला कि अमृतसर कांड के पश्चात ब्रिटिश सरकार के किसी भी कार्य की भारत में इतनी भारी निन्दा नहीं हुई जितनी कि साइमन-कमीशन की नियुक्ति की। कांग्रेस के सभापति ने भी कमीशन की निन्दा की और कर्नल वेजवुड ने विचारों का हवाला दिया कि कमीशन के बहिष्कार से भारत के पक्ष को कोई नुकसान नहीं पहुँचेगा।[2]

कमीशन बहिष्कार सम्बन्धी निश्चय के साथ कांग्रेस में कुछ अन्य विषयों पर भी प्रस्ताव अनुमोदित हुए व विषय थे—नजरबन्द भारत व एशिया राष्ट्र का स्वास्थ्य साम्राज्यवाद विरोधी संघ चीन पामपोर्ट हिन्दू मुस्लिम एकता ब्रिटिश माल बहिष्कार आदि। कांग्रेस ने साम्राज्यवाद के विरोध में अन्तर्राष्ट्रीय संघ से संबंध जोड़ कर कांग्रेस के इतिहास तथा राष्ट्रीय संग्राम को एक निश्चित मोड़ दिया।[3]

सन १९२८ से ३७ तक की राजनीतिक परिस्थितियां

सन् १९२७ में ही देश के राष्ट्रीय जीवन में विकास के चिह्न दृष्टिगत होने लगे थे। सन् १९२८ १९२९ में पुनः देश के विद्यार्थी वर्ग तथा युवक समूह में राष्ट्रीय भावना प्रबल हुई। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्वतन्त्रता समिति की स्थापना हुई जिससे भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम को सहायता मिली। श्रमिक तथा कृषक भी संगठित हुए और उन्होंने संग्राम में प्रमुख रूप से भाग लिया। श्रमिक

१ पर बात यह थी कि साइमन कमीशन की घोषणा भारत में ८ नवम्बर सन् १९२७ को की गई। वाइसराय इसके प्रति सद्भावना पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न में थे। कांग्रेस के सिवा भी भारत की सब पार्टियां साइमन कमीशन की नियुक्ति से इसीलिए नाराज हुई कि उसमें एक भी भारतीय नहीं रखा गया और कांग्रेस का यह मत स्वाभाविक भी था कि साइमन कमीशन तो उसकी अब तक की मांग के निकट भी नहीं पहुँचता। डा॰ बेसेन्ट ने कहा कि यह जले पर नमक छिड़कना नहीं है तो क्या है?

—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ॰ २५३

२ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ॰ २५४

३ A. R. Desai Social Background of Indian Nationalism Page 317

वग की सगठित शक्ति मे भारतीय राष्ट्रवाद को एक महत्वपूर्ण, शक्तिशाली गतिवर्द्धक तत्व की प्राप्ति हुई। भारत के इतिहास म प्रथम बार एक नई लहर न जन्म लिया।

३ फरवरी १९२८ ई० को साईमन कमीशन भारत म आया जिसका स्वागत अखिल भारतीय हड़ताल द्वारा किया गया।[1] उसके विरोध म दिल्ली मद्रास पटना कलकत्ता लखनऊ आदि नगरो में प्रदशन सभाए तथा स्ट्राइक हुए। 'गो बक साइमन। (साइमन वापस लौट जाओ)' के नारे लगाये गये। लाहौर म लाला लाजपतराय के नेतृत्व म एक विशाल जनसमूह एकत्रित हुआ। ब्रिटिश सरकार ने पुलिस तथा अन्य साधनो द्वारा जनता को आतंकित कर दबाना चाहा। अन्य प्रतिष्ठित नेतागणो के साथ लाला लाजपतराय को भी लाठी स पीटा गया। उन्हें वीरगति प्राप्त हुई। उनकी मृत्यु के सबध मे निष्पक्ष जाच करने की माग की गई जो ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत नही की गई।[2] हिन्दी प्रदेश म यह बहिष्कार विशेषतया प्रबल था। काग्रेस के इतिहास म पट्टाभि सीतारम्मैया ने लिखा है —

लखनऊ म भी कमीशन के आने के दिन निशस्त्र व शान्त भीड़ पर पुलिस ने कई बार जानबूझ कर अकारण डण्ड बरसाये। युक्तप्रात की पुलिस न तो जवाहरलाल जी तक को न छोडा। सब दलो के प्रमुख प्रमुख कायकर्ताओ पर डडे व लाठिया बरसाने म तो माना घुडसवार व पैदल पुलिस न अपनी सारी चतुराई ही खतम कर दी और बीसियो आदमियो को घायल कर डाला।[3] भारतवासी सरकार के नृशस एव बबरतापूर्ण कृत्यो से तनिक भी विचलित नही हुए। इन अवरोधो से जनता को उत्साह और बलिदान के लिए प्रेरणा मिली। इस कमीशन का बहिष्कार केवल नगर निवासियों न ही नही वरन् ग्रामवासियो ने भी किया था। सरकार ने आसपास के गावो स लारियो म भर भर कर किसान बुलवाये लेकिन स्वागत कम्पो म घुसने के बजाय वे बहिष्कार कम्पो म जा डटे। और स्टेशन पर विराट जन-समूह ने कमीशन के विरोध म जो अहिंसापूर्ण प्रदशन किया उस और स्वागत तथा बहिष्कार पार्टियो के बल को देखकर तो सरकार की आखें ही खुल गई।[4] श्रमिक वग न भी जलूसो मे सम्मिलित होकर इस बहिष्कार को सफल बनाया था।

साइमन कमीशन के बहिष्कार के अतिरिक्त इस वष की एक अन्य घटना है बारडोली का आन्दोलन। बारडोली म सरकार द्वारा २५ प्रतिशत भूमि कर बढा दिया गया था जिसका परिणाम यह हुआ कि वहा सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में करबन्दी आदोलन का सगठन किया गया। सरकार ने इस आदोलन के दमन के लिए कुर्किया करायी[5] और पठानो को बुलाकर कृषको की जायदाद छीनी।

1 A R Desai Social Background of Indian Nationalism P 317
२ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २५७
३ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २५८
४ वही पृ० २५८
५ वही पृ० २६१

इसी वर्ष सर्व दल सम्मेलन बुलाया गया जिसमें कांग्रेस उदार दल तथा मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। विभिन्न दलों के सम्मिलन द्वारा राष्ट्रीय एकता का यह प्रयास मात्र था। मोतीलाल नेहरू ने देश के स्वायत्त शासन के लिए संविधान की योजना बनाई। वर्ष के अन्त में कांग्रेस के अधिवेशन के अवसर पर ५०००० कलकत्ता मिल के श्रमिकों ने जलूस के रूप में आकर राष्ट्रीय स्वाधीनता का प्रस्ताव पास किया था। सन् १९२६ में मिल हड़ताल अपने चरम पर पहुँच गये। कलकत्ता कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को एक वर्ष का समय दिया जिसमें वह पूर्ण डोमीनियन स्टेटस का अधिकार भारत को दे दे अन्यथा भारत का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता होगा। १९२९ में वाइसराय ने यह घोषणा की कि डोमिनियन स्टेटस ही भारतीय राजनीतिक प्रगति का ध्येय है और यह १९१९ के विधान नियम में समाहित है। यह भी कहा कि शीघ्र ही भारतीय संविधान के संबंध में विचार करने के लिए भारतीय और ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का एक गोलमेज सम्मेलन होगा। इसका उद्देश्य था विविध विचार धाराओं का जानना और उनके अनुसार ब्रिटिश सरकार को सलाह देना जिसमें वह संविधान का मसौदा ब्रिटिश संसद के सम्मुख रख सके। गांधी जी ने यह निश्चित करना चाहा कि इस सम्मेलन का तात्पर्य होगा डोमीनियन संविधान बनाना परन्तु वाइसराय इस प्रकार का कोई आश्वासन न दे सके। परिणामस्वरूप लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव अपनाया गया और उसकी प्राप्ति के लिए सत्याग्रह जिसमें करबन्दी भी सम्मिलित थी आन्दोलन चलाने का निश्चय किया गया।

मेरठ षड्यन्त्र केस राष्ट्रीय इतिहास में प्रसिद्ध है। इसमें ट्रेड यूनियन कृषक सभा राष्ट्रीय महासभा के तीन सदस्यों तथा ब्रिटिश साम्यवादी दल के बेंजमिन स्प्रट हचिंसन पर मुकदमा चलाया गया था।[1] ब्रिटिश सरकार की दमन नीति ने उग्र रूप धारण किया। जवाहरलाल नेहरू जी अन्य राष्ट्रवादी नेतागण तथा कांग्रेस के वाम पक्षी नेता सुभाषचंद्र बोस पकड़े गये। आतंकवादी नेता भगतसिंह और दत्त को भी कठोर दण्ड मिला। भारत को साम्यवादी प्रभावों से अछूता रखने के लिए सार्वजनिक सुरक्षा बिल पास किया गया।[2] राजनीतिक समस्याएं परिस्थितियां और उलझ गई।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कांग्रेस के संबंध बढ़ते जा रहे थे। उसे विदेशों से विशिष्ट व्यक्तियों तथा सभाओं के सहानुभूति पूर्ण संदेशों की प्राप्ति भी हुई थी। देशी राज्यों से भी कांग्रेस ने उत्तरदायी शासन स्थापित करने का अनुरोध किया। इन सबके सगठन से परिणामस्वरूप विदेशी सत्ता भयभीत हुई। दमन की कठोर विभीषिका में भारतवासियों ने जिस आत्म-बलिदान सहन-शक्ति धैर्य, दृढ़ निश्चय का प्रमाण दिया था उससे साम्राज्यवाद आतंकित हुआ।

1. Palm Dutt—Indian Today P 335
2. A. R. Desai—Social Background of Indian Nationalism P 319

अस्पृश्यता निवारण सामाजिक कुरीतियो के निराकरण साम्प्रदायिकता को मिटाने तथा मजदूरा और किसानो के सगठन का प्रयास किया गया । काग्रेस को भिन्न वर्गों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए वैध उपायो का सहारा लिया गया ।

सविनय अवज्ञा आदोलन

असहयोग आदोलन के पश्चात सन् १९३०म पुन स्वतन्त्रता प्राप्ति का सक्रिय उत्साह छा गया । गांधी जी द्वारा प्रचारित रचनात्मक कायक्रम ने देश के वातावरण को राष्ट्रीय आदोलन के उपयुक्त बना दिया था । स्वराज्य पार्टी की कौंसिल प्रवेश अथवा अडगा नीति द्वारा सफलता प्राप्ति का साधन असफल सिद्ध हो चुका था अत काँग्रेस ने कौंसिल बहिष्कारका पूण स्वरात्मक लिए सत्याग्रह आन्दोलन सचालित करने का व्रत ठान लिया । इस महाव्रत का द्योतक सकेत स्वरूप २६ जनवरी देश के पूण स्वराज्य मनाने का दिवस निश्चित हुआ । देशवासियो न सम्पूण उत्साह के साथ इस दिवस का समारोह सपन्न किया । इस पुण्य दिवस पर जनता के असीम भावना स्वाथ-त्याग तथा उत्साह का भाव प्रदर्शित किया जिससे देश पर छाई शिथिलता तथा निराशा की बदली छट गई । स्वतन्त्रता भारतीयों का जन्मसिद्ध अधिकार है तथा इसकी प्राप्ति करके ही राष्ट्र का विकास सम्भव है—यह स्वर पुन निनादित हुआ । आदोलन प्रारम्भ करने से पूव एक घोषणा-पत्र द्वारा महात्मा गाँधी ने भारतीय जनता की दृष्टि विदेशी शासन द्वारा भारत के आर्थिक राजनीतिक सांस्कृतिक आध्यात्मिक शोषण की ओर आकृष्ट की थी ।[1] उन्होंने आकडा द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि जनता की आमदनी के अनुपात मे कर अधिक लिया जाता है उनके हस्त उद्योग को विनष्ट कर ग्रामीण जीवन को अधिक दयनीय बनाया गया है एव भारत वासियो को शासन सबधी सम्पूण प्रतिभा को मिटा डालने म तनिक भी कोर कसर नही रखी गई है । शिक्षा प्रणाली दासता की अभिवृद्धि म सहायक थी तथा निशस्त्री करण भारत के आध्यात्मिक पतन मे सहयोगी । भारतीय दुदशा के अनकागो की ओर इंगित करते हुए घोषणा-पत्र मे कहा गया था—

जिस शासन ने हमारे देशका इस प्रकार सवनाश किया है उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान दोना के प्रति अपराध है । किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हम हिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता नही मिलगी । इसलिए हम ब्रिटिश सरकार से यथा सम्भव स्वेच्छापूवक किसी भी प्रकार का सहयोग कराने की तैयारी करेंगे और सविनय अवज्ञा एव करबन्दी तक क साज सजायेंगे । हमारा दृढ विश्वास है कि यदि हम राजी राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर दना बन्द कर सके तो अमानुषी राज्य का नाश निश्चित है । अत हम शपथपूवक सकल्प करत हैं कि पूण स्वराज्य की स्थापना के हतु कांग्रेस समय समय पर जो

1 पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २

आज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।[1] घोषणा पत्र में विदेशी शासकों की भारत हित विरोधी नीति का जितने स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया गया था वह अपूर्व थी और भारतीय राष्ट्रवादक विकास का सूचक था। भारतवासियों के सम्मुख विदेशी शासन के राहु द्वारा भारतीय जीवन के चन्द्र का ग्रसित रूप रखा गया था। अतः गांधीजी ने भारत के दुर्भाग्य रूपी विदेशी शासन व्यवस्था को मिटाने के लिए आन्दोलन का नेतृत्व किया। इस आन्दोलन का उद्देश्य भारत के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। इसके पूर्व असहयोग आंदोलन के अवसर पर राष्ट्रवादियों का लक्ष्य पूर्ण स्वतन्त्रता न होकर औपनिवेशिक शासन मात्र था। कांग्रेस के आदेश पर १७२सदस्यों ने असेम्बली तथा राज्य-परिषद् की सदस्यता त्याग दी।

सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन की भांति सविनय-अवज्ञा आंदोलन में भी सरकार के साथ स्वेच्छापूर्वक सहयोग करने वाले वकीलों विद्यार्थियों आदि को सरकार से असहयोग कर संग्राम में भाग लेने के लिए प्रेरित किया गया था। गाँधीजी द्वारा यह द्वितीय राष्ट्रीय जन आन्दोलन का आयोजन था। प्रारम्भ करने के पूर्व उन्होंने भली प्रकार निरीक्षण कर लिया था कि यह आन्दोलन किसी प्रकार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हिंसात्मक कार्यों की ओर निर्देश नहीं करेगा।[2] इसकी प्रारम्भिक स्थिति में उन्होंने केवल ७६ चुने हुए सत्याग्रहियों के साथ स्वयं नमक कानून के उल्लंघन द्वारा सविनय अवज्ञा का बीजारोपण करने का निश्चय किया।

६ अप्रैल सन् १९३० को गांधीजी ने आन्दोलन के लिए जिस कार्यक्रम का आयोजन किया था उसकी प्रमुख बातें थीं (१) गांव गांव में नमक कर मिटाने के लिए नमक का निर्माण (२) शराब बन्दी के लिए दुकानों पर जाकर धरना देना यह काम विशेष रूप से देश की महिलाओं को सौंपा गया था। विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देना। घर घर से विदेशी वस्त्रों का निराकरण कर उन्हें अग्नि में भस्म करना। (३) खादी का प्रचार, युवक तथा वृद्ध सभी के द्वारा चर्खे पर सूत कातना। (४) अस्पृश्यता को मिटाकर समाज के निम्न वर्ग का उत्थान विद्यार्थियों सरकारी अफसरों द्वारा सरकारी स्कूल तथा पदों का परित्याग करना।

---

1. पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २८६
2. A R Desai Social Background of Indian Nationalism P 321
3. The Boycott of foreign cloth and liquor enforced by methods of picketing and propaganda met with success, students in considerable numbers left educational institutions The Congress Committees organised meetings in defiance of police ban and firings and lathi charges were resorted by the police to break the banned rallies
   A R Desai—Social Background of Indian Nationalism, P 322

नमक कानून भग आन्दोलन

अग्रेजो की व्यापारिक नीति ने अपने लाभ के लिए दनी नमक कर सविधान बनाया था जिससे विदशी चेशायर नमक की भारत म खपत हो सके। वस्तुत उनकी वणिक नीति अत्यधिक प्रबुद्ध एव स्वाथपूण थी। भारत से कच्चा माल ले जाने वाले जहाजो को इगलड से खाली लौटना पडता था। जहाज के इस व्यय की पूर्ति कूटनीति द्वारा की गई। यदि भारतीय नमक पर कर लगा कर उसक मूल्य मे अभिवृद्धि न की जाती तो विदशी नमक को सस्ते दामो पर बेचकर उसकी खपत की सुविधा न रहती। गाधीजी ने नमक जसी साधारण किन्तु दनिक जीवन के लिए अति आवश्यक वस्तु पर लगे कर को भग करने का निश्चय किया। साबरमती की बैठक के बाद यह विषय अधिक महत्वपूण हो गया। यह कानून भग करने का सग्राम भौतिक न होकर नैतिक था। भारत की दरिद्रता की दृष्टि से यह नमक कानून अयाय तथा स्वार्थ पर आधारित था। नमक सत्याग्रह की योजना थी—किसी नमक के क्षत्र म जाकर नमक बनाया जाय नमक उठाया जावे और इस प्रकार कानून भग किया जाये। इस सत्याग्रह को प्रारम्भ करने के पूव गाधीजी ने वाइसराय लाड इरविन के नाम पत्र लिखा था जिसमे सरकार की नीति स्वतत्रता तथा उसके हेतु और आदोलन के कारण आदि विषय स्पष्ट कर दिये थे।

१२ माच सन १९ ० को फौलादी अनुशासन म सधे ७९ आश्रमवासियो को साथ लेकर गाँधीजी न समुद्र तट पर अवस्थित दण्डी ग्राम की ओर प्रस्थान किया। *यह शुद्ध नतिक ढग का आक्रमण था। उनकी यात्रा आरम्भ होने के पूव ही सरदार* वल्लभ भाई पटेल मागवासियो को जाग्रत करने के लिए पहुच गये थे किन्तु सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर अपनी दमन नीति का परिचय दिया जिसके फलस्वरूप गुजरात *का बच्चा बच्चा अग्रजो सरकार का विरोधी हो गया। गाधीजी की इस नतिकता* पूण दण्डी यात्रा का भारतीय जन-जीवन पर गहरा प्रभाव पडा। अनेक ग्राम कर्मचारियों ने त्याग पत्र दिये। नगर डरते रह परन्तु ग्राम आदोलन मे पीछे चल दिये। *यह अग्रजी सत्ता के खिलाफ ३३ करोड भारतीयो के विद्रोह का परिचायक मात्र* था।[1] गाधीजी ने दण्डवासियो को चेतावनी दे दी थी कि उनके दण्डी पहुचने के पूव देश म कही भी सविनय अवज्ञा प्रारम्भ न की जाय। सत्याग्रहियों के लिए प्रतिज्ञापत्र *बना। सरकारी नौकरी छोडने वालो को बधाई दी गई। इसके अतिरिक्त गांधीजी* ने देश को यह आदेश भी दे दिया था कि उनके गिरफ्तार होने पर अत्यन्त सक्रिय अहिंसा को कायक्रम दिया जाये। अहिंसा म धार्मिक विश्वास रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति *स्त्री अथवा पुरुष इस पराधीनता को मिटाने के उद्योग म या तो मर मिटे या कारा* वास मे बन्द रहे। श्री मोतीलाल नेहरू ने इसी समय क आसपास अपने शाही भवन का दान दिया। गाँधीजी ने सूत्र रूप से विचार दिया था। उनके शिष्यो ने भाष्यकार

१ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० ३०२

यन कर उसे जनता को समझाया । अनेक कार्यकर्ता राष्ट्रदूत बनकर उसका प्रचार करने दूर दूर निकल पड़े ।[1]

६ अप्रैल १९३० को गांधीजी ने नमक कानून तोड़ा । इस अवसर पर गांधी जी ने कहा था—

अंग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक भौतिक सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह का नाश कर दिया है । मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हूँ और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूँ । मैंने स्वयं गॉड सेव दी किंग के गीत गाये हैं । दूसरों से गवाये हैं । मुझे भिक्षा देहि की राजनीति में विश्वास था । पर वह सब व्यर्थ हुआ । मैं जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नहीं है । अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है । पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है । हम किसी को मारना नहीं चाहते किन्तु इस सत्यानाशी शासन को भस्म कर देना हमारा परम कर्तव्य है ।[2]

इस आंदोलन का आश्चर्यकारी प्रभाव हुआ । विदेशी सरकार इस सीधे सा[मूहिक] आंदोलन से आतंकित हो गई । अब सरकार का पूरा ध्यान असहयोगियों पर था । उसकी नैतिक प्रतिष्ठा तो मिट्टी में मिल चुकी थी राजनीतिक दृष्टि से भी उसकी सत्ता मिटाई जा रही थी । जमींदारों मकानमालिकों साहूकारों व्यापारियों आदि को बुलाकर यह धमकी दी गई कि यदि वे सत्याग्रहियों की सहायता करेंगे तो वे सरकार के कोपभाजन बन जायेंगे । लेकिन देशप्रेम की प्रबल धारा इन धमकियों का उल्लंघन करती अबाध रूप से बहती जा रही थी । पट्टाभि सीतारम्मया के शब्दों में स्वाधीनता पथ के इन यात्रियों के साथ कई विदेशी संवाददाता चित्रकार और ग्राम ग्राम के सैकड़ो लोग तथा भिन्न भिन्न प्रांतों से आए हुए मुख्य व्यक्ति भी गये ।[3]

इस आंदोलन की चर्चा विदेशों में भी हुई । पेशावर में यह आंदोलन अधिक भयंकर रूप में फूटा । वहाँ जन-समूह ने प्रदर्शन के साथ पुलिस से संघर्ष भी किया । इस राष्ट्रीय चेतना की चरम परिणति थी एक गढ़वाली दस्ते के सैनिकों द्वारा जन-समूह पर गोली चलाने की आज्ञा स्वीकार न करना ।

५ मई को गांधी जी कैद किये गये । सरकार के इस कृत्य के विरोध में हड़तालें की गईं । जिन पत्रों तथा प्रेसों ने इस आंदोलन को सहयोग दिया था उन्हें बंद कर दिया गया और पत्रकारों को कारावास दण्ड दिया गया ।[5] सन् १९३१ में गांधी जी

१ पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ ३०४
२ वही पृ० ३०६
३ वही पृ ३०५
४ Desai Social Background of Indian Nationalism 323
५ Under the press ordinance 67 news papers and 55 printing presses had been closed down before the end of July
Desai Social Background of Indian Nationalum I 3 3

बिना किसी शर्त के मुक्त कर दिए गए। सरकार ने कांग्रेस से समझौते के लिए वार्ता प्रारम्भ की।

गांधी इरविन पक्ट

५ मार्च १९३१ को गांधी इरविन पक्ट पर हस्ताक्षर हुए और राष्ट्रीय संघर्ष स्थगित किया गया।[१] इस पक्ट के अनुसार कांग्रेस को गोलमेज परिषद में आमन्त्रित किया गया जिसमें संघीय उत्तरदायी शासन के आधार पर भारत के भावी संविधान के स्वरूप पर विचार होना निश्चित हुआ था। सरकार द्वारा अहिंसात्मक राजनीतिक कैदियों को मुक्त करने तथा प्रजा पर लगाये गये कठोर प्रतिबंधों को मिटाने का भी निश्चय किया गया। कांग्रेस के वामपंथी सदस्य—सुभाषचन्द्र बोस जवाहरलाल नेहरू आदि इस पैक्ट के विरुद्ध थे केवल राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से ही वे हस्ताक्षर के पक्ष में सहमत हुए थे। इसके पश्चात् गांधीजी गोलमेज परिषद् में सम्मिलित होने के लिए इंगलैंड गए। वहाँ उन्होंने अल्पसंख्यकों की समस्या पर अपने विचार व्यक्त किए भारतीयों द्वारा सेना के उत्तरदायित्व लिए जाने के प्रस्ताव को प्रस्तुत किया कांग्रेस की स्थिति स्पष्ट की तथा साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनाव का विरोध किया। परिषद मध्य में ही बिना किसी निश्चय के समाप्त हो गई। गांधी जी तथा अन्य भारतीय प्रतिनिधि दल वापिस लौट आये।

इस बीच भारतीय ग्रामों की अवस्था अधिक शोचनीय हो गई थी। नित्य प्रति उपज के मूल्य घटने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति कठिन होती जा रही थी। १९३१ के अन्तिम भाग में संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) गुजरात तथा बर्मा के कुछ भागों में कृषकों ने भूमि कर देना अस्वीकार कर दिया।[२] पैक्ट द्वारा सन्धि करने पर भी सरकार की नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ था।

गांधी जी ने भारत लौट कर फिर आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। ४ जनवरी १९३२ को उन्हें पुनः कारावास का दण्ड दिया गया। कांग्रेस पर प्रतिबंध लगाये गये। सरकार ने तत्काल ही कुछ विशेष धारायें लागू कर दी जिससे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रसार एवं विकास न हो सके। प्रेसों पर प्रतिबंध अधिक कठोर हुआ। कांग्रेस के अनुमान के आधार पर अप्रैल १९३३ में राजनीतिक कर्मियों की संख्या लगभग १२०००० थी।[३] सविनय अवज्ञा आन्दोलन के विकास के फलस्वरूप काश्मीर तथा अलवर जैसी रियासतों में भी संघर्ष हुआ। देशी रियासतों की प्रजा ने भी देश का साथ दिया। आन्दोलन भंग करने के लिए सरकार को ब्रिटिश सेना की सहायता लेनी पड़ी।

ब्रिटिश शासकों ने राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए तथा आन्दोलन को समाप्त करने के लिए पुनः भेद नीति के अस्त्र का प्रयोग किया। हिन्दू मुसलमानों के

१ Palme Dutt India Today P 347
२ A R Desai—Social Background of Indian Nationalism P 324
३ Ibid P 324

विभेद से ही उसकी तृप्ति न हुई थी अत पिछड़ी जातियों एवं अन्य अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र का आयोजन करना चाहा। गांधी जी ने इसका विरोध आमरण अनशन द्वारा किया। उनके प्राणों की रक्षा के लिए पूना में हिन्दुओं का एक सम्मेलन हुआ जिसमें अस्पृश्यता निवारण का व्रत लिया गया और परिगणित जातियों के राजनीतिक अधिकारों के लिए पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर किये गये। इसके अनुसार सम्मिलित निर्वाचन क्षेत्र रखा गया परन्तु पिछड़ी जातियों के लिए कुछ अधिक स्थान विधानसभाओं में निर्धारित हुए। हरिजनों के उद्धार के गांधी जी ने १९३३ में एक और व्रत किया। इन प्रश्नों में उलझ जाने के कारण और सरकार की दमननीति तथा नये संविधान के कारण जनता सत्याग्रह में पूरा योग न दे सकी। कारावास से मुक्त होने के पश्चात गांधी जी हरिजनों के उद्धारकार्य में संलग्न हो गये। सन् १९३४ मई के लगभग सविनय अवज्ञा आन्दोलन पूर्णतया समाप्त हो गया।[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य में यह आन्दोलन सफल न हो सका। किन्तु राष्ट्रवाद के प्रसार तथा विकास की दृष्टि से यह अत्यधिक उपयोगी रहा। असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा इस आन्दोलन में असहयोगी जनता की संख्या कहीं अधिक थी। कृषकवर्ग ने इसमें सर्वाधिक योग दिया था। श्रमिक वर्ग भी इसमें प्रभावित हुआ था और उसने भी सहयोग दिया था। श्रमिक वर्ग की हड़तालों से तथा कृषक वर्ग के भूमि-कर-बन्दी से आन्दोलन में अधिक स्फूर्ति तथा प्रभावोत्पादकता आ गई थी। इस वर्ग के प्रवेश से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में समाजवादी तथा साम्यवादी विचारधारा का मेल हुआ। सन् १९३५ ई० के पश्चात् भारतीय राष्ट्रवाद समाजवाद के प्रगतिशील तत्वों से अनुप्राणित हुआ।[2] वामपक्षी राष्ट्रवादी युवकदल ने मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होने के कारण १९३४ ई० में कांग्रेस समाजवादी दल का निर्माण किया। यह दल कांग्रेस से पृथक न था। इसने विदेशी शासन से भारत की स्वतन्त्रता के साथ ही असमर्थ को मिलने के लिए पूंजीवाद से श्रमिक वर्ग की मुक्ति का ध्येय भी अपनाया था। श्रमिक तथा कृषकवर्ग इनके राष्ट्रीय संग्राम की सबसे बड़ी शक्ति थे। कांग्रेस के इस वर्ग का गांधी जी के राष्ट्रवाद—उनके आदर्श, कार्यक्रम तथा साधन में विश्वास नहीं रह गया था।[3] सुभाषचन्द्र बोस ने फारवर्ड

1 It was not until May 1934 that the final end came to the struggle which had opened with such magnificent power in 1930 Palme Dutta—India Today P 353

2 New accessions of strength were won after the close of the national civil disobedience struggle of 1930 –34 as the younger national elements proceeded to draw the lessons of that struggle Palme Dutta – India today P 394

3 A R Desai—Social Background of Indian Nationalism p 388

ब्लाक की स्थापना की। सरकार द्वारा मजदूर सगठन तथा साम्यवादी दल को अवध घोषित किया गया। मजदूर आन्दोलन को दबाने के लिए गोलिया तक चलवाई गइ।[१]

कृषक-आन्दोलन ने अधिक ध्यान आकृष्ट किया था। उनम राष्ट्रीय चेतना तथा वगचेतना अधिक मात्रा मे आई। अखिल भारतीय कृषकसभा ने भी समाजवादी भारत का ध्येय निर्धारित किया।[२] कृषकसभा स्वतन्त्र सघर्षों का सगठन कर राष्ट्रीय आदोलन म मिल गई। नवीन विचारधाराओ से प्रभावित होने के कारण कांग्रेस क कायक्रम म श्रमिक तथा कृषक वग की स्वतन्त्रता तथा आर्थिक अवस्था स सबधित कुछ बातो का समावेश हो गया था। इस प्रकार राष्ट्रवादियो न दलित वर्ग के उत्थान के लिए विशेष रूप से आन्दोलन किया।

देशी राज्यो म प्रजातन्त्रात्मक राज्य विधान क लिए सघष हुआ। यह आन्दोलन व्यापारी वग द्वारा राजाओ की निरकुश प्रवृत्ति के विरुद्ध किया गया था। इसी समय मुस्लिम लीग भी अधिक व्यवस्थित हुई। अत देश म विभिन्न राजनीतिक विचारधाराओ क उद्गम तथा विविध प्रकार के आदोलन से राष्ट्रवाद को अधिक पुष्टता प्राप्त हुई। राष्ट्रीय आन्दोलन को शक्ति मिली जिसस उसक सभी पक्ष सुदृढ हुए।

१६१६ ई० के पश्चात् पुन १६३५ म ब्रिटिश शासकों ने भारतीय सावैधानिक परिवर्तन क लिए अधिनियम बनाया। इस अधिनियम के दो प्रमुख भाग थ—प्रथम केन्द्र म सघ शासन अर्थात् अग्रेजी भारत क प्रान्तो के साथ देशी राज्यो का मिलाकर भारतीय सघ का निर्माण और द्वितीय प्रान्तीय स्वायत्तता। सघ शासन का राष्ट्रीय नेताओ द्वारा एक स्वर से विरोध किया गया क्योकि इसके द्वारा पूर्ण उत्तरदायी शासन क स्थान पर द्वध शासन का ही विधान किया गया था। गवनर जनरल क विशेषाधिकारो और व्यक्तिगत शक्तियों के विस्तृत क्षत्र के सम्मुख सघीय शासन व्यवस्था एक भ्रममात्र थी।[३] इस अधिनियम को १६३७ म कार्य रूप म परिणत किया गया लेकिन सघ योजना लागू न हो सकी केवल प्रान्तीय स्वायत्तता क्रियान्वित हुई।[४] भारतीयो की यह बहुत बड़ी विजय थी। राजनीतिक सामाजिक आर्थिक प्रगति के लिये भारत को एकता की आवश्यकता थी जिसकी पूर्ति इसके द्वारा सभव हो सकती थी। प्रान्तीय स्वायत्तता द्वारा प्रान्तो की प्राचीन शासन प्रणाली का अन्त हुआ और प्रान्तीय शासन की एकता स्थापित हुई।[५] लेकिन गवनर के विशेषाधिकारो के सम्मुख प्रान्तीय स्वायत्तता नाममात्र की ही थी। जवाहरलाल नेहरू न इस

१ Palme Dutt—India Today p 393
२ A R Desai Social Background of Indian Nationalism p 389
३ Ibid p 464
४ Palme Dutt—India Today p 464
५ डा रघवंशी भारतीय सांवधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ १८४

अधिनियम के अन्तर्गत पदग्रहण करने का स्पष्ट शब्दों में विरोध किया। लेकिन कांग्रेस ने १९३७ में चुनाव में भाग लिया तथा ग्यारह प्रान्तों में से छः में अर्थात् संयुक्तप्रान्त बम्बई मद्रास, बिहार मध्यप्रान्त और उड़ीसा में बहुमत में उसकी विजय हुई।[1] राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं द्वारा चुनाव में भाग लेने का कारण मनोवैज्ञानिक था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त होने के पश्चात् पुनः राष्ट्रीय नेताओं के अन्दर व्यवस्थापिका सभाओं में प्रवेश कर राजनीतिक गतिरोध दमनकारी कानूनों को रद्द कराने तथा नये सुधारों को क्रियान्वित कराने की भावना सुदृढ़ होने लगी थी। इसके अतिरिक्त गांधी जी भी सहमत हो गये थे।[2] स्वयं गांधी जी ने अपने को इससे पृथक रखा तथा रचनात्मक कार्यक्रम के कुछ भक्तों को साथ लेकर चर्खा खादी प्रचार जातीय एकता, छुआछूत मिटाने तथा मद्यपान निषेध आदि कार्यों में लगे रहे। अतः कांग्रेस ने प्रान्तीय प्रशासन में पदग्रहण कर प्रान्तीय स्वराज्य की योजना को मूर्त किया।

सन् १९२० १९३७ के काल के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास से यह स्पष्ट है कि प्रमुख रूप से कांग्रेस ने भारत में राष्ट्रीय भावना का संचार एवं प्रसार किया। कांग्रेस ने यह कार्य गांधी जी के नेतृत्व में किया था। गांधी जी ने वस्तुतः सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाया था। कुछ वर्षों तक स्वराज्य पार्टी की धूम रही थी, जिनके सिद्धान्त गांधी जी से कुछ भिन्न थे। मुस्लिम लीग असहयोग आन्दोलन के पश्चात् साम्प्रदायिकता के आधार पर कांग्रेस से अलग हो गई थी। हिन्दू महासभा की स्थापना हिन्दू धर्म तथा जनता की सुरक्षा के लिये की गई थी। अतः इन सब दलों के सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक जीवन में उनके प्रयोगों के स्वरूप का विस्तृत विवेचन उपयुक्त होगा। साधन के आधार पर इन राष्ट्रीय दलों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं —

(१) अहिंसात्मक साधन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये सक्रिय दल। इसमें गांधी जी के राष्ट्रीय सिद्धान्त तथा राष्ट्रवाद प्रमुख है। स्वराज्य पार्टी इसी के अन्तर्गत रखी जायगी। हिन्दू महासभा की राष्ट्रीयता संकीर्ण है तथा मुस्लिम लीग का राष्ट्रवाद साम्प्रदायिक।

(२) हिंसात्मक साधन द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए सक्रिय दल अर्थात् क्रान्तिकारी दल। इनने शस्त्र प्रयोग हिंसा षड्यन्त्र द्वारा स्वाधीनता प्राप्ति का सफल उद्योग किया। इनके सिद्धान्त अहिंसावादियों के प्रतिकूल थे। अतः इनका विवेचन पृथक किया गया है। राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का विश्लेषण भी आवश्यक है। विदेशी साम्राज्यवाद ने भारत को सामाजिक तथा आर्थिक दुरावस्था के गर्त में डाल दिया था।[3]

१ डा० रघुवंशी भारतीय सांविधानिक तथा राष्ट्रीय विकास पृ० २०५

२ वही पृ० १७६

३ Desai – Social Background of Indian Nationalism. p 23

सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियां (सन् १६२० १६३७)

अंग्रेजी राज्य में पूंजीवादी व्यवस्था की स्थापना हुई तथा ग्रामीण आत्म निर्भर अर्थ व्यवस्था का अन्त हुआ। कृषकों का भूमि पर अधिकार समाप्त हुआ तथा कृषि सम्बन्धी भूमि जमीदारों की व्यक्तिगत सम्पत्ति बन गई। पंचायतों के हाथ से न्याय का अधिकार सूत्र निकल कर जमीदार तथा सरकारी न्यायालयों के हाथ में चला गया। उनसे सरकारी दलाल मनमाना धन वसूल करने लगे। कृषक जमींदार और सरकारी नौकरशाही की दुहरी चक्की मे पिसने लगे। लगान के साथ साथ बेगारी डाड मुचलका आदि अन्य दासता के अभिशाप से ग्रसित हो किसानो का जीवन नरक तुल्य हो गया। आर्थिक दुर्व्यवस्था के कारण लगान न चुका पाने पर भूमि से भी उन्हें वंचित होना पड़ता था। ऋण की व्यवस्था न होने के कारण साहूकारों के शोषण का भी उन्हें पात्र बनना पड़ा। इस नवीन भूमि-व्यवस्था ने ग्रामों के सामाजिक जीवन पर अपना विपाक्त प्रभाव डाला। पंचायत अथवा ग्राम के वृद्ध जनो का भय न रह जाने पर तथा जमीन का सीधा सम्बन्ध जमींदार से होने के कारण व्यक्तिगत स्वार्थों ने विकराल रूप धारण किया। भूमि के लिए झगडे मनमुटाव और अन्य अनेक प्रकार के सघर्षों ने ग्रामीण जीवन की शान्ति भंग कर दी। न्यायालयों के चक्कर लगाते तथा जमीदार और साहूकारो के तलुवे सहलाते हुए कृषक साधारण मजदूर बन जाते थे।

जैसा कि पिछले अध्यायमों में स्पष्ट किया जा चुका है ग्रामो की अर्थ-व्यवस्था की दुर्दशा का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण था भारतीय ग्रामोद्योगो का छिन्न भिन्न होना। यातायात की सुविधाओं के कारण ग्रामों में भी विदेशी वस्त्र आदि जीवन के आवश्यक उपकरणो की खपत होने लगी तथा कुटीर उद्योग विनष्ट होने लगा। कृषक के पास कृषि के अतिरिक्त जीवन का अन्य साधन शेष न बचा। अत प्राकृतिक साधनो तथा कलाकौशल के होते हुए भी भारत दिन पर दिन निर्धन होता जा रहा था क्योंकि राजनीतिक पराधीनता के अभिशाप ने उसकी प्रगति तथा विकास के प्रत्येक मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था।[१] भारत की दुर्दशा का यह रूप अत्यन्त करुण था। इसने भारतीय जीवन का सगठन व्यवस्था तथा एकता की भावना को विनष्ट कर दिया।[२] भूमि के छोटे-छोटे टुकड़े होते जा रहे थे। अर्थाभाव अशिक्षा अज्ञान

१ Palme Dutt Indian Today p 29

२ Historically speaking the destruction of the self sufficient village was a progressive event thoug it involved much tragic distruc ton such as that of collective life among the village population of tender human relations between them and of economic security among its members unless a war or a famine intervened

Desai–social Background of Indian Nationalism p 37

तथा नवीन साधनों के अभाव में कृषकवर्ग पुरानी रीति पर ही आधा पेट भोजन कर किसी प्रकार जीवन चला रहा था। उसके पास दैवी प्रकोपों को सहन करने के लिए कुछ भी शेष नहीं बचता था। अकाल, अतिवृष्टि बाढ़ आदि के समय उसकी दुर्दशा की कोई सीमा नहीं रह जाती थी।

अंग्रेजी शासन के पूर्व ग्रामवासियों को जंगल की लकड़ी के उपयोग का पूरा अधिकार था। जमींदारी व्यवस्था के पश्चात उसका यह अधिकार भी छिन गया। ग्रामवासियों का अर्थाभाव बढ़ता गया। नमक जैसी अति आवश्यक किन्तु अत्यन्त सस्ती वस्तु पर कर तो असह्य हो गया।

ग्रामवासियों की आय तथा व्यय के बीच का अन्तर निरन्तर बढ़ता गया। सामाजिक मर्यादा के पालन के लिये तथा दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वे ऋण के अथाह सागर में डूबते गये। इसमें उद्धार न होने पर उनके बैल बिकने लगे, उनकी पैतृक भूमि छिनने लगी तथा भोजन के अभाव में या तो उन्हें अपना परिवार मृत्यु के मुख में भेजना पड़ता अथवा नगर में आकर मजदूरी करनी पड़ती अथवा अन्य अनेक दुष्कर्मों का सहारा लेकर देश के नैतिक पतन का कारण बनना पड़ता।

ग्रामों में भी दहेजप्रथा बाल विवाह तथा अन्य अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियों ने अपनी जड़ें गहराई से जमा ली थी। शिक्षा के अभाव में अन्धविश्वास रूढ़ियों तथा कुरीतियों में जकड़ कर भारत की अधिकांश ग्रामवासिनी जनता का जीवन अभिशाप बन गया। इसके अतिरिक्त भारत की निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या ने इस अग्नि में घृत का योग दिया।

ग्रामीण जीवन की भांति नागरिक जीवन भी अस्तव्यस्त हो गया। नगरों की हस्त उद्योगकला को विदेशी पूँजीवादी मशीनी उद्योग से अत्यधिक आघात पहुँचा। विदेशी वस्तुओं का भारतीय बाजारों में अधिक विक्रय हुआ क्योंकि इनका मूल्य कम था। इसके अतिरिक्त भारत में मशीन उद्योग की अभिवृद्धि भी सीमित थी जहाजों बिदा, तथा अन्य बड़े उद्योगों को विदेशी शासकों ने अभिवृद्ध नहीं होने दिया था।[1] पूँजीवादी शासन व्यवस्था में उद्योगीकरण भी व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अतः नवीन वर्गों का जन्म हुआ जैसे जमींदार कृषक उद्योगपति मजदूर आदि। इन वर्गों के बीच आर्थिक सन्तुलन नहीं था, सम्पूर्ण भारतीय सामाजिक ढाँचा अव्यवस्थित हो गया।

विदेशी शासन के अन्तर्गत दो जाल बाला शिक्षा अत्यन्त दूषित था। उसका भारतीय सामाजिक जीवन पर अस्वस्थ प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य शिक्षा पद्धति ने भारत

1 Desai—Social Background of Indian Nationalism p 94

2. Industrialization made the Indian economy more unified cohesive and organic It raised the tone of the economic life of India Desai—Social Background of Indian Nationalism p 105

के शिक्षित वर्ग में प्राचीन सामाजिक जीवन के विरुद्ध पश्चिमीकरण के सिद्धान्त का आरोपण किया। उसकी मन स्थिति में अहितकर परिवर्तन हुआ क्योंकि वह अपनी सभ्यता संस्कृति धर्म रहन सहन के प्रति एक हीन भावना से भर गया। अंग्रेजी भाषा तथा रहन-सहन पर अधिक बल देने के कारण शिक्षित वर्ग तथा साधारण जनता के बीच अन्तर बढ़ गया और सामाजिक सन्तुलन विनष्ट हो गया।[1] शिक्षा इतनी व्यय-साध्य थी कि १६३१ तक ६२ प्रतिशत भारतीय जनता अशिक्षित बनी रही।[2] भारतीय राष्ट्रवादियों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से इस शिक्षा-पद्धति की आलोचना की थी। ए० आर० देसाई के अनुसार यह मत अधिक सत्य नहीं है कि तत्कालीन शिक्षा-पद्धति ने राष्ट्रवाद को जन्म दिया था वरन् राष्ट्रवाद के प्रारम्भ तथा विकास का प्रमुख कारण था भारत की तत्कालीन आर्थिक एवं सामाजिक दुर्दशा ग्रस्त परिस्थितियां।[3] इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस शिक्षा-पद्धति के कुछ लाभ भी थे।

ग्रामीण जीवन की भांति नागरिक जीवन में भी आर्थिक सन्तुलन सामाजिक पतन तथा राजकीय अमरक्षण ने वेश्यावृत्ति विधवाओं की समस्या दहेजप्रथा आदि को भयंकर रूप प्रदान किया। जातिभेद सम्प्रदायभेद तथा धर्मभेद बढ़ता जा रहा था जिसे विदेशी शासकों से प्रोत्साहन मिल रहा था। नवीन वर्गों के बीच बढ़ती निर्धनता ने संघर्ष को जन्म दिया। भारतीय सामाजिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या थी अछूता की जिन्हें सामाजिक अथवा धार्मिक मान्यता दिए बिना राष्ट्रीय प्रगति असम्भव था। हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष भी विकराल रूप धारण कर रहा था। गांधीजी ने सामाजिक तथा धार्मिक सुधार को राष्ट्रीय आन्दोलन का महत्वपूर्ण अंग बनाया था। ब्रिटिश शासकों ने इसके लिए कोई प्रयत्न नहीं किया था। गांधीजी के राष्ट्रवाद के स्वरूप विश्लेषण में इसका विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। अतः ब्रिटिश शासन काल की आर्थिक सामाजिक धार्मिक परिस्थितियों के परिचय से राष्ट्रवाद के विकास तथा राष्ट्रीय आन्दोलन के स्वरूप के ज्ञान में सहायता मिलेगी।

---

१ A R Desai—Social Background of Indian Nationalism P 125

२ A R Desai Social Background of Indian Nationalism P 132

३ All Higher education because of its cost had been inaccessible to the great majority of the Indian people —

A R Desai—Social Background of Indian Nationalism P 137

राष्ट्रवाद का दार्शनिक पक्ष

गांधीजी के असहयोग तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन का दर्शन

गांधीजी का असहयोग आन्दोलन मात्र सैद्धान्तिक ही नहीं था। वह मानव जीवन के लिए अति व्यवहारोपयोगी भी था। उसके सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही पक्ष अत्यधिक स्पष्ट तथा पुष्ट थे। भारतीय राष्ट्रीय जीवन में उन्होंने इस असहयोग का सफल प्रयोग किया था।

असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन का सैद्धान्तिक पक्ष

गांधीजी का सत्याग्रह आन्दोलन लोकमान्य के राष्ट्रीय आन्दोलन की भांति ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था। सत्य तथा अहिंसा उसके दो सबल पक्ष थे।

सत्य—असहयोग आन्दोलन का प्रमुख सत्य था। अहिंसात्मक साधन द्वारा वे इस सत्य को प्राप्त करना चाहते थे। उनके मत में सत्य ही ब्रह्म था।[1] उन्होंने सत्य की व्याख्या करते हुए लिखा था—सत्य अर्थात् परमेश्वर—यह सत्य का परे अथवा उच्च अर्थ है। अपर अथवा साधारण अर्थ में सत्य के मानी हैं सत्य आग्रह, सत्य विचार, सत्यवाणी और सत्य कर्म। मनुष्य जीवन का परम ध्येय इसी सत्य अथवा ब्रह्म की प्राप्ति है।[2] यह सत्य अथवा ब्रह्म जातिगत तथा भेदाभेद से परे है। सत्य का शोधक सत्य की अविश्रान्त खोज करता है। संयम व्रत उपासना आदि विविध विधान हैं जिनके द्वारा चित्त की शुद्धि की जाती है। इस प्रकार सत्य के पूर्ण ज्ञान द्वारा मनुष्य अज्ञान तथा अहं का विनाश कर पूर्ण मानव में परिणत हो जाता है। आत्मा परमात्मा अभिन्न हैं।

---

१ Gopinath Dhawan—The political philosophy of Mahatma Gandhi P 45

२—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० १५

३—There is an indefinite mysterious power that pervades every thing. I feel it though I do not see it. It is this unseen power that makes itself felt and yet defies proof because it is so unlike all that I perceive through my senses. It transcends reason. But it is possible to reason and the existence of God to a limited extent.
Nirmal kumar Bose—Selections from Mahatma Gandhi. P 3

४—Gopinath Dhawan—The Political philosophy of Mahatma Gandhi P 49

धर्म तो उच्च और उज्वल प्रकाश-स्तम्भ का नाम है जो मनुष्य के अन्तर के चारों ओर व्याप्त अन्धकार को छिन्न भिन्न करके उस पथ को आलोकित करता है जिस पर अग्रसर होकर वह अपने स्वरूप का दर्शन कर लेता है।[१] गांधीजी ने नियता एवं नियम्य के बीच सच्चे सम्बन्ध का उद्घाटन किया था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि उसी सत्य से समस्त प्राणिमात्र अनुप्राणित हैं। सत्य के अभाव में जीवन अपूर्ण है।[२] उन्होंने आत्मज्ञान के लिए आत्मशुद्धि को आवश्यक माना था एवं आत्मशुद्धि के लिए नैतिकतापूर्ण आचरण को।[३] गांधीजी के नैतिक सिद्धान्त हैं—सत्य, अहिंसा अस्तेय अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। सत्य का आग्रही अर्थात् सत्याग्रही सत्य की प्राप्ति कर सकता है। गांधी जी का असहयोगदर्शन आस्तिकदर्शन है। श्रद्धा में पूर्ण आस्था और विश्वास इसके आवश्यक अंग हैं। तर्क एवं बुद्धि का स्थान गौण है।[४]

गांधी जी ने सत्य का अनुभव किया था। अपने जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन में इसका प्रयोग किया था — जो कुछ मुझे आज ऐसा धर्म न्याय और योग्य प्रतीत होता है कि उसे करते स्वीकार करते या प्रकट करते मुझे शर्म नहीं लगती जो कुछ मुझे करना चाहिए और जिसे न करूं तो इज्जत के साथ जी हो न सकूं वह मेरे लिये सत्य है। वही मेरे लिये परमेश्वर का सगुण रूप है।[५]

गांधीजी के मतानुसार सत्य की अनुभूति का अधिकारी प्रत्येक व्यक्ति है। उनकी इस सत्यानुभूति की सर्वप्रमुख व्यावहारिक विशेषता थी कि अपने आस पास प्रवर्तित असत्य अन्याय या अधर्म के प्रति उदासीन भाव रखने वाला व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता है —

अपने आस पास प्रवर्तित असत्य अन्याय या अधर्म के प्रति उदासीन भावना

१—कमलापति त्रिपाठी। बापू और भारत। पृ० ८

२—Gopinath Dhawan—The political philosophy of Mahatma Gandhi P 43

३— To me God is truth and love God is ethics and morality God is fearlessness God is the source of Light and yet He is above and beyond all these
M K Gandhi—Truth is God —P 10

४ 'This ethical outlook is the backbone of Gandhiji's political philosophy even as his ethics has for its foundation in metaphysical principles
Gopinath Dhawan—The political philsophy of Mahatma Gandhi P 61

५ You can realize the wider consciousness unless you subordinate complete reason and intellect and the body
Nirmal Kumar Bose—Selections from Gandhi. P 7

६—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० १४

रखने वाला व्यक्ति सत्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता। सत्य के शोधक को इस असत्य अन्याय और अधर्म के उच्छेद के लिए तीव्र पुरुषार्थ करना होता है और जब तक इसका सत्यादि साधनों से उच्छेद करने में वह सफल नहीं होता तब तक अपनी सत्य की साधना को अपूर्ण ही समझता है। अतः असत्य, अन्याय, और अधर्म का प्रतिकार भी सत्याग्रह का आवश्यक अंग है।[1]

अहिंसा— गांधी जी के अनुसार सत्य साध्य और अहिंसा साधन है लेकिन असहयोग दर्शन में साध्य तथा साधन में अन्तर नहीं था।[*] अतः उनका ईश्वर सत्य तथा अहिंसा से पृथक नहीं था। अहिंसा आचरण का स्थूल नियम मात्र नहीं है बल्कि मन की वृत्ति है। जिस वृत्ति में कहीं द्वेष की गंध तक न हो वह अहिंसा है।

ऐसी अहिंसा सत्य में बराबर ही व्यापक है। इस अहिंसा की सिद्धि हुए बिना सत्य की सिद्धि होना असंभव है। इसलिये सत्य को भिन्न रीति से देखें तो वह अहिंसा की पराकाष्ठा ही है। पूर्ण सत्य और पूर्ण अहिंसा में भेद नहीं है फिर भी समझाने के सुभीते के लिए सत्य साध्य और अहिंसा साधन मान ली गई है।

गांधीजी अहिंसा को मानव का परम धर्म मानते थे।

अहिंसा परमो धर्म अहिंसा परम तप
अहिंसा परम सत्यम् सता धर्म प्रवर्तते ॥

अहिंसा का मूल धर्म प्रेम है। प्राणिमात्र से प्रेम वह आत्मिक शक्ति या बल है जिसके लिए कठिन अभ्यास की आवश्यकता होती है गांधीजी की अहिंसा दुर्बलों असहायों या कायरों का अस्त्र नहीं थी। सिद्धान्त रूप में हिंसा का परित्याग किया गया था। सहानुभूति, भय तथा कष्ट सहन द्वारा प्रतिहिंसक के मन पर विजय पाना ही इस अहिंसा का लक्ष्य था। सेवा त्याग और बलिदान, अहिंसा के मूलमंत्र थे। प्रेम इसका प्राण था।[2] गांधी जी की अहिंसा का सिद्धान्त भावात्मक है, अभावात्मक नहीं, सृजनात्मक है ध्वंसात्मक नहीं। अनुभव तथा विश्वास द्वारा इस अहिंसा का प्रयोग जीवन में किया जा सकता है। मनुष्य प्रेम तथा अहिंसा द्वारा सचालित

१—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी शोहन पृ० १७ खंड १—धर्म

* Means and end are convertible terms in my philosophy of life

Nirmal Kumar Bose—Selections from Gandhi P 13

२—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० १६ खंड १—धर्म

† 'Though there is enough repulsion in nature she lives by attraction. Mutual love enables Nature to persist Man does not live by destruction Self love complete regard for others.'

M K Gandhi—Truth is God. P 17

माय व्यापार द्वारा जीवन के चरम लक्ष्य सत्य अथवा मुक्ति की प्राप्ति कर सकता है।[1]

गाधीजी की अहिंसा देश म पुरातन काल स चली आ रही अहिंसा परमो धम म ही अन्तगत रखी जायगी। अहिंसा का उपदेश तो प्राय सभी देशों म दिया जाता रहा है किन्तु भारत की यह प्रमुख विशेषता है कि यहा अहिंसा पर विशेष बल दिया गया है। विश्व को भारत की महान् देन अहिंसा' है भारत के प्राय सभी धम अहिंसक रहे हैं। वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था का भी यही उद्देश्य था। ब्राह्मण का धम या प्रेम इसी कारण चतुवण म ब्राह्मणत्व को श्रेष्ठता प्रदान की गई थी। महाभारत तथा रामायण म युद्ध के वणन हैं किन्तु निष्कप रूप म अहिंसा का ही श्रेष्ठ माना गया है। बौद्ध तथा जैन धम तो पूणतया अहिंसक हैं। गौतम बुद्ध ने घृणा के स्थान पर प्र म का प्रचार किया था। अशोक जसे महान् सम्राट न अहिंसक बौद्ध धम का न कवल भारत मे वरन् अन्य देशो म भी प्रचार एव प्रसार कर भारतीय इतिहास म एक विशेष स्थान बना लिया है। गाधीजी की अहिंसा भी उन्ही की परम्परा मे आती है।

गाधीजी ने अहिंसा म तीव्र कायसाधक शक्ति का अनुभव किया था। उनके मतानुसार अहिंसा केवल निवृत्ति रूप कम या अक्रिया नही है बल्कि बलवान प्रवृत्ति या प्रक्रिया है।[2] व इसी कायसाधक शक्ति द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता या स्वराज्य की प्राप्ति अपना तथा राष्ट्रीय जीवन का परम लक्ष्य मानत थे। राष्ट्रीय एकता के लिये वे जीवन क प्रत्येक क्षेत्र म अहिंसा का प्रयोग करना चाहते थ। उनके विश्वबधुत्व या मानवतावाद का मूलाधार अहिंसा धम ही था।

गाँधी जी की अहिंसात्मक नीति का पालन राष्ट्रीय नताओ और साधारण जनता के साथ भारत की वीर जाति अकालियों न भी गुरु का-बाग की घटना मे किया था। पुलिस द्वारा पीटे जाने पर भी उन्होंने हाथ नही उठाया था। अकाली दल के आत्म नियत्रण की प्रशसा सरकार ने भी मुक्तकठ से की थी।[3] नि सन्देह अहिंसा में महान शक्ति अन्तर्भूत थी।

असहयोग का व्यावहारिक पक्ष

असहयोग का रचनात्मक अथवा व्यावहारिक रूप भी अत्यधिक सबल था। गाधीजी देश-जीवन म आत्मशक्ति तथा नतिक श्रेष्ठता उत्पन्न कर देशवासियो को धार्मिक सामाजिक आर्थिक सभी क्षेत्रों म उन्नत करना चाहते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि सत्यानुभूति द्वारा देशवासियो को दासता के प्रत्येक रूप से मुक्ति मिल

1 Gandhiji's Truth and non violence or Ahimsa were not abstract ideals or cloistered virtues They were to be realized in life. Pyarelal—A Nation Builder At Work. P 7

२—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन। पृ० १७

३—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २०६

सकती है। उनके रचनात्मक कार्यक्रम के केन्द्र में यही भावना निहित कार्य करती लक्षित होती है।

गांधी जी की धार्मिक विचार धारा

गांधी जी की धार्मिक विचारधारा केवल सिद्धान्त मात्र नहीं थी वह जीवन दर्शन तथा जीवन-मार्ग के रूप में विकसित हुई थी। उन्हें धर्म का सक्रिय रूप इष्ट था अर्थात वे धर्म को जीवन की गति बना देना चाहते थे। गांधी जी का सत्य प्राणिमात्र को अनुप्राणित कर एक निश्चित दिशा का दिग्दर्शन कराने वाला भी था। उनके अनुसार धर्म वह मन्त्र था, जिसके द्वारा प्राणिमात्र को एकता के सूत्र में आबद्ध किया जा सकता था।

गांधी जी जन्म से हिन्दू थे उनके विचार, कार्य और वचन भी हिन्दूधर्म में रंगे हुए थे। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है उन्हें स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द एवं लोकमान्य तिलक की विचार परम्परा की ही एक कड़ी कहना चाहिये क्योंकि उन्हें भी अपने पुरातन धर्मग्रन्थों से जीवन के लिए प्रेरणा मिली थी। इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी धार्मिक विचारधारा सकाम थी। राजा राममोहनराय की भांति उनका धर्म प्रति विशाल एवं उदार था जिसमें सभी को आत्माभिव्यक्ति तथा आत्म विकास का पूर्ण अधिकार था।[1] गांधी जी के हिन्दू धर्म के विशेष तत्व हैं—(१) ईश्वर में विश्वास (२) जीवन की एकता या अन्तसत्ता में विश्वास (३) अवतारवाद में विश्वास (४) आत्मा के पुनर्जन्म में विश्वास (५) आध्यात्मिक मूल्यों विशेषकर सत्य एवं प्रेम की श्रेष्ठता में विश्वास, (६) आत्म निग्रह में विश्वास (७) वर्णाश्रम व्यवस्था में विश्वास (८) गोरक्षा में विश्वास (९) वेद उपनिषद् पुराण में विश्वास (१०) अपनी चेतना की आवाज में विश्वास। गांधी जी मूर्तिपूजा के विरोधी नहीं थे। उनकी धार्मिक विचारधारा नैतिकता से पूर्ण तथा परम्परागत थी।[2] उन्होंने 'गीता' और तुलसी कृत 'रामचरित मानस'—हिन्दू धर्म के दो महान् धार्मिक ग्रन्थों को विशेष महत्व दिया था। यही कारण था कि गांधी जी की धार्मिक भावना ने धर्मप्राण

1 Dr Buch—The Rise and Growth of Indian Nationalism P 40

२—गांधीजी ने लिखा था —

A man's own religion, a man's own past a man's own culture ought to be a great extent sacred to him They have first claim upon his attention and regard because they have deep roots in the soil in the consciousness of his people It is folly it is madness to expect the country to shake off its past as so much bad legacy The past can not be absolutely isolated from its present or future It is not only not possible it is not desirable to do so India today suffers largely from the disintegration of her ancient culture and the consequent weakening of its hold over the Indian mind

Dr Buch—The Rise and Growth of Indian Nationalism P 42

हिन्दुओं की आध्यात्मिक चेतना का स्पर्श कर उन्हें गांधी जी का सहयोगी बना दिया था। सांस्कृतिक दासता अथवा भारतीय मस्तिष्क में गहरे होते हुए पश्चिमी सांस्कृतिक प्रभाव को मिटाने के लिए हिन्दुत्व प्रेम ही एकमात्र साधन था। अतः गांधी जी ने हिन्दुओं का ध्यान अतीत-कालीन भारती सांस्कृतिक चेतना से आवृत धर्म की ओर आकृष्ट कर उसके प्रति विशेष आस्था उत्पन्न की। जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष या मुक्ति मानते थे। यह मोक्ष की धारणा व्यक्तिवादी होते हुए भी कर्ममार्ग द्वारा नियन्त्रित थी। उनके मतानुसार सत्कार्य ही आध्यात्मिकता या नैतिकता की कसौटी थे। सत्कर्म मानव-सेवा के उच्च आदर्श से परिपूर्ण था।

गांधी जी की विचारधारा में हिन्दुत्व का पक्षपातपूर्ण अनुरोध नहीं था। वह ऐकान्तिक होकर लोकसंग्रह की भावना से पूर्ण थी। इसी कारण वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु थे। गांधी जी अन्य धर्मों का उतना ही सम्मान करते थे जितना हिन्दू धर्म का। उनके अनुसार विविध धर्म सत्यप्राप्ति के विविध मार्ग थे।[1] वे सिद्धान्त रूप में एक धर्म तथा एक ईश्वर को सम्भव मानते थे लेकिन व्यवहार रूप में व्यक्ति का अपनी पृथक इकाई में एक भिन्न धर्म था। वस्तुतः गांधीजी ने समस्त धर्मों के मूल तत्त्व अथवा समान तत्त्व की खोजकर सहृदयता तथा सहिष्णुता के आधार पर मानवता की भावना की पुष्टि की थी। वे किसी भी धर्म को पूर्ण नहीं मानते थे। उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया था कि गीता के सदृश बाइबिल और कुरान भी आध्यात्मिकता से पूर्ण ग्रन्थ हैं।[2] उनकी दृष्टि में कृष्ण, ईसा और मुहम्मद साहब समान रूप से अपना आध्यात्मिक महत्त्व रखते थे। अपने धर्म के वास्तविक रूप से परिचित व्यक्ति अन्य धर्मों का सम्मान कर उनसे प्रेरणा ग्रहण करता है ऐसा उनका दृढ़ विश्वास था। वे अपने गम्भीर एवं गहन अध्ययन तथा अनुभव के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे —

(१) सभी धर्म सत्य हैं।

(२) सभी धर्मों में कुछ न्यूनताएं या भूलें हैं।

---

1 Religions are different roads converging to the same point what does it matter that we take different roads there are as many religious as there are individuals
Shri M K Gandhi – My Religion P 19

2 The scriptures of a nation represent the best religious national traditions All great religions are more or less true No religion is perfect. God has inspired the Bibles of the faiths There is divine inspiration in not only the Gita but also in Christ. No religion has the monopoly of truth But each religion is the best for the people who have inherited it or evolved it. There is only one God one truth one Law and one reason but the divine truth appears different to different people
Dr Buch – The Rise & Growth of Indian Nationalism P 42

(३) सभी धम समान रूप से प्रिय हैं जितना हिन्दू धम।
इस प्रकार गांधीजी ने सभी धर्मों का मूल्य तत्त्व प्रम माना था और लक्ष्य शांति।' प्रम अहिंसात्मक होता है जिसम त्याग अथवा बलिदान की भावना प्रमुख होती है। सहनशक्ति जीवन का आन्तरिक भाव है। अत त्याग बलिदान तथा सहनशक्ति द्वारा आनन्दमय जीवन के रहस्य का उद्घाटन होता है। धम के इसी उदात्त एव कल्याणकारी रूप को ग्रहण कर गांधीजी न धार्मिक विद्वेष के विष को मारने के लिए हृदय परिवतन का सिद्धान्त अपनाया था।

फूट डालो और राज्य करो। विदेशी साम्राज्यवाद का मूल अस्त्र था। धार्मिक विद्वेषाग्नि को प्रज्ज्वलित करने के सभी साधनो का प्रयोग किया जा रहा था। ऐसी परिस्थितिया म गांधीजी ने धमप्रधान देश की विविध धर्मावलम्बी जनता की धार्मिक असहनशीलता को नियत्रित तथा सयमित रखने के लिए और बाह्य विरोध मिटाने के लिए सत्य तथा धम के इस रूप का प्रतिपादन किया था। उनकी धार्मिक भावना अनुभूति पर आधारित थी तक अथवा बुद्धि पर नहीं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है-खिलाफत आन्दोलन का समथन तथा सहयोग आन्दोलन म मुसलमानो का सहयोग। धम सहिष्णुता होन क कारण ही वे हिन्दू मुसलमान तथा ईसाइयो के समान रूप से प्रिय थे। उनकी धार्मिक नीति राष्ट्रीय एकता के अनुकूल थी। यह हमारे देश का अतीव दुर्भाग्य था कि गांधी जी अधिक काल तक हिन्दू मुस्लिम ऐक्य स्थापित करने मे समथ न हो सके।

गांधीजी की धार्मिक नीति का एक अन्य महत्वपूर्ण पक्ष था-अस्पृश्यता निवारण। ऊच-नीच, छुआ छूत की भावना को मिटा कर व एक आदश समाज और आदश राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। व अस्पृश्यता को धर्मसम्मत नहीं मानते थे।' गांधीजी को वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था मान्य थी किन्तु उसका रूढ़ अथवा विकृत रूप मान्य नहीं था। उनकी दृष्टि म ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जीवन के चार महत्वपूर्ण और आवश्यक अग थे। वर्णाश्रम धम-व्यवस्था को वे समता का धर्म मानते थे।' उनका विश्वास था कि हम अपनी उच्चतम शक्तियो के विकास के लिए निकृष्टतम

१ I do regard Islam to be religion of peace in the sense as christianity Budhism and Hinduism are. No doubt there are differences in degree but the object of these religions is peace.
M K. Gandhi – My Religion P 15

२ Untouchability is not a sanction of religion it is a device of satan The devil has always quoted scriptures but scriptures can not trascend reason and truth.
M K. Gandhi—My Religion P 15

३—'इस प्रकार वण धम समता का धम है व वस सामयवाद नहीं। जगत में विषमता फैली हुई है उसकी जगह समता का राज्य हो जाये। सब धधे प्रतिष्ठा और मूल्य में समान माने जाय।
—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० १८

प्रवृत्तियों का निग्रह करना चाहिए जिससे समाज का समुचित विकास हो सके । वे मनुष्य का मनुष्य पर शासन अथवा शूद्रत्व पर ब्राह्मणत्व का शासन मानवहित के लिए बाधक मानते थे।

इस प्रकार गाधीजी ने जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान सत्य की अनुभूति द्वारा करना चाहा था। वस्तुत वे सत्य को मनुष्य के दैनिक जीवन की वस्तु बना देना चाहते थे।[1] उनका सत्य धर्म, जाति, वर्ग से परे था। राष्ट्रीय जीवन के राजनीतिक सामाजिक आर्थिक आदि सभी पक्षो को वे नैतिकता तथा सत्यानुभूति द्वारा नियत्रित रखना चाहते थे। गाधीजी के धर्म के महत्त्वपूर्ण साधन हैं—(१) अहिंसा (२) अस्वाद (३) ब्रह्मचर्य (४) अस्तेय (५) अपरिग्रह (६) शरीरश्रम (७) स्वदेशी (८) नम्रता (९) व्रतप्रतिज्ञा (१०) उपासना प्रार्थना आदि। उनका धार्मिक आदर्श ईशोपनिषद् का यह मन्त्र था—

ईशावास्यमिद सर्व । यत्किं च जगत्यां जगत ।
तेन त्यक्तेन भु जीथा । मा गृध कस्यस्विद् धनम ॥

भारतीय जीवन के आर्थिक क्षेत्र मे असहयोग

राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए गाधीजी ने भारत की आर्थिक नीति को सुनिश्चित एव सुव्यवस्थित रूप प्रदान करना आवश्यक समझा था। उनकी आर्थिक नीति मानव जीवन के परम्परागत नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यो पर आधारित थी। यह भी उनकी आध्यात्मिकता द्वारा नियत्रित थी। उन्होने भारतीय संस्कृति की आत्मा के सत्य स्वरूप का निदर्शन कर लिया था। इसी कारण वे इस तथ्य से भी परिचित हो गये थे कि पश्चिमी राष्ट्रो की भाति भारत धन का आराधक नही है। भारत का लक्ष्य अमेरिका की भाति धनप्राप्ति नही है अपितु आध्यात्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति है।[2] अतीत-काल से भारतवासी आध्यात्मिक तथा नैतिक उत्कर्ष की प्राप्ति मे इच्छुक रहे हैं इसी कारण गांधीजी भी सत्य के अनुसधान मे समस्त आर्थिक समस्याओ का हल ढूढते थे। उनका सत्य मानव प्रेम या सेवा का ही पर्यायवाची था। यही कारण था कि गाधीजी ने हस्तकला उद्योग के सम्मुख मशीन या लौह यन्त्रो का विरोध किया था इस विरोध का कारण यह था कि वे मानव-श्रमशक्ति का मशीनो के उपयोग द्वारा अपव्यय नही चाहते थे। उनकी दृष्टि मे बडी मशीनें या कल यन्त्र ही समाज के लिए अहितकर पू जीवादी व्यवस्था का मूल कारण है जिनसे वर्गभेद जैसी

---

1 The realisation of God here and now is the supreme ambition of Gandhi's life All the problems of life can be solved all earthly desires disappear only when one sees God face to face The process is not intellectual merely It is the vision of God in our whole soul in our daily lives
Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 49

2. Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism, P 200

अस्वास्थ्यकर विचारधारा का जन्म होता है।[1] इसके अतिरिक्त गांधीजी विदेशी साम्राज्यवाद की स्वार्थपूर्ण वाणिज्य वृत्ति से उत्पन्न भारतीय आर्थिक पंगुता के रोग का उपचार स्वदेशी कला कौशल हस्त-उद्योग तथा कुटीर उद्योग द्वारा करना चाहते थे।

गांधीजी ने भारत के आर्थिक इतिहास का अध्ययन कर उसके प्रकाश में तत्कालीन आर्थिक दुरावस्था के कारणों को खोजा था। उनके मत में आर्थिक विपन्नता का कारण भारतीयों की अकमण्यता या उद्योगहीनता में नहीं था, बल्कि विदेशी सत्तावाद की स्वार्थपूर्ण व्यापार नीति में था। गांधीजी के पूर्व स्वदेशी आन्दोलन अपनी पूर्ण गति से चल चुका था। उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा स्वदेशी के प्रचार का कार्य क्रियान्वित रखा। उन्होंने स्वदेशी के मूल स्रोत ग्राम उद्योग के विकास की भी पूरी योजना बनाई। इस योजना द्वारा देश की बेकारी की समस्या तथा गरीबी की समस्या भी हल हो जाती थी। पंडित कृष्णदत्त पालीवाल ने उनकी आर्थिक नीति के विषय में लिखा है— परन्तु इससे कहीं अधिक युगान्तरकारी और सन्निहित सम्भावनाओं से भरा हुआ लाभ वह है जो महात्मा गांधी ने चरखा खादी तथा ग्रामोद्योगों घरेलू उद्योग धन्धों के रूप में हमें दिया। उन्होंने हमें यह बता दिया कि भारतीय अर्थशास्त्र पाश्चात्य शहरी अर्थशास्त्र नहीं—भारतीय ग्राम्य अर्थशास्त्र है जो धर्म द्वारा अर्थ उपार्जन करके ही अपनी कामनाओं की सिद्धि का प्रतिपादन करता है। वह न केवल भारत की गरीबी की समस्या को हमारी आर्थिक समस्या को जीवन की समस्त आधारभूत आवश्यकताओं का पूरा करके सफलतापूर्वक हल करता है बल्कि शोषण पूंजीवाद साम्राज्यवाद फासिस्टवाद आदि की उन समस्त विभीषिकाओं से भी हमारी जान बचाता है जो आज तक पाश्चात्यों को पतन और विनाश की ओर लिये जा रही हैं। उनमें मानवी सांस्कृतिक नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों के लिए समुचित स्थान है। राष्ट्रीय विभाजन की समस्या को ही सफलतापूर्वक हल करने वाले प्रति व्यक्ति वह धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थों का सुन्दरतम समुच्चय है। वह विश्व शांति विश्व संघ मानव-स्वाधीनता और लोकतन्त्र तथा सर्वोदय का सुन्दर साधन है।'

इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि गांधीजी ने केवल मशीनों तथा बड़े बड़े मिलों का विरोध इसलिए किया था कि वे नागरिक जीवन की अपेक्षा ग्रामों की ओर उन्मुख थे और अपने युग की विपरीत दिशा में जा रहे थे। उनके इस विरोध का कारण था कि हमारा देश गांवों का देश है जिनकी आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए यह आवश्यक

1 Gandhi's reasoning is that if there had been no machines no use of steam and electricity no large-scale production there would not have been the whole sale exploitation of labour by capital of poorer countries like India by capitalist nations of the west no unhealthy social life which disfigures the big cities of Europe and America
Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 209

२—पं० श्रीकृष्णदत्त पालीवाल हमारा स्वाधीनता संग्राम पृ० ५

था कि गावों म बसने वाली भारतीय जनता मे छोटे-छोटे उद्योग धधों के विकास द्वारा एक नई आर्थिक चेतना को ज म दिया जाये।[1] हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि अ ग्रेजी साम्राज्य क पूव हमारे गाव स्वावलम्बी तथा सम्पन्न थे। गाधी जी की आर्थिक नीति भारतीय जीवन की समस्त आर्थिक समस्याओं को अपने म आवृत्त किये थी।

गांधीजी ने स्वदेशी का प्रचार एव प्रसार किया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रबल आन्दोलन चलाया। स्थान-स्थान पर विदेशी कपड़ों की होलिया जलीं। विदेशी माल की दूकानों पर स्वय सेवकों ने धरना दिया। असहयोग आन्दोलन को क्रियान्वित रूप प्रदान करने के लिए उन्होंने व्यापारियों से अनुरोध किया था कि व विदेशी व्यापारिक सम्बन्धों को छोड कर हाथ कताई बुनाई को प्रोत्साहन दें।[2] इस प्रकार देश की तत्कालीन अथ व्यवस्था को सुधारने तथा राष्ट्रीय आर्थिक सतुलन को बनाये रखने के लिए गाधीजी ने इस अन्यतम माग को प्रश्रय दिया। यह स्वदेशी का प्रस्ताव तथा विदेशी का बहिष्कार केवल क्षणिक आवेग का परिणाम नही था। इसे नियमित रूप से सुगमतापूर्वक चलाया जा रहा था।[3] गाधीजी स्वदेशी को भारत वासियों का स्वधम मानते थे जिसका समर्थन गीता द्वारा होता है।[4] इसी कारण गाधीजी ने स्वदेशी लीग की स्थापना की। उनकी राष्ट्रीयता के लिए चर्खा चलाना एव नियमित रूप से सूत कातना आवश्यक था। असहयोग आदोलन के काल म उन्होंने बीस लाख घरों म चर्खा चलवाने का प्रयत्न किया था।[5] चर्खा उनकी दृष्टि म नैतिक अस्त्र था जिसके प्रयोग द्वारा वे सच्चा स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे।[6]

ग्रामीण समाज की कलात्मक प्रतिभा के पुनर्जीवन म उनकी हरिजन समस्या भी हल होती थी। यही उनकी स्वत त्रता का मूलमत्र था, जिसम भारतीय स्वत त्रता चिरस्थायी हो सकती थी।

१ I have no doubt in my mind that we add to the national wealth if we help the small scale industries I have no doubt also that true swadeshi consists in encouraging and revising these home industries It also provides an outlet for th creative faculties and resourcefulness of the people It can also usefully employ hundreds of youths in the country who are in need of employ ment

M K Gandhi—Centpercent Swadeshi P 5

२—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ १३२

३—वही पृ० १७४

४ What the Geeta says with regard to Swadharma equally applies to Swadeshi for Swadeshi is Swadharma applied to one s imm diate environment

M K Gandhi—Centpercent Swadeshi P 7

५—पं जवाहरलाल तिवारी सेवक भारत सन ५७ के बाद पृ ८३

६ 'The spinning wheel means for Gandhi above all a moral weapon Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 217

राजनीतिक पक्ष में सहयोग

गांधी जी जीवन के एकत्व में विश्वास रखते थे। उनके विचार में राजनीति, अर्थशास्त्र, कला, विज्ञान, धर्म आदि जीवन के विभिन्न विभाग आत्मा की विविधता की अभिव्यक्ति के साधन थे। वे राजनीति को जीवन के अन्य विभागों से पृथक रखने में विश्वास नहीं करते थे। उनकी राजनीतिक विचारधारा भी धर्म द्वारा नियंत्रित थी।[1] राजनीति को वे धर्म मानते थे क्योंकि उसके द्वारा स्वतंत्रता तथा न्याय की पूर्ति होती है। गांधी जी की राजनीतिक विचारधारा उग्रवादी राष्ट्रीय नेताओं और उग्र राष्ट्रीय दल से कुछ भिन्न थी। सत्य, अन्याय तथा अहिंसा में विश्वास रखने के कारण वे राजनीतिक क्षेत्र में भी धर्म की शक्ति को सर्वोपरि मानते थे। गांधी जी मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन को आध्यात्मिक शक्ति से पूर्ण बना देना चाहते थे।[2] इस आध्यात्मिकता में कर्म की प्रधानता थी। उनकी राजनीति ही नहीं सम्पूर्ण जीवन दर्शन कर्म की श्रेष्ठता पर आधारित था। इस कर्म का ध्येय था शाश्वत आनन्द अथवा मोक्ष की प्राप्ति। इसी कारण वे देशभक्ति को शाश्वत आनन्द अथवा मोक्ष की एक विशेष अवस्था या स्थिति मानते थे।[3] सत्य की प्राप्ति में बाधक देशभक्ति उन्हें ग्राह्य नहीं थी। इसलिए गांधी जी ने सत्य तथा अहिंसा पर आधारित असहयोग आन्दोलन द्वारा राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति का आह्वान किया था।[4] वे साधन और साध्य को एक सिक्के के दो पक्षों के समान अभिन्न एवं एक दूसरे का पूरक मानते थे। इसी सत्य तथा अहिंसा के अभूतपूर्व आग्रह के कारण गांधी जी की देशभक्ति अन्तर्राष्ट्रीयता की परिधि तक विस्तृत थी। उनका यह स्पष्ट मत था कि एक राष्ट्र तभी निश्चित रूप से अपनी उन्नति तथा समृद्धि में सक्षम होता है जब वह अन्य राष्ट्रों का पूर्ण सहयोग प्राप्त कर लेता है। यह सहयोग केवल सत्य, प्रेम तथा अहिंसा द्वारा

1 Gandhi does not believe in secularisation of politics. Politics ...

Dr Buch—Rise & Growth of Indian Nationalism. P 72

2 Ibid P 73

3 Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 75

4 'This is the non violent approach to the question of freedom democracy and equality which Gandhiji introduced.
Pyarelal—A Nation Builder At Work P 4

प्राप्त किया जा सकता है।[1]

गांधी जी राजनीतिक आन्दोलन द्वारा भारत में सच्चे अर्थों में प्रजातन्त्रात्मक स्वराज्य की स्थापना करना चाहते थे जिसमें राजनीतिक शक्ति राष्ट्रीय जीवन को राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व द्वारा नियमित रखे। अहिंसा उनके आन्दोलन का मेरुदण्ड थी क्योंकि अहिंसा द्वारा स्थापित प्रजातन्त्रवाद में ही राष्ट्र की प्रत्येक इकाई को सच्ची स्वतन्त्रता का आनन्द लाभ हो सकता है। उन्होंने राष्ट्र की उस आदर्श स्थिति की कल्पना की थी जिसमें राष्ट्रीय जीवन को प्राप्त होकर स्वनियन्त्रित हो जाता है उसे किसी संस्था की आवश्यकता नहीं रहती[2] सबका नैतिक आचरण राष्ट्रीय विकास के हित में होता है और प्रत्येक स्वतन्त्र इकाई अपने संयत आचरण द्वारा राष्ट्रीय व्यवस्था की आरक्षा में संलग्न रहती है। गांधी जी का सम्पूर्ण जीवन इसी स्वप्न को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील रहा।

राजनीतिक क्षेत्र में गांधी जी राष्ट्रीय हित के सम्मुख ब्राह्मण अब्राह्मण हिन्दू मुस्लिम ऊँच-नीच वर्ण भेद आदि विषयों को हेय समझते थे। वे हिन्दू मुसलमान ईसाई सिक्ख बौद्ध आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों को भारतीय सांस्कृतिक एकता के विविध प्रतीक मानते थे। उन्होंने भारतवासियों की आपसी फूट का कारण विदेशी साम्राज्यवाद की राजनीति में खोजा था। इसी कारण वे साम्प्रदायिकता के आधार पर निर्वाचन प्रणाली के विरुद्ध थे। साम्प्रदायिक एकता उनकी राजनीतिक विचार धारा का महत्वपूर्ण अंग था।

अतः राजनीतिक क्षेत्र में सर्वप्रथम गांधी जी ने स्वतन्त्रता प्रजातन्त्रात्मकता तथा समानता की स्थापना के लिये सत्य एवं अहिंसा पर विशेष बल दिया।[3] जनता को धर्म-संयुक्त राजनीति में दीक्षित कर विदेशी दासता के विरुद्ध जन आन्दोलन किया। इस प्रकार गांधी जी ने देश के राजनीतिक क्षेत्र में एक नवीन आत्मगौरव एवं जागृति का प्रसार किया जिससे सामान्य जनता में भी वह साहस आ गया कि वह अधर्म, अन्याय और अत्याचार का विरोध करने में समर्थ हो सकी।[4]

१ My religion and my patriotism derived from my religion embraced all life I want to realize brotherhood or identity not merely with the beings called human but I want to realize identity with all life even with such things as crowl upon earth

M K Gandhi – My Religion P 132

२ *Political power means capacity to regulate national life through national representation If national life becomes so perfect as to become self regulated no representation becomes necessary*

M K Gandhi—My Religion P 130

3 This is non violent approach to the question of freedom democracy and equality which Gandhiji introduced

Pyare Lal—A Nation Builder at Work P 4

४ ibid P 29

असहयोग का सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष

गांधी जी जनता की मनोवृत्ति से भली भांति परिचित थे व जानते थे कि समाज के मस्तिष्क पर अपने अतीत का रहस्यपूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः इन्होंने भारतीय मस्तिष्क के परिष्करण तथा सांस्कृतिक आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए भारत के इतिहास तथा अतीत की गौरवपूर्ण आत्मा से प्रेरणा ग्रहण की।[1] देश में धर्म के आधार पर संगठित हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, पारसी, सिक्ख आदि सभी समाजों में परस्पर सहयोग एवं सहिष्णुता के वे आकांक्षी थे। विविध धर्म, जाति तथा सम्प्रदाय समन्वित भारतीय समाज की मनोवृत्ति में परिवर्तन कर सामाजिक अधर्म, अन्याय, अत्याचार और रूढ़ियों को मिटाना उनके सहयोग आन्दोलन का लक्ष्य था। वे मानव प्रेम तथा मानव-सेवा को सामाजिक प्राणी का स्वयं मानते थे। उनकी दृष्टि में धार्मिक विद्वेष महान् पाप था। साम्प्रदायिक एकता उनके रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख अंग और असहयोगी का कर्तव्य था।

राजनीतिक दासता के साथ गांधी जी सामाजिक दुर्बलताओं को भी राष्ट्र की प्रगति में बाधक मानते थे।[2] उनके मत में सद्भावमय बुद्धि सामाजिक मस्तिष्क का सबसे बड़ा विकार था। इसी कारण वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था, जाति संगठन अर्थात् प्राचीन सामाजिक व्यवस्था में पूरी आस्था होने पर भी गांधी जी अस्पृश्यता को हिंदू समाज का कलंक मानते थे। उनके अनुसार वर्णाश्रम धर्म समता का धर्म था, सत्य रूप का पालन न होने के कारण भारत की सामाजिक अवस्था अति दयनीय हो गई थी।[3] स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा स्वामी विवेकानन्द की भांति उनका समाज सम्बन्धी विचारधारा पूर्णतया वैदिक थी। वे भारतीय समाज के चतुर्वर्णों को मानव जीवन का आवश्यक कर्म मानते थे। गांधी जी अछूत वर्ग को समाज के अन्य वर्णों के समान पद पर प्रतिष्ठित कर सामाजिक साम्य स्थापित करने के पक्ष में थे। गांधी जी के शब्दों में अछूतों की स्थिति सुधारने के लिए यह जरूरी नहीं है कि उनसे उनके परम्परागत पेशे छुड़वायें अथवा उन पेशों के प्रति उनके मन में अरुचि पैदा की जाय। ऐसा नतीजा पैदा करने के लिए की गई कोशिश उनकी सेवा नहीं, अवसेवा होगी। बुनकर बुनता रहे, चमार चमड़ा कमाता रहे और भंगी पाखाना साफ करता रहे और तब भी वह अछूत न समझा जाय तभी कह सकते हैं कि अस्पृश्यता का निवारण हुआ। गांधी जी ने धर्मानुसार निर्मित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ग के अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य भावना को अधिक महत्व दिया था। क्योंकि कर्तव्य अथवा समाज-सेवा ही इन वर्णों की एकता का मूल तत्व था। उन्हें मनुष्य पर शासन

१ Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism, P 49
२ Ibid P 91
३—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० ३८
४—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० ४५

अभीष्ट नही था। ब्राह्मण का अन्य वर्णों पर प्रभुत्व अथवा शूद्रो के सेवा-कर्म को हेय दृष्टि से देखना उन्हें रुचिकर नही था। वे अपने वर्णाश्रमधर्म-व्यवस्था सम्बन्धी विचारो को पूर्णतया वेदानुकूल मानते थे और उसके वर्तमान रूप को विकृत।[1] समाज सुधारक गाधी वर्ण भेद वर्ग भेद मिटाकर आध्यात्मिक तथा नैतिक उच्चादर्शों पर अवलम्बित समाज की रचना का आदर्श रखते थे।[2]

वर्ण-व्यवस्था के सदृश ही गांधी जी को आश्रम-व्यवस्था भी सामाजिक और राष्ट्रीय हित के लिए मान्य थी। ब्रह्मचर्य को उन्होंने विशेष महत्व दिया था क्योकि इसी की सुदृढ आधारशिला पर अन्य तीन आश्रमो—गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास की उज्ज्वलता पवित्रता तथा संयम पर निर्भर है।[3]

गाधी जी ने हिन्दू समाज के लिए हिन्दू धर्म के एक सुन्दर तत्व गोरक्षा को आवश्यक माना था गोरक्षा के अभाव में स्वराज्य अर्थहीन है क्योंकि गौ राष्ट्र के निबलो तथा मूक प्राणियो का प्रतीक है। गोरक्षा द्वारा कृषि प्रधान देश की उन्नति तथा समृद्धि सम्भव है। वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था की भांति गोरक्षा भी हिन्दू धर्म की विश्व को एक महान देन है।

भारतीय नारी की स्थिति में परिवर्तन द्वारा सामाजिक उन्नति हो सकती है। गाधी जी नारी का सम्मान करते थे। वे नारी की स्वतन्त्रता शिक्षा तथा पुरातन आदर्शों के समर्थक थे। भारतीय नारी को वे सामाजिक अत्याचार रूढ़ियों एवं अन्ध विश्वास की सीमा से मुक्त कर पुनः सीता देवी के उच्चासन पर विभूषित करना चाहते थे। उनका यह स्पष्ट मत था कि देश की स्वतन्त्रता तथा आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति में नारी की अवरुद्ध गति बाधक है। गाधी जी ने हिन्दू समाज की विकृति के सम्बन्ध में कहा था— स्त्री जाति के प्रति रखा गया तुच्छ भाव हिन्दू समाज में घुसी हुई सड़न है धर्म का अंग नहीं है। धार्मिक पुरुष भी इस प्रकार के तिरस्कार भाव से मुक्त नहीं है यह बात बतलाती है कि यह सडन कितनी गहराई तक पहुंच है।[5] उनका

---

१ I believe in the Varnashrama Dharma in n sense in my opinion strictly vedic but not in its present popular and crude sense
M K Gandhi – Hindu Dharma P 4

२ Dr Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism P 55

३ – किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० ४६

Let us not live with one limb completely or partially paralysed
Rama would be no wh
even as he himself was
free Growth of the wome
with the growth of free and independent spiritual man.
Dr Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism P 57

५ – किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० ४२

नारी की सद्वृत्ति म अटूट विश्वास था। व नारी की दुर्वृत्ति का कारण पुरुष की सकीणता अथवा अनुदारता म खोजते थ। उनके मत म स्त्री जाति में छिपी हुई अपार शक्ति उसकी विद्वता अथवा शरीर-बल की बदौलत नहा है इसका कारण उसके भीतर भरी हुई उत्कट श्रद्धा भावना का धन और अत्यन्त त्याग शक्ति है। वह स्वभाव से ही कोमल और धार्मिक वृत्ति वाली होती है और पुरुष जहा श्रद्धा खोजकर ढीला पड जाता है अथवा झूठे हिसाब लगाने म उलझा रहता है वहाँ वह धीरज रखकर सीधे रास्ते पर स्थिर भाव से बढती है।[१]

यही कारण था कि गाधी जी बाल विवाह अनमल विवाह तथा इच्छा के विरुद्ध विवाह के घोर विरोधी थ। व हिन्दू विधवा को त्याग एव पवित्रता की प्रति मूर्ति मानत थ किन्तु कठोर सामाजिक नियमो द्वारा बलपूर्वक कराया गया त्याग उनकी दृष्टि म असगत एव अन्याय था। उन्होंने स्वय कहा था— किन्तु स्त्री जाति के प्रति पोषित अथवा प्रचारित तुच्छ भाव ने विधवा के साथ अन्याय करने म कोई कसर उठा नही रखी। इससे हिन्दू विधवा की स्थिति अछूतो के समान ही दयाजनक हो गई है।

विधवा त्याग की मूर्ति है, पर इस कारण वह अवश्य जबरदस्ती पालन कराने की चीज नही है। बलात्कार स कराया हुआ त्याग उसम रहने वाली स्थिरता का नाश करता है और उस पूजनीय तथा आदर्श बनाने के बदले दया का पात्र बना डालता है।

इस कारण विधुर हुए पुरुष का पुनर्विवाह करने का जितना अधिकार माना गया है उतना ही विधवा का भी है।[२] इसके अतिरिक्त वर्णान्तर विवाह भी गांधीजी को अप्रिय नही थे।

समाज की सर्वाधिक पतित मनोवृत्ति की द्योतक एव नारी जीवन स सम्बन्धित वेश्या की समस्या का निराकरण कर गांधी जी न भारतीय समाज तथा राष्ट्र को आध्यात्म भाव से पूरित करने का उद्योग किया था। उनकी दृष्टि में वेश्यावृत्ति महान पाप थी। उन्होंने नारी की इस पतित अवस्था का समस्त दोष पुरुष जाति पर मढा था, जो असयम अमद तथा वासना के वशीभूत होकर समाज म ऐसी नीच वृत्ति को प्रश्रय दता है। जब तक समाज नारी की स्थिरता में विश्वास नहीं करेगा तब तक इस प्रकार की समस्याओं का समाधान असम्भव है।[1]

गांधी जी भारतवासियो द्वारा पश्चिमी सभ्यता संस्कृति के अनुकरण के विरोधी थे। वे पश्चिम के प्रति भौतिकवादी दृष्टिकोण को भारतीय समाज राष्ट्र और परम्परागत जीवन के लिए घातक मानत थ। उन्हें पश्चिमी जगत् की भांति पश्चिमी

१—गांधी विचार दोहन पृ० ४३

२—वही पृ० ४६

1 Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 67

की साधना इष्ट नही थी । क्योंकि उसके द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष, त्याग, बलिदान आदि भारतीय आदर्शों की प्राप्ति नही हो सकती । उनके विचार म पश्चिमी उद्योगीकरण का सिद्धान्त और पूजीवादी व्यवस्था भारतीय नागरिक तथा ग्रामीण के लिए अहित थी। इसका कारण यह था कि आधुनिक सभ्यता कुछ देशो को अन्य देशो के पतन पर सभ्य बनाती है धनिक वग निधनो के बल पर सस्कृत कहलाता है। गांधीजी का सभ्यता का अथ आत्मा का परिष्कार मानते थ न कि बाह्य प्रसाधनो का।[1] अत उन्‍ह भारतीय समाज के लिए प्राचीन सभ्यता और सस्कृति के आदश ही मान्य थ । इसके अतिरिक्त वे शिक्षित नागरिको द्वारा ग्रामीण समाज की अशिक्षा अधविश्वास रूढिवादिता अस्वस्थता निर्धनता आदि समस्याओ का निराकरण करवाना चाहते थ । राष्ट्रीय जीवन को एकत्व तथा घनत्व प्रदान करने के लिए गाधीजी न स्वय सेवको के दलो को ग्राम-ग्राम भेजकर ग्राम-सुधार काय का क्रियान्वित किया था। सरकारी न्यायालयो की अपेक्षा ग्राम पचायतो म उनका विश्वास था।

अत म यह कहा जा सकता है कि गाधीजी की सामाजिक विचारधारा भी आध्यात्मिकता नतिकता त्याग बलिदान तथा एकता के गुरुतर आदर्शों पर आधारित थी।

गांधीजी के राष्ट्रवाद का स्वरूप

गाधीजी महान राष्ट्रवादी थे। उनका राष्ट्रवाद ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था। उन्होने देश के नित्य प्रति के जीवन म सत्य तथा अहिंसा का प्रयोग कर मनुष्य को उसके उच्चतम स्वरूप तक ले जाने का प्रयत्न किया था। उनका आध्यात्म अथवा जीवन-दशन पूणतया भारतीय था। अत उनके राष्ट्रवाद का विकास भी जीवन दशन अथवा जीवन माग के रूप म हुआ था। भारतीय जीवन दशन का लक्ष्य मोक्ष अथवा मुक्ति है। गाधीजी को यह मोक्ष की धारणा पूणतया मान्य थी लेकिन यह व्यक्तिवादी होते हुए भी कम-माग द्वारा नियन्त्रित थी। उनके अनुसार सत्काय ही आध्यात्मिकता अथवा नतिकता की कसौटी थे जो मानवता अथवा मानव सेवा के उच्चादश से मण्डित थे। इसके अतिरिक्त उनकी आध्यात्मिक विचारधारा एकान्तिक नहा थी प्रत्युत लोक सग्रह की भावना से पूण थी। वे राजनीति, राष्ट्रीय हित तथा धम म अन्तर नहा मानते थ । इस कारण उनके मतानुसार पराधीनता, अन्याय एव अत्याचार म राष्ट्र की मुक्ति, भारतीय जीवन का सवप्रमुख ध्येय था। इसके लिए

1. Exploitation of them any by the few in the interest of the earthly greed for money and power of the few is the essence of modern civilisation Gandhi asks India not to copy this western civilisation blindly That way lies ruin moral and material The genius of India will do well to built on her ancient foundations
Dr Buch – Rise and Growth of Indian Nationalism P 67
M K Gandhi—Satyagrah, P 14

एकमात्र उपयुक्त साधन अहिंसा थी। सत्य तथा अहिंसा की रक्षा के लिए आत्म त्याग अथवा बलिदान की आवश्यकता थी। देश-सेवा में इस त्याग अथवा बलिदान को मूल रूप मिलता था।

गांधीजी का राष्ट्रवाद भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा से अनुप्रेरित था। उनका यह पुष्ट मत था कि अपने सांस्कृतिक मूल्यों एवं नैतिक आदर्शों के पालन द्वारा ही कोई राष्ट्र उन्नत हो सकता है। इसी कारण वे भारत की प्राचीन संस्कृति में विश्वास रखते थे।[1] असहयोग आन्दोलन अथवा सत्याग्रह द्वारा वे भारत की प्राचीन सांस्कृतिक आत्मा की पुनः प्रतिष्ठा करना चाहते थे। अतीत गौरव की स्मृति तथा प्राचीन सांस्कृतिक आध्यात्मिक नैतिक सिद्धान्तों की स्थापना द्वारा गांधीजी देशवासियों में पराधीनता के कारण उत्पन्न हीन भावना को मिटाना चाहते थे। वस्तुतः गांधीजी वैदिक साहित्य वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था गोरक्षा मूर्तिपूजा आदि में विश्वास रखते थे। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे पुरातनवादी अथवा रूढ़िवादी थे, अन्य धर्मों तथा धर्म-ग्रन्थों में भी उनकी पूरी श्रद्धा थी। अतः गांधी जी का राष्ट्रवाद अति पुरातन हिन्दू धर्म समन्वित राष्ट्रवाद था लेकिन उनका हिन्दुत्व इतना विस्तृत एवं उदार था कि उसमें विश्व के सभी धर्मों को समाहित कर लेने का विशेष गुण था।[2] गांधी जी ने देश में व्याप्त पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के विष को मारने के लिए भी यह आवश्यक समझा था कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना से आपूरित धर्म का सबल ग्रहण किया जाय जिसमें अन्य धर्मावलम्बी अल्पसंख्यक जनता की धार्मिक भावना की उपेक्षा न हो।

गांधीजी के राष्ट्रवाद का मूल तत्व प्रेम है। उनका यह विश्वास था कि सभी धर्मों के मूल में प्रेम तत्व विद्यमान है अतः प्रेम सम्पूर्ण मानवता को कल्याण

---

१ It is self evident to Gandhi that Indians are one Nation that [illegible] f Indians is [illegible]
D [illegible] P 76

२ I believe in the Vedas the upnishdas the puranas and all that goes by the name of Hindu scriptures and therefore in Avtaras and rebirth
M K Gandhi—Hindu Dharma

३ Hindu is not an exclusive religion In it there is room for the worship of all the prophets of the world It is not a missionary religion in the ordinary sense of the term It has no doubt absorbed many tribes in its fold but this absorption has been of an evolutionary imperceptible character Hinduism tells everyone of worship God according to his own faith or dharma and so it lives at peace with all the religious
M K Gandhi—Hindu Dharma—P 8 9

परिधि तक विस्तृत हो गया था। राष्ट्र की सीमारेखा में रहकर मानव मात्र के प्रति दया एव सेवा भाव के गुरुतर आदश से उनकी राष्ट्रीय भावना अभिभूत थी।[1] गांधी जी एक राष्ट्र का यह प्रमुख कर्त्तव्य मानते थ कि वह दूसरे राष्ट्र के लिए त्याग अथवा बलिदान करे। उनकी दृष्टि म एक राष्ट्र की सच्ची स्वतन्त्रता का अर्थ था विश्व कल्याण के लिए सवस्व समर्पण करना। जातिगत घृणा का उसम कोई स्थान न था। राष्ट्र की इसी उच्च स्थिति म व्यक्ति को मोक्ष सत्य अथवा ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। सकीणता स्वाथपरता आदि राष्ट्रवाद की विकतियाँ थी जिनसे गांधी जी मानवमात्र को दूर रखना चाहते थे। राष्ट्रवाद का इतना उच्च एव रमागमय रूप इसके पूव दुलभ था।[2]

महात्मा गाधी का राष्ट्रवाद भारतीय जीवन की शिव भावना स प्ररित था। उन्होन स्वतन्त्रता की साधना को भारतीय जीवन का महान् लक्ष्य निधारित किया था। व दश को विदेशी शासन की दासता से मुक्त कर, आध्यात्मिक नतिक आदर्शों से उन्नत उदार सामाजिक विचारो से पूरित तथा सहिष्णु धार्मिक भावना से महित करना चाहते थे। अत उन्होंने भारत की राजनीतिक सामाजिक आर्थिक धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी दशा का सूक्ष्म निरीक्षण किया। वे राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष की ओर से सजग एव सचेष्ट हो गए। भारतीय जीवन के लिए अहितकर सामाजिक कुरीतिया जैसे वश्यावृत्ति अनमल विवाह विधवाओं पर घोर नियत्रण छुआछूत आदि उन्हें अप्रिय थी। धम-सम्बन्धी मतभेद विद्वष अन्ध विश्वास रूढ़िवादिता सकीणता आदि का उन्होने विरोध किया। भारत की आर्थिक विपन्नता का एकमात्र कारण व पूजीवादी व्यवस्था को मानते थ। राजनतिक स्वतन्त्रता के लिए उन्होन राष्ट्रव्यापी आन्दोलन किये थे। रचनात्मक कायक्रम की विस्तृत योजना को क्रियान्वित कर दश म स्वराज्य के लिए अनुकूल वातावरण बनाया।[3] गाधी जी के

---

१ Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism P 77

२ Just as the cult of patriotism teaches us today that the individual has to die for the family the family has to die for the village the village for the district the district for the province and province for the country even so as country has to be free in order that it may die, it is necessary for the benefit of the world There is not room for race—hatered there

M K Gandhi—My Religion—P 132

३—जब तक अनुकूल परिस्थिति न हो, तब तक चतुर्विध रचनात्मक कायक्रम तथा दूसरी लोकोपयोगी सेवा करते रहना ही स्वराज्य की साधना है। बहुत वर्षों तक ऐसा करना पड़े तो भी इसम हानि नहीं है। इसे प्रगति ही कहेंगे पीछे हटना नहीं।

—किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ०७५

राष्ट्रवाद में देश के वर्तमान जीवन को पूर्ण अभिव्यक्ति मिली थी। वह देश जीवन के सभी पक्षों के सुधार विकास एवं उन्नति के लिए क्रियाशील थे।

अतीत एवं वर्तमान की सीमा पर गांधी जी ने अपने राष्ट्रवाद को भविष्य के सुन्दर स्वप्नों से भी सुसज्जित किया था। उन्होंने देश के सम्मुख स्वराज्य की रूप रेखा रख दी थी। उनके स्वराज्य का अर्थ था सत्य, न्याय तथा प्रेम पर आधारित प्रजातन्त्रात्मक राज्य। विश्व शान्ति सहयोग और विश्व बंधुत्व स्वराज्य की आवश्यक मान्यताएं थी जिसमें जीवन के प्रत्येक कर्तव्य को नैतिक आधार प्रदान किया गया था।[1]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि गांधी जी ने अपने राष्ट्रवाद में भारतीय जीवन के प्रत्येक पक्ष को सन्निहित कर उसे धर्म नीति न्याय प्रेम एकता मैत्री आदि उच्चादर्शों पर प्रतिष्ठित किया था। देश की अधिकांश जनता को गांधी जी का राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीय विचारधारा मान्य थी। भारतीय जनता के क्रियात्मक सहयोग द्वारा उनके आन्दोलन को सफल बनाया था। इसका कारण यह था कि गांधी जी ने राष्ट्रवादी सिद्धान्तों के निर्धारण में मनोविज्ञान का सहारा लिया था।

स्वराज पार्टी तथा उसकी राष्ट्रवादी नीति

राष्ट्रवादियों का एक दल गांधीजी के असहयोग आन्दोलन की नीति से पूर्ण तया सहमत नहीं था और लोकमान्य तिलक को भी असहयोग नीति की सफलता में सन्देह में संदेह था। ये राष्ट्रवादी अंग्रेजी सरकार द्वारा निर्मित अन्याय तथा अत्याचारों पर आधारित कानूनों का विरोध कर उनके अस्तित्व को मिटा डालना चाहते थे। वे कौंसिल प्रवेश द्वारा नौकरशाही के गढ़ पर आक्रमण करना चाहते थे। सन् १६२०-२२ के दो वर्षों में देश के राजनीतिक प्रभाव के कारण कौंसिल बहिष्कार की नीति सफल हुई। किन्तु शीघ्र ही चौरीचौरा की घटना के कारण गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित किया और इस दल की नीति के प्रसार का उपयुक्त वातावरण उपस्थित हुआ। देश सत्य और अहिंसा की शिक्षा में पारंगत नहीं हो सका। आन्दोलन की सफलता में विदेशी शासकों के दमनकारी कानूनों की बाढ़

---

१ Free India therefore is nationalised India All interests internal or external will have to bow down to the national idea All the classes may be required to bow down their necks to national interests A new democractic state is in the process of being born

Dr Buch—Rise and Growth of Indian Nationalism—P 113

२— गांधीजी की राष्ट्रीयता की परिधि किसी एक धर्म संस्कृति अथवा समाज विशेष तक सीमित नहीं थी, उसमें तो हिन्दुस्थान में रहने वाले सभी धर्मों संस्कृतियों और समाजों का मुक्त समावेश था।'

—शान्ति प्रसाद वर्मा स्वाधीनता की चुनौती पृ० १४८

सी आ गई। अत देशबन्धुदास विटठलभाई पटेल, मोतीलाल नेहरू जसे मान्य नेता गणो ने आन्दोलन के सिद्धान्तो तथा व्यावहारिक मूल्यो म परिवतन करने का निश्चय किया। चित्तरंजनदास के मस्तिष्क म अंग्रेजी शासन विधान के विरोध का विचार प्रबल रूप धारण कर बठा था। उन्होंने कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रतिमूर्ति हकीम अजमलखा न भी सम्पूण देश का भ्रमण कर असहयोग आन्दोलन की असफलता की घोषणा की। इस प्रकार चित्तरंजनदास को हकीम अजमलखा मोतीलाल नेहरू विटठलभाई पटेल का पूण समथन प्राप्त हुआ। इन लोगो न यह निश्चय किया कि कौंसिल प्रवेश द्वारा सरकार की स्वाथ पूण नीति का विरोध किया जाये। इसी समय स्वराज पार्टी के निर्माण का समस्त कायक्रम बना।[1] ये काग्रस से पथक नही थे। अहिंसात्मक सत्याग्रह से अन्य सभी सिद्धान्त इनको मान्य थ केवल कौंसिल बहिष्कार के प्रश्न पर ही इन्होंने नवीन दल की स्थापना की थी।

काग्रस दो दलो म बट गई प्रथम—अपरिवतनवादी अर्थात जिन्हें गाधीजी के असहयोग सम्बन्धी सिद्धान्तो मे किसी प्रकार का परिवर्तन ग्राह्य नहा था द्वितीय परिवतनवादी अर्थात् स्वराज पार्टी जो कौंसिल प्रवेश की समथक थी। श्री पट्टाभि सीतारम्मया न काग्रस के इतिहास म लिखा है—इस पर यह स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान रूप से बटे हुए थ। पर दोना थ असहयोग के ही दल और सरकार स सहयोग करने को दोनो म से कोई दल तयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान म एक दूसरी डोरी चढाकर उससे नौकरशाही के गढ कौंसिलो के भीतर से ही तीर छोडने का समथक था।

स्वराज पार्टी ने कौंसिल प्रवेश के सम्बन्ध म निम्नलिखित उपायों स काम लने की योजना बनाई—

(१) असहयोगियो को उम्मीदवारी के लिए पजाब और खिलाफत की नीति और तत्काल स्वराज प्राप्ति क उद्देश्य स खडा होना चाहिय और अधिक से अधिक सख्या म पहुचन की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक सख्या म पहुच जायें कि उनके बगैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हें कौंसिल भवन म जाकर बठन क बजाय एक साथ वहा स चले आना चाहिये और फिर किसी बठक म शरीक न होना चाहिए। बीच-बीच म वे कौंसिल म इसलिये जायें कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सकें।

( ) यदि असहयोगी इतनी सख्या म पहुचें कि अधिक होने पर भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो तो उन्हें हर एक सरकारी कारवाई का जिसम बजट

---

१ Dr Raghuvanshi – Indian Nationalist Movement and Thought —P 177

२—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास प० २०१

भी शामिल हों विरोध करना चाहिये और केवल पंजाब खिलाफत और स्वराज सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिये।

(४) यदि असहयोगी कम संख्या में पहुचें तो उन्हें वही करना चाहिये जो नं० २ में बताया गया है और इस प्रकार कौंसिल के बल को घटाना चाहिये।[1]

इस प्रकार वे चुनाव द्वारा सभी प्राप्त पदों का अधिकृत करने के पक्ष में थे। कांग्रेसियों और असहयोगियों ने कौंसिलों म्युनिसिपलिटियों तथा स्थानिक बोर्डों के लिए खड़ा होना प्रारम्भ कर दिया।

गांधीजी स्वराजियों के कौंसिल प्रवेश की अड़गा नीति की अपेक्षा रचनात्मक कार्यक्रम की सफलता के आकांक्षी थे। वे तभी कौंसिल प्रवेश को उचित ठहराते थे जबकि केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार (१) हाथ कते-बुने खद्दर के व्यवहार (२) विदेशी कपड़े पर भारी चुंगी (३) सेना विभाग और नगर के अपव्यय में कमी आदि राष्ट्रीय हितकारक कार्यों का समर्थन करें। देशबन्धु चितरंजनदास तथा पंडित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में यह स्पष्ट कर दिया था कि वे कौंसिल प्रवेश द्वारा विदेशी सत्ता की नौकरशाही को पूर्णतया पराजित कर स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं चाहे इसके लिए उन्हें असहयोग का भी बलिदान क्यों न करना पड़े।

हम अफसोस है कि हम गांधीजी का कौंसिल प्रवेश के सम्बन्ध में स्वराजियों की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके। हमारी समझ में यह नहीं आता कि कौंसिल प्रवेश नागपुर कांग्रेस के असहयोग सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यों नहीं है। परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की गति विधि नौकरशाही के हमेशा बदलते रहने वाले रंग-ढंग पर निर्भर रहती है, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्तव्य समझते हैं। हमारी राय में इस सिद्धान्त से उन सभी कामों में जिनके द्वारा राष्ट्रीय जीवन की समुचित वृद्धि हो और स्वराज्य के मार्ग में बाधा डालने वाली नौकरशाही का सामना किया जा सके आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है।[2]

स्वराज पार्टी ने अड़गा नीति' का पालन किया था। अड़गा शब्द का भी स्पष्टीकरण श्री दास तथा पंडित नेहरू ने इन शब्दों में कर दिया—

हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने अपने कार्यक्रम में 'अड़गा' शब्द का जो व्यवहार किया है वो ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट के इतिहास के वैधानिक रूप में नहीं। मौजूदा और सीमित अधिकारों वाली कौंसिल में अड़गा डालना असम्भव है क्योंकि सुधार कानून के अन्तर्गत असेम्बली और कौंसिल के अधिकार गिने चुने हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि हमारा विचार अड़गा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही द्वारा डाली गई रुकावटों का मुकाबला करने का अधिक है। अड़गा शब्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलब इसी मुकाबले से

१—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० २०२
२—वही पृ० २१६

है। हमने स्वराज पार्टी के विधि विधान की भूमिका में सहयोग की परिभाषा करते हुए इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है।[1]

स्वराज्यवादियों की नीति कौंसिल के भीतर भिन्न थी तथा कौंसिल के बाहर भिन्न।

कौंसिल अन्तर्गत स्वराज्य पार्टी का कार्यक्रम

(१) बजट रद्द करना—वर्तमान भारत के विधान में परिवर्तन तथा भारतीयों के अधिकारों की मान्यता के लिए बजट रद करना। क्योंकि जनता का न बजट बनाने में हाथ है न कर वसूल के सम्बन्ध में या खर्च के मामले में अधिकार। इस कारण वे क्यों बजट पास करें ?

(२) कानून सम्बन्धी प्रस्तावों को रद करना—क्योंकि कानूनों द्वारा नौकरशाही की जड़ मजबूत होती है।

(३) रचनात्मक कार्यक्रम—जो प्रस्ताव योजनायें और बिल हमारे राष्ट्रीय जीवन की वृद्धि करने के लिये और फिर नौकरशाही की जड़ उखाड़ने के लिए आवश्यक हों उन सबको पेश करना।

(४) आर्थिक नीति—एक ऐसी निश्चित आर्थिक नीति का अवलंबन जो पूर्वोक्त सिद्धान्तों पर तय की गई हो जिसका उद्देश्य भारत से बाहर जाते हुये धन प्रवाह को रोकना हो। इसके लिये धन शोषण करने वाले सारे कामों में रुकावट करना आवश्यक है।[2]

इस प्रकार स्वराज्यवादी सरकार द्वारा खादी के व्यवहार पर विशेष बल देने राष्ट्रीय पताका फहराने का आग्रह करने और स्थानिक और म्युनिसिपल स्कूलों में चर्खा तथा हिन्दी के प्रचार की सिफारिश करने पर बल देते थे।[3]

कौंसिल के बाहर स्वराज्यवादियों की नीति

स्वराज्यवादी कौंसिल के बाहर महात्मा गांधी के कार्यक्रम का हृदय से स्वागत तथा समर्थन करते थे। कांग्रेस से पृथक अपनी संस्था स्थापित करने के विरुद्ध थे क्योंकि वे राष्ट्रीय महासमिति (नेशनल कांग्रेस) की शक्ति से पूर्णतया परिचित थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि कौंसिल के भीतर उनकी सफलता कांग्रेस के समर्थन पर निर्भर करती है। स्वराज पार्टी के प्रमुख नेताओं ने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि यदि उन्हें इस साधन द्वारा स्वराज्य प्राप्ति में सफलता प्राप्त न हुई तो वे इस नीति का परित्याग कर देंगे और सत्याग्रह के ठोस कार्यक्रम की सफलता का उद्योग करेंगे।[4] ये लोग देश भर के मजदूरों तथा किसानों का संगठन

१—पट्टाभि सीतारम्मैया कांग्रेस का इतिहास पृ० २१९
२—वही पृ० २२०
३—वही पृ० २०४
४—वही पृ० २२१

कर कांग्रेस के काम की पूर्ति के आकांक्षी थ जिसस सरकार पूंजीपति तथा जमींदार इस वग का शोषण न कर सकें।

प्रस्ताव—स्वराजियों क दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव थ—(१) सम्राट की सरकार को पालियामन्ट म तत्काल ही यह घोषणा करन का प्रबन्ध करना चाहिए कि भारत की शासन व्यवस्था और शासन प्रणाली म ऐस परिवतन किये जायेंगे कि देश की सरकार पूर्णतया उत्तरदायी हो जायगी।

(२) एक गोलमेज परिषद् या इसी प्रकार कोई उपयुक्त साधन पश किया जाय जिसम भारतीय यूरोपीय और अधगोरों के हितों का पूरा प्रतिनिधित्व रहे।

यद्यपि स्वराज पार्टी कौंसिलों म किसी ठोस राष्ट्रीय काय की पूर्ति न कर सकी लेकिन नौकरशाही की नींव हिला दन की सफलता का अधिकांश श्रेय इन्हीं को मिलना चाहिये। अब देश म विदेशी शासकों का आतंक जड़ से उखड़ गया था। सरकार भी इनस डरने लगी थी। पण्डित श्री कृष्णदत्त पालीवाल जो सन् १९२४ ई० म कौंसिल के स्वराजी मम्बर थ ने लिखा है कि उन्होंने अपने कानों से यहां के उच्चतम हुक्काम के चपरासियों को यह कहते सुना कि अब तो जमाना बिल्कुल ही उलटा हो गया है। इसस पहले जब सिर्फ राजा और नवाब मेम्बर बीस रुपये कमीशन दते थे तब मिल पाते थे लेकिन अब य स्वराजी लोग चिक उठा कर सीधे बड़े से बड़े हुक्काम क दफ्तर म दनदनाते हुए घुस जाते हैं और कोई हुक्काम भी चूं नहीं करता।' अब कौंसिल के यूरोपीय मम्बरों को डर यह रहता था कि कहीं कोई ऐसी बात मुँह स न निकल जाय कि य स्वराजी सदस्य उनक पीछे पैच डालें।[1] निःसन्देह कौंसिल प्रवेश की नीति द्वारा स्वाभिमान निर्भयता तथा आत्मनिर्भरता की भावना प्रबल हुई। स्वराज्यवादियों को कई प्रस्तावों की स्वीकृति म सफलता मिली जस भारत म सैनिक विद्यालय खोलने का प्रस्ताव। कुछ प्रस्ताव स्वीकृत कराने म अथवा कुछ कानून रद्द करन म य असफल भी रहे। आपसी मतभेद के कारण भी कभी कभी इनकी हार हुई। पट्टाभि सीतारम्मया के शब्दों म—"यही कौंसिल म स्वराज पार्टी १९२४ और १९२५ म विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियों ने लिजिस्लेटिव कमेटी म भाग लिया और सामान्यतः कानून पास करने में सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया कभी किसी का और यदाकदा सरकार का भी।'

गांधी जी न जल स छूटन क पश्चात् विभिन्न राष्ट्रीय दलों से समझौता

१—पण्डित श्रीकृष्णदत्त पालीवाल हमारा स्वाधीनता संग्राम पृ० १
२—वही पृ०५
३—पट्टाभि सीतारम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २२७

कराना चाहा। उन्हें साम्प्रदायिक दगो से अत्यधिक दुख हुआ। स्वराज पार्टी की कौंसिल प्रवेश नीति म उन्होंन किसी प्रकार की बाधा नहीं डाली। १६२५ तक तो स्वराज पार्टी काग्रेस म का अ ग मात्र थी किन्तु १६२५ म स्वय काग्रेस बन गई थी। अब य पुन स्वराजी से कांग्रेसी बन गये थ क्योकि गाधीजी न बचा खुचा सहयोग भी समेट लिया था और अपनी सम्पूर्ण शक्ति रचनात्मक कायक्रम मे लगा दी थी। उन्होन राजनतिक अवस्था का सामना करने के लिय स्वराज्य-पार्टी को काग्रेस का अधिकार द दिया।[1]

स्वराज्यवादियो न गाधी जी की मूत कातन की शत को भी हटा दिया। इस बात का लकर पुन काग्रेस म दो विभागो म बट गई—प्रथम खद्दर क समथक द्वितीय कौंसिल के समथक। अपरिवतनवादियो म आन्तरिक मतभद तथा यद्यपि ऊपर स देखन म यह स्पष्ट दिखाइ नही दता था। स्वराज पार्टी या परिवतनवादी आपस म भी एकमत नही थ उनके विरुद्ध मध्यप्रान्त तथा महाराष्ट्र म झगडा गाढा गया। सन १६२६ कौंसिल क काम के लिए अधिक शुभ वष नही था। स्वराजी सदस्य कौंसिल प्रवेश द्वारा स्वराज्य प्राप्ति के काय म सफलता प्राप्त हान न देख इस साधन म थकावट का अनुभव करने लग।

वास्तव म १६२५ क अन्त म ही प्रतियोग सहयोग की आवाज निश्चयात्मक रूप मे सुनाई दने लगी थी।

अन्त म कौंसिल भवन स बजट की चर्चा क समय पडित मोतीलाल नेहरू और उनक सहयोगियो द्वारा वाक आउट हुआ।

काग्रेस ने १६२६ ई० म अपनी सम्पूण शक्ति कौंसिल क मार्चे पर लगा दी थी। इस प्रकार अ ग्रेज सरकार स असहयोग सहयोग में परिणत हो गया था। विदेशी सरकार न इसका लाभ फूट डालो की नीति द्वारा उठाया। उन्होंने साम्प्रदायिक वमनस्य की बढ़ती हुई अग्नि में घृताहुति दी, जिसका परिणाम था हिन्दू मुस्लिम दगो का भीषण रूप। स्वामी श्रद्धानन्द की बलि लकर भी यह अग्नि शान्त नही हुई।

सन् १६२५ २७ के बीच स्वराजियों की अड़गा नीति भी असफल होती दिखाई दी। अब उनमें दृढ़ता एकता और तीव्रता की कमी हो गई थी। सन् १६२६ में प० मोतीलाल नेहरू न साबरमती में स्वराजियो की सभा बुलाई जिसमें लाला लाजपत राय केलकर जयकर डा मुंजे श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा महात्मा गांधी

१—पट्टाभि सीता रम्मया कांग्रेस का इतिहास पृ० २३३

२—वही पृ० २६०

भी उपस्थित थे। इसमें कुछ विशेष प्रस्ताव रखे गये।[1] कांग्रेस कमेटी ने भी ये प्रस्ताव स्वीकार कर लिए। इन प्रस्तावों से स्वराज पार्टी में एकता नहीं रही। गांधीजी के अनुयायी इस समय अखिल भारतीय चर्खा संघ बनाने में व्यस्त थे। श्री मदनमोहन मालवीय तथा उनके सहयोगी हिन्दू जाति की आकांक्षा से प्रेरित होकर हिन्दू महासभा का संगठन कर रहे थे। जिन्ना तथा अन्य कट्टर मुस्लिम नेता मुस्लिम लीग या मुस्लिम कांफ्रेंस बनाकर मुसलमानों के विशेष अधिकारों के संरक्षण में व्यस्त होकर साम्प्रदायिकता की अग्नि धधका रहे थे। स्वराज पार्टी का राष्ट्रवाद गांधीजी के राष्ट्रवाद से भिन्न न था। केवल राजनीतिक क्षेत्र में स्वराज्यवादी कौंसिल प्रवेश द्वारा राष्ट्र हित विरोधी कानूनों का प्रतिकार करना चाहते थे और तत्कालीन संविधान को नष्ट करना चाहते थे। इनका साधन गांधीजी से कुछ भिन्न था। रचनात्मक कार्यक्रम और सत्य तथा अहिंसा का साधन भी मान्य था। वस्तुतः ये कांग्रेस से भिन्न न थे।

हिन्दू महासभा का राष्ट्रीय सिद्धान्त

गांधीजी के असहयोग आन्दोलन की असफलता ने धार्मिक विद्वेष तथा जातीयता की भावना को अधिक उत्तेजित किया। विदेशी सरकार की विभाजक नीति ने हिन्दू और मुसलमानों की साम्प्रदायिक भावना को अभिवृद्ध किया। लार्ड कर्जन तथा लार्ड मिंटो की फूट डालो नीति के परिणाम स्वरूप मुस्लिम लीग की स्थापना हो चुकी थी। हिन्दू राष्ट्रीय नेताओं—लाला लाजपतराय, मदनमोहन मालवीय ने उसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप और साम्प्रदायिक दंगों से प्रभावित होकर हिन्दू धर्म, जाति एवं समाज के पुनर्संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया। हिन्दू जाति की कल्याण कामना से अभिप्रेरित होकर उन्होंने ऐसी संस्था के निर्माण की आवश्यकता का अनुभव किया जिसके द्वारा हिन्दू धर्म तथा जाति को संरक्षता प्राप्त हो। अतः सन् १९२५ में इनके उद्योग से कलकत्ते में हिन्दू महासभा की स्थापना की गई। लाला लाजपत राय ने हिन्दू जाति से यह आवेदन किया था कि वे सुसंगठित होकर ऐसी संस्थाओं की स्थापना करें जो हिन्दू-समाज सेवा, हिन्दू नारी के उद्धार का काम सरलतापूर्वक कर सकें। इसके अतिरिक्त इन्होंने विधर्मियों द्वारा बलात् हिन्दुओं को विधर्मी बनाने का भी तीव्र विरोध किया था।[2]

1—(1) 'That the Ministers should be made fully responsible to the Legislative free from all control of control

(2) That an adequate proportion of the revenue be allotted for the development of nation building departments

(3) 'That Ministers be given full control of the services in transferred Department
Dr V.P.S Raghuvanshi—Indian Nationalist Movement and Thought—P 189

2 Dr Raghuvanshi—Indian Notionalist Movement and Thought P 171

हिन्दू महासभा की राष्ट्रीय भावना केवल हिन्दू धर्म हिन्दू-समाज तथा हिन्दी भाषा की उन्नति तक सीमित थी। धार्मिकता के रग म राष्ट्रीय एकता का विचार धूमिल पड गया था। राष्ट्रवाद का उदात्त सर्वांगीण विकसित रूप नही मिलता। इनकी राष्ट्रीय भावना सकुचित सकीण एव एकागी थी। राष्ट्रीयता म अन्य पक्षों के सम्बन्ध म ये गाधीजी के साथ थ।

मुस्लिम लीग

हिन्दू समाज की अपेक्षा मुस्लिम समाज म राष्ट्रीयता की लहर बहुत बाद म पहुची थी।[1] काग्रेस की स्थापना के पश्चात् इन के राष्ट्रीय जागृति के चिह्न आने लगे थे लेकिन इस मनोवाछित वातावरण म भी सर सैयद अहमद ने भारतीय मुसलमानो को काग्रेस से पृथक रखने का प्रयत्न किया यद्यपि इसम उन्हें अधिक सफलता नही मिली।[2] उनके जीवन काल म ही कुछ प्रगतिशील विवेकवान् एव राष्ट्रीय प्रवत्ति के मुसलमान नतागण राष्ट्रवादी बन गये थ लेकिन शीघ्र ही कालान्तर म लाड कर्जन की हिन्दू-मुस्लिम विभेदक नीति ने क्रियान्वित होकर मुसलमानो को साम्प्रदायिक आधार पर सगठित होने के लिए प्रेरित किया। मुस्लिम लीग की स्थापना द्वारा यह काय सम्पन्न हुआ। प्रथम महायुद्ध और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियो ने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन (१६२०-२२) के समय काग्रस क साथ खिलाफत सभा के अनुयायियो को एक कर दिया था लेकिन यह आदश परिस्थिति अधिक काल तक न रह सकी। आन्दोलन शिथिल होते ही साम्प्रदायिकता के आधार पर चुनावो ने दोनों को ऐसा विरोधी बना दिया कि उसका अन्तिम परिणाम दश के दो टकडों क रूप में आया। गांधीजी ने दोनो को मिलाने का उद्योग किया किन्तु असफल रहे।

मुस्लिम लीग को सच्चे अर्थों म राष्ट्रीय सस्था कहना असगत होगा। इसम अल्पसख्यक मुसलमान जाति एव धम क सरक्षण का भाव ही प्रमुख था। यह साम्प्रदायिक सस्था थी। राष्ट्रीय हित की अपेक्षा जाति तथा धर्मगत वमनस्य को इसस बढ़ावा मिला। हिन्दी साहित्य स इसका विशेष सम्बन्ध नही है। हिन्दी और उदू साम्प्रदायिकता के आधार पर पृथक-पृथक हिन्दुओ और मुसलमानो की भाषाए हो गई थी।[3] अत इसका विस्तृत विवेचन अपेक्षणीय नही है।

समाजवाद और उसकी राष्ट्रीय विचारधारा

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् श्रमिक वग ने स्वतन्त्र रूप से एक आदश को लेकर सगठित होना आरम्भ कर दिया था। १६१८ से १६२१ ई० की कई स्ट्राइकें

१—शान्तिप्रसाद वर्मा हमारी राजनतिक समस्यायें पृ० २६

२—शान्तिप्रसाद वर्मा हमारी राजनतिक समस्यायें प २७

३—शान्तिप्रसाद वर्मा हमारी राजनैतिक समस्यायें पृ २१७

उसी का परिणाम थी जिससे असहयोग आन्दोलन को भी बल मिला।[1] १९२४ ई० में बम्बई से 'सोशलिस्ट' पत्रिका निकलने लगी थी। १९२४ ई० में पुनः अखिल भारतीय स्ट्राइक हुई जिससे राष्ट्रवाद को नवीन गति मिली।[2] भारतीय श्रमिक आन्दोलन में समाजवादी विचारधारा का विशेष रूप से पोषण हुआ। १९२९ में कृषक एवं श्रमिक सम्मेलनों में समाजवाद के सिद्धान्तों पर बल दिया गया। मेरठ षडयन्त्र केस में श्रमिक वर्ग के नेताओं को दंड दिया गया था। इससे अप्रत्यक्ष रूप में समाजवादी एवं साम्यवादी विचारधारा का प्रचार हुआ था। यद्यपि मेरठ केस के उपरान्त समाजवादी दल को अवैध घोषित कर दिया गया था लेकिन मार्क्सवादी विचारधारा साम्यवाद और समाजवाद को रोका न जा सका था। १९३३ ई० में १४९ स्ट्राइकें हुई थी। १९३४ में वामपन्थी राष्ट्रवादी युवक दल ने कांग्रेस के अन्तर्गत मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित होकर प्रथम समाजवादी दल की स्थापना की। इसकी सदस्यता के लिए कांग्रेस का सदस्य होना आवश्यक था।[3] अतः राष्ट्रवाद में समाजवाद के प्रगतिशील तत्वों का आरोपण हुआ।

भारत में श्रमिक आन्दोलन साम्यवाद एवं समाजवादी विचारधारा के आगमन का प्रमुख कारण था पूँजीवादी व्यवस्था में श्रमिकों की दयनीय अभावग्रस्त भारतीय स्थिति। समाजवाद में श्रमिक एवं कृषक वर्ग की स्थिति के सुधार की आशा थी।

समाजवाद के विषय में डा० भारतन् कुमारप्पा ने लिखा है "मिलों और उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार हो और उत्पादन से जो कुछ प्राप्त हो उसे समाज के विभिन्न अंगों में सम वश बराबर बाँट दिया जाय। इस उपाय से आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों का पूरा लाभ समाज को प्राप्त होगा और वर्तमान असमान विभाजन, गरीबी बेकारी वर्ग-युद्ध आदि बुराइयों से समाज की रक्षा होगी। उत्पादन व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर समाज के कल्याण के लिए होगा। प्रतिस्पर्धा के कारण जो बरबादी उत्पादन की होती है वह रुक जायगी। मजदूरों का दुरुपयोग नहीं होगा और कमजोर राष्ट्र पर बलवान राष्ट्र की गृद्ध दृष्टि नहीं पड़ेगी। युद्ध के लिए प्रेरणा का अन्त हो जायगा। पूँजीवादी व्यवस्था में लाभ के लिए पागल समाज के हृदय से मानवीय विचारों का जो सर्वथा लोप हो गया था उसका पुनः उदय होगा और आर्थिक व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य आवश्यकता के अनुसार उत्पादन रह जायगा। संघर्ष कलह और मारपीट का स्थान सहयोग सद्भाव और शान्ति ग्रहण करेंगे और परस्पर प्रेम के भाव का उदय होगा। समाजवाद का यही

1 Palme Dutt—India Today—P 337
2 By 1927 the trade union congress united fifty seven affiliated unions with a recorded membership of 150 155
Palme Dutt—India Today—P 381
3 Palme Dutt—India Today—P 394

आधार-स्तम्भ है। अर्थात उत्पादन और विभाजन का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ न होकर समुदाय का लाभ होगा। इसलिये इस व्यवस्था का नाम समाजवाद है जो पूंजीवाद अथवा व्यक्तिवाद का विरोधी है।[1] मानव जगत् को मनुष्य समाज बनाना उत्पीडन और शोषण के स्थान पर समता और शान्ति की स्थापना कर वर्गभेद मिटाना इसका लक्ष्य है। अतः समाजवाद का जीवन दर्शन भौतिकवादी है। मार्क्स एंगिल्स तथा उनके शिष्यों ने समाजवाद के विषय में बहुत कुछ लिखा है। डा० सम्पूर्णानन्द (जिनका १९३५ में कांग्रेस संगठन के अन्तर्गत समाजवादी दल की स्थापना में प्रमुख स्थान था) ने अपनी पुस्तक समाजवाद में मार्क्स सम्मत वैज्ञानिक समाजवाद के विषय में लिखा है— वह मनुष्य समाज की हजारों खराबियों को देखता है पर इनमें से एक के पीछे नहीं दौड़ता क्योंकि वह समझता है कि इनमें से अधिकांश गौण और उपलक्षण मात्र हैं। वह मूल रोग को पकड़ने का प्रयत्न करता है कि समुदाय के भीतर वह कौन-सी शक्तियाँ हैं जो स्वतः इस रोग के उच्छेद का प्रयत्न कर रही हैं।[2] समाजवाद न्याय और मनुष्यता के नाते पीड़ितों की अवस्था में सुधार नहीं करना चाहता। वह धनिकों और अधिकार वालों से दया की भिक्षा नहीं माँगता और न उनके हृदय के परिवर्तन की चेष्टा करता है। वह संसार के लिये क्या उचित और न्याय है इसका आदर्श बनाने भी नहीं बैठता और न किसी को अपना लक्ष्य मानता है। उसकी परिपाटी वही है जो कुशल वैद्य की होती है। वह रोगी की परीक्षा करते समय अपने मस्तिष्क के किसी सिद्धान्त से काम नहीं लेता वह देखता है कि रोगी का शरीर क्या बतलाता है।

वस्तुतः समाजवाद एक विशिष्ट सामाजिक व्यवस्था है जिसमें व्यक्ति की अपेक्षा समाज की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति को महत्व दिया जाता है। राष्ट्रवाद सम्पूर्ण राष्ट्र की एकता गौरव और स्वतन्त्रता का विचार है। निःसन्देह दोनों व्यक्तिवाद के विरोधी हैं। समाजवाद राष्ट्रवाद का एक पोषक तत्व बन सकता है। राष्ट्रवाद की भावना की पुष्टि में भी इससे सहायता मिल सकती है। इसका कारण यह है कि समाजवाद में राष्ट्र का अधिक से अधिक हित अन्तर्हित है। इसे राष्ट्रवाद का कल्याणकारी उपाय भी कह सकते हैं।

गांधीजी के राष्ट्रवाद का मूल दर्शन आध्यात्मिक है जिसमें उचित अनुचित और न्याय-अन्याय का पूरा ध्यान रखा गया था। इसकी अपेक्षा समाजवाद का मूलाधार भौतिकतावादी है वह पीड़ित-वर्ग की दशा सुधारने के लिए कोई भी साधन अपनाने में हिचकता नहीं है। समाजवाद गांधीजी की राष्ट्रीय विचारधारा से बहुत भिन्न है।

१—डा० भारतन कुमारप्पा पूंजीवाद-समाजवाद ग्रामोद्योग पृ० ६४

२—डा० सम्पूर्णानन्द समाजवाद पृ० ८८

निष्कर्ष

भारतीय राष्ट्रीयता के विकास के इतिहास-पर दृष्टि डालने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रीय चेतना उच्च वर्ग से प्रारम्भ होकर निम्न वर्ग तक फैल गई थी तथा सम्पूर्ण भारत उसमें समाहित हो गया था। राष्ट्रवाद के प्रमुख तत्व भौगोलिक एकता, इतिहास सभ्यता संस्कृति की एकता वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ उसके निराकरण के प्रयत्न तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लक्ष्य की एकता आदि थे। हंस कोह्न ने राष्ट्रवाद की उत्पत्ति मस्तिष्क की एक विशेष दशा मानी है। निःसन्देह गांधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय शक्तियों ने सम्पूर्ण भारतवासियों को एक विशेष मनःस्थिति में पहुँचा दिया था जिसमें स्वतन्त्रता के लिए उत्साह था और भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान तथा राजनीतिक क्रांति के लिए आह्वान था। रेनन के मत में राष्ट्रीयता के लिए रक्त की एकता से अधिक महत्वपूर्ण तत्व ध्येय की एकता और ऐतिहासिक समानता है। भारत जैसे विशाल देश में अनेक जातियों तथा धर्मों का सम्मिलन हुआ है। हिन्दू मुसलमान ईसाई सिक्ख बौद्ध आदि विभिन्न धर्मावलम्बी जातियाँ बसी हुई हैं किन्तु इनकी राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद के सम्बन्ध में किसी प्रकार का विवाद नहीं उठ सकता क्योंकि इस समय ध्येय की एकता थी एक देशवासी होने के कारण इतिहास में समानता थी। भारतीय राष्ट्रवाद की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसका अन्तर्राष्ट्रीयतावाद से विरोध नहीं था। वह मानवतावाद के महान आदर्श पर आधारित था। अन्य राष्ट्रों के प्रति उसमें उपेक्षा की भावना नहीं थी। अतः राष्ट्रवाद की सभी मान्य परिभाषाओं की कसौटी पर कस कर भारतीय राष्ट्रीयता अथवा राष्ट्रवाद खरा उतरता है। पराधीनता के अभिशाप से त्रस्त भारतीय जनता ने सामूहिक रूप में अभ्युदय के लिए उद्योग किया था। राष्ट्रवाद के अवरोधक तत्वों की ओर से राष्ट्रीय चेतना पूर्णतया सजग थी। इस युग में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए दो भिन्न साधनों का प्रयोग किया गया—(१) अहिंसात्मक—जिसका नेतृत्व गांधीजी ने किया। (२) हिंसात्मक—इसके दल सम्पूर्ण भारत में फैले थे। अहिंसात्मक साधन प्रमुख साधन था जिसमें भारत की सामान्य जनता का विश्वास था। इस प्रकार राष्ट्रवाद के प्रमुख रूप निम्नलिखित थे—

१ अतीत गौरव गान—

(क) आध्यात्मिक उत्कर्ष (ख) नैतिक उत्कर्ष (ग) भौतिक उत्कर्ष

इसके चित्रण द्वारा जन जीवन में आत्म-गौरव वीरता तथा उत्साह की भावना भरी गई। देशवासियों को अपने इतिहास का सच्चा परिचय दिया गया जिससे वे अपनी अति प्राचीन ऐतिहासिक परम्परा को सुरक्षित रख सकें।

२—*अतीत गौरव तथा वर्तमान अवस्था की तुलना*—इसके द्वारा वर्तमान के प्रति असन्तोष क्षोभ ग्लानि घृणा की भावना को तीव्र किया गया जिससे राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-युद्ध को बल मिला।

३—राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष–देशभक्ति अर्थात् देश के प्रति अनन्य अनुराग मातृभूमि का स्तवन, देश की भौगोलिक एकता की पुष्टि ।

४–राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष–देशवासियों का ध्यान राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष जस – *राजनीतिक अन्याय एव अत्याचार सामाजिक कुरीतियां आर्थिक दुदशा* सास्कृतिक हीनता आदि की ओर आकृष्ट किया गया जिससे वे राष्ट्रीयता म अवरोधक तत्वों के घातक परिणामो का ज्ञान प्राप्त कर उनके निराकरण का प्रयत्न करें ।

५–राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष–राष्ट्रीयता उद्बोधक विविध साधनो का उपयोग किया गया जिससे भारतीय जीवन म राष्ट्रवाद के पूण विकास म सहायता मिली । प्रमुख साधन गाधीजी की सत्य अहिंसा नीति थी जिसके फलस्वरूप सत्याग्रह आन्दोलन हुए और रचनात्मक कायक्रम को क्रियान्वित किया गया । काग्रस के अन्तगत स्वराज पार्टी ने कौंसिल प्रवेश द्वारा साम्राज्यवाद के गढ़ को जीतने का प्रयास किया । हिन्दू महासभा और मुस्लिम लीग साम्प्रदायिकता से पूण एकागी साधन थे । इनका राष्ट्रवाद पूर्ण नहीं था क्योंकि उसम राष्ट्र की अपेक्षा जाति एव धम हित का लक्ष्य प्रमुख था । क्रान्तिकारी अथवा आतकवादियो को हिंसात्मक साधन इष्ट था । वैसे सभी दलो का समान रूप से एक ही लक्ष्य था स्वराज्य ।

६—यह राष्ट्रवाद अतीत और वतमान पर ही आधारित नहीं था इसने भविष्य क भी सुन्दर स्वप्न देखे थे । गाधीजी ने स्वराज्य के पश्चात् रामराज्य क स्वप्न को सत्य करने की आकांक्षा की थी ।

राष्ट्रवाद के इन तत्वो को दृष्टि म रखकर हिन्दी साहित्य में उनकी अभिव्यक्ति का अध्ययन एवं विश्लेषण किया गया है ।

—०—

५

हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति

(१९२०—१९३७ ई०)

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक काल से ही दो प्रकार की विचार धाराएँ कार्य करती दृष्टिगत होती हैं। प्रथम दल के समर्थक पश्चिमी सांस्कृतिक मूल्यों और आदर्शों को राष्ट्रीय उत्थान के लिए आवश्यक मानते थे किन्तु इनकी संख्या अति अल्प थी। और दूसरे दल की दृष्टि भारत की प्राचीन संस्कृति सभ्यता दर्शन साहित्य की ओर थी। पहला वर्ग अंग्रेजी शासन में विश्वास रखता था और अंग्रेजी राज्य को उन्नति का सूचक मानता था लेकिन दूसरे वर्ग ने भारत की शक्ति में विश्वास रख कर देश को अपने बल पर स्वतन्त्रता-संग्राम के लिए अभिप्रेरित किया था। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है। इस द्वितीय वर्ग के राष्ट्रवादियों की विचारधारा पर आर्य समाज रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द के विचारों का प्रभाव पड़ा था। इन्होंने भारत की अति प्राचीन सभ्यता संस्कृति नैतिक आदर्शों के द्योतक धर्मग्रन्थों साहित्य एवं ऐतिहासिक गाथा द्वारा उपलब्ध जीवन दर्शन का आधार ग्रहण किया और उसे राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख प्रेरक तत्व बना लिया। इस वर्ग के राष्ट्रीय नेताओं, लोकमान्य तिलक आदि ने केवल विचार स्वातन्त्र्य के लिए स्वायत्त शासन की आकांक्षा नहीं की थी प्रत्युत भारतीय सांस्कृतिक जीवन-दर्शन का स्वाभाविक विकास उनका लक्ष्य था।[1]

---

1 Freedom is made beneficial and lawful because the individual can order his life by his Swadharma Thus it is that the classical ideal was not lawless freedom but rather lawful freedom-selfrule, Swaraj Lawfull freedom Swaraj, meant living in accordance with Swadharma

Theodore L. Shay The Legacy of the Lokamanya The Political Philosophy of Bal Gangadhar Tilak—P 10

गाधी जी ने इसी भारतीय जीवन-दर्शन तथा अध्यात्मिकता को राष्ट्रीय आन्दोलन का सम्बल बनाकर जन आन्दोलन का रूप दिया था। इसका कारण यह था कि मनुष्य की सहज प्रवृत्ति सामाजिक होने के साथ ही अध्यात्मिक भी है। सोद्देश्य जीवन-यापन के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य का आचरण धर्मानुकूल हो। स्वतन्त्रता को नियमित तथा न्यायपूर्ण बनाने के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। इसी कारण गांधीजी ने युग-युग से चल आ रहे भारतीय सांस्कृतिक जीवन-दर्शन के प्रमुख तत्व सत्य और अहिंसा को देश के लिए हितकारी माना था। श्री राधाकृष्णन् ने लिखा है—'गांधी जी ने हम सभ्यता के इतिहास में एक नवीन मार्ग का प्रदर्शन कराया है जो हमारे देश की गौरवमयी सांस्कृतिक परम्पराओं के अनुकूल है। हमारे आधुनिक युग को यदि बर्बरता से मुक्त होना है तो उसे अहिंसा के मार्ग का आश्रय लेना होगा।'[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उस युग के प्राय सभी राष्ट्रवादियों का भारत की प्राचीन संस्कृति सभ्यता धर्म दर्शन इतिहास में विश्वास था। वे उन्हें पुनरुज्जीवित कर आधुनिक युग के प्रकाश मे, कुछ परिवर्तन तथा परिशोधन के साथ स्थापित करना चाहते थे।

आधुनिक हिन्दी साहित्य ने स्वतन्त्रता-संग्राम और राष्ट्रीय विचारधारा को अपना पूर्ण सहयोग दिया है। सरस्वती के वरदान से हमारी राष्ट्रीय भावना की गति में तीव्रता आई है। अतीत-गौरव राष्ट्रवाद का प्रमुख प्रेरक तत्व है। अत सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद के इस अंग का विवेचन द्रष्टव्य है।

अतीत गौरव गान

भारत का स्वर्णिम अतीत अथवा अध्यात्मिक नैतिक भौतिक उत्कर्ष का इतिहास देशवासियों में राष्ट्रीय चेतना तथा स्वाभिमान का स्रोत रहा है। गांधीजी तथा सभी राष्ट्रीय दलों का भारत के प्राचीन गौरव के प्रतिपादन में विश्वास था। अत अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के अनुकूल हिन्दी साहित्यकारों ने अपनी लेखन शक्ति द्वारा भारत के विगत गौरव अध्यात्मिक और दर्शन नैतिक आदर्शों शारीरिक बल तथा भौतिक ऐश्वर्य का चित्रण ऐतिहासिक अनुसंधान तथा प्रामाणिक धर्मग्रन्थों के आधार पर किया है। धर्मग्रन्थों से उन विषयों को चुना जो कि सम्पूर्ण राष्ट्र के एकीकरण के मुख्य तन्तु हैं। इतिहास के उस चेतन-स्वरूप को अपनाया जो पुन राष्ट्र की रग रग में नवीन जीवन का सचार करने वाला था। प्राचीन उन्नति के दर्पण में वर्तमान अवनति का प्रतिबिम्ब अवलोकन कर भविष्य के लिए प्रोत्साहन प्राप्त हो सके ऐसी अनेक रचनाएं साहित्य भण्डार में भरी पड़ी हैं। जैसा कि भूमिका खण्ड में स्पष्ट किया जा चुका है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने सर्वप्रथम इस प्रकार की पुस्तक

१—प्रो० इन्द्र गांधी गीता अथवा अहिंसा योग पृ० ३

'भारत भारती' (१९१२ ई०) लिखी थी।[1] इसके पश्चात अतीत स्तवन चल पड़ी। काव्य, नाटक, उपन्यास और कहानी में अनेक रूपों तथा अतीत की गौरव गाथा का वर्णन मिलता है।

भारत का अतीत आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक सभी दृष्टियों से उज्वल रहा है। सर्वप्रथम हिन्दी कविता, नाटक और कथा साहित्य में अतीत गौरव के इन पक्षों की अभिव्यक्ति का स्वरूप विश्लेषण किया गया है।

काव्य में अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष

भारत धर्म प्रधान देश है जिसके रग रग में उसका अध्यात्म तथा दर्शन व्याप्त है। भारतीय जीवन-दर्शन भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को अधिक महत्व देता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष भारतीय जीवन के चार पुरुषार्थ हैं लेकिन अर्थ तथा काम को धर्म द्वारा नियन्त्रित किया गया है और मोक्ष अंतिम लक्ष्य है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि भौतिक पदार्थों तथा सुखों को नियमित रखने के लिए धर्म का मेरुदंड आवश्यक माना गया है। सत्य धर्म के पालन से सच्ची स्वतन्त्रता अथवा मुक्ति प्राप्त हो सकती है। गांधी जी ने अपने राष्ट्रवाद को भारत की चिर पुरातन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक विचारधारा पर आश्रित किया था। जैसा कि गांधी जी की राष्ट्रीय विचारधारा के प्रकरण में स्पष्ट किया जा चुका है अन्य सभी भारत की भांति पुरातन धर्म-व्यवस्था में उनका पूर्ण विश्वास और श्रद्धा थी। उग्रवादी नेताओं की भी इसमें विशेष आस्था थी और आतंकवादी अथवा क्रान्तिकारी तो गीता के अध्यात्म एवं दर्शन में विश्वास रखते ही थे।[2] अतः हिन्दी-साहित्यकारों की भी दृष्टि ऋषियों, मुनियों द्वारा प्रसारित धर्म तथा दर्शन के उत्कृष्ट सिद्धान्तों की ओर गई जिसकी साहित्य में सुन्दर ढंग से अभिव्यंजना की गई है।

सन् १९१० में रचित 'भारत भारती' में मैथिलीशरण गुप्त ने यह स्पष्ट घोषणा में कह दिया था कि विश्व को आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करने वाला प्रथम देश भारत ही है। अपनी उसी मान्यता की पुनरुक्ति उन्होंने १९२० ई० के बाद भी की है। उनके अनुसार निःसन्देह हमारे पूर्वज अन्तर्जगत के सभी रहस्यों से परिचित थे। 'हिन्दू' में गुप्तजी ने लिखा है —

करके अगतों का आह्वान
गाया अनुपम वदिक गान

१—बड़े खेद की बात है कि हम लोगों के लिए हिन्दी में अभी तक इस ढंग की कोई कविता-पुस्तक नहीं लिखी गई जिसमें हमारी प्राचीन उन्नति और अर्वाचीन अवनति का वर्णन भी हो और भविष्यत के लिए प्रोत्साहन भी।
मैथिलीशरण गुप्त, प्रस्तावना, भारत भारती

2 Theodore L. Shay The Legacy of Lokmanya—P 11

देकर सबको प्रथम प्रकाश
किया सभ्यता का सुविकास।[1]

यूरोप जिसका भविष्य अति उज्ज्वल है वह तो भारत के शिष्यों का शिष्य है। आर्यों की धूम समस्त भूमण्डल में फैली थी। तिब्बत श्याम चीन जापान लंका यवद्वीप ईरान काबुल रूम रोम यूनान सभी जगह आर्यों की मान थी।[2] आज का शक्तिशाली देश अमरीका हर्षपूर्वक सीता रामोत्सव मनाता था।[3]

अतीत काल में भारत की आध्यात्मिक उन्नति अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंच चुकी थी इसी कारण हमारे पूर्वज सरलता से जगत् जाल तोड़ दिया करते थे। आज भी आध्यात्मिक उत्कर्ष के प्रतीक वेद-ग्रन्थ न केवल भारतीय जीवन को वरन् सम्पूर्ण विश्व को स्वधर्म की शिक्षा देकर आध्यात्मिक शक्ति से अनुप्राणित करते हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने वेदों की धार्मिक सहिष्णुता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है कि अन्य सभी धर्म वैदिक विचारधारा से प्रभावित हैं।[4] हरिऔध के सदृश प० रामचरित उपाध्याय मैथिलीशरण गुप्त आदि राष्ट्रीय कवियों को वेदों की महानता पर पूर्ण विश्वास था। पंडित रामचरित उपाध्याय ने लिखा है —

ब्रह्म विनिर्मित वेद मुखों से मिलता है उपदेश मुझे
इसलिए ए ज्ञान गेह है चिन्ता कैसी वेश मुझे ?[6]

ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी भारत की भूतकालीन आध्यात्मिक उन्नतता का वर्णन करते हुए कहा है —

जिसने जग को था मुक्ति-मार्ग दिखलाया
जिसने उसको था कर्मयोग सिखलाया
था जिसका दिव्यालोक लोक में छाया
जिसका गुण सबने मुक्त कंठ से गाया
था जिसका सारा विश्व सदैव पुजारी
वह भारत भूमि है यही हमारी प्यारी।

धर्म ग्रन्थों के साथ आध्यात्मिक महापुरुष ऋषि मुनियों के जीवनचरित्र भी अनुकरणीय हैं जिन्होंने भारत भूमि पर जन्म ग्रहण कर इसका मान बढ़ाया है। इस

१—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ३३
२—वही पृ० ४१
३—वही पृ० ३२
४—प० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे पृ० २१
५—वही पृ० १६
६—प० रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ४ प्रथम संस्करण राष्ट्रीय शिक्षा ग्रन्थमाला ग्रन्थ २
७—ठाकुर गोपालशरणसिंह सचिता पृ० ६३

काल के कवियों की दृष्टि भी गौतम कणाद पतजलि, व्यास आदि ऋषियो राम कृष्ण जसे दिव्य पात्रो तथा महापुरुषों के चरित्र की आध्यात्मिक विशेषताओं पर भी गई। रामनरेश त्रिपाठी ने भारत देश के अतीत गौरव का वणन करते हुए लिखा है कि यही वह देश है जिसने सबस पहले सभ्य होकर विश्व को ज्ञान के प्रकाश स आलोकित किया और यही अलौकिक तत्वज्ञ ब्रह्मज्ञानी गौतम पतजलि हुए हैं।[1] सूयकान्त त्रिपाठी निराला ने 'खंडहर के प्रति' कविता म देशवासियो को विस्मृति की निद्रा स जगाने के लिए जैमिनी पतजलि व्यास आदि ऋषि-मुनियो का स्मरण किया है —

आत भारत! जनक हू मै
जमिनी पतजलि-व्यास ऋषियो का,
मेरी ही गोद पर शशव विनोद कर—
तेरा है बढ़ाया मान
राम कृष्ण भीमाजु न भीष्म नरवरों से।
तुमने मुख फर लिया
सुख की तष्णा स अपनाया है गरल,
हो बसे नव छाया मे
नव स्वप्न स जगे
भूले वह मुक्त प्रान साम गान सुधा-पान
तव चरणों म प्रणाम।[2]

पण्डित रामचरित उपाध्याय न रामचरितचिन्तामणि महाकाव्य की रचना कर राम के दिव्य चरित्र की कथा कही थी। इसम राम के चरित्र की वे विशेषताएँ नहीं उभर सकी हैं जिनस राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण हो सकता। फिर भी इस पुस्तक द्वारा अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कष के चित्रण म कुछ योग तो मिला ही है।

द्वापर' म मैथिलीशरण गुप्त ने कृष्ण बलराम आदि क दिव्य चरित्रो का आलेखन किया है। 'साकेत' महाकाव्य म राम लक्ष्मण आदि का आध्यात्मिक चरित्र सम्मुख आता है। गुप्त जी ने राम के चरित्र को ईश्वर की अपेक्षा आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है किंतु उनकी आध्यात्मिक श्रेष्ठता अक्षुण्णता का सकेत करते हुए कह दिया है कि राज्याभिषक के समारोह की तयारी क बीच राम के हृदय म सयम बस रहा था। वह अपार अधिकार उन्हें भार-सा दिखाई द रहा था।[3]

१—रामनरेश त्रिपाठी मानसी पृ० ३८ दूसरा परिवर्द्धित सस्करण अक्तूबर १९३४

२—सूयकान्त त्रिपाठी 'निराला' अनामिका पृ० ३०

३—मथिलीशरण गुप्त 'साकेत पृ० ५६ सवत २०१२ साहित्य प्रेस चिरगाँव झाँसी

सत्य धम पालन के लिए राजा दशरथ प्राण-सम प्रिय पुत्र राम को वनवास का दण्ड देते हैं।[1] भारतीय इतिहास के मध्यकाल म तुलसीदास ने आध्यात्मिकता की पुण्यधारा प्रवाहित की थी। अत उनके वन्दनीय चरित्र को लेकर सियारामशरण गुप्त ने तुलसीदास कविता लिखी थी —

अन्तर्बाह्य प्रकाशक तुमने दिव्य दीप दिखलाया
तुमने हमें भक्त होने का राम मन्त्र सिखलाया ॥[2]

इसी प्रकार सन् १६३७ म राम की कथा लेकर रामनाथ ज्योतिषी ने राम चन्द्रोदय नामक प्रबन्ध-काव्य लिखा था।

सूयकान्त त्रिपाठी निराला ने सन् १६३७ के लगभग तुलसीदास[3] नामक पद्य प्रबन्ध म तुलसी की जीवन-गाथा को नवीन सांस्कृतिक एव आध्यात्मिक मूल्यों की दृष्टि से लिखा था। अनूप शर्मा ने सन् १६३७ में सिद्धाथ नामक महाकाव्य म गौतम बुद्ध के आध्यात्मिक चरित्र पर प्रकाश डाला था।

उदयशकर भट्ट द्वारा रचित तक्षशिला मे भारत के विगत अशोककालीन इतिहास के प्रतिपादन मे अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कृष्टता का भी वणन मिलता है —

अधर सुधारस भासित मुखछवि ऋषि जन जिस पल करते गान
वदिक गीतों का अतीत में जहाँ सभ्यता का उत्थान ॥

ब्राह्मण ग्रन्थ आरण्यक उपनिषद् रचे गये थे और सत्याग्रह तथा सत्य ज्ञान की शुद्ध नीतिमय मूर्तियाँ हुई थी।[5] भट्टजी ने इतिहास द्वारा भारत की गत आध्यात्मिक श्रेष्ठता की पुष्टि की है।

भारत का अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कष ज्ञान-कम भक्ति समन्वित था। कृष्ण द्वारा प्रसारित गीता कमण्यता प्रवृत्यात्मकता एव मानव हित का सदेश देती है। पडित रामचरित उपाध्याय ने गीता की आध्यात्मिक विचारधारा और जीवन दर्शन का प्रकाशन मुक्ति-मन्दिर नामक कथा-काव्य में किया है। महाभारत में कृष्ण ने अजुन को धम के सत्य स्वरूप से परिचित करा कर सघष के लिये प्रेरित किया था। उसी कथा का आधार ग्रहण कर कवि ने इस पुस्तक म दासता से मुक्ति के लिए सघष

१—मथिलीशरण गुप्त साकेत प० ६४
२—सियारामशरण गुप्त दूर्वा-दल पृ ५० भाद्र पूर्णिमा १६८६ साहित्य सदन चिरगांव (झाँसी)
३—सूयकान्त त्रिपाठी निराला' तुलसीदास तृतीय सस्करण भारती भंडार
४—सूयकान्त त्रिपाठी निराला : तुलसीदास प ५१
५—उदयशकर भट्ट तक्षशिला पृ० ४ द्वितीय सस्करण १६१५ इडियन प्रेस लिमिटेड इलाहाबाद
६—वही पृ० ६

को धर्म-सम्मत एवं देशवासियों का स्वधर्म माना है।[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने भी राष्ट्रीय उत्थान के लिए गीता की कर्ममय आध्यात्मिकता का आश्रय लेते हुए कहा है —

> क्या यह वही देश है—
> भीमार्जुन आदि का कीर्ति-क्षेत्र,
> चिरकुमार भीष्म की पताका ब्रह्मचर्य-दीप्त
> उड़ती है आज भी जहाँ के वायुमण्डल में
> उज्ज्वल अधीर और चिरनवीन ?
> श्रीमुख से सुना था जहाँ भारत ने
> गीता गीत—सिंहनाद
> मर्मवाणी जीवन संग्राम की
> सार्थक समन्वय ज्ञान कर्म भक्ति योग का ?[2]

मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' में राम कथा के माध्यम से और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'प्रियप्रवास' में कृष्ण कथा के माध्यम से इसी क्रियाशील आध्यात्मिकता का उत्कृष्ट रूप मिलता है।

श्रीधर पाठक (जिनका रचना काल भारतेन्दु युग से छायावाद-युग के प्रारम्भिक वर्षों तक चलता रहा) ने भी मातृभूमि की वन्दना के साथ अतीतकालीन आध्यात्मिक गौरव की स्मृति में अपना योग दिया था।[3] श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने विजया दशमी कविता में धर्मभीरु सात्विक तथा निश्छल राम की कथा लिखी है। विजया दशमी का महान् पर्व आज भी भारतवासियों को भारत के धार्मिक महा-पुरुषों की विजय का रहस्य बताता है।

भारत के धर्म-ग्रन्थ तथा इतिहास इस बात की पुष्टि करते हैं कि देश के आध्यात्मिक गौरव की अभिवृद्धि में नारियों ने भी पूर्ण सहयोग दिया था। सावित्री, सुकन्या, दमयन्ती जैसी सती एवं सदाचार जीवन व्यतीत करने वाली देवियाँ महापुरुषों के समान दिव्य-शक्ति थीं। उन्होंने पुरुषों के समान स्वधर्मों का पालन किया था। रामनरेश त्रिपाठी ने 'सीता' काव्य में सीता देवी के पातिव्रत धर्म-मण्डित आध्यात्मिक चरित्र का दिव्य चित्रण किया है। देवी पतिव्रता श्रीसीता यहाँ हुई थीं[5] वह देश आज भी सम्मान के योग्य है। 'पंचवटी' खण्डकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने सीता के

१—पं० रामचरित उपाध्याय मंदिर मन्दिर पृ० ६० पहली बार सन् १९५४
२—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आओ फिर एक बार (१९२१) अपरा पृ० १०
३—श्रीधर पाठक भारत-गीत पृ० ६१
४—सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ६२ षष्ठ संस्करण
५—रामनरेश त्रिपाठी मानसी पृ० १२१
६— „ „ पृ० ३८

चरित्र की आध्यात्मिक विशेषताओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। भारत की नारियों में राष्ट्रीय जागृति के लिए धर्म तथा इतिहास की महान् एवं त्यागशील नारियों के दिव्य चरित्र का आलम्बन था। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा में यशोधरा के त्यागमय जीवन की कथा लिखी है। गौतम बुद्ध ने सिद्धिप्राप्ति के लिए राजपाट और भौतिक वैभव का परित्याग किया था लेकिन यशोधरा ने उनके बीच रहते हुए भौतिक कर्तव्यों को पूर्णतया निभाते हुए जिस त्याग एवं संयम का आदर्श रखा था वह अनुकरणीय है। भारतीय आध्यात्मिक उत्कर्ष के इतिहास में यशोधरा का जीवन चरित्र कर्ममय आध्यात्मिकता का सुन्दर निदर्शन है।

आज भी खुदते हुए खंडहरों में यही वाणी गूंज रही है कि भारत जननी स्वयं सिद्ध है सब देशों की रानी।[1] अध्यात्म तथा ज्ञान के क्षेत्र में विश्व के अन्य देश उसकी बराबरी नहीं कर सकते। यह आध्यात्मिक उत्कर्ष समानाधिकार पर टिका हुआ था। व्यक्ति मात्र की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए ही महाभारत हुआ था। सच्चे अर्थों में मुक्ति या मोक्ष का जन्म भारत में हुआ है। मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है —

उत्पन्न मुक्ति भी हुई यहां! भारत में
मनु न स्वतन्त्र को सखी कहा भारत में!
अधिकार गर्व यों अटल रहा भारत में!
भाई भाई तक लड़े महाभारत में।।
शर शय्या पर भी राजनीति समझाई।
हम हैं भारत सन्तान करोड़ों भाई।।[2]

उनके मत में हमारे पूर्वजों की आध्यात्मिक चेतना इतनी स्पष्ट थी कि वे निःस्वार्थ निर्द्वन्द्व और निर्लिप्त जीवन व्यतीत करते थे। वे इतने योग्य और उदार थे कि विश्व की सुख शान्ति एवं समृद्धि की शुभकामना से परिपूरित होकर समस्त जगत् को दिव्य सन्देश सुनाते थे —

वे थे ऐसे योग्य उदार तथा कुटुम्ब उनका संसार।
जगती की सब शान्ति समृद्धि और उन्होंने की शुभ वृद्धि।।[3]

इस युग में राष्ट्रवाद के उद्बोधन के लिए अतीतकालीन आध्यात्मिकता का जो रूप प्रस्तुत किया गया था वह लोकमंगल की कामना से पूर्ण था। निःसन्देह यह गांधी जी की राष्ट्रवादी धार्मिक भावना का प्रभाव था। कवि वर्ग ने यह स्पष्ट रूप से कह दिया था कि आज भी इस विषम युग में जीवन के कठिन कर्मक्षेत्र

१—मैथिलीशरण गुप्त स्वदेशी संगीत पृ० ७७ प्रथम संस्करण सं० १९८२ वि०
२—मैथिलीशरण गुप्त स्वदेशी संगीत पृ० ८७ प्रथम संस्करण सं० १९८२ वि०
३— " हिन्दू पृ २९

से पार उतरने के लिए विश्व का कोई भी देश भारत से आचार विचार, त्याग भाव तथा भक्ति भावना की शिक्षा ले सकता है।[1] इस आध्यात्मिक श्रेष्ठता की प्राप्ति का प्रमुख कारण था पूर्वजों द्वारा कठिन ब्रह्मचर्याश्रम का पालन।[2] गांधी जी ने विशेष रूप से राष्ट्रीय प्रगति के लिए ब्रह्मचर्य धर्म के पालन पर बल दिया था जैसा कि उनकी आध्यात्मिक विचारधारा के सम्बन्ध में स्पष्ट किया जा चुका है। श्री मैथिलीशरण गुप्त की आध्यात्मिकता कर्मण्यता का संदेश देती है। उदाहरणार्थ —

गावें द्विजगण यह गान —
जिससे हो जाय उत्थान
गूंजे आत्म-तत्व की तान
सत्यालोक सुमार्ग दिखावें ॥

यह पूर्णतया भारतीय संस्कृति के रंग में रंगी है। गीता द्वारा प्रचारित ज्ञान भक्ति एवं कर्म से समन्वित है। उनके अतीत का आध्यात्मिक उत्कर्ष भारत के वर्तमान और भविष्य का मानदंड है। उन्होंने अपने पूर्वजों के दिव्य-चरित्र का गान करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी साम्राज्यवाद की पाशविकता एवं स्वार्थपरता की ओर भी इंगित किया है। इसके अतिरिक्त पराधीनता के अभिशाप से उत्पन्न हीन भावना को मिटाने के लिए युग-युग से चले आ रहे आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर देशवासियों का उन्मुख किया है —

कर्मयोगी किस लिए तू दुःखभोगी ?
लक्ष्य तेरा मुक्ति है स्वाधीनता है ॥

गुप्त जी की दृष्टि में सिकन्दर, नेपोलियन आदि महान विजेताओं का वह आदर नहीं है जो बौद्ध धर्म प्रचारक गौतम बुद्ध का है।[3] इसका कारण यह है कि आज भी गौतम बुद्ध चीन जापान स्याम आदि में आध्यात्मिक दृष्टि से राज्य कर रहे हैं। भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का इससे अधिक ज्वलन्त उदाहरण नहीं मिल सकता। गुप्तजी ने आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन नवीन युग की विचारधारा के प्रकाश में कुछ परिशोधित रूप में प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा उन्होंने अपने युग की गांधीवादी विचारधारा सत्य अहिंसा का प्रतिपादन भी किया है। इनका काव्य पराधीन भारत को पुनः गौरव तथा स्वाभिमान के उच्चासन पर आरूढ़ करने में समर्थ है।

१—मैथिलीशरण गुप्त स्वदेशी संगीत पृ० २६
२—वही पृ० १०
३—वही पृ० ५
४—वही पृ० ६१
५—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० १८
६—वही पृ० ११ १२

पंडित रामचरित उपाध्याय का अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण भी नवीन प्रेरणा देने वाला है। उन्होंने देशवासियों को गीता का उपदेश देकर स्वतन्त्रता संग्राम में रत हो जाने का आह्वान किया है। उनकी विचारधारा पर आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द और लोकमान्य तिलक का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वे वैदिक युग और ऋषि मुनियों के आदर्शों की पुनः स्थापना करना चाहते हैं।[1]

मैथिलीशरण गुप्त तथा पंडित रामचरित उपाध्याय के सदृश अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का भव्य चित्र खींचा है। इनकी विचारधारा पर भी आर्यसमाज का विशेष प्रभाव दृष्टिगत होता है क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती का यह दृढ़ विश्वास था कि वेद संसार की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। इन्होंने मैथिलीशरण गुप्त तथा पंडित रामचरित उपाध्याय की अपेक्षा भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन एक विशेष उद्देश्य से किया है। अपनी धार्मिक सहिष्णुता एवं उदारता के कारण केवल मात्र वेदों या ऋषि मुनियों की निष्ठा का प्रचार नहीं किया है अपितु उनके उदात्त रूप को प्रस्तुत कर विश्व बन्धुत्व की भावना की अभिवृद्धि कर धार्मिक संकीर्णता और विद्वेष भावना को मिटाना चाहा है। वेद के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है —

सभी जाति से प्यार वे हैं जताते।
सभी देश से नेह वे हैं निभाते।[2]

हरिऔध ने समय के परिवर्तन को दृष्टि में रख कर अध्यात्म के सक्रिय एवं चेतन रूप को ग्रहण किया है। आध्यात्मिक प्रगति के लिए वे लोकसेवा के मार्ग को आवश्यक मानते हैं। उनकी आध्यात्मिकता का सर्वोत्कृष्ट ध्येय है —व्यक्तिगत जीवन के राग द्वेष को लोकहित में समाहित कर देना। राष्ट्रीयता का ध्यान में रख कर भारत की परम्परागत आध्यात्मिकता का स्वरूप बौद्धिक व्याख्या एवं विश्लेषण द्वारा परिवर्तित कर हरिऔध जी ने लोकसेवा, लोक रक्षा आदि नये आदर्श तथा मूल्य, समाज और देश को प्रदान किये हैं। उनका प्रियप्रवास इसका प्रमाण है। अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का यह नवीन रूप राष्ट्र की उन्नति को दृष्टिगत कर किया गया था।[3]

ठाकुर गोपालशरण सिंह अत्यधिक भावुक कवि थे। उनके वर्णन में करुणा और मार्मिकता का अधिक समावेश हुआ है। भारत की भूतकालीन उन्नति को उन्होंने

१—पं० रामचरित उपाध्याय राष्ट्र भारती पृ० ७

२—डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० १३५

३—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पद्य प्रसून पृ० १६

४—'उन्नति की भावना से प्रेरित होने के कारण ही कवि अपनी प्राचीन संस्कृति के भक्ति जैसे तत्व का भी लोकहित में प्रयोग कर रहा है।'
—डा० केसरीनारायण शुक्ल आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत पृ० १४८

स्वप्नवत् मान लिया है अब जिसका सत्य होना कठिन ही नहीं असम्भव है। अतीतोत्कर्ष की तुलना मे वर्तमान का पतन असह्य होने के कारण ही व 'सिर कूटने' या 'छिप घूटने' की बात कह कर अपने को अभिशप्त करते हैं।[1] वस्तुतः इनका अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण सृजनात्मक नही है। उसमे निराशा की मात्रा अधिक है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का वर्णन अधिक सबल तथा चेतन शब्दों मे किया है। वह पूर्णतया भारतीय संस्कृति के अनुकूल होते हुए भी ओज से परिपूर्ण है। उनकी राष्ट्रीयता का आध्यात्मिक और दार्शनिक रूप भी प्रशस्त है।[2]

जयशंकर प्रसाद ने गांधीजी से प्रभावित होकर भारत के विगत आध्यात्मिक उत्कर्ष के चित्रण मे सत्य अहिंसा तथा त्याग पर विशेष बल दिया है —

धर्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि कर दी बन्द।
हमीं ने दिया शांति संदेश सुखी होते देकर आनन्द॥
विजय केवल लोहे की नहीं धर्म की रही धरा पर धूम।
भिक्षु होकर रहते सम्राट दया दिखलाते घर घर घूम॥[3]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्रा कुमारी चौहान की कविताओं मे भी कहीं कहीं भारत के अतीतोत्कर्ष का वर्णन मिलते हैं। बस प्रायः चतुर्वेदीजी का आध्यात्मिक उत्कर्ष का स्वरूप वर्तमान विषमता के साथ तुलनात्मक ढंग का है—

कहाँ गये हैं वसिष्ठ जो तुम्हको ज्ञान बताये ?
किधर गये निःशस्त्र, किस कौशिक रणकला सिखाये ?[4]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने 'पाटलीपुत्र की गंगा से' कविता मे यह अभिव्यंजित किया है कि आज भी गंगा के तट पर गौतम के उपदेश और उनकी लहरों में अहिंसा के संदेश ध्वनित हो रहे हैं।[5]

इस युग की हिन्दी कविता मे भारत की अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कृष्टता का चित्रण करने वाले अनेक महाकाव्य, खण्डकाव्य, कथाकाव्य, गीत आदि लिखे गये जैसे 'साकेत', 'कामायनी', 'सिद्धराज', 'पंचवटी', 'तुलसीदास' आदि।

हिन्दी-कविता मे अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष

नैतिक आचरण द्वारा ही धर्म-प्रधान भारत देश अतीतयुगीन आध्यात्मिक

१—ठाकुर गोपालशरण सिंह सचिता पृ० ६२
२—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' अनामिका पृ० ५८
३—जयशंकर प्रसाद सम्पादक चन्द्रगुप्त(?) पृ० ११
४—माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० २१
५—रामधारीसिंह दिनकर पाटलिपुत्र की गंगा से इतिहास के आँसू पृ० ३७

उत्कर्ष प्राप्त कर सका था। नैतिकता मनुष्य के आध्यात्मिक विकास का प्रथम आवश्यक सोपान है जिसके अभाव में किसी प्रकार की श्रेष्ठता अथवा उच्चता की प्राप्ति असंभव है। नैतिकता की कठोर शृंखला में बँध कर ही भारतीय-जीवन विश्व में अपना मस्तक ऊंचा कर सका था। देश के राष्ट्रीय जीवन को अधिक सबल बनाने के लिए गांधी जी आर्यसमाज तथा सभी प्रमुख नेताओं की दृष्टि भारत के सुदूर अतीत को भेद अपने पूर्व पुरुषों के संयमित तथा नियमित जीवनादर्शों तथा नैतिक मूल्यों को खोज लाई। गांधीजी के मन में नैतिकता मनुष्य में सबसे बड़ा धर्म थी। हिन्दी साहित्य में विशेषतया काव्य में भारत के अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ ही नैतिक उत्कर्ष की भी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है।

गत काल में हमारे पूर्वजों का आचरण नैतिक आदर्शों से प्रेरित था। वे सत्यासत्य न्याय अन्याय धर्माधर्म उचित अनुचित का पूर्णतया ध्यान रखते थे। उनका चरित्र पवित्रता तथा अध्यवसाय से पूर्ण था इसी कारण उनका सम्मान और महत्व प्राप्त हुआ था। इसी भाव को गुप्त जी ने इस प्रकार व्यक्त किया है —

> वह गौरव वह मान महत्व वह अमरत्व तत्वमय सुख
> सबके ऊपर चारु चरित्र, पवित्रता का जीवन चित्र
> वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम में अब हाय।
> इसीलिये यह अपना ह्रास, चारों ओर त्रास ही त्रास ॥[1]

नैतिकता के दो पक्ष हैं। प्रथम बाह्याचरण का शुद्ध रूप अर्थात् मन के अन्दर छिपी हुई शक्तियों का प्रकाश। आलस्य प्रमाद तन्द्रा असत्य आदि दुर्वृत्तियों का दमन और सत्य धृति अभय ज्ञान मैत्री आदि सद्वृत्तियों का उन्नयन मानसिक प्रकाश के उदाहरण हैं। नैतिकता के आवश्यक आधार स्तम्भ हैं सत्य अहिंसा ब्रह्मचर्य आदि का व्यावहारिक जीवन में प्रयोग। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में—

वस्तुतः ये और इसी प्रकार के और दूसरे गुण मनुष्य जीवन और सामाजिक जीवन के टिकाऊ खम्भे हैं जीवन इनके दृढ़ ठाठ पर सब देश और सब कालों में पनपता हुआ चलता रहता है।[2]

सत्य और धर्म के उच्चादर्शों को कर्म के मार्ग से अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर दिखाना ही नैतिकता है।

चरित्र के आदर्श में शरीर और मन में दोनों का विकास सम्मिलित है। हमारे ऋषि मुनियों का जीवन धर्म और सत्यता के उच्चासन पर स्थित था। उन्होंने

१—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० २५
२—वासुदेवशरण अग्रवाल माता भूमि पृ० २१
३—वही पृ० २१२

नैतिकता के महत्व को भली भांति समझ लिया था।

'प्रियप्रवास' महाकाव्य की रचना द्वारा श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने सन् १६२० के पूर्व ही लोकसेवा तथा लोकरक्षा के लिये जीवनोत्सर्ग का एक नवीन आदर्श रखा था। कृष्ण और राधा का चरित्र मनुष्योचित शिष्टता व्यवहार शुद्धि न्याय तथा प्रेमपूर्ण है। दूसरों के लिए व्यक्तिगत स्वार्थ का त्याग वर्तमान काल में भी अनुकरणीय एवं वंदनीय है। राम का जीवन तो अतीतकाल नैतिक उत्कृष्टता का उदाहरण ही है। रामनवमी महान् पर्व आज भी हमें नैतिकता का संदेश देता है। इस काल के कवियों की विशेष दृष्टि रामचरित पर थी। अतः राम जीवन से सम्बन्धित अनेक काव्य रचनायें उपलब्ध हैं। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य तथा 'पंचवटी' खंडकाव्य की सर्जना कर मर्यादा पुरुषोत्तम राम लक्ष्मण सीता उर्मिला आदि के नैतिक जीवनादर्शों की स्थापना की है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने 'विजयादशमी' कविता लिखी। मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' महाकाव्य के अतिरिक्त 'रामनवमी' काव्य की रचना भी की 'वि स्वदेशस्य हिताय सहर्ष करें सभी कुछ हम अर्पित सर्व' जिसमें राम के अमृतोपम चरित्र के ज्ञान द्वारा भारत वर्तमान दुरवस्था का विनाश कर विजय प्राप्त करे और ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी 'विजयदशमी' कविता लिखी है।

केवल अतीतकालीन महान् पुरुषों के जीवन में ही नैतिकता परिव्याप्त नहीं हुई थी साधारण जनता का जीवन भी नैतिकादर्शों से पूर्ण था। 'साकेत' में गुप्त जी ने साधारण पुरवासियों के नैतिकतापूर्ण चरित्र के सम्बन्ध में लिखा है —

एक तरु के विविध सुमनों से खिले
पौर जन रहते परस्पर हैं मिले।
स्वस्थ शिक्षित शिष्ट उद्योगी सभी
बाह्यभोगी आन्तरिक योगी सभी॥

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत के पूर्व पुरुषों के सद्गुणों का वर्णन वर्तमान कालीन जीवन के अभावों के उन्नयन द्वारा भी किया है। आज हमारे जीवन में उन सद्गुणों का अभाव है जो हमारे पूर्वजों के रक्त के साथ घुले हुए थे। अब हमारा जीवन उस प्राचीन सत्य-न्याय निष्ठा से हीन, आत्म विश्वास, साहस-धैर्य, अविचल उद्योग और उत्साह से विहीन है। इसके अतिरिक्त 'सिद्धराज' नामक ऐतिहासिक खण्ड काव्य में उन्होंने मध्यकालीन वीरों की गाथा प्रस्तुत करते हुए भौतिकता की अपेक्षा नैतिकता को अधिक महत्व दिया है। मातृभक्त राजा जयसिंह ने कर के उस

१—सुभद्राकुमारी चौहान : मुकुल पृ० ६२
२—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू पृ० ७१
३—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत पृ० २२
४—मैथिलीशरण गुप्त : हिन्दू : पृ० २४-२५

निदेशपत्र को फाड फेंका था जिससे प्रति वर्ष लाखो का लाभ होता था। उस काल का आदश था —

राजकोष रिक्त हो तो चिन्ता नहीं मुझको,
राज्य में प्रजा को सुख सिद्धि निधि-वृद्धि हो
पुष्ट प्रजा जन ही हैं सच्चे धन राजा के।[1]

यह नतिकता आत्म-सम्मान की भावना से शू य नहीं थी। गांधी जी ने राजनीति को आध्यात्मिकता एव नतिकता क सिद्धान्तों पर प्रतिपादित कर नियन्त्रित करना चाहा था। उनकी उसी भावना को गुप्त जी ने काव्य में मुखर रूप प्रदान किया है। भारत वह देश है जहा पूवकाल से नतिकता का राज्य था। राजा और प्रजा का सम्ब ध नतिकता की आधारशिला पर स्थित था। मथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

यहां पूर्व से ही सविवेक
राजा प्रजा प्रकृति थी एक
तब तो राम राज्य सुख भोग
करते थे सुम हिन्दू लोग॥[2]

राजनीति नैतिकता स शू य नही थी। इसी कारण मानव मात्र की स्वतन्त्रता अधिकार-गव पर विशेष बल दिया गया था। साकेत महाकाव्य मे गुप्तजी ने राजा दशरथ के समय की राजा प्रजा के नतिकतापूण प्रीति सम्ब ध के विषय म लिखा है। तक्षशिला महाकाव्य म उदयशकर भट्ट ने भी राजा प्रजा सम्ब ध म मान्य नतिकादर्शों के सम्ब ध में लिखा है—

थी अनुरक्त प्रजा राजा म नृपति प्रजा साधन मे
था साधक मद्र तवाद अविकल गति से जीवन में॥

भट्टजी ने अतीतकालीन ननिक उत्कष के वणन म अप्रत्यक्ष रूप से अपने युग की अनतिकतापूण साम्राज्यवादी नीति की ओर इंगित किया है।

सिद्धराज खण्ड-काव्य म गुप्त जी ने ऐतिहासिक कथा के माध्यम स नतिकतापूर्ण आचरण पर बल दिया है। रानवदे के उज्ज्वल चरित्र द्वारा भारतीय नारी के सम्मुख पतिव्रत धर्म शील शक्ति आदि का उज्ज्वल आदर्श रखा है। प्रिय प्रवास में 'हरिऔध' जी राधा के प्र म को नतिकता के बधन म बांध कर प्रस्तुत कर चुके थे। अत मैथिलीशरण गुप्त ने ऐतिहासिक कथा के आधार पर यशोधरा मे यशोधरा के

१—मैथिलीशरण गुप्त सिद्धराज पृ० २१
२—मैथिलीशरण गुप्त पृ० १६ ४०
३—उदयशकर भट्ट तक्षशिला पृ० ३३
४—मथिलीशरण गुप्त सिद्धराज : पृ० ७२

सदाचरण का महान् आदर्श रखा है। भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि यहां की वीर राजपूत नारियों ने अपने धर्म तथा सतीत्व की रक्षा के लिए अग्नि में भस्म होकर आत्म-बलिदान का अपूर्व उदाहरण रखा है। 'निराला' जी की 'दिल्ली' कविता में देश की वीर-नारियों के आत्म बलिदान का महान नैतिक आदर्श मिलता है —

> क्या यह वही देश है—
> यमुना—पुलिन से चल
> 'पृथ्वी' की चिता पर
> नारियों की महिमा उस सती संयोगिता ने
> किया आहूत जहां विजित स्वजातियों को
> आत्म बलिदान से —
> पढ़ो रे पढ़ो रे पाठ,
> भारत के अविश्वस्त अवनत ललाट पर
> निज चिताभस्म का टीका लगाते हुए—
> सुनते ही रहे खड़े भय से विवर्ण जहां
> अविश्वस्त संज्ञाहीन पतित आत्म विस्मृत नर ?[1]

भारतीय नारी की नैतिक उच्चता का आदर्श प्रस्तुत किया गया। श्री रूप नारायण पांडे ने लिखा है—

> सावित्री सीता आर्या
> ऐसी हैं कहां सुभार्या
> जिनसे यम भी हो हारा॥[2]

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने काव्य-क्षेत्र में उदित होकर भारतीय इतिहास तथा संस्कृति के नैतिक पक्ष का चित्रण अधिक गौरवमय ढंग से किया है। १९३३ ई० में लिखित मिथिला काव्य में कहा है—

> मैं जनक—कपिल की पुण्य जननि मेरे पुत्रों का महा ज्ञान,
> मेरी सीता ने दिया विश्व की रमणी को आदर्श दान॥[3]

पंडित रामचरण द्विवेदी प्रभाकर रचित 'राणा' नामक ऐतिहासिक खण्ड काव्य की कथा इतिहास के मुगल काल में ली गई है। इसमें भी कवि ने वीर राजपूत नारियों के उच्चतम नैतिक आदर्श वीरता, तथा त्याग की प्रतिष्ठा की है जिन भावनाओं से प्रेरित होकर राणा सांगा की विधवा रानी राजमाता करणावती अन्य

१—निराला दिल्ली अनामिका पृ० ६०
२—रूपनारायण पांडेय पराग पृ० ८२
३—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आंसू पृ० ४१

वीर रानियाँ तथा १३० ० राजपूत बालाए आत्मरक्षा के लिए बारूद म आग लगा कर भस्म हो गई थी।[1] इसके अतिरिक्त इस कथा-काव्य में मुगल बादशाह हुमायू के चरित्र की नैतिक उत्कृष्टता पर प्रमुख रूप से प्रकाश डाला गया है। असहाय रानी करुणावती ने दिल्लीश्वर मुगल शासक हुमायू को अपनी रक्षा के लिये रक्षा बन्धन का उपहार भेजा था यह इतिहास विदित है। हुमायू अपनी हिन्दू बहन की पुकार सुन जाति धम भद भूलकर अपनी अन्तश्चेतना की नतिकता से प्र रित होकर तत्काल चल पडा था। उसके चित्तौड पहुचने के पूव ही वीर राजपूत नारियां आत्मा हुति कर चुकी थी लकिन उसने नैतिक धम के निर्वाह के लिए करुणावती के बालक उदयसिंह को उसके बाप्पा के सरक्षण म सिंहासन पर बिठाया और आक्रमणकारी बहादुरशाह को चित्तौड स ही नहीं गुजरात से भी निकाल भगाया। हुमायू के नैतिकतापूण चरित्र के उल्लेख द्वारा[2] कवि ने भारत के दोनों अगो हिन्दुओं तथा मुसलमानो को समान रूप स राष्ट्रीय भावना से भरना चाहा है —

> है श्रेष्ठ धम से मनुष्यता
> पूवज इसको हैं रहे मता।
> अथवा यदि तुममें शक्ति नहीं—
> अपनी बहनों में भक्ति नहीं॥[3]

अतीत गौरव की यह गाथा हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष मिटाने मे सहायक हो सकती है। गाधी जी न राष्ट्रीय चतना के उदबोधन के लिये हिन्दू मुस्लिम एकता को आवश्यक माना था।

गांधी जी ने राष्ट्रवाद क लिय अतीत के जिस नैतिक आधार को अपनाया था उसकी पूर्ति इन कवियो की वाणी द्वारा हुई।

हिन्दी कविता में अतीतकालीन भौतिक उत्कष

भारत वह देश है जहाँ तत्व चिंतन ने जीवन विकास क भौतिक उपकरणो की अवहेलना नही की थी। अतीतकाल में जब भारतवासी पूणतया स्वतन्त्र थे देश म धन-धान्य का अभाव नही था। भारत देश स्वण प्रतिमा के नाम से विख्यात था। समृद्ध भौतिक एश्वय क कारण ही वह विदेशियो द्वारा आक्रान्त हुआ। अति प्राचीन युग से धम अथ काम मोक्ष अर्थात् चतुवग की साधना को चरम पुरुषाथ माना गया है। अथ और काम की धम द्वारा सिद्धि भारतवासियो का कर्म पक्ष था और मोक्ष अन्तिम ध्येय।

हिन्दी साहित्यकारों न भौतिक उत्कष के भी सुन्दर चित्र खींचे हैं। अन्य विधाओं क साथ कला-कौशल क प्रथम आचाय भी भारत म ही हुए थ। पुरातत्व

१—पं० रामकरण द्विवेदी अमात राखी पृ० ११६ १४०
२—पं० रामकरण द्विवेदी अमात' राखी पृ० १०३
३—वही पृ० १२४

विभाग द्वारा जो खुदाई का कार्य हुआ है उसमें अतीतकालीन शिल्पकला की समृद्धि के चिह्न मात्र भी मिले हैं। सिंधु-मनु दक्षिण के मन्दिर प्राचीन भारत की कला—कौशल के निदर्शन हैं। चित्रकला, वास्तुकला संगीत अभिनय आदि विविध कलायें अपने चरम विकास को प्राप्त हुई थी। केवल पुरुष ही नहीं नारियां भी निपुण थीं इतिहास इसका साक्षी है। मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की सभ्यता की प्राचीनता के सम्बन्ध में लिखा है —

तुम हो सबसे पहले सभ्य जिन्हें न कुछ भी रहा असभ्य।
तुम हो उनके ही कुलगोत जो थे सब समर्थ सशील॥

साकेत' महाकाव्य में गुप्त जी ने राजा दशरथ के समय की साकेत नगरी का जो भव्य चित्र अंकित किया है वह सहस्रों वर्ष पूर्व भारत के भौतिक उत्कर्ष का प्रमाण है —

देख लो साकेत नगरी है यही
स्वर्ग से मिलने गगन में जा रही।
केतु—पट अंचल—सदृश हैं उड़ रहे
कनक कलशों पर अमर-दृग जुड़ रहे।
सोहती हैं विविध शालायें बड़ी
छत उठाये भित्तियां चित्रित खड़ी॥[1]

शिल्प कला अपने पूर्ण विकास को प्राप्त हो चुकी थी इसी कारण देव-दम्पति भी वहां विश्राम करना चाहते थे। उस युग के शिल्प-कौशल के आदर्श के सम्बन्ध में गुप्त जी ने लिखा है —

कामरूपी वारिदों के चित्र से
इन्द्र की अमरावती के मित्र—से
कर रहे नृप-सौध गगन स्पर्श हैं—
शिल्प-कौशल के परम आदर्श हैं॥[2]

सभी घरों में सुख समृद्धि की प्रतीक गौशालाएं थीं और अन्न था। सिद्धराज' खण्ड काव्य के प्रथम सर्ग में ही भौतिक ऐश्वर्य का चित्र मिल जाता है। इसकी कथा ग्यारहवीं शताब्दी की है। अतः इतिहास के मध्यकाल में जब देश स्वतन्त्र था और राजा अपना था देशवासी सुखी और सम्पन्न थे। महोबे के प्राकृतिक सौन्दर्य भूमि की उर्वरता प्रजा की सुख-वृद्धि, राजा का धन कुबेर और सुकर्मी होना तथा ललित कला शान्ति के वर्णन में अतीत गौरव की अनुभूति में देशभक्ति का स्वर प्रमुख है। भारत के प्राचीन ऐश्वर्य के वर्णन से कवि ने भावी राष्ट्र का स्वप्न देखा है।

१—मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ० १६
२—मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ २०
३—वही पृ० २१
४—मैथिलीशरण गुप्त सिद्धराज पृ०

पंडित रामचरित उपाध्याय और ठाकुर गोपालशरणसिंह ने भौतिक उत्कर्ष की दृष्टि से भी अतीतकालीन भारत को अन्य देशों की अपेक्षा श्रेष्ठ ठहराया है। उपाध्यायजी के मतानुसार सर्वप्रथम भारत देश में ही विद्या बल, बुद्धि का आगमन हुआ था।[1] गोपालशरण सिंह के अनुसार भारत की सुख-सम्पदा सुरलोक सदृश थी।[2]

धर्म तथा नीति द्वारा भौतिक उत्कर्ष की सिद्धि भारतवासियों का स्वधर्म था। इसी कारण पूर्व पुरुष भौतिक प्रसाधनों की अवहेलना कर सरल जीवन यापन करते थे। मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह प्रभृति विद्वानों ने अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष के वर्णन में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता का प्राधान्य दिखाया है। मैथिलीशरण गुप्त के साकेत महाकाव्य से यह स्पष्ट है कि पूर्वजों की शिल्प कला का विकास धार्मिक एवं नैतिक रुचि के अनुकूल हुआ था —

गेहियों के चारु-चरितों की लड़ी छोड़ती है छाप, जो उन पर पड़ी।
स्वच्छ सुन्दर और विस्तृत घर बनें इन्द्र धनुषाकार तोरण हैं तनें ॥[3]

ठाकुर गोपालशरण सिंह ने भी पूर्व-पुरुषों के आदर्श चरित्र का वर्णन इस प्रकार किया है —

अपने वश में ही जहाँ सभी का मन था
तन हृष्ट-पुष्ट था और विमल आनन था
धन के रहते भी जहाँ सरल जीवन था
सब जन थे जहाँ स्वतन्त्र न कुछ बन्धन था
रक्षक थे जिसके देव-वृन्द सत्कारी
वह भरत भूमि है यही हमारी प्यारी ॥

भौतिक उत्कर्ष के मद में राजा या प्रजा अपना विवेक नहीं खोते थे। निराला जी ने यमुना के प्रति कविता में यमुना की कल-कल ध्वनि में देश के विगत सौभाग्य की गाथा सुनी है। इसमें भारतीय संस्कृति के भौतिक पक्ष की प्रेम प्रधान प्रवृत्ति का चित्रण किया गया है। यमुना को देखकर कवि अतीत काल की शत शत प्रणय कथाओं, ऐन्द्रिय सुख और मादक राग की स्मृति में डूब जाता है। विगत काल में भौतिक क्षेत्र में भी जीवन और जगत् के अनेक रहस्यमय द्वार खुले थे।[6] रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भी भारत की पूर्व उच्च संस्कृति के सम्बन्ध में प्रत्यन्त कलात्मक भाषा में लिखा है —

१—पं० रामचरित उपाध्याय हिन्द हमारा राष्ट्रभारती पृ० ५
२—ठाकुर गोपालशरण सिंह संचिता पृ० ६४
३—मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ० १६
४ ५—ठाकुर गोपालशरण सिंह संचिता पृ० ६५
६—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला परिमल पृ० ५३

गौरव निधि को लहरी विमल कर देती मेरे विकल प्राण
मैं सदा तार पर सुनती हूँ विद्यापति-कवि के मधुर गान ।।'

डा० रामकुमार वर्मा ने प्रमुख रूप से छायावादी कविता लिखी है लेकिन १६३३ ई० में प्रकाशित दो कविताओं— नूरजहाँ और 'पूजा' में उन्होंने मुस्लिम इतिहास में दो प्रसिद्ध पात्रों को चुना है और मुगल शासकों के भौतिक ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य का वर्णन किया है। नूरजहाँ का सौन्दर्य, अभिमान और वैभव इतिहास प्रसिद्ध है। उनके सौन्दर्य के सम्बन्ध में कवि ने कहा है —

कहता है भारत तेरे गौरव की एक कहानी
वैभव भी बलिहार हुआ था तेरे मुख का पानी
नूरजहाँ! तेरा सिंहासन था कितना अभिमानी
तेरी इच्छा ही बनती थी जहाँगीर की रानी ।।'

'पूजा' कविता में कवि ने शाहजहाँ द्वारा अतीत वैभव का स्मरण कराया है। इतिहास का हिन्दू काल ही नहीं मुस्लिम-काल भी हमारे लिए गौरव का विषय है। गांधीजी की उदारवादी राष्ट्रीयता के फलस्वरूप हिन्दी कवियों ने हिन्दू मुस्लिम समन्वित जनता के लिए समान रूप से हिन्दू तथा मुसलमान शासकों के उज्ज्वल चरित्रों का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया था। गुरुभक्तसिंह का नूरजहाँ महाकाव्य इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है।

हिन्दी साहित्य में अतीतकालीन भौतिक उत्कर्ष के अन्तर्गत सबसे अधिक वर्णन वीर भावना का हुआ है। पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथाओं से वीर-चरित्रों को चुना गया जिनसे देशवासियों को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष रत होने के लिए प्रोत्साहन मिल सकता था। नाटक अथवा उपन्यास की अपेक्षा काव्य में वीर भावना का वर्णन कम हुआ है क्योंकि कवि हृदय का अधिक सामञ्जस्य आदर्शवादिता तथा नैतिकता के उच्च आदर्शों से हुआ था। वैसे ओजपूर्ण वीर रस प्रधान कविताओं के साथ ही कुछ वीर रस पूर्ण काव्य भी लिखे गये हैं।

मुक्ति-मन्दिर' में पंडित रामचरित उपाध्याय ने [illegible] करना धर्म माना है। कृष्ण ने महाभारत में अर्जुन को [illegible] उपाध्याय जी ने रामचरित चिन्तामणि' महाकाव्य में भी [illegible]

१—रामधारीसिंह दिनकर इतिहास के आँसू पृ०
२—डा० रामकुमार वर्मा रूपराशि पृ० ६१
३—डा० रामकुमार वर्मा रूपराशि पृ० ६३
४—रामचरित उपाध्याय मुक्ति-मन्दिर पृ० ६

वीर रस का प्रदर्शन किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने सिद्धराज' खण्ड-काव्य की रचना वीर-पूजा के हेतु की थी। स्वयं लेखक ने निवेदन में लिख दिया है कि मध्य कालीन वीरों की झलक देने वाला यह काव्य है। उस समय वीर क्षत्राणी नारी स्वदेश और स्वतंत्रता के रक्षार्थ ही पुत्र को जन्म देती थी —

देवि मैं हूँ एक क्षत्राणी
जनती हैं जूझने के अर्थ ही जो पुत्र को ॥[१]

गुप्त जी ने जयसिंह की उदारता वीरता उच्चता एवं शारीरिक पुष्टता का भी उल्लेख किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने भारत के पूर्व पुरुषों के विषय में कहा है विजयी बली जहाँ के बेजोड़ सूरमा थे।[३] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' ने जागो फिर एक बार' कविता में गुरुगोविन्द सिंह की वीरता का घोर स्वर निनादित कर उनकी वीर प्रतिमा का स्मरण कराया है —

सवा सवा लाख पर एक को चढ़ाऊंगा
गोविन्दसिंह निज नाम जब कहाऊंगा ॥[४]

इस काव्य की रचना १९२१ में हुई थी जैसा कि कविता द्वारा नीचे दिये गये रचना काल से स्पष्ट है। यह गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का काल था। अतः जनता को जाग्रत कर स्वतंत्रता-संग्राम की ओर उन्मुख करने के लिए भारतीय इतिहास के वीर चरित्रों का काव्य में वर्णन आवश्यक था।

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में जिस वीर भावना का विशद् चित्रण किया है उसे काव्य में भी स्थान दिया है। शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।[१] सुभद्रा कुमारी चौहान ने झांसी की रानी'[२] कविता में वीर रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य का ओजस्वी वर्णन किया है जिसने १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में पुरुषोचित वीरता का प्रदर्शन कर अंग्रेजों से युद्ध किया था —

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झांसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में
लेफ्टिनेण्ट वोकर आ पहुंचा आगे बढ़ा जवानों में
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में ॥[३]

२—मैथिलीशरण गुप्त सिद्धराज पृ० ७
३—रामनरेश त्रिपाठी मानसी पृ० ३६
४—निराला अपरा पृ० ६
१—जयशंकर प्रसाद लहर पृ ५१
२—सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ६४
३—सुभद्रा कुमारी चौहान मुकुल पृ ७१

आज भी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की समाधि भारत के तरुणों को रक्षा का पाठ पढ़ाती है। इसके अतिरिक्त इस प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लेकर वीर गति पाने वाले नाना धुंधू पन्त, तात्या टोपे, बहादुर शाह, अजीमुल्ला, ठाकुर कुँवरसिंह आदि भारतीय इतिहास के अमर सेनानियों की भी वन्दना का उद्गार मिलती है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी 'झाँसी वाली रानी की समाधि पर' कविता में वीर रानी के बलिदान की अमर गाथा गाई है। ओजपूर्ण शब्दों में कवि ने झाँसी की रानी की वीर मूर्ति का स्मरण करते हुए लिखा है —

आज भी स्मरण तुम्हारा देवि बना देता हृदय प्रखर
विजय के कोहनूर का स्थान चुरा लेता बलिदान उज्ज्वल।
स्वप्न में सहसा तुम्हें हम झनझनाते रणित शृंगार,
भग्न होते विजय साम्राज्य डोलते सिंहासन दुर्धर।
चीर उठते मिथ्या इतिहास प्रसारक युग-युग के अन्तर,
थरथराते हाथों से छूट भूमि पर गिरते शासन-शर।
प्रकम्पित कर महलों की नींव हर दुर्ग का कण कण अब
अब उठता स्वर सिरों के साथ तुम्हारा जय जयकार प्रखर ॥[1]

वियोगी हरि ने 'वीर सतसई' में ब्रज भाषा में पौराणिक तथा प्राचीन और निकट इतिहास में वीर-चरित्रों को लेकर उनके द्वारा युद्ध के समय की गई प्रतिज्ञाओं का ओजपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है। कौशिक जी का भीष्म प्रतिज्ञा प्रताप प्रतिज्ञा आदि में देश के वीरों की प्रतिज्ञाएं हैं जो देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये की गई थी। इनके अतिरिक्त वियोगी जी ने उन स्थानों का भी उल्लेख किया है जो ऐतिहासिक भारत की वीरता के रूप में आज भी विद्यमान हैं जैसे चित्तौड़ गढ़, हल्दीघाटी, मांडवगढ़, मानपुर दुर्ग, कुम्भलगढ़ आदि।[2]

छायावादी युग के उत्तरार्द्ध में रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भारत की प्राचीन कालीन वीर भावना का चित्रण कर अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। इतिहास, कल्पना और ओज का जितना सुन्दर सम्मिलन दिनकर के काव्य में मिलता है वह अपूर्व है—

मैं पलासी के आसपास लश्कर की धूल में पठान
सुनता हूँ साधु चरन चपल सिक्ख-वीरों के कीर्तिगान ॥[4]

१—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द जीवनज्योति पृ० १००
२—वीर सतसई वियोगी हरि पृ०
३—वियोगी हरि वीर सतसई पृ० १२
४—रामधारीसिंह दिनकर इतिहास के आँसू पृ० ४३

वीर रस का प्रदर्शन किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने सिद्धराज' खण्ड-काव्य की रचना वीर पूजा के हेतु की थी। स्वयं लेखक ने निवेदन में लिख दिया है कि मध्य कालीन वीरों की झलक देने वाला यह काव्य है। उस समय वीर क्षत्राणी नारी स्वदेश और स्वतंत्रता के रक्षार्थ ही पुत्र को जन्म देती थी —

वेवि मैं हूं एक क्षत्राणी
जनती हैं जूझने के अर्थ ही जो पुत्र को ॥[1]

गुप्त जी ने जयसिंह की उदारता वीरता उच्चता एवं शारीरिक पुष्टता का भी उल्लेख किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने भारत के पूर्व पुरुषों के विषय में कहा है विजयी वली जहां के बजोड़ सूरमा थे।[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला' ने जागो फिर एक बार' कविता में गुरुगोविन्द सिंह की वीरता का घोर स्वर निनादित कर उनकी वीर प्रतिमा का स्मरण कराया है —

सवा सवा लाख पर एक को चढ़ाऊंगा
गोविन्दसिंह निज नाम जब कहाऊंगा ॥[3]

इस काव्य की रचना १९२१ में हुई थी जैसा कि कविता द्वारा नीचे दिये गये रचना काल से स्पष्ट है। यह गांधी जी के असहयोग आन्दोलन का काल था। अतः जनता को जाग्रत कर स्वतन्त्रता-संग्राम की ओर उन्मुख करने के लिए भारतीय इतिहास के वीर चरित्रों का काव्य में वर्णन आवश्यक था।

जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में जिस वीर भावना का विशद चित्र अंकित किया है उसे काव्य में भी स्थान दिया है। शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' इसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।[4] सुभद्रा कुमारी चौहान ने झांसी की रानी'[5] कविता में वीर रानी लक्ष्मीबाई के शौर्य का ओजस्वी वर्णन किया है जिसने १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में पुरुषोचित वीरता का प्रदर्शन कर अंग्रेजों से युद्ध किया था —

इनकी गाथा छोड़ चलें हम झांसी के मैदानों में
जहां लड़ी है लक्ष्मीबाई मद बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेण्ट वोकर आ पहुंचा आगे बढ़ा जवानों में
रानी ने तलवार खींच ली हुआ द्वन्द्व असमानों में ॥[6]

१—मैथिलीशरण गुप्त सिद्धराज पृ० ७
२—रामनरेश त्रिपाठी मानसी पृ० ३६
३—निराला अपरा पृ० ६
४—जयशंकर प्रसाद लहर पृ ५१
५—सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ६४
६—सुभद्रा कुमारी चौहान मुकुल पृ ७१

आज भी झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की समाधि भारत की नारियों को वीरता का पाठ पढ़ाती है। इसके अतिरिक्त इस प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेकर वीर गति पाने वाले नाना धुंधूपन्त, तांतिया, चतुर अली, मुल्ला, अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह आदि भारतीय इतिहास के अमर सेनिकों को भी कवयित्री की श्रद्धांजलि मिली है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी झाँसी वाली रानी की समाधि पर कविता में वीर रानी के बलिदान की अमर गाथा गाई है। ओजपूर्ण शब्दों में कवि ने झाँसी की रानी की वीर मूर्ति का स्मरण करते हुए लिखा है —

आज भी स्मरण तुम्हारा, देवि मचा देता हड़कंप प्रचंड
विजय के कोहनूर कर म्लान, झुका देता मस्तक उद्दण्ड।
स्वप्न में सहसा तुमको देख डगमगाते रक्षित भू-खंड,
ध्वस्त होते विस्तृत साम्राज्य, डोलते सिंहासन दुर्दण्ड।
काँप उठते मिथ्या इतिहास पलटते युग-युग के पाखण्ड
थरथराते हाथों से छूट भूमि पर गिरते शासन-दण्ड।
प्रकंपित कर महलों की नींव, कर दुर्गों का शत शत खंड
जाग उठता रण तिर्यों के साथ तुम्हारा भय, आतंक अखंड॥[1]

वियोगी हरि ने वीर सतसई में ब्रज भाषा में पौराणिक तथा प्राचीन और निकट इतिहास से वीर-चरित्रों को लेकर उनके द्वारा युद्ध के समय की गई प्रतिज्ञाओं का ओजपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है। सौमित्र प्रतिज्ञा, भीष्म प्रतिज्ञा, प्रताप प्रतिज्ञा आदि में देश के वीरों की प्रतिज्ञाएं हैं जो देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिये की गई थीं।[2] इसके अतिरिक्त वियोगी जी ने उन स्थानों का भी उल्लेख किया है जो अतीतकालीन भारत की वीरता के रूप में आज भी विद्यमान हैं जैसे चित्तौड़, मारवाड़, हल्दीघाटी, मांडवगढ़, भरतपुर दुर्ग, बुन्देलखण्ड आदि।[3]

छायावाद-युग के उत्तरार्द्ध में रामधारीसिंह 'दिनकर' ने भारत की अतीत कालीन वीर भावना का चित्रण कर अपनी प्रखर प्रतिभा का परिचय देना आरम्भ कर दिया था। इतिहास, काव्य-कला और ओज का जितना सुन्दर सम्मिलन दिनकर के काव्य में मिलता है वह अपूर्व है—

मैं वैशाली के आसपास खंडहर की धूल में अजान
सुनता हूं सास्रु नयन अपने लिच्छवि-वीरों के कीर्तिगान॥[4]

१—जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द जीवनज्योति पृ० १००
२—वीर सतसई वियोगी हरि पृ०
३—वियोगी हरि वीर सतसई पृ० ३२
४—रामधारीसिंह दिनकर इतिहास के आंसू पृ० ४३

काव्य में छायावादी प्रवत्ति की प्रमुखता क कारण कवि न चेतन एव बुद्धि शील मानव को ही नही भारत की जड प्रवृत्ति को भी अतीत की स्मृति में डूब देखा है। इसी कारण वह पाटलीपुत्र की गगा से पूछता है कि हे गगे क्या तुम्हारी पलकों के भीतर गत विगत स्वप्न सा घूम रहा है। क्या मगध का महान सम्राट अशोक याद आता है या स यामिनी के सदृश विजन में अतीत गौरव का ध्यान धर रो रोकर ह दवि गुप्तवश की गरिमा का गान गा रही हो —

तुझे याद है चढ़े पदों पर कितने जय—सुमनों के हार ?
कितनी बार समु द्रगुप्त म धोयी है तुझमें तलवार ?[1]

च द्रगुप्त नाटक की रचना द्वारा जयशकर प्रसा" ने अतीतकालीन भारतीय वीर भावना के जिस उत्कृष्ट रूप को रखा था जिसमे भारतीया न असीम शक्तिशाली विदेशी शक्ति सिकन्दर पर विजय पाई थी, उसी की अभिव्यक्ति 'दिनकर' ने भी काव्य म की है —

विजयी च द्रगुप्त के पद पर सल्यूकस की वह मनुहार
तुझे याद है दवि ! मगध का वह विराट उज्ज्वल शृगार ?
जगती पर छाया करती थी कभी हमारी भुजा विशाल,
बार बार झुकते थे पद पर ग्रीक यवन के उन्नत भाल ।।[2]

राष्ट्रवाद और काव्यात्मक छायावाद का सम्मिलन दिनकर' की अनुपम देन है। इसके अतिरिक्त दिनकर की राष्ट्रीय चेतना ने मुस्लिम सस्कति को भी भारतीय सस्कति का अभिन्न अग बना दिया है। बढ़त हुए हिन्दू-मुस्लिम विद्वेषाग्नि को शान्त करने के लिए दोनो का अतीतकालीन सास्कतिक एकीकरण आवश्यक था। गाधीजी ने इस बात पर विशेष बल दिया था। अत दिनकर' ने भी नई दिल्ली के प्रति' (दिल्ली —१९२९ ई०) कविता म मुस्लिम शासन काल की दिल्ली के वभव एव शृगार का अत्यधिक आत्मीय भाव के साथ सुन्दर एव उत्कृष्ट चित्रण किया है।[3] काव्य म वर्णित भौतिक उत्कष के सबध म यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि इस काल क कवियो ने इतिहास के सभी कालो से भौतिक समृद्धि अर्थात् ऐश्वय वैभव वीर भावना आदि के सुन्दर चित्र अकित किय हैं।

नाटकों में वर्णित अतीतकालीन आध्यात्मिक उत्कष

हिन्दी-साहित्य के नाट्यकारो ने भी अतीत भारत के आध्यात्मिक उत्कष क विशद चित्र प्रस्तुत किय हैं। बचन शर्मा उग्र का महात्मा ईसा नामक नाटक एक सुन्दर प्रयोग है। उन्हान प्राचीन भारत के आध्यात्मिक उत्कष को महात्मा ईसा की

१—रामधारीसिह दिनकर । इतिहास के आँसू । पृ० ३७
२—वही पृ० ३८
३—रामधारीसिह दिनकर दिल्ली पृ० ५

आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्ति-हेतु भारत भजते हैं।[1] भारत यह महान् देश है जहां ईसा को भगवद्गीता और बुद्ध-चरित का ज्ञान प्राप्त हुआ था। उनसे विवेकाचार्य ने कहा था— स्वर्ग का उद्धार करने के लिए तुम्हें कर्मयोग का अभ्यास करना पड़ेगा। आस्मा शुभस्य शीघ्रम्।[2] जिस तरह भारत अपने आध्यात्मिक उत्कर्ष, दार्शनिक विचारधारा और शिक्षा-पद्धति के लिए दूर दूर तक प्रसिद्ध था। इस नाटक में उग्र जी ने भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष का चरम रूप प्रस्तुत किया है। स्वयं ईसा से कहलाया है— क्या पृथ्वी के अन्य किसी भाग में ऐसे मनुष्य मिल सकते हैं? कदापि नहीं। यहां का एक-एक प्राणी देवता है - हर एक स्थान स्वर्ग। विवेकाचार्य की पाठशाला में ईसा को त्याग, सेवा मार्ग और मुक्ति का मर्म स्पष्ट हुआ था। भारत की आध्यात्मिकता संकीर्ण नहीं थी। ईसा ने जब अमरता का उपाय पूछा तो विवेकाचार्य ने उत्तर दिया है— अपने और पराये का भ्रम भूल जाने से, छोटे और बड़े का विचार छोड़ देने से और संसार भर को अपना कुटुम्ब मान लेने से। ईसा! सेवा मुक्ति की बड़ी बहन है। सेवकों की मुक्ति बस ही निश्चित है जब जन्म लेने वालों की मृत्यु। वे मनुष्य धन्य हैं जो दूसरों की सेवा करने में अपना महोभाग्य समझते हैं।

नाटकों में अतीतकालीन— आध्यात्मिक— उत्कर्ष के उज्ज्वल एवं समुन्नत रूप प्रस्तुत करने वालों में जयशंकर प्रसाद का स्थान अद्वितीय है। उन्होंने प्रायः अपने सभी नाटकों की सामग्री भारतीय इतिहास के स्वर्णयुग से चुनी है। सत्य तथा अहिंसा को मानव जीवन का आवश्यक तत्व माना है। अजातशत्रु के मूल में गौतम बुद्ध की अहिंसा परमोधर्म की महान् भावना कार्य करती है। बुद्धदेव ने अपने उपदेशों द्वारा सत्यमार्ग का प्रदर्शन किया था —

'राजन् शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है। केवल साक्षीरूप से वह सब दृश्य देखती है। तब भी इन सांसारिक झगड़ों में उसका उद्देश्य होना है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—यही न्याय का समर्थन है। तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्व से प्रेरित होकर समस्त सदाचारों की नींव विश्व में स्थापित करती है। यदि वह ऐसा न करे तो प्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो जाता है हम विरक्तों को भी राज दर्शन की आवश्यकता हो जाती है।[5]

क्षणिक सुख प्रदान करने वाले सांसारिक ऐश्वर्य तथा उसके नश्वर चमकीले

१—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' महात्मा ईसा पृ० ३५

२—वही पृ० २८

३—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' महात्मा ईसा पृ० २०

४—वही पृ० ४८

५—जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० ३२ ३३

प्रदर्शन हमारे पूर्वजों को आकर्षित नहीं कर सके थे। भारतीय जीवन ने सदैव से भौतिकता को तुच्छ तथा आध्यात्मिकता को श्रेष्ठ माना है। प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक में दाण्ड्यायन के शब्दों में इसकी पुष्टि मिलती है—

दाण्ड्यायन—भूमा के सुख और उसकी महत्ता का जिसको आभास मात्र हो जाता है उसको ये नश्वर चमकीले प्रदर्शन नहीं अभिभूत कर सकते दूत! वह किसी बलवान् की इच्छा का क्रीडा कन्दुक नहीं बन सकता। तुम्हारा राजा अभी झेलम भी नहीं पार कर सका फिर भी जगद्विजेता की उपाधि लेकर जगत् को वंचित करता है। मैं लोभ से सम्मान से किसी के पास नहीं जा सकता।[1]

चन्द्रगुप्त नाटक में जगत् विजय की महत्वाकांक्षा से पूर्ण वीर सिकन्दर को भी भारतीय आध्यात्मवाद से प्रभावित दिखाया गया है। ऐतिहासिक कथानकों के माध्यम द्वारा प्रसाद जी ने यह सिद्ध कर दिया है कि अध्यात्म या सत्य धर्म भारतीय जीवन दर्शन का मेरुदण्ड था। प्रायः उनके सभी नाटकों—अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, राज्यश्री आदि में सत् असत्, धर्म अधर्म, न्याय अन्याय, नीति अनीति का संघर्ष दिखाया गया है और अन्त में सत्य, धर्म, न्याय-नीति की विजय होती है। चन्द्रगुप्त नाटक में धर्मराज्य अथवा सत्य की स्थापना के लिए कौटिल्य सम महान् ब्राह्मण और चन्द्रगुप्त जैसे वीर क्षत्रिय ने मिलकर विदेशियों तथा नंद सम स्वदेशी अधार्मिक शक्तियों से संघर्ष किया था।

भारतीय जीवन का लक्ष्य मुक्ति है। अतः राज्याधिकार की आकांक्षा भी इस मुक्ति के सम्मुख हेय है। अजातशत्रु नाटक में गौतम बुद्ध महाराजा बिम्बसार को आध्यात्मिक जीवन के हेतु राज्य परित्याग का उपदेश देते हैं जिसका वे पालन करते हैं।[2]

विशाख नाटक में आध्यात्मिक एवं नैतिक उच्चादर्शों के प्रतीक प्रेमानन्द जी हैं, जो प्रेम, दया, सत्य का पालन करते हैं। प्रेमानन्द जी कहते हैं—सत्कर्म हृदय को विमल बनाता है और हृदय में उच्च वृत्तियाँ स्थान पाने लगती हैं इसलिये सत्कर्म कर्मयोग का आदर्श बनाना आत्मा की उन्नति का मार्ग स्वच्छ और प्रशस्त करना है।[3]

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखित अशोक नाटक में कलिंग के महाराज सर्वदत्त कलिंगविजय के उपरान्त युद्ध की विभीषिका से व्यथित एवं पश्चाताप की अग्नि से दग्ध अशोक को सत्य धर्म के प्रचार का उपदेश देते हैं जिसका पालन अशोक

१—जयशंकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ० ४२ तृतीय संस्करण

२—वही अजातशत्रु पृ० ३४

३—जयशंकर प्रसाद विशाख : पृ० ३७

ने अपने जीवनकाल में किया था।[1]

सियारामशरण गुप्त ने भगवान गौतम बुद्ध के पूर्व की कथा लेकर इन्द्रप्रस्थ के राजा वाधिसत्व सुतसोम के आचरण द्वारा आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्र खींचा है। सुतसोम की आध्यात्मिकता मनुष्यमात्र की सद्भावना व विश्वास पर आश्रित है।[2]

अंग्रेजी शासक वर्ग ने भारतीय जनता पर अपनी श्रेष्ठता और प्रभुत्व का ऐसा कुप्रभाव जमा रखा था कि वह भौतिक दृष्टि से ही नहीं आध्यात्मिक दृष्टि से भी अपने को हीन समझने लगी थी। देशवासियों का अपने अतीत गौरव की आध्यात्मिक श्रेष्ठता के प्रति गौरवान्वित करने के लिये उग्र जी का महात्मा ईसा नाटक अपूर्व मन्त्र है। पश्चिमी जगत् की श्रेष्ठता की भ्रान्त धारणा का उन्मूलन करने में भी यह नाटक अति सहायक था। उग्र जी ने इस नाटक द्वारा यह सिद्ध कर दिया था कि ईसाई धर्मानुगामी अंग्रेज जिस भारत को हीन दृष्टि से देखते हैं उसी भारत देश में उनके धर्म प्रवर्तक उनके ईश्वर के पुत्र ईसा को सत्य-अहिंसा सेवा त्याग आदि की शिक्षा मिली थी। निःसन्देह उग्र जी का यह प्रयत्न हिन्दी-साहित्य को शाश्वत देन है जो युग युग तक पश्चिमी देशों की तुलना में भारत के गौरव को अक्षुण्ण रखेगा।

हिन्दी-नाट्य-क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भारतीय इतिहास की महान् आत्माओं द्वारा भारत के आध्यात्मिक उत्कर्ष का जो रूप प्रस्तुत किया है, वह भारत की आत्मा के अमृत मन का निचोड़ है। हमारे पूर्वजों ने जिस सत्य ज्ञान धर्म तप अहिंसा सर्वभूतहित-न्याय धर्म आदि दिव्य भावों का अपने आचरण द्वारा मूर्त किया था, उनकी अभिव्यक्ति भी प्रसाद जी के नाटकों में मिलती है जैसे विशाख में प्रेमानन्द अजातशत्रु में गौतम बुद्ध और चन्द्रगुप्त में दाण्ड्यायन आदि के चरित्र। भारत की प्राचीन संस्कृति और धर्म के इस महत्वपूर्ण अंग का दृश्य काव्य द्वारा दिग्दर्शन कराकर प्रसाद जी और मिश्र जी ने अपने युग के ह्रासोन्मुख जीवन को आध्यात्मिकता के उच्चादर्श पर प्रतिष्ठित किया है। प्रसाद जी की आध्यात्मिक अनुभूति देश-जीवन में नव चेतना का संचार करने वाली है और प्राणि-मात्र के कल्याण की कामना से परिपूर्ण है।

हिन्दी नाटकों में अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के चित्र

नाट्य साहित्य में चित्रित भारतीय आध्यात्मिक उत्कर्ष के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस देश में आध्यात्मिकता के मूलाधार नैतिक आदर्श भी

१—लक्ष्मीनारायण मिश्र अशोक पृ० १६५

२—सियारामशरणगुप्त पुण्य पर्व पृ १०८

श्रेष्ठ थे। बचन शर्मा उग्र' के महात्मा ईसा नाटक म नाटककार ने इस ओर विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है कि महात्मा ईसा को नतिकादर्शों की शिक्षा भारत म विवेकाचार्य के आश्रम म मिली थी।[1] उन्होने इस नाटक म स्वय ईसा के मुख से भारतवासियों की सभ्यता उदारता सहृदयता आदि विशेषताओं का उल्लेख एव प्रशसा कराई है।[2] महात्मा ईसा ने जिस नतिकता तथा आत्मिक श्रेष्ठता का आदर्श रखकर समस्त पश्चिमी जगत् को अपना अनुयायी बना लिया था उसकी शिक्षा उन्हें इसी देश म मिली थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र के अशोक' नाटक मे विदेशी नारी डायना भारतवासियों की अतिथि सत्कार भावना सरलता आदि विशिष्ट गुणो की प्रशसा करती है। आज जो भारत हीन समझा जाता है उसकी नतिकतापूर्ण आदर्शवादिता युग युग स अभिनन्दनीय रही है।

जयशकर प्रसाद ने अपने सभी नाटको मे ऐसे कथानको की योजना की है जिनसे भारतवासियों को अतीत के मान्य और इतिहास की तुष्टि पर नैतिक एव चारित्रिक उत्कर्ष की शिक्षा मिलती है। अजातशत्रु नाटक म प्रसाद जी न मल्लिका के प्रसग को इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इतना विस्तार दिया है। उसके नतिक आदर्शों तथा चारित्रिक दृढ़ता से युक्त व्यक्तित्व से प्रसेनजित् विरुद्धक दीर्घकारायण जैसे मानवीय दुर्बलताओं से युक्त पात्रो का हृदय परिवर्तन हो जाता है। गौतम बुद्ध तो नतिक आदर्शों के मूर्त रूप हैं। ऐतिहासिक घटनाओ सघर्ष तथा द्वन्द्व क बीच प्रसाद जी न नतिकता और आदर्श की रक्षा की है। विशाख नाटक मे प्रमानन्द क सद्-उद्योग और विशाख के चारित्रिक आदर्श स पिघल कर नरदेव के चरित्र का उत्थान होता है। राज्यश्री तथा हर्ष राज्यश्री नाटक म नतिकता के प्रतीक हैं। चन्द्रगुप्त स्कदगुप्त भारतीय इतिहास के वीर राजा ही नही हैं प्रत्युत् नतिकता के आदर्श भी हैं। गाधी जी ने जन जीवन के कल्याण क लिए नतिकता के जिस आदर्श को राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक माना था प्रसाद जी न उसको ऐतिहासिक कथाओं द्वारा मुखर-रूप प्रदान किया है।[3]

मुस्लिम-काल म महाराणा प्रतापसिंह तथा अन्य राजपूतो न आदर्श का जो ज्वलंत रूप प्रस्तुत किया था उसका ओजपूर्ण वर्णन महाराणा प्रताप सिंह व दुर्गादास

१—बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ ४८

२—वही पृ २०

३—प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनो शक्तियों के सामंजस्य से मानव की गहनतम नतिकता विकासोन्मुख बनती है। प्रसाद ने एक सिद्धहस्त कलाकार के समान इसी नतिकता के बल से मानवत्व और देवत्व को एकाकार कर दिया है। यह प्रसाद के नाटकों की बहुत बड़ी विशेषता है।

दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ ५ ६

नामक नाटक में मिलता है। पद्मावती अकबर से कहती है —

> सीता की आह से दशानन नसा था।
> द्रौपदी के तेज से दुर्योधन नसा था॥
> सावित्री के सत्य से यमराज फंसा था।
> ममता के तेज से त्रिपुरराज नसा था॥
> यदि मेरा कहा न मान कर पाप करोगे।
> तो शीघ्र ही इस जग से बिन मौत मरोगे॥[1]

गोविन्दवल्लभ पंत ने राजपूताने की एक प्राचीन गौरव-गाथा लेकर 'राजमुकुट'[2] नाटक की रचना की है। इस नाटक में वीरांगना पन्ना धाय स्वामिभक्ति की वेदी पर अपने दुधमुंहे बच्चे का बलिदान देकर मेवाड़ को वंश-चलित का विनष्ट होने से बचा लेती है। क्षत्राणी पन्ना का अनुपम त्याग, अपूर्व देश भक्ति और नैतिकतापूर्ण चारित्रिक उत्कर्ष आज भी राजस्थान की महिलाओं के आदर्श का जीवित रूप है।

श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दी नाट्य क्षेत्र में अतीतकालीन नैतिक उत्कर्ष के चित्रण में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों और धर्मों का समान एवं उदार भाव से ध्यान रखा है। भारत में सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय जागृति के लिए उन्होंने पक्षपात विहीन दृष्टि से भारतीय इतिहास की उच्चतम मुसलमान आत्माओं के नैतिकतापूर्ण आदर्श जीवन का भी चित्रण किया है। 'रक्षा बन्धन' नाटक इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है। राणा सांगा की विधवा रानी कर्मवती ने जातीयता अथवा धार्मिकता का विचार छोड़ कर अपनी रक्षा के लिए मुगल बादशाह हुमायूं को राखी भेजी तो नैतिक धर्म के नाते ही वह तत्काल उनकी रक्षा के लिए चल दिये थे। 'सच्चे मुसलमान का काम सच्चाई का साथ देना है।' हुमायूं के यह शब्द उसके नैतिकतापूर्ण आदर्श चरित्र का उद्घाटन करते हैं। नैतिक सिद्धान्तों के समक्ष उसने सल्तनत को भी नगण्य समझा था— 'सल्तनत जाय, पर मैं दुनिया का यह कहते नहीं सुनना चाहता कि मुसलमान बहन की इज्जत करना नहीं जानते। तख्त से उतर कर अगर किसी सच्ची बहन के दिल में जगह पा सकूं, तो अपने आपको दुनिया का सबसे बड़ा खुशकिस्मत इंसान समझूंगा। बहन कर्मवती तुम्हारी राखी मुझे वही ताकत दे, जो यह राजपूतों को देती आई है।'[3] इसी प्रकार मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य

१—महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक पृ० २७

२—गोविन्दवल्लभ पंत राजमुकुट पृ० ६३,

३—हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० ४६

४—हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० ४६,

श्रेष्ठ थे। बेचन शर्मा उग्र के महात्मा ईसा नाटक में नाटककार ने इस ओर विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है कि महात्मा ईसा को नैतिकादर्शों की शिक्षा भारत में विवेकाचार्य के आश्रम में मिली थी।[1] उन्होंने इस नाटक में स्वयं ईसा के मुख से भारतवासियों की सभ्यता उदारता सहृदयता आदि विशेषताओं का उल्लेख एवं प्रशंसा कराई है।[2] महात्मा ईसा ने जिस नैतिकता तथा आत्मिक श्रेष्ठता का आदर्श रखकर समस्त पश्चिमी जगत् को अपना अनुयायी बना लिया था उसकी शिक्षा उन्हें इसी देश में मिली थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र के अशोक नाटक में विदेशी नारी डायना भारतवासियों की अतिथि सत्कार भावना सरलता आदि विशिष्ट गुणों की प्रशंसा करती है। आज जो भारत हीन समझा जाता है उसकी नैतिकतापूर्ण आदर्शवादिता युग-युग से अभिनन्दनीय रही है।

जयशंकर प्रसाद ने अपने सभी नाटकों में ऐसे कथानकों की योजना की है जिनसे भारतवासियों को अतीत के आदर्श और इतिहास की तुष्टि पर नैतिक एवं चारित्रिक उत्कर्ष की शिक्षा मिलती है। अजातशत्रु नाटक में प्रसाद जी ने मल्लिका के प्रसंग को इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इतना विस्तार दिया है। उसके नैतिक आदर्शों तथा चारित्रिक दृढ़ता से युक्त व्यक्तित्व से प्रसनजित् विरुद्धक, दीर्घकारायण जैसे मानवीय दुर्बलताओं से युक्त पात्रों का हृदय परिवर्तन हो जाता है। गौतम बुद्ध तो नैतिक आदर्शों के मूर्त रूप हैं। ऐतिहासिक घटनाओं संघर्ष तथा द्वन्द्व के बीच प्रसाद जी ने नैतिकता और आदर्श की रक्षा की है। विशाख नाटक में प्रेमानन्द के सदुद्योग और विशाख के चारित्रिक आदर्श से पिघल कर नरदेव के चरित्र का उत्थान होता है। राज्यश्री तथा हर्ष राज्यश्री नाटक में नैतिकता के प्रतीक हैं। चन्द्रगुप्त स्कंदगुप्त भारतीय इतिहास के वीर राजा ही नहीं हैं प्रत्युत नैतिकता के आदर्श भी हैं। गांधी जी ने जन जीवन के कल्याण के लिए नैतिकता के जिस आदर्श को राष्ट्रवाद के लिए आवश्यक माना था प्रसाद जी ने उसको ऐतिहासिक कथाओं द्वारा मुखर रूप प्रदान किया है।

मुस्लिम-काल में महाराणा प्रतापसिंह तथा अन्य राजपूतों ने आदर्श का जो ज्वलंत रूप प्रस्तुत किया था उसका ओजपूर्ण वर्णन महाराणा प्रताप सिंह व दशोद्धार

१—बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ ४८

२—वही पृ २०

३—प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिक और आधिभौतिक दोनों शक्तियों के सामंजस्य से मानव की गहनतम नैतिकता विकासोन्मुख बनती है। प्रसाद ने एक सिद्धहस्त कलाकार के समान इसी नैतिकता के बल से मानवत्व और देवत्व को एकाकार कर दिया है। यह प्रसाद के नाटकों की बहुत बड़ी विशेषता है।

दशरथ ओझा हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृ ५०६

नामक नाटक में मिलता है। पद्मावती अकबर से कहती है —

सीता की आह से दशानन जला था।
द्रोपदी के तेज से दुर्योधन जला था॥
सावित्री के सत्य से यमराज छला था।
ममता के तेज से दिनराज गला था।
यदि मेरा कहा न मान कर पाप करोगे।
तो शीघ्र ही इस जग से बिन मौत मरोगे॥[1]

गोविन्दवल्लभ पंत ने राजपूताने की एक प्राचीन गौरव-गाथा लेकर 'राजमुकुट' नाटक की रचना की है। इस नाटक में वीरांगना पन्ना धाय स्वामिभक्ति की वेदी पर अपने दुधमुँहे बच्चे का बलिदान देकर मेवाड़ की वंश-वल्लि का विनाश होने से बचा लेती है। धात्री पन्ना का अनुपम त्याग, अपूर्व देश भक्ति, नैतिकतापूर्ण चारित्रिक उत्कर्ष आज भी राजस्थान की महिलाओं के आदर्श का जीवित रूप है।[2]

श्री हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दी नाट्य क्षेत्र में मध्यकालीन नैतिक उत्कर्ष के चित्रण में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों और धर्मों का समान एवं उदार भाव से ध्यान रखा है। भारत में सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय जागृति के लिए उन्होंने पक्षपात विहीन दृष्टि से भारतीय इतिहास की उच्चतम मुसलमान आत्माओं के नैतिकतापूर्ण आदर्श जीवन का भी चित्रण किया है। 'रक्षा बन्धन' नाटक इसका श्रेष्ठतम उदाहरण है। राणा सांगा की विधवा रानी कर्मवती ने जातीयता अथवा धार्मिकता का विचार छोड़ कर अपनी रक्षा के लिए मुगल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजी तो नैतिक धर्म के नाते ही वह तत्काल उसकी रक्षा के लिए चल दिए थे। सच्चे मुसलमान का काम सच्चाई का साथ देना है।[3] हुमायूँ के यह शब्द उसके नैतिकतापूर्ण आदर्श चरित्र का उद्घाटन करते हैं। नैतिक सिद्धान्तों के समक्ष उसने सल्तनत' को भी नगण्य समझा था— सल्तनत जाय, पर मैं दुनिया का यह कहने नहीं सुनना चाहता कि मुसलमान बहन की इज्जत करना नहीं जानते। तख्त से उतर कर अगर किसी मजबूर बहन के दिल में जगह पा सकूँ, तो अपने आपको दुनिया का सबसे बड़ा खुशकिस्मत इन्सान समझूँगा। बहन कर्मवती तुम्हारी राखी मुझे वही ताकत दे, जो वह राजपूतों को देती आई है।[4] इसी प्रकार मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य

१—महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक पृ० २७
२—गोविंदवल्लभ पंत राजमुकुट पृ० ६३,
३—हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० ४१
४—हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ ४१,

ने मुसलमान अतिथि चादखा की अतिथि सेवा के लिये बहादुरशाह के रण का निमन्त्रण स्वीकार किया था।[1] महारानी कमवती तथा अन्य वीर राजपूत क्षत्राणियों ने सतीत्व धम की रक्षा के लिए जौहर की ज्वाला में भस्म होकर नैतिकता का जो उत्कृष्ट उदाहरण विश्व की नारी के सम्मुख रखा था उसका भी श्रोजपूर्ण चित्र नाटक म मिलता है।

शिवा साधना नाटक म प्रेमी जी ने शिवाजी के चरित्र को अन्य साहित्यकारों की अपेक्षा भिन्न रूप म चित्रित किया है। शिवाजी की न तिकता म धार्मिक विद्वेष की तनिक भी गध नही थी। कट्टर हिन्दू होते हुए भी वे इस्लाम धम का आदर करते थे। कोकण क सूबदार मौलाना अहमद की रूपवती पुत्रवधू का जब शिवाजी के अनुचर आबाजी सानदेव ने प्रस्तुत कर उपपत्नी के रूप मे ग्रहण करने का आग्रह किया तो उन्होंने उसके प्रस्ताव को अस्वीकार कर उसे दडित किया। मौलाना की पुत्रवधू को सादर सम्मान सहित मौलाना को लौटा कर शिवाजी ने अपनी चारित्रिक दृढ़ता एव महानता का उच्चतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

गाधी जी ने राष्ट्रवाद का जो उदात्त एव महान् रूप देश के सम्मुख रखा था उसम भारत म बसने वाली सभी जातियों तथा धर्मों का समाहार हो जाता था। उसी की सुन्दर अभिव्यक्ति प्रेमी जी के ऐतिहासिक नाटको रक्षा-बन्धन शिवा साधना आदि मे हुई है। हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के लिये प्रयत्नशील गांधी जी के प्रयासों को प्रेमी जी ने मुस्लिम-काल से ली गई ऐतिहासिक कथाओं म मूत किया है। रक्षा-ब धन जसे नाटको म समान रूप से हिन्दुओं तथा मुसलमानो की अतीत-कालीन नतिक उत्कष की भावना परिपुष्ट हो सकती है। दानो ही जीवन के लिए धार्मिक एव जातीय सकीणता से मुक्त पूव पुरुषो क नैतिक आदर्शों को अपना सकते हैं।

सेठ गोविन्ददास ने इतिहास के अनुरूप हष का चित्रण करत हुए वीरता और सच्चरित्रता का अद्भुत सम्मिश्रण दिखाया है। इतिहास साक्षी है कि हष की वीरता सच्चरित्रता एव नैतिकता से नियन्त्रित थी।[3]

अन्त म यह नि सन्देह कहा जा सकता है कि नाटको म भी अतीतकालीन न तिक उत्कष का उज्ज्वल चित्र मिलता है।

भौतिक उत्कष

हिन्दी नाटकों म भी भारत को प्राचीन समृद्धि और वार भावना का उत्सत मिलता है। यह देश अपन भौतिक वभव तथा वीर भावना के लिये विश्व विख्यात था। हिमालय ब्रह्मपुत्र गगा आदि प्राकृतिक गौरव से युक्त देश की विभूति असीम

१—हरिकृष्ण प्रेमी। रक्षा-बन्धन पृ० २३
२—हरिकृष्ण प्रेमी शिवा-साधना पृ० ६८
३—गोविन्ददास ग्रन्थावली खण्ड—१ पृ० ३१२

थी।[1] महात्मा ईसा नाटक के प्रथम दृश्य में ही उग्र जी ने भारत की धन-सम्पत्ति के उत्कर्ष का उल्लेख कर दिया है।[2]

यद्यपि भारतीय जीवन ने 'लौकिक-सम्पत्ति' की अपेक्षा आध्यात्मिकता और नैतिकता का जीवन का लक्ष्य माना था लेकिन भारत भौतिक ऐश्वर्य की दृष्टि से समृद्ध था। जयशंकर प्रसाद के नाटकों में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता ही मूलाधार है किन्तु उनके प्रायः सभी नाटकों से भारत की विभूति समृद्धि सम्पत्ति की ध्वनि अप्रत्यक्ष रूप से गुंजित होती है। राज्यश्री नाटक में हर्षवर्द्धन अपनी समस्त सम्पत्ति दान दे देते हैं। भौतिक धन-सम्पत्ति के साथ प्राण-दान देने में भी उन्हें संकोच नहीं है। चीनी यात्री हुएनच्वांग द्वारा भारत में इस मान्य की प्रशंसा में कहलाया गया है—यह भारत का देव-दुर्लभ दृश्य देखकर सम्राट्! मुझे विश्वास हो गया कि यही अमिताभ की प्रसव भूमि हो सकती है।[3] चतुरसेन शास्त्री के राजसिंह नाटक में तुलादान के अभूतपूर्व दृश्य से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम काल तक भारत अत्यन्त समृद्ध था।

भौतिक उत्कर्ष के अन्तर्गत सर्वाधिक चित्रण भारत की वीर भावना का हुआ है। बद्रीनाथ भट्ट के दुर्गावती नाटक में इतिहास प्रसिद्ध वीर नारी दुर्गावती का अकबर से युद्ध करने का अत्यन्त वर्णन मिलता है।

> झुक सकता है सूरज लेकिन दुर्गावती नहीं झुक सकती,
> रुक सकती है जमना, पर रानी की तेग नहीं रुक सकती।
> बिजली है वह बाज बहादुर तक को झुलसाया है जिसने
> अनगिनती रजवाड़ों को पामाल किया—खाया है जिसने॥[4]

हमारे इतिहास ने वीर पुरुष ही नहीं, वीर-नारियों को भी जन्म दिया है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उत्सर्ग नाटक में राजपूती वीरता का वर्णन और देश पर बलिदान हो जाने की प्रबल भावना मिलती है।[5] इस नाटक में राजपूत वीर

१—हमारे हिमालय के मस्तक से और किसी भी भूधर का मस्तक ऊंचा नहीं है। हमारे ब्रह्मपुत्र से बड़ा और कोई भी नद नहीं है। हमारी गंगा से अधिक स्वास्थ्यकर सुस्वादु और पवित्र पानी वाली और कोई भी नदी नहीं है।'

—बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० ६०

२—बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० १६

३—जयशंकर प्रसाद राज्यश्री पृ० ७२

४—आचार्य चतुरसेन शास्त्री राजसिंह पृ० १

५—बदरीनाथ भट्ट दुर्गावती पृ० २१

६—आचार्य चतुरसेन शास्त्री उत्सर्ग पृ० १६

नारियों की वीरता एवं त्याग का भी प्रदर्शन किया गया है। गोविन्दवल्लभ पन्त के 'वरमाला' नाटक में वीरता का सुन्दर प्रदर्शन मिलता है। जयशंकरप्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध वीर पुरुषों के शौर्य का ओजस्वी वर्णन मिलता है जिन्होंने विदेशी शक्तियों से टक्कर लेकर उन्हें अपदस्थ किया था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने विश्व विजय के आकांक्षी सिकन्दर को पराजित कर इतिहास में अपना विशेष स्थान बनाया है जिसका विस्तृत उल्लेख प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक में मिलता है। चन्द्रगुप्त, हर्षवर्धन, स्कन्दगुप्त आदि उनके नाटकों के इतिहास प्रसिद्ध वीर पुरुष हैं और ध्रुवस्वामिनी, राज्यश्री वीर नारियाँ। चाणक्य की नीति भारत के राजनीतिक उत्कर्ष का उदाहरण है जिसका सफल प्रतिपादन प्रसाद जी के चन्द्रगुप्त नाटक में हुआ है। प्रसाद जी के नाटकों को भारतीय इतिहास के हिन्दू काल की सांस्कृतिक उत्कृष्टता का आलेख कहा जा सकता है जिनमें उनकी कलात्मक प्रतिभा के संयोग से मणिकांचन योग उपस्थित हुआ है।

जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने प्रताप प्रतिज्ञा नाटक में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए महाराणा प्रताप द्वारा किये युद्ध, कष्ट सहन, त्याग आदि का ओजपूर्ण चित्र अंकित किया है। महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक में भी देश के लिए प्रताप द्वारा किये उत्सर्ग का वर्णन मिलता है। जयशंकर भट्ट के दाहर अथवा सिंध पतन में भारतीय जनता के वीरत्व का प्रदर्शन हुआ है। इस नाटक में लेखक ने इस तथ्य की ओर विशेष रूप से पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है कि केवल क्षत्रिय जाति ही वीर नहीं थी अन्य जातियों में भी वीरता की कमी नहीं थी। सिंध के राजा दाहर की वीरता की प्रसिद्धि अरब तक फैली हुई थी। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अशोक नाटक में देश के लिए प्रियजनों का उत्सर्ग भारतीय नारी की विशेषता मानी है। 'हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि एकमात्र पुत्र को सेना में भर्ती कर देना मातृत्व की सबसे बड़ी आकांक्षा थी।'[1] 'वीरत्व क्षत्रिय बालकों का सौभाग्य था— राजकुमारी मैं क्षत्रिय बालक हूँ सैनिक बनना सौभाग्य समझता हूँ। माता का बन्धन था सो वह भी यही चाहती है। बड़ा सुयोग है।'[2] उदयशंकर भट्ट के नाटक 'दाहर अथवा सिंध पतन' में भारतीयों की वीरता का उद्घाटन हुआ है।

हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक मुस्लिम कालीन भारतीय इतिहास के वीरों का मूर्त रूप हैं। उन्होंने निष्पक्ष भाव से इतिहास के हिन्दू और मुसलमान वीर राजाओं और बादशाहों का सजीव चित्र खींचा है। रक्षा-बन्धन, शिवा-साधना, प्रतिशोध आदि इनके प्रसिद्ध नाटक हैं। रक्षा-बन्धन नाटक में एक ओर राजपूत वीर पुरुषों और नारियों की वीरता का प्रदर्शन है तो दूसरी ओर मुगल बादशाह हुमायूँ के शौर्य का

१—लक्ष्मीनारायण मिश्र अशोक पृ० ११३

२—वही पृ० १११

उन्माद। मनि राजपूतों ने कर्तव्य पथ पर प्रेम का उत्सर्ग करना सीखा था।[1] तो मुगल बादशाह हुमायूं ने भी कर्तव्य-पालन के लिए जातीयता और धार्मिकता को ठुकरा कर वीरत्व का प्रदर्शन किया था सच्चा वीर वही है खरा राजपूत वही है, जो न हिन्दुओं के सम्प्रदाय का हिमायती है और न मुसलमानों का। वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवाना।[2] मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य का यह कथन हुमायूं के चरित्र पर पूर्णतया घटित हो जाता है क्योंकि उसने अन्यायी मुसलमान बहादुरशाह की अपेक्षा हिन्दू रानी कर्मवती के धर्म का बंधन स्वीकार किया था। हुमायूं की वीर भावना एक सच्चे मुसलमान और एक सच्चे इन्सान की वीर-भावना थी। निःसन्देह प्रेमी जी ने इसके द्वारा हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का उच्चतम उदाहरण रखा है। भारतीय राजपूतों की वीर भावना का प्रदर्शन करने वाले कुछ एकांकी नाटक भी मिलते हैं जैसे सुदर्शन कृत राजपूत की हार प्रभृति।[3]

इस काल में रचित प्रायः सभी नाटकों में देश जाति धर्म के सम्मान के लिए प्राणोत्सर्ग का आदर्श मिलता है। देशवासियों को इन नाटकों द्वारा साम्राज्यवाद के उन्मूलन के लिए साहस, ओज तथा संगठन की शक्ति का संदेश दिया गया है। नाटककारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत युग युग से एक राष्ट्र है, उस राष्ट्र बनना नहीं है। महात्मा ईसा नामक नाटक में उग्र जी द्वारा अंकित यह कथन यथार्थ एवं सत्य है—हमने संसार के इतिहास का यथासाध्य मंथन किया है। परन्तु हम दधीचि के टक्कर के दानवीर, हरिश्चन्द्र के टक्कर के सत्य-वीर रामचन्द्र के टक्कर के आदर्श-पुरुष तथा युद्धवीर और भगवान कृष्ण के टक्कर के कर्मवीर कहीं भी नहीं मिले। हनुमान और अर्जुन की चरण धूलि भी कहीं नहीं नजर आई।[4]

कथा साहित्य में अतीतकालीन उत्कर्ष का चित्रण

हिन्दी साहित्य के इस युग में अतीतकालीन भारतीय उत्कर्ष का निदर्शक कथा-साहित्य अधिक मात्रा में नहीं मिलता। ऐतिहासिक एवं पौराणिक उपन्यासों तथा कहानियों द्वारा यह कार्य संभव हो सकता था। भारत के प्राचीन आध्यात्मिक उत्कर्ष का चित्रण जिन एकाध उपन्यासों में हुआ है वे साहित्य तथा कला-दृष्टि से अधिक उच्चकोटि के नहीं हैं। पंडित रामगोविन्द त्रिवेदी लिखित 'महर्षि प्रह्लाद' (ज्येष्ठ संवत् १९८० विक्रमी), उपन्यास में प्रह्लाद के उच्च आध्यात्मिक-नैतिक गुणों का अनुलेखन हुआ है। इस उपन्यास में वर्तमान को दृष्टि में रख कर सत्य तथा अहिंसा के महत्व का प्रकाशन किया गया है।

१—हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० १७
२—वही, पृ० २१
३—सुदर्शन तीर्थ यात्रा पृ० २००
४—बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० ६०

ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम मिलते हैं। इस काल के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा है।[1] इनके उपन्यासों का क्षेत्र प्राय बुन्देलखण्ड रहा है। 'गढ़-कुण्डार' इस समय का प्रसिद्ध उपन्यास है। इसमें क्षत्रियों की वीरता उनके आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान का वणन किया गया है। खगार एवं बुन्देले अपनी आन पर मर मिटे। इस उपन्यास म अग्निदत्त नारी की मर्यादा और घायल शत्रु की रक्षा में प्राण देता है।

गढ कुण्डार म वर्माजी ने अपने युग की कतिपय देश दुदशा से सम्बन्धित समस्याओं को भी प्रच्छन्न रूप मे लेकर उनसे देशवासियो को सावधान रहने का सदेश दिया है।[2] वर्मा जी न प्रसाद जी के नाटकों की भाति सघष एव राजनीतिक उथल पुथल का शान्ति म पयवसान कर सगठित राष्ट्र एव राष्ट्र तथा राष्ट्रीय सांस्कृतिक गौरव का उत्कृष्ट रूप नही रखा है।

जयशकर प्रसाद की 'सालवती कहानी म अतीतकालीन भारत की गणतन्त्रात्मक शक्ति का वणन मिलता है।[3] ममता कहानी म भारतीय विधवा नारी का उत्कृष्ट नतिक चरित्र चित्रित किया है।[4] प्रेमचन्द ने भी राजपूतो की वीर भावना के प्रदशन के हेतु कुछ सुन्दर ऐतिहासिक कहानिया लिखी हैं। जसे 'राजा हरदौल रानी सारधा'[5] राज्य भक्त। राज्यभक्त कहानी म राजा बख्तावरसिंह की वीरता क साथ देशभक्ति भी प्रशसनीय है।[6]

सुदर्शन ने भारतीय इतिहास क प्रति निकट युग स सिक्ख महाराजा रणजीत सिंह स सबधित कहानी पथ की प्रतिष्ठा लिखी है।[7] इस कहानी द्वारा उन्होने महाराज रणजीतसिंह तथा सिक्ख पथ की न्यायप्रियता का उत्कष दिखाया है। महाराजा रणजीतसिंह याय के सम्मुख व्यक्तित्व की परवा करना शासन क लिए घातक समझते थ। अत पथ की प्रतिष्ठा क प्रतिकूल तथा प्रजा की इच्छा के विरुद्ध

१—वर्तमान काल मे ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में केवल डा० वृन्दावनलाल वर्मा दिखाई दे रहे हैं। उन्होंने भारतीय इतिहास के मध्ययुग के प्रारम्भ में बुन्देलखड की स्थिति लेकर गढ़कुण्डार' और विराटा की पद्मिनी नामक दो बड़े सुन्दर उपन्यास लिखे हैं। विराटा की पद्मिनी की कल्पना तो अत्यन्त स्मरणीय है।
—रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास प० ४६४

२—वृन्दावनलाल वर्मा गढ़कुण्डार प २१७
३—जयशंकरप्रसाद आकाशदीप प० १६
४—प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ६ प० १२
५—वही प० ४५
६—वही प० २५१
७—सुदर्शन प्रभात प० १८

नतकी मोरा से विवाह कर लेने पर उन्होंने साधारण प्रजा की भांति संगत में आकर क्षमा प्रार्थना की और दण्ड स्वीकार किया। भारतीय राजनीति दर्शन में सत्य के सम्मुख राजा तथा प्रजा शासक तथा शासित समान रूप से दण्डित थे। प्रवासी फूलसिंह की सच्चरित्रता न्यायनिष्ठा तथा सत्यता अद्भुत है।[1] यह नैतिक उत्कर्ष का उदाहरण है। इसके अतिरिक्त महाराणा रणजीतसिंह की वीरता का भी उल्लेख मिलता है।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य में अंकित अतीतकालीन भारत के आध्यात्मिक, नैतिक, भौतिक उत्कर्ष के चित्र देश-जीवन में आत्मगौरव और स्वाभिमान की भावना का सृजन करने में समर्थ हुए। साहित्य-मनीषियों ने अपनी लेखनी द्वारा पौराणिक यथार्थों तथा इतिहास की महान् आत्माओं वीर-पात्रों और आदर्श नारियों की जीवन गाथाओं को सजीव रूप प्रदान किया है। पतनोन्मुख देशवासियों के लिए अतीत गौरव का चित्रण शक्तिदायक होता है जिससे अभिमान से भर कर वे पुनः पूर्व उत्कर्ष की प्राप्ति के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। अपनी प्राचीन सभ्यता तथा संस्कृति के प्रति अभिमान की भावना राष्ट्रवाद का आवश्यक तत्व है। गांधीजी ने देशवासियों में राष्ट्रीय जागृति के लिए अपने प्राचीन धर्म, इतिहास तथा गौरव को आवश्यक माना था।[2] अतीत की गहरी जड़ों पर ही वर्तमान और भविष्य अवस्थित है।

भारतेन्दुयुगीन साहित्य में अतीत-गौरव-गान की परम्परा का बीजारोपण हुआ था। परन्तु उस युग के साहित्यकारों की दृष्टि अतीत की अपेक्षा वर्तमान पर अधिक थी। उनकी कृतियों में पूर्व-पुरुषों के उत्कर्ष पूर्ण जीवन के चित्रण में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का रंग अधिक गहरा था। इसमें निराशा की मात्रा अधिक थी। अतः अतीत-गौरव-गान का उत्साहवर्द्धक विशुद्ध रूप नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त इतिहास के दुर्बल पक्ष की ओर भी इनका ध्यान अधिक आकृष्ट हुआ था। भारत के पतन के कारणों का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है जिसमें अतीत-गौरव कुछ धूमिल पड़ जाता है। भारतेन्दुयुगीन हिन्दी साहित्यकार मध्ययुगीन शासकों के अत्याचारों को नहीं भूले थे। उनमें मुसलमानों के प्रति सहिष्णुता नहीं मिलती। अतः इस संकुचित मनोवृत्ति के कारण भारतीय इतिहास के मुस्लिमकाल के मुसलमान पात्रों की विशेषताओं का वर्णन अछूता रह गया। केवल हिंदू इतिहास का ही उत्कृष्ट रूप मिलता है। द्विवेदी युग में आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द लोकमान्य तिलक जैसे भारतीयता के समर्थक राष्ट्रीय नेताओं के उपदेशों तथा राजेन्द्रलाल मित्र और भंडारकर की ऐतिहासिक खोजों के फलस्वरूप वैदिक धर्म संस्कृति प्राचीनादर्श तथा इतिहास

१—सुदर्शन सुप्रभात पृ० ३५

२—वही पृ ४६

3—Dr Buch The Rise and Growth of Indian Nationalism–P 42

का अधिक उज्ज्वल रूप सम्मुख आया। हिन्दी साहित्य में भी पूर्व पुरुषों की भूलों अथवा न्यूनताओं की अपेक्षा अतीत के उज्ज्वल पक्ष का विशुद्ध रूप में प्रतिपादन किया गया। अतीतकालीन आध्यात्मिक नैतिक भौतिक उत्कर्ष का प्राजल रूप प्रस्तुत किया। इसमें सर्वाधिक बल वीर-पुरुषों के ओजस्वी चरित्र के वर्णन पर दिया गया। अब देश में स्वाभिमान की भावना आ गई थी। लेकिन द्विवेदी युग में अतीत गौरव का सम्बन्ध हिन्दुओं के धर्म, इतिहास, दर्शन एवं साहित्य की उत्कृष्टता में ही निहित रहा।

आलोच्य-काल के अतीत-गौरव को गांधीवादी विचारधारा से प्रेरणा मिली। जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है गांधीजी की धार्मिक विचारधारा भारत के पुरातन धर्म-ग्रन्थों से अभिप्रेरित थी और नैतिकता से पूर्ण तथा परम्परागत थी। अतः हिन्दी साहित्यकारों ने वेद-ग्रन्थों के महत्व का प्रतिपादन किया, हिन्दू धर्म तथा संस्कृति का उत्कृष्ट चित्र खींचा और ऐतिहासिक व्यक्तियों की आध्यात्मिक नैतिक भौतिक विशेषताओं का वर्णन किया। इस काल के अतीत गौरव गान में आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की प्रधानता मिलती है। हिन्दी काव्य क्षेत्र में पंडित रामचरित उपाध्याय, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला आदि ने ऋषियों, मुनियों, पौराणिक तथा ऐतिहासिक युग-पुरुषों एवं नारियों के चारित्रिक उत्कर्ष का भावात्मक चित्रण किया है। इस दिशा में राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिन्होंने साकेत, पंचवटी, यशोधरा, सिद्धराज आदि महाकाव्य और खण्ड काव्य के साथ अनेक स्फुट कविताओं द्वारा भारत के अतीत-गौरव का उत्कृष्ट चित्र रखकर देश का सांस्कृतिक जागरण का मार्ग किया है। वैष्णव कवि गुप्त जी की विचारधारा में हिन्दुत्व का पक्षपातपूर्ण अनुरोध नहीं है। 'गुरुकुल' की रचना द्वारा सिक्खों के धर्म गुरुओं के महान् चरित्रों का उद्घाटन कर और यशोधरा की रचना द्वारा बौद्धों को साथ लेकर गुप्त जी ने अतीत के आधार पर हिन्दू, बौद्ध और सिक्खों के एकीकरण का प्रयास किया है। मुसलमान तथा ईसाई धर्म के प्रति इनमें विद्वेष भाव नहीं था। गांधीजी के प्रभाव के कारण गुप्त जी ने हिन्दू धर्म का विकसित रूप लिया है जिसमें अन्य धर्मों के समाहित होने के लिए स्थान है।

हिन्दी नाटककारों ने भी पौराणिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों में अपने कथा वस्तु चुने हैं। ऋषि मुनियों के जीवन चरित्र की अपेक्षा भारतीय ऐतिहासिक परंपरा के उन्मूलन में इनकी वृत्ति अधिक रमी है। वीर-पुरुषों के मधुमय जीवन के चित्रण में नाट्य कला की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। नाटकों में वर्णित ऐतिहासिक महापुरुषों की शक्ति आध्यात्मिकता तथा नैतिकता द्वारा नियन्त्रित है। इसी कारण डा॰ दशरथ ओझा ने अपने शोध प्रबन्ध 'हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास' में ऐतिहासिक नाटकों को दो वर्गों में विभाजित किया है—आध्यात्मिक शक्ति प्रधान तथा आधिभौतिक

शक्ति प्रधान। अधिभौतिक शक्ति प्रधान नाटकों के मूल में भी नैतिकता का सुदृढ़ आधार है जिसमें स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष को देशवासियों का जन्मसिद्ध अधिकार एवं स्वधर्म उद्घोषित किया गया है। इसका यह कारण है कि प्रारम्भ से ही राष्ट्रीय महासभा द्वारा सचालित स्वातन्त्र्य-संग्राम में नैतिकता का आधार ग्रहण किया गया था और गांधीजी ने सम्पूर्ण राष्ट्र-जीवन का ही आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक शक्तियों के सामंजस्य में भारतीय संस्कृति की नैतिकता विकासोन्मुख सक्रिय होती है। उग्र जा का महात्मा ईसा नाटक भी इसी वर्ग में रखा जायगा। अन्य नाटककारों ने मुस्लिम काल के वीर हिन्दू राजाओं और रानियों के चरित्र लेकर नैतिक एवं भौतिक शक्तिपूर्ण उज्ज्वल चित्र प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि अधिकांश नाटककारों ने इतिहास के हिन्दूकाल में (जबकि भारत किसी विदेशी सत्ता के अधीन नहीं हुआ था) अथवा मुस्लिम काल से हिन्दू वीर चरित्रों को ही चुना है तथापि इनमें मुसलमान शासकों के प्रति अधिक कटु भावना नहीं मिलती। सन् १९३० के लगभग हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक एकता को दृष्टि में रख कर दोनों जातियों के सम्मिलित इतिहास से उत्कृष्ट व्यक्तित्व लेकर नाटक लिखने की परम्परा का प्रारम्भ किया। राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से इनका प्रयास प्रशंसनीय है। इस समय हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ गया था और गांधीजी तथा अन्य राष्ट्रीय नेतागण दोनों जातियों की एकता के लिए प्रयत्नशील थे। अब तक हिन्दी साहित्य के अतीत गौरव गान की परम्परा में जो नाटक लिखे गये थे वे हिन्दुओं की जातीय भावना की ही परितुष्टि कर सकते थे। प्रेमी जी ने राष्ट्रवादी साहित्य को नवीन दिशा में मोड़ा।

उपन्यास अथवा कहानियों में आध्यात्मिकता की अपेक्षा आधिभौतिक गुणों का ही वर्णन हुआ है। वृन्दावनलाल वर्मा ने बुन्देलखण्ड की कथाओं एवं विशिष्ट व्यक्तित्व को लेकर उपन्यास लिखे हैं। राष्ट्रीय भावना के उद्बोधन की दृष्टि से इनके ऐतिहासिक नाटक अधिक उपयोगी नहीं हैं। क्षेत्र प्रदेश में जातीयता झूठे सम्मान और मर्यादा का स्वर मिल जाने से इनके गढ़-कुण्डार उपन्यास को राष्ट्रीय उपन्यास की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इनके द्वारा भारतीय इतिहास के अन्य पक्षों का स्पर्श नहीं किया गया है। इस काल में रचित ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या भी अति अल्प है। जयशंकर प्रसाद, प्रेमचंद, सुदर्शन आदि ने अवश्य कुछ सुन्दर ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं। प्रसाद जी की कहानियों में कल्पना, भावुकता और आध्यात्मिकता का प्राधान्य है। राष्ट्रीय एकीकरण की दृष्टि से लिखा कथा-साहित्य नहीं मिलता।

अतीत-गौरव के वर्णन में हिन्दी साहित्यकारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत के पास केवल भौगोलिक एकता ही नहीं है प्रत्युत् उनके धर्म के मूल रूप में भी एकता है। रामायण, महाभारत, गीता आदि आदर्श राष्ट्रीय ग्रन्थ हैं और राम, कृष्ण, अर्जुन, महाराणा प्रताप, शिवाजी आदि आदर्श पुरुष। अतीत-गौरव की

भावना ने आत्मविश्वास को जन्म दिया और जसे आत्मविश्वास राष्ट्रीयता का रूप लेता गया हमारी इस भावना ने भारतीयता को सवश्रेष्ठ तथा अन्य संस्कृतियों को अपने सम्मुख हीन समझा। हिन्दीसाहित्य में भी अन्य संस्कृतियों की तुलना में भारतीय अध्यात्म दर्शन संस्कृति इतिहास आदि की श्रेष्ठता का निरूपण किया है। इसका सवश्रेष्ठ उदाहरण उग्रजी का महात्मा ईसा नाटक है।

इस युग के अधिकांश हिन्दीसाहित्य में अतीत चित्रण हिन्दू भावना हिन्दू धम और हिन्दू इतिहास को लेकर किया गया है। इसके कई कारण स्पष्ट लक्षित होते हैं। हिन्दीसाहित्य का सम्बन्ध हिन्दू जाति से है। प्राय सभी साहित्य प्रणेता हिन्दू थे और उन्होंने अपने धम संस्कृति जातीयता की भावना से आवृत्त होकर अतीत को देखा था। इसके अतिरिक्त गाधी जी के अथक प्रयत्नों के उपरान्त भी साम्प्रदायिक भेदभाव न मिट सका था। अल्पसंख्यक मुसलमान ईसाई पारसी आदि ने राष्ट्रीय संग्राम को अपना पूरा सहयोग भी प्रदान न किया था। इस कारण इनसे सम्बन्धित इतिहास अथवा अतीत-गौरव की ओर हिन्दी साहित्यकारों का अधिक ध्यान नहीं गया। हिन्दी साहित्य में अतीत गौरव का जो रूप मिलता है उसकी मुसलमानों पर अथवा भिन्न धर्मावलम्बी अल्प-संख्यक जनता पर क्या प्रतिक्रिया होगी, इस पर साहित्य सेवियों ने अधिक विचार नहीं किया था। रचयिता के लिए इस प्रश्न पर विचार करना अनिवार्य भी नहीं था क्योंकि यह राजनीति का विषय था।

अतीत गौरव-गान एक विशेष उद्देश्य से किया गया था कि देशवासी अतीत के उज्ज्वल प्रकाश में अपनी वतमान दुर्दशा के अधकार की सघनता से भली भांति परिचित हो सकें। अतीत की तुलना में वतमान दुर्दशा की अनुभूति का मार्मिक चित्र हिन्दीसाहित्य में मिलता है।

अतीत की तुलना में वतमान की दुदशा की अनुभूति

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का सूत्रपात धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलन के रूप में हुआ था। देशवासियों ने इस आन्दोलन के फलस्वरूप अपनी हीनावस्था की ओर दृष्टिपात किया, और स्वभावतया उसके कारणों की खोज की। स्वामी दयानन्द सरस्वती रामकृष्ण परमहंस स्वामी विवेकानन्द श्री अरविन्द घोष जसे धार्मिक तथा श्री लोकमान्य तिलक लाला लाजपतराय जैसे राजनैतिक महापुरुषों की वक्तृताओं तथा रचनाओं से यह स्पष्ट हो गया था कि भारतवासियों का अतीत विशेषतया वह हिन्दूकाल जबकि भारतवासी किसी भी विदेशी दासता के अधीनस्थ नहीं हुए थे आध्यात्मिक नैतिक तथा भौतिक अर्थात् जीवन की सभी दृष्टियों से अत्यधिक सम्पन्न था। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मानव स्वभाव किन्हीं दो वस्तुओं की तुलना में अधिक आनन्द एव सन्तुष्टि प्राप्त करता है। इसी कारण

भारत के समुन्नत अतीत की उसकी वर्तमान विपन्न अवस्था से तुलना की गई। इस तुलना द्वारा जहाँ एक ओर भारतवासी अपने उज्ज्वल अतीत के उत्कर्ष पर स्वाभिमान से भर गए वहीं दूसरी ओर अतीत के प्रकाश में उनके वर्तमान विषमता की कालिमा अधिक सघन हो गई। भारतवासी अपने देश के अतीत और वर्तमान के दो विरोधी चित्र देख विक्षुब्ध हो उठे।

आधुनिक हिन्दीसाहित्य में और प्रमुखतया काव्य में भारत के अतीतोत्कर्ष की तुलना में वर्तमान विषमता का वर्णन विशेष रूप से हुआ है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पण्डित रामचरित उपाध्याय श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ठाकुर गोपालशरणसिंह श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला श्री माखनलाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का अत्यधिक विशद एवं मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने १९१२ में भारत भारती ग्रन्थ की रचना इसी उद्देश्य से की थी। इस पुस्तक का विभाजन तीन खण्डों में है। प्रथम खंड का सम्बन्ध उसकी वर्तमान दुरवस्था तथा अवनति से तथा तृतीय का आशामय भविष्य से है। अतीतोत्कर्ष की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति कवि हृदय में विभिन्न भावों का उद्बुद्ध करता है। कभी वे उज्ज्वल अतीत की तुलना में वर्तमान हीनावस्था को देख ग्लानि से भर जाते हैं कभी उनका भव्य अतीत उन्हें वर्तमान दुरवस्था का विनष्ट कर देने के लिए शक्ति एवं ओज से भर देता है कभी वर्तमान की कठोर विभीषिका असह्य हो जाती है और वे दुःखोदधि में निमग्न हो जाते हैं और कभी अतीत गौरव गाथा उनका मस्तक गर्व से ऊँचा कर देती है। आज प्राचीन गौरव के चिह्नस्वरूप अवशिष्ट खंडहर अपनी संतति के विनाश में पुकार-पुकार कर कह रहे हैं —

> खोते रहो हे हिन्दुओं! हम खोज करते हैं यहाँ
> प्राचीन चिह्न न विनष्ट हों किस जाति के होंगे कहाँ![1]

भारतीय हृदय अपने इस पतन पर ग्लानि से भर जाता है। इस युग के कवियों ने यह स्पष्ट कर दिया था कि हमारी अवनति बहुमुखी है केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं सांस्कृतिक तथा चारित्रिक दृष्टि से भी हमारा पतन हुआ है। प्राचीन काल में भारत स्वतन्त्र था, यहाँ के निवासी धनधान्य से पूर्ण रोगशोक से मुक्त और कलाकौशल में निपुण थे। सम्पूर्ण विश्व में यह देश वन्दनीय था। आज भारत बन्दी सदाचार से हीन नित्य नवीन रोग से ग्रसित तथा दरिद्रता की मूर्ति है।[2] भारतवासियों में उन चारित्रिक सद्गुणों का अभाव हो गया है। उनके पूर्वजों की उन्नति के विशेष कारण थे —

१—मैथिलीशरण गुप्त भारत-भारती पृ० ८९
२—मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश संगीत पृ० ३६

यह गौरव यह मान महत्व वह अमरत्व, तत्वमय सत्व
सबके ऊपर चारु चरित्र —पवित्रता का जीवित चित्र
वह साधन वह अध्यवसाय नहीं रहा हम में अब हाय।
इसीलिये अपना यह ह्रास चारों ओर त्रास ही त्रास ॥[१]

भारतवासियों की ग्लानि का केवल यही कारण नहीं था कि पूर्वजों की तुलना में उनका चरित्र सद्गुण आचार विचार से शून्य हो गया है[२] बल्कि उसका सबसे बड़ा कारण यह था कि अंग्रेजों ने भारतीयों में जो कि एक दिन गुणों की खान समझे जाते थे चन चुन कर अवगुण कूढ़ और उन्हें पशुवत् गिना।[३] हरिऔध जी ने अपनी ग्लानि इन शब्दों में अभिव्यक्ति की है —

हमको भले बुरे का
अब ज्ञान कुछ नहीं है
शिशु हो गये सभी हम
किस भांति हा भलाई ?

श्री मैथिलीशरण गुप्त का कवि हृदय तब ग्लानि और विक्षोभ से हाहाकार कर उठता है जब वे आध्यात्मिक भारत के निवासियों को प्रतिहिंसा और विद्वेष की भावना में भरा देखते हैं। ग्लानि का अतिरेक शोक और वेदना की अनुभूति में परिणत हो जाता है। उसकी पीड़ा का प्रमुख कारण है विदेशी दासता या अधीनता—

जहाँ थे साम्यवाद के सिद्ध जहाँ का था स्वतन्त्रता—मन्त्र
बदन कर पराधीनता-व्याप्ति वहाँ का जन-जन है परतन्त्र ॥[४]

ठाकुर गोपालशरण सिंह की अतीतगरिमा प्रतीत की तुलना में भारत की वर्तमान अवनति व पतन से अत्यधिक विकल हो जाती है। उनकी वेदना की अनुभूति अत्यधिक तीव्र एवं मार्मिक है। उन्हें वर्तमान कष्टों से मुक्ति का मार्ग नहीं सूझता और उन पर एक ऐसा उन्माद-सा छा जाता है कि वे सिर धुनने तथा विष घूटने की बात कह उठते हैं।[५] दुःख के अतिरेक में वे पूर्वोन्नति का वर्णन करते हुए भी उसे स्वप्नवत् मान लेते हैं और वर्तमान परिताप को जीवन का सत्य

हम बिलपना और सदा भय से कंपना है,
तन मन का अति तीव्र ताप से तपना है।

१—मैथिलीशरणगुप्त हिन्दू पृ० २४ २५
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे १५
३—अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे पृ० २३
४—वही संचिता पृ० ११२
५—वही कल्पलता पृ० ३६
६—ठाकुर गोपालशरण सिंह संचिता पृ० ६२

इस तममय दिन में क्या रहा सन्ध्या हो जाती न क्यों
हे भारत जननी ! आज तू वन्ध्या हो जाती न क्यों ?[1]

अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का करुण पक्ष स्थायी नहीं था। अतः साहित्यिकों ने इस मन्ना से मुक्ति का उपाय भी अपने गौरवमय अतीत में ही पाया। उन्होंने गर्व से भर भर कर प्राणमय भविष्य का आह्वान किया—

था अतीत निज गौरव-गेह फिर भविष्य का क्या सन्देह ?
प्राणों का प्रकाश प्राचीन, लेगा लेगा जन्म नवीन ।।[2]

अतीत का प्रताप वर्तमान को साथ लेकर उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करने वाला है—

रहा अतीत तुम्हारा आप जिसका अब भी प्रकट प्रताप।
कर लो वर्तमान को साथ है भविष्य तो अपने हाथ ।।[3]

हमारा भव्य अतीत आज भी भारतवासियों को उत्साह से भर भर कर नव निर्माण तथा पुनरुत्थान का सन्देश देता है। इसी कारण श्री मैथिलीशरण गुप्त देशवासियों का त्राण पाने के लिए उद्यत करने को प्रोत्साहित करते हैं—

हे अपार हिन्दू-संसार तेरा एक एक तिथि—वार
रखता है सो सो इतिहास उद्यत हो तू न हो उदास ।।[4]

अतीत गौरव की तुलना में वर्तमान दुर्दशा का अनुभूति भारतवासियों को सजग कर क्रान्ति मचाने के लिए आत्मिक बल प्रदान करने में भी समर्थ है। इसी कारण 'विजया दशमी' कविता में श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने कहा है—

दो विजये ! वह आत्मिक बल दो वह हुंकार मचाने दो।
अपनी निर्बल आवाजों से, दुनिया को दहलाने दो ।।[5]

श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला भारतवासियों को उनके अतीत की स्मृति के भैरवनाद द्वारा उन्हें पुनः एक बार जगाना चाहते हैं। 'जागो फिर एक बार' में गुरु गोविन्दसिंह जी की प्रतिज्ञा का स्मरण कराके कहते हैं कि आज शेरों की मांद में स्यार आया है।[6]

तुम हो महान
तुम सदा हो महान्

१—ठाकुर गोपालशरणसिंह सचिता पृ० १५५
२—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ५८
३—वही पृ० ४४
४—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ७६
५—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ६५
६—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपरा पृ० ६

है नश्वर यह दीन भाव
कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम
पदरज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार ।।[1]

इस प्रकार ओजपूर्ण भाषा में भारत के इतिहास में से वीरता भरे स्थलों को उद्धृत कर भारतवासियों को पुनः वीर रस मण्डित करना चाहा है। श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने वर्तमान काल में अतीत गौरव के चिन्हों के मिटते रूप का वर्णन विन्ध्यहीं कविता में किया है---

त्रिपुरी की नगरी जमीन में
गड़ी नर्मदा तट पर
महलों के महाराज खड़े
रोते बसे पनघट पर
मांडवगढ़ गड़ता जाता है
नित्य धूल खाता है
जन समूह उसका शव---
कफन हाय! लूट जाता है
आज बना इतिहास बिचारा
निठुर प्रकृति का हास,
ले बैठी स्वातन्त्र्य---भावना
मिट्टी में सन्यास ।।[2]

चतुर्वेदी जी की वर्तमान की तुलना में अतीत गौरव की अनुभूति अत्यधिक भावात्मक है। उसका विषाद-पक्ष भी अधिक मूर्त है।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति तीव्र होने पर भी संयत तथा गंभीर है। इसी कारण वे ठाकुर गोपालशरण सिंह जी की भांति सिर कूटने या विष घूटने की बात नहीं कहते। गुप्तजी की दृष्टि भारत के स्वर्णिम अतीत उसके सांस्कृतिक मूल्यादर्शों से अनुप्राणित होती हुई भारत की वर्तमान दुरवस्था पर पहुंचती है। अतः वे अधिक सक्रिय तथा सचेतन वाणी में यह तुलनात्मक विवेचना करते हैं। गुप्त जी भावावेग में बह नहीं जाते भावनाओं पर उनके संयम का नियंत्रण है। इसी कारण वे अतीत की तुलना में वर्तमान विभीषिका का जो वर्णन करते हैं वह उनकी विचारशक्ति द्वारा संतुलित होता है। उनके काव्य

१---सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपरा पृ० १०
२---माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी पृ० ५४

ग्रंथों में भारतीय इतिहास के अनुसंधान में अनेक पृष्ठ अनावृत हुए हैं किन्तु इति वृत्तात्मक रूप में नहीं आध्यात्मिकता के आग्रह तथा मौलिक प्रतिभा के संयोग के साथ। इसके अतिरिक्त उनकी संवेदना कल्पना अथवा प्रतिभा ने भारतवासियों की राष्ट्रीय भावना को जागृत करने के लिए वर्तमान अथवा अतीत के अतिरंजितापूर्ण चित्र नहीं खींचे हैं। अतीत की बढ़ती हुई खोज के साथ भारत में गौरवमय इतिहास का जो रूप स्पष्ट होकर आया था उसी की पृष्ठभूमि में उन्होंने वर्तमान यथार्थ का चित्रण किया था।

गुप्तजी ने भारत के अतीतकालीन उत्कर्ष का अंकन और वर्तमान विषमता की उसमें तुलना करना ही अपना एकमात्र धर्म नहीं समझा था। उनकी सजग राष्ट्रीय चेतना ने पतन के कारणों की खोज कर उसे निश्चित रूप प्रदान किया है। उनके मतानुसार हमारी सांस्कृतिक अवनति का प्रमुख कारण है—चारित्रिक पतन। उनके अनुसार आज हम आध्यात्मिकता, नैतिकता तथा अध्यवसाय के उन विशेष गुणों से शून्य हैं जो हमारे पूर्वजों की बहुमुखी उन्नति का मूल कारण था जिसके द्वारा उन्होंने समस्त विश्व में अपनी कीर्ति ध्वजा फहराई थी —

वह गौरव वह मान महत्व वह अमरत्व, सत्वमय सत्व
सबसे ऊपर चारु चरित्र पवित्रता का जीवित चित्र
वह साधन वह अध्यवसाय, नहीं रहा हम में अब हाय !
इसीलिये अपना यह ह्रास चारों ओर त्रास ही त्रास ॥[1]

गुप्त जी ने अतीतकालीन उत्कर्ष के प्रभावोत्पादक वर्णन द्वारा भारतवासियों को उनकी वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है। इसके अतिरिक्त पूर्वजों के कीर्ति गान में उन्होंने आशामय भविष्य की भी कल्पना की है।[2] भारतवासियों को हीन भावना से मुक्त कर स्वतन्त्रता प्राप्ति के मार्ग का प्रदर्शन भी किया है। काव्य द्वारा कर्मण्यता का संदेश दिया है —

हे अपार हिन्दू संसार तेरा एक एक तिथि-वार
रखता है सौ सौ इतिहास उद्यत हो तू मत हो उदास ॥[3]

ठाकुर गोपालशरणसिंह का तुलनात्मक विवेचन अधिक भावात्मक है। उनकी संवेदनशीलता में पीड़ा अथवा वेदना की मात्रा अधिक है। इसी कारण उनकी विचारशक्ति थक जाती है। उनकी अतीतोत्कर्ष से वर्तमान अपकर्ष की तुलना कहीं कहीं ध्वंसात्मक होती है उन्हें राष्ट्रीय कल्याण का उपाय नहीं सूझता।[4] ठाकुर गोपालशरण सिंह जी ने भारत के पतन अथवा अवनति का कारण उसके शोषण में

१—मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० २४-२५
२—वही पृ० ५८
३—वही पृ० ७६
४—ठाकुर गोपालशरणसिंह संचिता पृ० ६२

भोगा है।[1]

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के हृदय में तत्कालीन पराधीनता का अभिशाप कंटक-सा चुभता है। अतीत गौरव की स्मृति में वर्तमान की पीड़ा बढ़ती जाती है। इनके अतीत गौरव के सुखद एवं मनोहारी दृश्य आत्मसम्मान तथा स्वाभिमान की भावना को जिस तीव्रता से संवर्द्धित करते हैं उसी मात्रा में अतीत की तुलना में वर्तमान की विभीषिका उसके करुण चित्र हृदय को असह्य पीड़ा अथवा वेदना से भर देते हैं। 'क्या रहे और हो गये अब क्या'[2] में कविहृदय की मार्मिक वेदना सजल तथा सजग हो उठी है। श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा ठाकुर गोपालशरणसिंह की भांति श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भी भारतीयों की वर्तमान दुरवस्था के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य व्यक्त किया है। उनकी दृष्टि में भारतीयों की क्षीण शक्ति दीनता हीनता का कारण फूट, बैर आदि मानव अहितकारी भाव हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अतीत की तुलना में वर्तमान भारत की दुरवस्था का मूल कारण विदेशी साम्राज्य की अधीनता में ढूंढा था—[3]

जहां थे साम्यवाद के सिद्ध जहां का था स्वतन्त्रता मन्त्र
वहन कर पराधीनता-वृत्ति वहां का जन जन है परतन्त्र॥[4]

अग्रज भारतीयों की हीन भावना के मूल कारण हैं। हरिऔध जी की सी स्पष्टवादिता तथा निर्भीकता श्री मैथिलीशरण गुप्त अथवा ठाकुर गोपालशरण सिंह जी में नहीं मिलती। इसका कदाचित् यह भी कारण था कि विदेशी साम्राज्यवाद के प्रति उनकी अहिंसात्मक भावना अत्यधिक तीव्र थी। गांधीवादी विचारधारा की सहिष्णुता, अहिंसा तथा हृदयपरिवर्तन के सिद्धान्तों से वे सहमत नहीं थे।

पंडित रामचरित उपाध्याय ने अतीत के भारत व वर्तमान की तुलना एक विशेष उद्देश्य से की थी। उनके ऊपर आर्यसमाजी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि वे हिन्दू जाति और धर्म के विशेष पोषक थे। इसी कारण इस तुलनात्मक विवेचन में उपाध्याय जी को हिन्दुओं का धार्मिक पतन, जाति-पांति से विश्वास उठना, आचरण हीनता, तिलक आदि न धारण करना असह्य था। वे पुनः वैदिक धर्म एवं ऋषि मुनियों के आदर्शों की प्रतिष्ठा द्वारा भारत का पुनर्निर्माण करना चाहते थे। श्री उपाध्याय जी की राष्ट्रीयता में हिन्दू जातीयता की भावना की प्रमुखता थी इसी कारण उन्होंने कहा था —[5]

१—ठाकुर गोपालशरण सिंह सचिता पृ० १११
२—अयोध्यासिंह उपाध्याय चुभते चौपदे पृ० ३१
३—अयोध्यासिंह उपाध्याय कल्पलता पृ० ३६
४—अयोध्यासिंह उपाध्याय चुभते चौपदे पृ० २३
५—पंडित रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ७

हिन्दू हो पर हिन्दूपन का कुछ भी तुम्हें न रहता ध्यान
धन्य ! बनाते हो भारत को मानो काला इंगलिस्तान ॥[1]

श्री उपाध्याय जी ने भारत की अवनति का कारण पश्चिमी सभ्यता तथा संस्कृति का दूषित प्रभाव माना था। इनके मत में प्राचीन वैदिक संस्कृति की स्थापना द्वारा ही भारत का उद्धार हो सकता है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने भी भारत की पतित अवस्था का प्रमुख कारण देश की विपन्न आर्थिक व्यवस्था अथवा शोषण में खोजा था। लक्ष्मी का अपहरण ही दुर्दशा का मूल कारण था—

हो असहाय भटकते फिरते बनवासी-से आज सखी।
सीता-लक्ष्मी हरी किसी ने गई हमारी लाज सखी ॥[2]

श्री निरालाजी की अतीत गौरव की अनुभूति का प्रकाशन भी वर्तमान का खंडहर है। उनकी अनुभूति में मार्मिकता की अपेक्षा तीव्रता एवं ओज की मात्रा अधिक है जिसमें व्यंग का भी कुछ पुट मिल गया है—

खंडहर खड़े हो तुम आज भी ?
अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज।
विस्मृति की नींद से जगाते हो क्यों हमें—
करुणाकर करुणामय गीत सदा गाते हुए ?
पवन-संचरण के साथ
परिमल पराग-सम अतीत की विभूति रज—
आशीर्वाद पुरुष पुरातन का
भेजते सब देशों में
क्या है उद्देश्य तव ?
बन्धन विहीन भव।
ढीले करते हो भव बन्धन नर-नारियों के ?
अथवा
हो मलते कलेजा पड़े जरा जीर्ण
निर्निमेष नयनों से
बाट जोहते हो तुम मृत्यु की
अपनी सन्तानों से बूँद भर पानी को तरसते हुए ?[3]

अतीत गौरव के वर्णन में वर्तमान का अभाव ध्वनित है—

नाहीं वीणान-आज स्तब्ध है हो रहा

१—पंडित रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ७
२—श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ६२
३—सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अनामिका खंडहर के प्रति पृ० २६

दुपहर को पार्श्व में
उठता है झिल्ली रव
बोलते हैं स्यार रात यमुना कछार में
लीन हो गया है रव
शाही अगनाओं का
निस्तब्ध मीनार
मौन हैं मकबरे—
भय में आशा को जहां मिलते थे समाचार
टपक पड़ता था जहां आंसुओं में सच्चा प्यार ॥[1]

निराला की राष्ट्रीय भावना जातीयता अथवा धार्मिकता से परे थी। इसी कारण मुस्लिम इतिहास के प्रतीक शाही दीवाने आम मीनारें आदि भी राष्ट्रीय गौरव के चिह्न हैं जिनकी सुहाग गाथा आज भी यमुना की ध्वनि में गूंज रही है। निराला द्वारा प्रदत्त यह तुलनात्मक विवेचन देश में बसने वाली हिन्दू एवं मुसलमान दोनों ही जातियों में वर्तमान के प्रति तीव्र विक्षोभ की भावना के विकास में नितान्त समर्थ है।

रामधारीसिंह दिनकर का तुलनात्मक विवेचन भी अधिक ऐतिहासिक कल्पनात्मक एवं मार्मिक भावुकता से संयुक्त है। अपने इतिहास से विशेष मोह होने के कारण कवि ने वर्तमान विभीषिका की चित्रपटी पर अतीत के वैभव का काव्यात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। दिनकर में इतिहास अपनी सम्पूर्ण वेदनाओं को लेकर बोलता है।[2] इस वेदना का कारण है—कवि का अपना वर्तमान जब कि देश अनेक प्रकार की दुरवस्था से ग्रस्त था। इतिहास के बल पर वर्तमान की पीड़ा को अधिक प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत किया है —

सुने सुख सुहाग कला है उदय और फिर अस्त, सखी।
देख आज निज युवराजों को भिक्षाटन में व्यस्त सखी।
एक एक कर गिरे मुकुट विकसित वन भस्मीभूत हुआ
तेरे सम्मुख महासिन्धु सूखा सैकत उद्भूत हुआ—[3]

कवि को वर्तमान की असीम पीड़ा सहना अत्यधिक दुस्साध्य था इसलिए उसने अतीत की सुखद स्मृति में रत रहना श्रेयस्कर समझा था। प्रियदर्शन इतिहास को काव्य के रूप में ध्वनित कर पुनः अतीत-गौरव को वर्तमान में प्रत्यक्ष करने की

---

१ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अनामिका दिल्ली पृ० १
२ प्रो० कामेश्वर शर्मा दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि पृ० २१
३ रामधारीसिंह दिनकर इतिहास के आंसू पृ० ३६
४ वही पृ०

कवि ने आकांक्षा की थी।[1] कवि को पूर्ण आशा थी कि अतीत गौरव का वर्तमान दुर्दशा की तुलना का चित्र राष्ट्र में नव जागृति लाएगी—

अंकित है इतिहास पत्थरों पर जिनके अभियानों का
चरण चरण पर चिह्न यहाँ मिलता जिनके बलिदानों का
गुंजित जिनके विजय-नाद से हवा आज भी बोल रही,
जिनके पदाघात से कम्पित धरा अभी तक डोल रही।
कह दो उनसे जगा कि उनकी ध्वजा धूल में सोती है
सिंहासन है शून्य सिद्धि उनकी विधवा सी रोती है।

कवि की सहृदयता ने दिल्लीवासियों पर ऐसा जादू करा था कि वे अपनी सुध बुध खो बैठे थे। उन्होंने दिनकर ने दिल्ली के पूर्व-गौरव मुस्लिम सम्राटों के उत्कर्ष और शान और ऐतिहासिक स्थानों की स्मृति दिला कर दिल्लीवासियों को उनके पतन की ओर से सचेत किया है।[2] दिनकर के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है उनकी अभिव्यंजना शैली। भाषा का एक-एक शब्द रस एवं दर्द जन मानस को स्पर्श करने वाला है। उनकी राष्ट्रीय भावना ने इतिहास के अतीत-गौरव का साक्षात्कार ही नहीं किया है वरन् सच्चे अर्थों में मूर्त एवं मुखर किया है। विगत वैभव की चित्रपटी पर वर्तमान के फीके रंग स्पष्टतर प्रतीत होते हैं। दिनकर ने सम्पूर्ण इतिहास का स्पर्श किया है अर्थात् हिन्दू-काल एवं मुस्लिम-काल दोनों को समान रूप में अपनाया है।

अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का सर्वाधिक उपयुक्त साधन काव्य था। नाटक अथवा कथा-साहित्य की अपेक्षा काव्य में अधिक सरलता के साथ तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। राष्ट्रवाद के इस पक्ष विशेष के निरूपण में भी कवियों ने अपनी प्रतिभा एवं कौशल का परिचय दिया है।

हिंदी नाट्य-साहित्य में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

हिन्दी-नाट्य-साहित्य में भी ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से यह कार्य संपन्न किया गया है। वर्तमान की विभीषिका से ऊबकर नाटककारों ने अतीत के उज्ज्वल पक्ष अर्थात् भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के उत्कृष्ट रूप का गौरवयुक्त शब्दों में वर्णन किया था। उनकी दृष्टि अतीत में खो नहीं गई थी प्रत्युत अतीत गौरव का अनुभव करती हुई वर्तमान पर आकर टिक गई थी। अतीत के सुन्दर स्वप्नों में वे वर्तमान को भूले नहीं थे। उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक में वर्तमान ध्वनित है। बद्रीनाथ भट्ट, चतुरसेन शास्त्री, जयशंकर प्रसाद, उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ अश्क के ऐतिहासिक नाटकों का भी यही उद्देश्य रहा है कि अतीत के उत्कर्ष

१—रामधारीसिंह दिनकर : इतिहास के आँसू पृ० ३
२—वही पृ० ३०
३—रामधारीसिंह दिनकर : दिल्ली पृ० ७

चित्रों द्वारा वर्तमान जीवन की कुण्ठा तथा हीन भावना को मिटा कर देश का सांस्कृतिक उत्थान किया जाये प्राचीन संस्कृति के उच्चादर्शों के ज्ञान द्वारा देशवासियों को अपने युग की दुर्दशा ग्रस्त राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों के प्रति विक्षुब्ध करें।

हिन्दी के कतिपय नाटकों में प्रतीकात्मक शैली में भी अतीत गौरव एवं वर्तमान दुर्दशा के चित्रों को प्रस्तुत किया गया है। उग्र जी के महात्मा ईसा नाटक में भारत के आध्यात्मिक नैतिक उत्कर्ष का वर्णन अतीतकालीन है लेकिन ईसा के अपने देश की दुर्दशाग्रस्त स्थिति वस्तुतः लेखक के अपने युग की स्थिति है। एक ही नाटक में एक कथा के माध्यम से एक ही काल की कथा लेकर उग्र जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर पाठकों के सम्मुख अतीत एवं वर्तमान के दो विरोधी चित्र रख दिए हैं।

कुछ नाटकों में स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप से अतीत के साथ वर्तमान की तुलना पात्रों द्वारा करवाई गई है उदाहरणतया महाराणा प्रतापसिंह व देशोद्धार नाटक' में अतीत गौरव से वर्तमान की तुलना करते हुए लेखक ने कहलाया है।—

एक दिन वह था कि भारत विश्व में बलवान था।
सारे देशों का यही सिरताज हिन्दोस्तान था॥
आज निबल हो गई उसकी सभी संतान हैं।
न वह शक्ति गौरव है न उनमें अब जान है॥

तुलना के साथ ही लेखक ने वर्तमान दुर्दशा के कारणों पर भी प्रकाश डाला है। देशवासियों के पतन का मूल कारण है कि वे अपने अतीत गौरव को भूल गए हैं— हमारा क्या कर्तव्य है इसका ज्ञान जब जाता रहा संगठन का मूलमंत्र जब विस्मृत हुआ तो देश भी दूसरों के हाथ में जाता रहा। साहित्यिक दृष्टि से इस नाटक का अधिक मूल्य नहीं है लेकिन राष्ट्रीय भावना के उद्रेक की दृष्टि से इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

अधिकांश नाटकों में अतीत एवं वर्तमान की तुलना ध्वनित मिलती है लेकिन प्रत्यक्ष तुलनात्मक वर्णनों की न्यूनता है।

कथा साहित्य में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति

काव्य एवं नाटकों की भांति कथा साहित्य में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति का प्रत्यक्ष वर्णन केवल कुछ स्थलों पर कथोपकथन द्वारा अथवा स्वयं कथाकार के कथन में सम्भव होता है। प्रायः अतीतकालीन उत्कृष्ट चित्रों को सम्मुख रखकर ही उपन्यासकार अथवा कहानीकार अप्रत्यक्ष रूप से पाठक को अतीत के सुखद जीवन से वर्तमान परिस्थिति की तुलना करने के लिए बाध्य करता है। अतीतोत्कर्ष के प्रत्यक्ष वर्णन से उसके इस सत्य की ध्वनि मुखरित होती रहती है। कभी-कभी उपन्यास अथवा कहानियों में ऐतिहासिक कथानकों द्वारा वर्तमान सम

समाओं तथा दुर्व्यवस्था के अनेक रूपों को भी प्रतिध्वनित किया जाता है। हिन्दी में ऐतिहासिक उपन्यासों की संख्या अति सीमित होने पर भी श्री वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यास जैसे गढ़ कुण्डार, प्रेमचन्द प्रसाद, मुद्राराक्षस तथा अन्य ऐतिहासिक कहानी कारों की रचनाओं में अतीत की तुलना में वर्तमान दुर्दशा की अनुभूति ध्वनित हुई है।

प्रेमचन्द जी के कर्मभूमि उपन्यास में कुछ स्थलों पर अतीत से तत्कालीन भारत की दुर्दशा का उल्लेख मिलता है जैसे अमर वर्तमान शिक्षा पद्धति से अतीत के आदर्श की तुलना करता है—तब अमर को उस अतीत की याद आती जब हमारे गुरुजन झोंपड़ों में रहते थे, स्वार्थ से अलग, लोभ से दूर, सात्विक जीवन के आदर्श निष्काम सेवा के उपासक। वह राष्ट्र से कम से कम लेकर अधिक से अधिक देते थे। वह वास्तव में देवता थे। और एक यह अध्यापक हैं जो किसी अंश में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य कर्मचारी से पीछे नहीं। इनमें भी वही दम्भ है वही धन मद वही अधिकार मद। हमारे *विद्यालय क्या हैं राज्य के विभाग हैं* और हमारे अध्यापक उसी राज्य के अंग हैं। ये खुद अन्धकार में पड़े हैं प्रकाश क्या फैलायेंगे।[1] इसी प्रकार अमर वर्तमान युग में बुद्धिवाद से अतीत नारियों के वीरत्व की तुलना भी करता है।[2] भारत की वीर नारियों का वर्णन करते हुए यूरोप के आदर्श से भी भी उनकी तुलनात्मक समीक्षा करता है।[3]

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की एकाध कहानियों में वर्तमान में अतीत गौरव का वर्णन मिलता है। 'तांगेवाला' कहानी में तांगे वाला कहता है—'हां, हुजूर तांत्या टोपे नदी के पार जाना चाहता था। फिरंगियों की सेना ने उसे चारों तरफ से घेर लिया था। फिर भी हुजूर वह इतना तेज इतना फुर्तीला था कि चार पाच बड़े-बड़े फिरंगी अफसरों के सामने से निकल गया। अपने सेना समेत और उसका कोई कुछ भी न कर सका।'[4] आचार्य चतुरसेन शास्त्री ने 'स्वदेश' नामक गद्य काव्य की स्वदेश की कहानी में अतीत गौरव की पृष्ठभूमि में दुर्दशा का चित्र खींचा है। अतीत की स्मृति में लेखक की व्यथा स्पष्ट है—क्या कहा ? पूर्व स्मृति सर्प की तरह डसती है बिच्छू की तरह डंक मारती है बिजली की तरह नाशकारी है और मृत्यु की तरह भयानक है। हाय ! कहां गया वह भूत कहां गया वह अतीत।

जिन्होंने तुम्हारा यौवन देखा है वे कहते हैं कि तुम अगाध समुद्र के फेना की उज्ज्वल करधनी पहन कर खड़े होते थे तो संसार की जातियां तुम्हारे बांकपन

१—प्रेमचन्द - कर्मभूमि पृ० १०४
२—वही पृ० १७३
३—वही पृ० १७४
४—सुभद्राकुमारी चौहान सीधे-सादे चित्र पृ० ३०

पर लट्टू हो जाती थी।[1] इसी प्रकार भारत की प्राचीन शक्ति और वभव से भी अपने युग की पतित अवस्था का अत्यन्त करुण शब्दों म लेखक ने वर्णन किया है।[2]

कथा-साहित्य म भी तुलनात्मक विवरण यत्र-तत्र अनेक रूपों म बिखरे मिल जाते हैं।

अतीत की तुलना म वतमान ददशा की अनुभूति की साहित्य म अभिव्यक्ति से राष्ट्रीय जागरण को उत्तजना मिली थी। देशवासियों के सम्मुख अतीत एव वतमान के दो विरोधी चित्र प्रस्तुत कर साहित्यकारो ने वतमान दुददशा-ग्रस्त परिस्थिति के प्रति विद्रोह को तीव्र करने म सहायता पहुचाई। निम्न गति देशवासियों को जाग्रत करने का यह अत्यधिक मनोवज्ञानिक उपचार था। जो काय राष्ट्रीय नेता अपने उपदेशो द्वारा कर रहे थे वही साहित्यकारो ने कलात्मकता के आग्रह के साथ लेखनी द्वारा किया। राष्ट्रवाद के विकास म उनका यह सहयोग महत्व रखता है।

१—चतुरसेन शास्त्री मेरी खाल की हाय पृ ६

२—वही पृ० ७

६

राष्ट्रवाद का रागात्मक पक्ष—देशभक्ति

देशभक्ति राष्ट्रवाद का आवश्यक तत्व है क्योंकि एक देश अथवा राष्ट्र की निश्चित सीमारेखा में ही राष्ट्रवाद का पोषण होता है। राष्ट्रवाद की मान्य परिभाषाओं के विवेचन एवं स्वरूप में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि भौगोलिक एकता राष्ट्रवाद का मूल बिन्दु है। डा० आबिद हुसैन ने इस विषय में लिखा है—"अत हम उन परिस्थितियों का अध्ययन करें जिनसे गुजर कर राष्ट्रों का निर्माण हुआ है और होता है तो अधिक यही कहा जा सकता है कि भौगोलिक एकता और सामान्य सांस्कृतिक दृष्टिकोण की एकता ही राष्ट्रीयता की आवश्यकता और पूर्व-शर्तें हैं। जाति, धर्म और भाषा की एकता या समान इतिहास महत्वपूर्ण जरूर है पर अनिवार्य नहीं।"[1]

भारत देश को 'माता भूमि' के रूप में देखा गया है। वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'माता भूमि' में लिखा है—"माता भूमि नए युग की देवता है। सुन्दर सकल्प सम्पत्तु श्रम और त्याग भाव जिसके लिए समर्पित हो वही देवता है।"[2] मातृभूमि के दो रूप हैं, एक उसका भौतिक रूप और दूसरा दूसरा उसका आन्तरिक रूप या मानस जो वास्तव में उसकी सांस्कृतिक मूर्ति है। हिन्दी साहित्य में मातृभूमि भारत देश के दोनों ही पक्षों का सफल चित्रण किया गया है। अतीत-गौरव—अर्थात देश का सांस्कृतिक पक्ष मत है जिस पर विचार किया जा चुका है। इस प्रकरण में देश के भौतिक पक्ष अर्थात् भौगोलिक-पक्ष के प्रति साहित्य की भक्ति भावना का अनुशीलन अपेक्षित है।

हिन्दी-कविता में देशभक्ति की भावना

मातृभूमि के प्रति भक्ति में उसके पर्वतों नदियों पशु-पक्षी, ऋतुओं सभी को एक विशेष गौरव की दृष्टि से देखा जाता है। वासुदेवशरण जी ने लिखा है—

---

१ डा० आबिद हुसैन राष्ट्रीय संस्कृति पृ ८

२ वासुदेवशरण अग्रवाल माता भूमि पृ० १

जिनके हृदय म मातृ भूमि के प्रति भक्ति नही उनके लिये पथ्वी मिट्टी का ढेला है।[1] देशभक्ति क उमय म देश की प्राकृतिक विभूति अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व विकसित कर देश की महानता का प्रतीक हो जाती है। भारत की भौगोलिक एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए उत्तर म उन्नत हिमशृंग हिमालय है और तीन ओर समुद्र। वस्तुत हिमालय देवभूमि है भारत माता का हिम-नग-जटित मुकुट है भारत का उन्नत ललाट है और देश का सजग प्रहरी है।

द्विवेदी युग स देश भक्ति-काव्य की अजस्र धारा प्रवाहित करत हुए श्रीधर पाठक ने इस युग म भी देश के प्रकृति सौन्दय की महत्ता और भौगोलिक एकता प्रदान करने वाले तत्वो का उल्लेख करते हुए लिखा है —[2]

हिमनगविभूषितभालां सुरधुनिजलधौतजानपदजालाम
प्रकृति विभूतिविशालां कव रवां त्रिकनकोटिजनपालाम
अभिनवजीवनपूर्णां परहितपूर्णां परात्परिकीर्णाम
साधितदीनोद्धरणां बाधितसर्वाघि सघ—ससरणाम।[3]

पाठक जी ने भारतभूमि को वलावय-वदनीय माना है। पुण्य मातृ धर भारत वसुधरा आदि उनकी प्रसिद्ध देशभक्ति पूर्ण कविता है। हिन्दुस्तान के जगल नदिया आसमान मुसलमान ईसाई बौद्ध जैन पारसी मन्दिर मूरत तीर्थ मस्जिद मक्का प्रयाग हज हरद्वार सबस व दिल स प्यार करत थे। उनकी देशभक्ति साम्प्रदायिकता से मुक्त नरमदली राष्ट्रीय नेताओ की भक्ति थी जिसम ब्रिटेन स किसी प्रकार का विद्वेष नही था जो विश्व प्रेम तथा सेवा भावना स पूर्ण थी।[4]

मथिलीशरण गुप्त न भी देश प्रेम देश की भौगोलिक एकता की अभिव्यजक कविताओ की रचना की है। भारतवष[5] कविता म भारत भूमि के उज्ज्वल भाग्य सम उन्नत मस्तक हिमालय सरयू-सिन्धु ब्रज वसीवट आदि का उल्लेख मिलता है। देवताओ की पवित्र भूमि भारत की सभ्यता शुचिता धार्मिकता आदि का उल्लेख करत हुए कवि ने इस देश को कम भूमि एव धम भूमि माना है। मेरा देश[6] 'मातृ भूमि'[7] कविताओ म भी भारत भूमि की भौगोलिक स्थिति प्राकृतिक सौन्दय तथा आध्यात्मिक शक्ति का वणन मिलता है—

---

१ वासुदेवशरण अग्रवाल माता भूमि पृ० १८
२ श्रीधर पाठक भारत-गीत पृ० ६३
३ वही पृ० ६६
४ श्रीधर पाठक भारत-गीत पृ० १२३
५ मथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत पृ० ११ १२
६ वही पृ० १२
७ वही पृ० १३२

मस्तक में रखता हूँ ज्ञान
भक्तिपूर्ण मानस में ध्यान।
करके तू प्रभु कर्म विधान
हूँ सत चित्—आनन्द निधान॥
मेटे तूने तीनों क्लेश
मेरे भारत ! तेरे वेश।[1]

गुप्त जी की देशभक्ति पूर्णतया धार्मिकता के रंग में रंगी हुई है। वे भारत माता के सुन्दर स्वरूप का वर्णन करते हुए उसे स्वर्ग सहोदर[2] मानते हैं। पर भारत के सम भारत है।[3] अन्य देश उसकी समता के अधिकारी नहीं हैं। आध्यात्मिकता के अतिरिक्त भी कवि ने जन्मभूमि भारत को सर्वेश की मूर्ति और ब्रह्मरूप भी कहा है।[4] मातृभूमि के गुणों का विशद् रूप अंकित करते हुए गुप्त जी ने लिखा है—

क्षमामयी, विश्वपालिनी तू प्रेममयी है,
सुधामयी वात्सल्यमयी, तू प्रेममयी है
विभवशालिनी विश्वपालिनी दुखहर्त्री है
भयनिवारिणी शान्तिकारिणी सुखकर्त्री है।
हे शरणदायिनी देवि, तू करती सबका त्राण है।
हे मातभूमि सन्तान हम तू जननी तू प्राण है॥

मातृभूमि के प्रति कवि की अनन्य प्रेम भावना सांस्कृतिक आवरण में आवेष्ठित है—

जिस पृथ्वी में मिले हमारे पूर्वज प्यारे,
उससे हे भगवान ! कभी हम रहें न न्यारे॥[5]

साकेत महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने वनगमन के अवसर पर राम द्वारा जन्मभूमि प्रेम के महान् भाव का प्रदर्शन किया है। राम कहते हैं—

जन्मभूमि ले प्रणति और प्रस्थान दे
हमको गौरव गर्व तथा निज मान दे।
तेरे कीर्ति-स्तम्भ सौध मन्दिर यथा—
रहें हमारे शीश समुन्नत सर्वथा॥[6]

---

१ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश संगीत पृ० १३
२ वही, पृ० १६
३ वही, पृ० २४
४ वही, पृ० २६
५ वही, पृ० २८
६ मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ० १३३

प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व अपने देश की विशेषताओं को सूक्ष्म रूप से सवष्ठित किय रहता है। राम द्वारा गुप्त जी ने कहलाया है—

हम म तेरे व्याप्त विमल जो सत्व हैं
दया प्रम, नय विनय, शील शुभ सत्व हैं
उन सबका उपयोग हमारे साथ है—
सूक्ष्म रूप में सभी कहीं तु साथ ह।
तेरा स्वच्छ समीर हमारे श्वास मे
मानस मे जल और अनल उच्छवास मे।[1]

कवि क अपने युग की देशभक्ति का प्रबल उच्छवास राम के माध्यम से अभिव्यक्ति हुआ है।

माखनलाल चतुर्वेदी जयशकरप्रसाद सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला रामधारी सिंह दिनकर सोहनलाल द्विवेदी ने भारत की भौगोलिक एकता के सुन्दर एव भावा त्मक चित्र खीचे हैं जिनम देश का मानवीकरण भी किया गया है। माखनलाल चतुर्वेदी ने उत्तर म हिमालय एव तीन ओर से सागर द्वारा रक्षित भारत देश जिसम हिन्दू मुस्लिम सिक्ख धर्मावलम्बी बसत हैं की पराधीनता स क्षुब्ध होकर विषा दात्मक स्वरो म कहा है—

हो मुकुट हिमालय पहनाता
सागर, जिसके पद धुलवाता
यह बधा बेडियों म मन्दिर
मस्जिद गुरुद्वारा मेरा ह।
क्या कहा कि यह घर मेरा है ?[2]

माखनलाल चतुर्वेदी ने भारत देश का मानवीकरण करत हुए मुझको कहत हैं। माता काव्य म आलकारिक भाषा म माता भूमि की भावात्मक अभिव्यक्ति की है। देशभक्ति से वात्सल्यभाव की सुन्दर अभिव्यजना हुई है।[3]

जयशकर प्रसाद के नाटको म देश की भौगोलिक एकता के परिचायक अनेक गीत मिलते हैं। कार्नेलिया द्वारा भारत देश की प्राकृतिक सुषमा एव महानता का गीत गाया गया है—

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गभ विभा पर—नाच रही तरुशिखा मनोहर।

---

१ मथिलीशरण गुप्त साकेत १३३
२ माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी पृ० १४४
३ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ८६

छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा॥
है ।[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने भारती वन्दना में देश की भौगोलिक सीमा प्राकृतिक सुषमा सम्पन्नता आध्यात्मिकता आदि विशेषताओं का उल्लेख, देश को पवित्र मूर्ति के रूप में देखते हुए किया है—

भारति जय विजयकरे
कनक-शस्य—कमल धरे।
लंका पदतल—शतदल
गर्जितोर्मि सागर जल
धोता शुचि चरण—युगल
स्तव कर बहु अर्थ भरे।
तरु-तृण-वन-लता-वसन
अंचल में खचित सुमन
गंगा ज्योतिर्जल-कण
धवल-धार हार गले।
मुकुट शुभ्र हिम-तुषार
प्राण प्रणव ओंकार
ध्वनित दिशायें उदार
शतमुख शतरव मुखरे।[2] (सन् १९२८ ई०)

सोहनलाल द्विवेदी की देशभक्ति का प्रमुख लक्ष्य है वंदनी भारत माता को बंधन विमुक्त करने के लिये शीश दान देना—

वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो
वंदिनी माँ को न भूलो
राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रत्नकण में एक कण मेरा मिला लो।
जब हृदय का तार बोले,
शृंखला के बन्द खोले,
हो जहाँ बलि शीश अगणित एक शिर मेरा मिला लो।[3]

हिन्दी कविता में हिमालय और 'गंगा' 'यमुना' नदियों का विशेष रूप से वर्णन किया है। निःसन्देह भारत में हिमालय का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। युग युग से भारत के उत्तर में अपना मस्तक उन्नत किये इन हिममण्डित शृंग-श्रेणियों

---

१ जयशंकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ० ५७
२ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपरा पृ० १
३ सोहनलाल द्विवेदी भैरवी पृ० १

ने केवल भारत की सीमारेखा खींचकर भारत की रक्षा ही नहीं की है अपितु देश को निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरित भी किया है। श्रीधर पाठक ने हिमनगविभूषित माता और माखनलाल चतुर्वेदी ने हो मुकुट हिमालय पहनाता कह कर हिमालय को भारत का गौरव माना था। जयशंकर प्रसाद के चन्द्रगुप्त नाटक में अलका गाती है —

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती —
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती
अमर्त्य वीरपुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो
प्रशस्त पुण्य पथ है—बढ़े चलो बढ़े चलो ॥

प्रसाद जी ने हिमालय की उत्तुंग शृंग मालाओं से स्वयं प्रबुद्ध शुद्ध भारती द्वारा स्वतन्त्रता का सन्देश दिलाया है। यह पराधीन देशवासियों के लिए जागरण गीत है। रामधारीसिंह दिनकर की प्रसिद्ध कविता हिमालय के प्रति में कवि ने पर्वतीय कर्पूरि जड़ अचेतन हिमालय में मानवीय भावना का आरोपण कर अनन्य आत्मीय सम्बन्ध जोड़ा है। शैलपति हिमालय की उदारता महानता वीरता का वर्णन कर कवि देश की वर्तमान स्थिति से विक्षुब्ध हो पूछता है कि विदेशी शासन से आक्रान्त भारत की दुर्दशा देखकर वह मौन क्यों है। इस हिमालय से सम्बन्धित कविता में स्वतन्त्रता की पुकार और अतीत गौरव का स्वर अत्यधिक तीव्र है।[1]

गंगा और यमुना देश की दो पवित्रतम नदियाँ हैं। हिन्दीप्रदेश में बहने वाली इन दोनों ही नदियों ने हिन्दी कवियों की देशभक्ति की अभिव्यक्ति में विशेष योग दिया है। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत महाकाव्य में गंगा के प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना समर्पित की है। यह भक्ति धार्मिकता और राष्ट्रीयता का मिश्रित रूप है।

जय गंगे आनंद तरंगे कलरवे
अमल अचले पुण्यजले दिवसम्भवे !
सरस रहे यह भरत भूमि तुमसे सदा
हम सबको तुम एक चलाचल सम्पदा ![2]

रामधारीसिंह दिनकर ने पाटलिपुत्र की गंगा से अपने हृदय की पीड़ा भरे स्वर में अतीत गौरव की स्मृति की है। जब देश की वर्तमान व्यवस्था असह्य हो जाती है तो अत्यधिक भावावेश में कवि गंगा को सम्बोधित कर कहता है —

जिस दिन जली चिता गौरव की
जय—भेरी जब मूक हुई

१ रामधारीसिंह दिनकर हुंकार पृ० ५
२ मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ० १४५

अम्बर पत्थर हुई मैं क्यों
यदि टूट मही तो टूक हुई।

निराला जी की यमुना के प्रति में यमुना को देखकर कवि हृदय में उमड़ी अनेक गौरव संयुक्त स्मृतियों की अभिव्यक्ति है।[1] इस प्रकार गंगा यमुना हिमालय आदि को कवियों ने राष्ट्रीय जीवन का अभिन्न अंग माना है।

हिन्दी-नाटकों में देशभक्ति

जयशंकरप्रसाद जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द हरिकृष्ण प्रेमी के नाटकों में भी देशभक्ति के महत्व का प्रकाशन किया गया है। चन्द्रगुप्त नाटक में जयशंकर प्रसाद ने सिंहरण से कहलाया है— जन्मभूमि के लिए ही यह जीवन है फिर जब आप सी सुकुमारियां इसकी सेवा में कटिबद्ध हैं तब मैं पीछे कब रहूंगा।[2] इसी नाटक में प्रसाद ने देश के अणु परमाणुओं को राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण में सहयोगी ठहराया है— मेरा देश है मेरे पहाड़ हैं मेरी जातियां हैं और मेरे जंगल हैं। इस भूमि के एक एक परमाणुओं से बने हैं। फिर मैं और कहां जाऊंगी यवन।[3] विदेशी कन्या कार्नेलिया भी महान् भारतदेश की स्वर्गीय विभूति से प्रभावित होकर कहती है—'नहीं—चन्द्रगुप्त मुझे इस देश से जन्मभूमि के समान स्नेह होता जा रहा है। यहां के श्यामल कुंज घने जंगल सरिताओं की माला पहने हुए शैलश्रेणी हरी भरी वर्षा, गर्मी की चांदनी शीतकाल की धूप और भोले कृषक तथा सरल कृषक-बालिकायें बाल्यकाल की सुनी कहानियों की जीवित प्रतिमायें हैं। यह स्वप्नों का देश यह त्याग और ज्ञान का पालना यह प्रेम की रंगभूमि—भारत भूमि क्या भुलाई जा सकती है? कदापि नहीं। अन्य देश मनुष्यों की जन्मभूमि है यह भारत मानवता की जन्मभूमि है।'[4] कार्नेलिया का यह कथन प्रसाद जी की अनन्य देशभक्ति का उदाहरण है। राज्यश्री नाटक में गृहवर्मा और विदेशी यात्री सुएनच्वांग द्वारा भारत भूमि की श्रेष्ठता और महत्ता पर प्रकाश डाला गया है।[5] प्रसाद जी की लेखनी का प्रसाद पाकर देशभक्ति ऐतिहासिक पात्रों के मुख से सजीव हो गई है। अन्य देशों की तुलना में अपनी जन्म भूमि का स्थान अधिक श्रेष्ठ सिद्ध कर प्रसाद जी ने देशवासियों में स्वाभिमान, गौरव की भावना भर कर राष्ट्रवाद के विकास में अमिट सहयोग दिया है।

जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द के 'प्रताप प्रतिज्ञा' नामक ऐतिहासिक नाटक में प्रच्छन्न रूप में युग-जागृति का वर्णन मिलता है। इस नाटक में चन्द्रावत कहते

१ निराला अपरा पृ० २०१
२ जयशंकर प्रसाद चन्द्रगुप्त पृ० १२
३ वही पृ०४७
४ वही पृ० १४५
५ जयशंकर प्रसाद राज्यश्री पृ० १७ और ७१

है— आज बरसों बाद सोना मिट्टी से बाहर निकला है। देख जननी जन्मभूमि, प्यारी मा मेवाड देख! आज तेरे सपूतों म उदारता है, न्याय है सत्य है और है त्याग।[1] इस नाटक म मेवाड सम्पूर्ण भारत देश का प्रतीक है और महाराणा प्रताप देशभक्ति का मूर्त रूप। लेखक ने महाराणा प्रताप द्वारा देशभक्ति की सुन्दर एव पूर्ण व्याख्या कराई है—"शक्ति और साधन तो देशभक्ति का शरीर मात्र है। उसकी अन्तरात्मा तो हृदय का वह उज्ज्वल भाव है जो हम म उसके लिए पतगे की तरह मर मिटने का साहस भर देता है।"[2] इस मातृभूमि के प्रम म अदम्य शक्ति छिपी हुई है। चन्द्रावत अपने अल्प वयस्क पुत्र की वीर भावना को देखकर कहते हैं—धन्य हो मा धन्य हो मातृभूमि! आज तुम्हारे अन्न जल में यह शक्ति है कि इस अबोध शिशु के हृदय से भी उत्साह बनकर टपक रही है। वीरभूमि सचमुच तुम्हारे कण-कण म तेज और बच्चे बच्चे म बलिदान का भाव भरा है। मा तुम साक्षात् दुर्गा हो। ससार की रण देवता तुम्हें प्रणाम। विजय माया वन्दे! तुम भी प्रणाम करो। जिस देश म हमने जन्म लिया है यही हमारी मा है—ईश्वर से भी पूज्य और प्राणों से भी प्यारी।[3] मिलिन्दजी ने महाराणा प्रताप के चरित्र चित्रण म देशभक्ति के लिए सवस्व समपण के उच्चादर्श को रखा है।

हरिकृष्ण प्रेमी की देशभक्ति साम्प्रदायिक अथवा जातीय एकता के धागे म गुथी हुई है। महारानी कमवती कहती हैं— जब तक हम अपने व्यक्तित्व को सुख दुख और मानापमान को देश के मानापमान म निमग्न न कर देंगे तब तक उसके गौरव की रक्षा असम्भव है तब तक हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हो सकते। जिस समय देश पर विपत्ति के बादल घिरे हुए हैं बिजली कडक रही है शत्रु पैशाचिक अट्टहास कर रहे हैं उस समय पथक-पृथक व्यक्तियों जातियों और वर्गों के मानापमान और अधिकारों की चर्चा कैसी। यह घोर पाप है बाघसिंह जी! इस समय वीरों को केवल एक अधिकार याद रखना चाहिए और वह है देश पर जान न्यौछावर करना। शेष सभी पर पर्दा डाल दो, शेष सभी को पाताल म गाड दो।"[4] इसी नाटक म चान्दा मेवाड के माध्यम से भारत देश की प्राकृतिक सुषमा के सम्बन्ध म कहते हैं— कितना खुशनुमा है अपना देश महाराणा! आसमान से बातें करने वाले हरे भरे पहाड कल-कल कल-कल करते हुए नाचते कूदते जाने वाले झरने समुद्र से होड करने वाले तालाब बहिश्त के बगीचों को मात करने वाले बाग घने जगल। कुदरत ने गोया अपनी सारी दौलत यहीं बिखर दी है। यहा के सुबह जिन्दगी

१ जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा पृ० १०
२ वही पृ० ६
३ वही पृ० ४१
४ हरिकृष्ण प्रमी रक्षा-बन्धन पृ० ११
५ वही पृ० ११

के गीत गाते हुए आते हैं यहाँ की दाम हमदर्दी की तान छेड़ती हुई जाती है यहाँ की रात राहत की सेज बिछाती हुई जाती है। तभी तो आप दिन दम दूर-दूर के शाही लुटेरों का मुकाबला करना पड़ता है।[१]

इसी प्रकार प्रेमी जी ने शिवा-साधना नाटक में भी स्वदेश प्रेम के महान् व्रत का पालन शिवाजी उनकी माता जीजाबाई और गुरु रामदास के चरित्र द्वारा कराया है। जीजाबाई स्वदेश प्रेम को मनुष्य का सबसे ऊँचा कर्तव्य मानती हैं जिसके सम्मुख पति और परलोक भी नगण्य हैं। वे स्पष्ट कहती हैं—'मैं अपनी हानि सह सकती हूँ, स्वदेश की नहीं।'[२] यह समाज के अपने युग की राष्ट्रीय भावना थी। गांधीजी ने भारत के पुरुष और नारी दोनों ही में गांधी में स्वदेश की बेदी पर व्यक्तिगत सुख अर्पित करने का महान् त्याग जगा दिया था। युग की यह माँग थी कि नारी लोक परलोक से भी ऊपर स्वदेश को स्थान दे। उन्होंने भारत भूमि को वीर प्रसू भी माना है।[३]

हिन्दी-नाटकों में भारत भूमि के प्रति अभिव्यक्त देशभक्ति के अनेक रूप मिलते हैं। देशभक्ति का प्रमुख लक्ष्य है, देश को विदेशी दासता से मुक्त करना।

कथा-साहित्य में देशभक्ति की भावना

हिन्दी में अधिकांश कथा-साहित्य सामाजिक अथवा राजनीतिक समस्याओं अथवा इतिहास को दृष्टि में रख कर रचा गया है। स्वदेश के प्रति रागात्मक उद्गारों की अभिव्यक्ति के लिए इसमें अधिक सुयोग नहीं था। उपन्यासों में एकाध स्थलों पर अवश्य देश के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख मिल जाता है। कर्मभूमि उपन्यास में पर्वतीय प्रदेश के वर्णन अथवा गाँवों के चित्रण में प्रेमचन्द जी की देशभक्ति सजीव हो गई है। इनके प्रेमाश्रम कर्मभूमि गोदान आदि उपन्यासों में गाँवों में बसे भारत के यथार्थ एवं मार्मिक चित्र मिलते हैं।[४]

प्रेमचन्द जी ने देशभक्ति अथवा मातृभूमि के प्रति अनुराग की भावना से अभिप्रेरित होकर यही मेरी मातृभूमि है, कहानी रची थी।[५] इस आत्म-कथा शैली में लिखी गई कहानी में लेखक ने स्पष्ट कह दिया है कि जननी जन्मभूमि का प्यार किसी भी व्यक्ति के हृदय से मिट नहीं पाता। इसमें उस व्यक्ति की कथा है जो उच्च अभिलाषा और ऊँचे विचारों को पूर्ण करने के लिए विदेश में जा बसता है लेकिन जीवन की अन्तिम अवस्था में जन्मभूमि का प्रेम उसे भारत खींच लाता है। वह कहता है—मेरे धन था पत्नी थी, लड़के थे और जायदाद थी, मगर न मालूम

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा बन्धन पृ० १८
२ हरिकृष्ण प्रेमी शिवा-साधना पृ० २१
३ वही पृ० १४६
४ प्रेमचन्द कर्मभूमि पृ० १४१
५ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ३ पृ० ५

कथा मुझे रह रह कर मातृभूमि के टूटे फूटे झोपड़े चार छ बीघे मौरूसी जमीन और बालपन के लगोटिया यारों की याद अक्सर सताया करती। प्राय अपार प्रसन्नता और आनन्दोत्सवों के अवसर पर भी यह विचार हृदय में चुटकी लिया करता था यदि मैं अपने देश म होता ।[1] विदेशी शासन के कारण बिगड़ी हुई भारत की अवस्था देखकर क्षोभ होता है वह सोचता है कि यह तो उसका पूर्व भारत नही है। अन्त मे ग्रामवासियों, नारियों के संगीत हर हर गंगे के शब्द भारतीय धर्म और संस्कृति म उस अपनी मातृभूमि का सच्चा रूप मिलता है। आज भी प्यारे देश गंगा माता के तट और धर्म म प्रबल आकर्षण है। इसी प्रकार शाप कहानी म प्रेमचन्द जी न 'बर्लिन निवासी द्वारा भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य का उल्लेख किया है— मैंने स्विटजरलैण्ड और अमरिका के बहुप्रशंसित दृश्य देखे हैं पर उनमे यह शान्तिप्रिय शोभा कहां। मानव बुद्धि ने उनके प्राकृतिक सौन्दर्य को अपनी कृत्रिमता स कलकित कर दिया है।[2]

आचार्य चतुरसेन शास्त्री की गद्य गीत सी स्वप्न कहानी म देश का मानवीकरण करते हुए स्वदेश भक्ति देश की भौगोलिक एकता का वर्णन मिलता है।[3] चण्डीप्रसाद हृदयेश की योगिनी कहानी म देश प्रेम का अति उत्कर्षपूर्ण चित्रण मिलता है। इस कहानी मे लेखक ने नारी और पुरुष के लौकिक प्रेम का पर्यवसान देश प्रेम मे किया है। शैवालिनी का पति देशभक्ति की साधना के लिए उसे छोड़ कर चला जाता है। शैवालिनी का विरह अति तीव्र है। अन्त म पति मिलन के साथ ही उसके प्रणय की अवधि देश की सीमा तक विस्तृत हो जाती है।[4]

निष्कर्ष

हिन्दी कविता नाटक कथा-साहित्य म भारतभूमि के प्रति भक्ति के अनेक रूपों का चित्रण मिलता है जिसस राष्ट्रीय भावना के विकास को समुचित विकास प्राप्त हुआ। देश की एकता को अक्षुण्ण रखने के लिए उसके विभिन्न अंगों का पुष्ट कर समुन्नत करने के लिए साहित्य द्वारा इस प्रकार का रागात्मक वर्णन अनिवार्य था। यही एकमात्र साधन था जिसस राष्ट्रीय व्यक्तित्व को जातीयता साम्प्रदायिकता आदि अनेक प्रकार की भेदात्मक भावनाओं स मुक्त कर देश के लिए मर मिटने को प्रेरित किया जा सकता था। साहित्यकारो ने देशवासियों के सम्मुख भारत माता की शुचि एवं पवित्र मूर्ति उपस्थित कर उसकी उपासना की एक नवीन साधना प्रणाली का प्रवर्तन किया था। यह अत्यन्त खेद का विषय है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही देश को हिन्दुस्तान पाकिस्तान म विभाजित कर भारत माता की वन्दनीय मूर्ति को विकलांग कर दिया गया।

१ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ३ पृ० ६
२ वही पृ० ६४
३ आचार्य चतुरसेन शास्त्री मरी खाल की हाय पृ० ११
४ चण्डीप्रसाद हृदयेश मगल निकुंज पृ० ८३

७

राष्ट्रवाद का अभावात्मक पक्ष

दुर्दशा के अनेक रूप

भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में राष्ट्र के अभावात्मक पक्ष अथवा देश-दुर्दशा के विभिन्न रूपों के ज्ञान से भी सहायता मिलती है। हमारे राष्ट्रीय नेताओं की सतर्क एवं तीव्र दृष्टि ने देश की अवनति के मूल कारणों को अनावृत कर देशवासियों का विशेष ध्यान उनके उन्मूलन की ओर आकृष्ट किया था। देशवासियों को इस तथ्य से अवगत कराया कि जब तक राष्ट्र-संवर्द्धनात्मक अथवा विकासात्मक पुष्ट तत्वों के मार्ग से हमारी राजनीतिक पराधीनता, सामाजिक रूढ़ियाँ, धार्मिक अन्धविश्वास एवं कट्टरता तथा अर्थाभाव सम्बन्धी बाधाओं का निराकरण नहीं किया जाएगा तब तक सच्चे अर्थों में मुक्ति नहीं मिल सकती। हिन्दी साहित्यकारों ने अपने युग की राष्ट्रीय विचारधारा के इस अभावात्मक पक्ष की अभिव्यक्ति भी साहित्य के विविध रूपों तथा शैलियों में की है। अतः भारत की तत्कालीन समस्याओं, उसकी दुर्दशा के मर्मस्पर्शी चित्र एवं विभिन्न रूपों का चित्रण कुशल लेखनी द्वारा काव्य, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि में मिलता है।

दुर्दशा के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करने से पूर्व उनके कारणों का अन्वेषण भी नितान्त आवश्यक है। यदि भारतीय इतिहास पर दृष्टि डाली जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन देश दुर्दशा का प्रमुख कारण था—शताब्दियों की दासता। पराधीन रहने के कारण भारतीय जीवन की गति अवरुद्ध हो गई थी, उसका विकास रुक गया था। देशवासियों में अज्ञानता, रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास की जड़ें गहराई से जम गई थीं। देश का आध्यात्मिक—नैतिक पतन हुआ। भारत जैसा महान, विशाल एवं सुसंस्कृत देश राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक हीनता को प्राप्त हुआ। भारत की दुर्दशा सर्वांगीण थी। विधि ने पूरा विधान रच दिया था। आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक त्रयतापों से त्रस्त जनता को अपने निस्तार का मार्ग नहीं सूझ रहा था। राष्ट्र की अभावग्रस्त अवस्था का हिन्दी साहित्य में अत्यन्त सजीव भाषा में वर्णन मिलता है। दुर्दशा के विभिन्न रूप निम्न

लिखित हैं—

(१) आध्यात्मिक नैतिक पतन

(२) राजनीतिक दासता

(३) आर्थिक संकट

(४) सामाजिक दुर्दशा

(५) धार्मिक मतभेद—साम्प्रदायिकता प्रादेशिकता आदि

(६) सांस्कृतिक हीनता—शिक्षा-सम्बन्धी दोष

काव्य मे दुर्दशा के अनेक रूपों की अभिव्यक्ति

आध्यात्मिक नैतिक पतन

प्रत्येक राष्ट्र अपने धर्म-शरीर से जीवित रहता है। धर्म राष्ट्र शरीर का मेरुदण्ड है। धर्म का अर्थ सम्प्रदाय नहीं है। धर्म उन नियमों और तत्वों की संज्ञा है जिनसे समाज का शरीर खड़ा रहता है। समाज की बड़ी विस्तृत देह में धर्म प्रकाश फैलाता है। धर्म के निर्बल पड़ने से सामाजिक देह में अंधेरा छा जाता है। लोगों को अपना कर्तव्य सूझना बन्द हो जाता है। जब कभी जनता का बड़ा भाग अपने राष्ट्रीय कर्तव्य की ठीक पहचान खो बैठता है, उसी को धर्म की ग्लानि कहते हैं।[1] बीसवीं शती के आरम्भ में भारत की यही दशा थी। उसने अपनी धर्म बुद्धि को खो दिया था। वह हतबुद्धि तथा ज्ञानशून्य हो गया था। गांधीजी ने देश के इस आध्यात्मिक नैतिक पतन को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखा था। अतः उनकी राष्ट्रीयता का प्रमुख तत्व था आध्यात्मिकता तथा नैतिकता की पुनः प्रतिष्ठा।[1]

वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि गांधीजी भारतीय राजनीति के मंच पर इस ग्लानि के आरम्भ में आए। उनकी पैनी आंख ने राष्ट्र के शरीर को देखा। चतुर वैद्य की तरह उन्होंने राष्ट्र-शरीर की नाड़ी को परखा और जन-जन की व्याधि को पहचाना। वह रोग क्या था—यही कि राष्ट्र का धर्म-शरीर एकदम निर्बल निस्तेज और निस्सत्व पड़ा था। उसमें न चेतना थी और न काम करने की शक्ति। उन्होंने अनुभव किया कि इस राष्ट्र का उत्थान के लिए उसके धर्म-शरीर को फिर से बनाना होगा।

इस युग के कवियों ने क्षोभ तथा ग्लानियुक्त वाणी में देश की आध्यात्मिकता अथवा धर्मशरीर के ह्रास और नैतिक मूल्यों के ह्रास का वर्णन किया है। भारतीय आध्यात्मिकता ज्ञान कर्म तथा भक्ति तीनों को समाहित कर चलती है किन्तु इस काल में देशवासी घोर आलस्य आदि से ग्रसित हो निरुद्यमी हो गए थे। मैथिलीशरण गुप्त को भारतीयों के आध्यात्मिक पतन से अत्यधिक विषाद होता है।[3] गांधीजी के

१ वासुदेव शरण अग्रवाल माता भूमि पृ० २७०

२ वही पृ० २७१

३ मैथिलीशरणगुप्त स्वदेश संगीत पृ० ४

मद्दा उनका भी वर्णाश्रम धर्म-व्यवस्था में विश्वास है। अतः भारतीय धार्मिकता के संस्थापक ब्राह्मण वर्ग की दयनीय दशा देखकर तो वे ग्लानि से भर जाते हैं। चतुर्वण शिरोमणि ब्राह्मण वर्ग की अवनत अवस्था का वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि यह हमारा दुर्भाग्य है कि आज ब्राह्मणों में भी पूर्व तेज, वर्ण तथा ब्रह्मचर्य का अभाव हो गया है।[1] आज भारतवासी अपना आध्यात्मिक आदर्श 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' का सिद्धान्त भूल कर भाई के रक्त के प्यासे हो गए हैं—

सिद्धान्त 'सर्वखल्विदं ब्रह्म' प्रसिद्ध रहा जहाँ
हा ! बन्धु शोणित से वहाँ अब बन्धु का कर लाल है।[2]

भारत का आध्यात्मिक आदर्श केवल पर्व त्योहारों तक परिमित रह गया था। पाप के ताप से पीड़ित भारत माता उन्हीं के सहारे जीवित थी अन्यथा उसका अन्त होने में कुछ भी विलम्ब नहीं रह गया था। गुप्त जी ने विजयादशमी कविता में भारत के आध्यात्मिक नैतिक पतन का मार्मिक चित्र अंकित करते हुए कहा है—

बस तुम्हारे ही भरोसे आज भी यह जी रही
पाप पीड़ित ताप से चुपचाप आँसू पी रही।
ज्ञान, गौरव मान धन गुण शील सब कुछ खो गया
अन्त होना शेष है बस और सब कुछ हो गया।[3]

भारतीय संस्कृति के साधक गुप्त जी को यह पतन अत्यधिक कष्टकर प्रतीत होता है। उन्होंने इसका कारण चंचल मन का विक्षिप्त हो विषय विकारों में लिप्त हो जाना माना है।[4]

आध्यात्मिकता के मूलाधार तत्व 'त्याग' से देशवासी शून्य हो गए थे। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के शब्दों में—

वह जिससे बनता है त्याग, कहाँ है उर में वह अनुराग ?
त्यागियों का सुनते हैं नाम, कहाँ है त्यागभूमि में त्याग ?[5]

हरिऔध जी की राष्ट्रीयता धार्मिक सहिष्णुता की समर्थक थी, इसी कारण उन्हें हिन्दुओं में बढ़ते हुए धार्मिक ढोंग से असंतोष थी। उनके मत में आध्यात्मिक तथा नैतिक मर्यादाओं से विमुख और मनमाना होने के कारण ही हमारे देश की यह दुर्दशा हुई है कि आज राष्ट्रीय एकता के सूत्र मिटते जा रहे हैं।[6]

पंडित रामचरित उपाध्याय की कवि आत्मा भी देश के धार्मिक पतन से

---

१ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ६१
२ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश संगीत पृ० ६२
३ वही, पृ० ६६
४ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ५०
५ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध कल्पलता पृ० ४०
६ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध पद्मप्रसून पृ० ५५

दुखित हो गई थी।[1] उन्होंने इसका कारण पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के बढ़ते हुए प्रभाव में खोजा था। भारतवासी अपने देश जीवन का आध्यात्मिक लक्ष्य भूल कर दुर्व्यसनों को अपना रहे थे और चाय चुरट मद्यपान के प्रेमी हो रहे थे। उपाध्यायजी की राष्ट्रीय भावना हिन्दू राष्ट्रीय भावना थी। अतः जात-पात से विश्वास उठना, तिलक-छाया शान्ति न धारण करना उनकी हिन्दू भावना की विरोधी बात थी। उन्हें परम्परागत रीति नीति तथा वेदों में अटूट विश्वास था। आर्यसमाज के प्रभाव के कारण उन्होंने देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन में उन सभी बातों को सम्मिलित कर लिया था जो परम्परागत अथवा वेदानुकूल नहीं थी। रूपनारायण पाण्डेय ने भी देश के धार्मिक पतन का इतिवृत्तात्मक रूप में वर्णन किया है।[2]

रामनरेश त्रिपाठी ने 'पथिक' खण्ड काव्य में देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन का उल्लेख कर, उसका कारण पराधीनता तथा शासक की कुटिल नीति में खोजा है।[3]

नाथूराम शंकर शर्मा ने भारतीय पतन का इस रूप का अधिक स्पष्ट शब्दों तथा इतिवृत्तात्मक शैली में वर्णन किया है। समाज में फैले भ्रष्टाचार, व्यभिचार एवं दुराचार को अधिक यथार्थ रूप में अभिव्यक्त किया है।[5]

मैथिलीशरण गुप्त ने द्वापर में प्रच्छन्न रूप में कृष्ण कथा के आवरण में अपने युग के पतन का भी संकेत विधृता काव्य-खण्ड में दे दिया है—

नारायण मेरे नर में है
कौन नया यह प्राणी ?
रोग नहीं बीभत्स अशुचि यह
आओ अरे नहाओ।[6]

इस युग के कवियों ने आध्यात्मिक नैतिक पतन पर विक्षोभ एवं ग्लानि प्रकट की है, उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया है।

राजनीतिक दासता

भारत की दुर्दशा का प्रमुख कारण राजनीतिक दासता था। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक हीनता के मूलभूत कारण इसी में निहित थे। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अपहरण कर राष्ट्रीय जीवन के शरीर को ही नहीं उसके मानसिक गठन को भी विकृत कर दिया गया था। इस युग की कविता में पराधीनता के

१ पं० रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ७
२ रूपनारायण पांडेय पराग पृ ६
३ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ४६
४ वही, पृ० ४७
५ नाथूराम शंकर शर्मा शंकर सर्वस्व पृ० ९२
६ मैथिलीशरण गुप्त द्वापर पृ० २५

अभिशापवश उत्पन्न वेदना के अनेक रूपों का प्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न रूप में चित्रण मिलता है। अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध रामचरित उपाध्याय सियारामशरण गुप्त माखनलाल चतुर्वेदी, पंडित रामनरेश त्रिपाठी सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला रामधारीसिंह दिनकर आदि कवियों ने अंग्रेजी शासकों की कठोर दमन नीति, अत्याचार अन्याय आदि का वर्णन कर उसका विरोध किया है।

विदेशी शासक की कठोर दमन नीति ने भारतवासियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण कर उनकी प्रगति के प्रत्येक मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। इससे देशवासी अत्यधिक विक्षुब्ध हो उठे थे। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने स्पष्ट कह दिया था कि देश मन माली बहुत जी पक गया है।[1] विदेशी शासकों की कुटिल नीति उन्हें असह्य हो गई थी।

हरिऔध जी का यह स्पष्ट मत था कि भारत स्वतंत्रता के पश्चात् ही संसार के अन्य देशों के साथ दौड़ में जीत सकता है। पराधीनता का अभिशाप ही हमारी हीनावस्था का प्रमुख कारण था—

हौसले और दबदबे वाला। क्या नहीं है दबंग मन वाला॥
हम किसी को न दाब में पाते। दिल दबे कौन दब नहीं जाता॥[2]

दासता के अभिशाप के कारण भारतवासी मान, प्रतिष्ठा, प्रताप, ज्ञान आदि सभी कुछ गंवा कर क्षुधाक्षीण हो विदेशी शासकों के पदतल कुचले जा रहे थे। रामचरित उपाध्याय ने क्षुधित भारत की मलीनता का ग्लानिपूर्ण शब्दों में वर्णन किया है—

गेहूं को पैदा हम करते खाते उसे विदेशी लोग
क्षुधाक्षीण हो हम मरते हैं सहते विविध भांति के रोग।
फिर भी हमको होश न होता, हा! मारे अज्ञान के
हिन्दुस्तान हमारा ही है हम हैं हिन्दुस्तान के॥[3]

राजनीतिक पराधीनता के कारण देशवासियों पर सबसे अधिक अत्याचार निरंकुश अराजकतापूर्ण नौकरशाही द्वारा किया गया। अन्याय असत्य एवं अत्याचार पर आधारित शासन में अधिकारीगण, पुलिस तथा न्यायालयों से न्याय की आशा दुराशा मात्र थी। पंडित रामचरित उपाध्याय ने नौकरशाही के अत्याचारों का वर्णन अधिक स्पष्ट एवं निर्भीक शब्दों में किया है—

स्वार्थहेतु परन्याय नचाना, भला नहीं है नौकरशाही।
अस्त्रहीन पर शस्त्र चलाना कैसा नहीं है नौकरशाही॥

× × ×

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे पृ १४
२ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे पृ० ३१
३ पंडित रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० २२

सदा नहीं अन्याय चलेगा हम पर तेरा नौकरशाही।
कट जावेगी रात मिलेगा कभी सवेरा नौकरशाही॥
हमने तुमको अब जाना है बहुत दिनों पर नौकरशाही।
कुटिल कपट क्या टिक सकता है? विज्ञ जनों पर नौकरशाही॥[1]

नाथूराम शंकर शर्मा ने नौकरशाही की कुटिलता का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली किन्तु तीखे शब्दों में किया है। भारतीय इतिहास में नादिरशाह, तैमूर तथा चंगेज खां के नाम अत्याचारी आक्रमणकारियों में प्रसिद्ध किन्तु इनकी नृशंसता जनरल डायर से कम थी। जनरल डायर ने जलियांवाला बाग में निरपराध भारतीयों की हत्या कराई थी—

हां महमूद सगदिल डाकू उर्फ नादिर तैमूर जल्लाद।
व जालिम चंगेज सितम के ओडायर डायर से कम थे॥[2]

वियोगी हरि ने अयोग्य नरेश काव्य में भारत की राजनीतिक दुर्दशा पर ब्रज भाषा में प्रकाश डाला।[3] श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने जलियांवाला बाग में वसन्त नामक कविता में अंग्रेजी शासकों के अत्याचार का वर्णन अत्यधिक मादक एवं भावनात्मक शब्दों में किया है। अपनी संवेदना के प्रवाह में वे वसंत ऋतु की वायु की मन्द गति से बाग में जाने का आग्रह करती हैं। एक एक शब्द हृदय को बेधता-सा प्रतीत होता है—

कोमल बालक मरे यहां गोली खा-खाकर।
कलियां उनके लिए गिराना थोड़ा लाकर॥
आशाओं से भरे हृदय भी छिन्न हुए हैं।
अपने प्रिय परिवार-देश से भिन्न हुए हैं॥[4]

शासकगण स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उद्यत राष्ट्रीय वीरों के प्रयासों को तीव्रता से दमन करने में प्रवृत्त थे। राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेने वाले बच्चों अबलाओं पर जो नृशंस अत्याचार किये गये थे उन्हें देखकर स्वयं हिंसा भी लज्जित हो जाती। सियारामशरण गुप्त ने राष्ट्रीय कथा काव्य 'आत्मोत्सर्ग' में इसका वर्णन किया है जो शासकवर्ग बच्चों और अबलाओं के ऊपर भी घोड़े दौड़ा सकते थे उनकी पाशविकता का और अधिक क्या वर्णन किया जाय?[5] राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम के वीर सेनानी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी भगतसिंह को फांसी देकर विदेशी सरकार ने जनता के साथ-साथ कवि हृदय को भी आक्रोश से भर दिया था—

१ पंडित रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ३६
२ हरिशंकर शर्मा सम्पादक शंकर सर्वस्व पृ० २०७
३ वियोगी हरि वीर सतसई पृ० ७५
४ सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ८१
५ सियारामशरण गुप्त आत्मोत्सर्ग पृ० ३१

ओ निष्ठुर नौकरशाही
भगतसिंह को फांसी देकर—[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित सत्याग्रही वीरों को कारावास का कठोर दण्ड दिया गया था। जेल में किये गये अत्याचारों का वर्णन भी कवियों ने मर्म-बेधी शब्दों में किया है। रूपनारायण पांडेय ने 'कारागार'[2] कविता लिखी। माखनलाल चतुर्वेदी की अनेक कविताओं जैसे कैदी और कोकिला, 'राष्ट्रीय झण्डे की भेंट', 'राष्ट्रीय वीणा'[3] आदि में भी यही मिलता है। राष्ट्रीय वीणा में कवि ने अत्यधिक कलात्मक एवं भावात्मक शैली में भारत माता रूपी वीणा के कसे हुए तारों का विदेशी शासकों द्वारा पीटे जाने का रूपक बांधा है—

कसे हुए पीटे जाते हैं भारी शोर मचाते हैं।
हा! हा! हमें पीटने वाले जरा नहीं सकुचाते हैं।[4]

चतुर्वेदी जी ने व्यंग्योक्ति पद्धति से भी विदेशी शासकों के अत्याचार का वर्णन किया है।[5] विदेशी शासक-कंस, महात्मा गांधी-कृष्ण और जेल पवित्र कृष्ण जन्म के स्थान बन गये थे। चतुर्वेदी जी ने समस्त भारतवर्ष को कोमलतर बन्दीखाने के रूप में देखा था—

'ठाकुर' थी, अब कारागृह है
हिमगिरि की दीवार
हाय गंगा का सोत बना
गंगा-जमुना का हार
अम्ब! बंग खंभात अरब—
की लहरों की हथकड़ियां,
रामेश्वर पर पड़ी सरसे
बनों पर की कड़ियां।
कोमलतर बन्दीखाने के
तीस कोटि बन्दी हैं
हों गुलाम जीवन की
बेहोशी में मानती हैं।[7]

१ सियारामशरण गुप्त आत्मोत्सर्ग पृ० १६
२ रूपनारायण पांडेय पराग पृ० ५६
३ माखनलाल चतुर्वेदी हिमकिरीटिनी पृ० १४
४ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७७
५ वही पृ० ४८
६ वही, पृ० ४८
७ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७५

रूपनारायण पांडेय ने विदेशी शासकों द्वारा भारत में किये गये अत्याचार को अलंकारिक भाषा में लिखा है—

बु शासन पकड़े धुड़ा भारत—माँ के केश,
इस अनीति के दृश्य से क्षुब्ध हो उठा देश ॥[1]

इस युग तक प्रात प्रात विदेशी शासकों के प्रति श्रद्धा का अभाव हो गया था और कवियों ने उन्हें निर्गुण असुर, पशुबल समन्वित शासक के रूप में चित्रित किया है।

पुलिस का कोई विश्वास नहीं रह गया था और अधिकारीगण भी साम्प्रदायिक दंगों की आग लगते देख उसे बुझाने का प्रयत्न नहीं करते थे।[2] वास्तव में साम्प्रदायिकता पराधीनता का सबसे बड़ा अभिशाप था क्योंकि इस फूट डालो शासन करो की नीति पर ही उनका साम्राज्य स्थिर था। विदेशी शासकों ने जिस शिक्षा का प्रचार देश में किया था वह राष्ट्रीय उन्नति के लिए घातक थी। भारतवासी संस्कृति आदर्श व मूल्यों को छोड़ पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति में रमते जा रहे थे—

क्या ऐसी ही दुष्फलदायिनी है अब शिक्षा ?
क्या अब यह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा ?
क्या अब यह है नहीं दासता बेड़ी कसती ?
क्या न पतन के पाप पंक में है यह फसती ?
क्या यह सोम के सदन को नहीं मिलाती धूल में ?
क्या बन कर कीट नहीं बसी यह भारत हिय हित फूल में ?

भारत की आर्थिक दुर्दशा तथा चारित्रिक हीनता[3] का मूल कारण भी पराधीनता ही था। रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक खण्डकाव्य में प्रेम कथा के रूप में तत्कालीन राजनीतिक तथा आर्थिक स्थितियों का निरूपण किया है—

समझ लिया सत्वास पथिक ने कारण इस दुर्गति का।
है सिद्धान्त प्रजा की उन्नति के प्रतिकूल नरपति का।
राजकाय सचालनार्थ ही कुछ शिक्षा प्रचलित है।
कल्पित ख्याति विलुप्त प्रजा का अध पतन निश्चय है॥
प्रजा नितान्त चरित्रहीन हो नष्ट जाय मिट जन की
शिक्षा का उद्देश्य यही है नीति यही शासन की।
चरित्रहीन डरपोक अनिश्चित प्रजा अधीन रहेगी।
है यह भाव निरकुश नृप का सदा अनीति सहेगी।"[4]

---

१ रूपनारायण पांडेय पराग २५
२ सियारामशरण गुप्त आत्मोत्सर्ग पृ २६ २७
३ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कल्पना पृ० ४०
४ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ४६

भारतवासियों को ऐसे-ऐसे कानूनों से जकड़ दिया गया था कि उनकी अन्तरात्मा तक कराह उठी थी। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में शस्त्र कानून के प्रति विद्रोह अभिव्यक्त हुआ है कि जिनकी देवमूर्तियाँ भी निरस्त्र नहीं हैं वे भारतवासी निःशस्त्र हो दीन हीन अवस्था को प्राप्त हुए हैं।[1] अतः कूट और कुनीति पर आधारित कुशासन की ध्वजा फहराने वाली नौकरशाही ने भारत का भुरता बना दिया था। नौकरशाही से स्वराज्य की प्राप्ति करना ध्येय था। नाथूराम शंकर शर्मा के शब्दों में—

नौकरशाही के चुंगी भारत सुप्त स्वराज्य।
डाल न प्राणों प्राण में असहमान का राज्य॥
कूर कुशासन की ध्वजधारी कट्टर कूट कनीति पसारी।
हा न लोक-मत से डरती है भारत का भुरता करती है॥
अकड़ अड़ाती है चित चाही
अटकी कटिला नौकरशाही॥[2]

देश का सबसे अधिक दुर्भाग्य तो यह था कि इस नौकरशाही की अधिकांश संख्या भारतीय थी। पराधीनता के कारण उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। बड़े बड़े अधिकारीगण गद्दों पर के गधे के समान थे जिन्हें केवल बोझ ढोना ही सीखा था, कभी टैक्स का बोझ और कभी चंदे का बोझ। इन्हें अपने देश, भेष और वेश का कुछ भी ध्यान नहीं रह गया था। पंडित रामचरित उपाध्याय ने भारतीय पदाधिकारियों को धिक्कारते हुए कहा है—

बेशम ! धर्म से कर्म से विमुख हुआ क्यों ? भूल है।
क्या पराधीनता से अधिक दूजा भी दुख मूल है॥[3]

भारतीय अधिकारी उपाधियों तथा पदवियों के लोभ में राष्ट्र अघातक कार्य करते थे। जिनके मानसिक पतन की सीमा नहीं रह गई थी। उपाध्याय जी ने इसका विरोध करते हुए लिखा है—

रायबहादुर बना देश से दूर-दूर होकर,
कृत्रिम राजा बना पिता के धन को खोकर।
कुरसी तोड़ो व्यर्थ बेगारी करके खूब,
चौपट करके कामकाज सब घर के खूते,
तू सी० आई० ई० क्या बना ईसाई के हाथ से ?
क्यों विच्युत हो मरी बना निज समाज के साथ से।

---

१ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ५१
२ हरिशंकर शर्मा शंकर सर्वस्व पृ० २०६
३ रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ४४
४ वही पृ० ४४

कवि भारतवासियों के इस पतन से इतना विक्षुब्ध हो जाता है कि उसकी राष्ट्रीयता में ग्लानियता का भाव मिल जाता है। उसे पराधीनता इतनी असह्य हो गई थी कि वह विदेशी शासकों की उपमा गुडहर के फल से करता हुआ उनका अनादर भी करता है।[1]

दिनकर ने भी अपने को सभ्य एवं सुसंस्कृत समझने वाले अंग्रेजी साम्राज्य वाद की शोषण नीति के सम्बन्ध में मार्मिक एवं व्यंग्यात्मक आक्षेप किया है—

दलित हुए निर्बल सबलों से
मिटे राष्ट्र उजड़े दरिद्र जन
आह ! सभ्यता आज कर रही
असहायों का शोणित शोषण ।[2]

दिनकर ने दलित वर्ग का नेतृत्व किया है असहायों और निबलों की ओर से पुकार की है। त्रस्त भारतवासी सब मग में भी हीन जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनका उपचार और निदान कवि की हतबुद्धि को समझ में नहीं आ रहा था।[3] दिनकर ने विदेशी शासन से अभिशप्त जनता की करुणी और दयनीय अवस्था का वर्णन अधिक लाक्षणिक व्यंजनात्मक और भावनात्मक रूप से किया है जिसमें कवि हृदय की पीड़ा का स्वर व्याप्त है। वर्तमान के चीत्कार को सुन कर उनकी श्रद्ध भावनाएं जग गई थीं उसका हृदय विद्रोही बन गया था। विदेशी शान्ति के नाम पर भारतीय शोषण में दानव से जुटे थे। पराधीनता के अभिशाप को देख कवि की वाणी तक तीखी हो जाती है। वह करुणा क्षोभ और व्यंग्य मिश्रित भाषा में प्रश्नों की झड़ी लगा देता है—

टांक रही हो सुई चर्म पर शान्त रहें हम तनिक न डोलें,
यही शांति गरदन कटती हो पर हम अपनी जीभ न खोलें।
बोलें कुछ मत क्षुधित रोटियां श्वान छीन खायें यदि कर से
यही शान्ति जब वे आयें हम निकल जायें चुपके निज घर से ?
हव्य पड़ रहे संस्कृति के तड़पे गोलियों की छाया में,
यही शान्ति व मौन रहें जब आग लगे उनकी काया में ?[4]

काव्य क्षेत्र में राजनीतिक दुर्दशा के अनेक चित्र प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष इतिवृत्तात्मक अथवा भावात्मक अभिधात्मक अथवा व्यंजनात्मक पद्धतियों में मिलते हैं। पंडित रामचरित उपाध्याय अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' नाथूराम शंकर शर्मा ने पराधीनता के कारण उद्भूत दुर्दशा विदेशी शासकों द्वारा नियोजित अत्याचारों

१ रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० ३१
२ रामधारीसिंह दिनकर रेणुका पृ० २१
३ वही पृ० २६
४. रामधारीसिंह दिनकर हुंकार पृ० १ प्रथम संस्करण १९५५

का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली में एवं अधिक स्पष्ट शब्दों में किया है। इनके काव्य में विदेशी शासकों की कुटिल नीति, नौकरशाही के प्रति घृणा, विरोध तथा आक्रोश का मिश्रित भाव तीखापन लिए हुए झलकता है। सियारामशरण गुप्त ने अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के आत्म बलिदान की कथा में नौकरशाही के अत्याचारों का प्रबल शब्दों में वर्णन किया है। माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, मैथिलीशरण गुप्त ने अधिक संयत वाणी में दासता के अभिप्राय को अभिव्यक्त किया है। इनमें करुणा एवं भावना की मात्रा अधिक है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान के काव्य में विशेष नारी सुलभ कोमल भावनाओं में लिपटा हुआ है। उनकी राष्ट्रीय चेतना अनुभूतिमूलक एवं भावनात्मक है। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में राजनीतिक अत्याचार का वर्णन अधिक भावात्मकता तथा काव्यात्मकता के आग्रह के साथ किया गया है। भारत की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति उनके कवि-हृदय में दुर्वह व्यथा का महाज्वार उद्वेलित कर देती है। इन कवियों की कविताएँ काव्य-कला की दृष्टि से भी उच्चकोटि की हैं। इनका काव्य पाठकों के संवेदनशील हृदय तल का स्पर्श करता है।

रामधारीसिंह 'दिनकर' ने छायावाद के उत्तरार्द्ध में काव्य क्षेत्र में क्रांति की प्रबल भावना के साथ प्रवेश किया। इनकी राजनीतिक पराधीनता की अनुभूति अधिक क्रांतिकारिणी है। इन्होंने साहित्यिकता एवं काव्यकला का पूर्ण निर्वाह किया है।

इस युग में लिखे गये महाकाव्यों में भी प्रच्छन्न रूप में राजनीतिक संघर्ष की झलक मिल जाती है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में शासक और शासित का द्वंद्व दिखाया गया है। स्वेच्छाचारी शासक के विरुद्ध विप्लव की भावना प्रसाद के अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा की देन है। गुरुभक्तसिंह की 'नूरजहां' में शासक-वर्ग की निर्दयता, प्रजा पर अत्याचार प्रच्छन्न रूप से अंग्रेजी शासकों का अत्याचार है।

राष्ट्रीय आन्दोलन के उस युग में, जबकि विदेशी शासकों के कठोर-दमन-चक्र के नीचे भारतवासी पिस रहे थे, शासन व्यवस्था के विरुद्ध एक भी शब्द फांसी पर चढ़वा देने के लिए पर्याप्त होता था और प्रेस एक्ट द्वारा विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी नहीं रह गई थी, इन राष्ट्रीय कवियों ने जिस साहस एवं निर्भयता से राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण काव्य में किया है वह प्रशंसनीय एवं अभिनन्दनीय है। राष्ट्र एवं राष्ट्रवाद के प्रसार और विकास में इन कवियों का महत्वपूर्ण योग रहा है।

आर्थिक संकट

अंग्रेजी शासता के पूर्व मुसलमानी राज्य काल में भारत केवल राजनीतिक दृष्टि से विदेशियों के अधीन था किन्तु उसकी अर्थ व्यवस्था अक्षुण्ण बनी थी। परन्तु अंग्रेजी साम्राज्यवाद पूंजीवादी व्यवस्था पर आधारित था अतः भारत में

भी इस व्यवस्था की स्थापना हुई। नागरिक तथा ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था का ढाचा बदल गया। भारत प्रमुखतया कृषि प्रधान ग्रामो का देश है। अत विदेशी शासकों ने सर्वप्रथम भारतीय ग्रामो की आत्म निर्भर प्रणाली हस्त-कला उद्योग तथा सगठित जीवन को विच्छिन्न कर एक नवीन जमीदारी तथा रय्यतवारी प्रणाली म जकड दिया। अन्य कला कौशल के अभाव म अधिकाश ग्रामवासियो की आजीविका का साधन कृषि मात्र ही रह गया था। सामाजिक रूढिया और धार्मिक अन्धविश्वासो के कारण उनकी आय की अपेक्षा व्यय ही अधिक था अत ऋण लेना आवश्यक था। ऋण पाने की उचित व्यवस्था न होने के कारण ग्रामवासियो को महाजन एव साहूकारो का आश्रय लेना पडा। अत जमीदार तथा साहूकार दोनो ने किसानो की अज्ञानता अशिक्षा का लाभ उठा कर उनका शोषण किया।

नागरिक जीवन म भी अनेक आर्थिक समस्याएँ उठ खडी हुई थी। विदेशी शासक वर्ग ने जिस प्रकार की शिक्षा का प्रचार किया था उससे अधिक सख्या में क्लर्कों की ही भरमार हो सकती थी। आजीविकोपार्जन म सहायक स्वतत्र व्यवसाय सम्बन्धी शिक्षा न मिलने के कारण शिक्षित वर्ग को सरकारी नौकरी का द्वार खटखटाना पडता था जिससे दिन प्रतिदिन बेकारी की समस्या बढती जा रही थी।

ठाकुर गोपालशरणसिंह श्री त्रिशूल माखनलाल चतुर्वेदी सुभद्राकुमारी चौहान प० रामनरेश त्रिपाठी रामधारीसिंह दिनकर आदि कवियो ने आर्थिक शोषण तथा अन्य सम्बन्धी समस्याओ का विवेचन काव्य म किया है। ठाकुर गोपाल शरण सिंह ने आर्थिक शोषण द्वारा भारत की दुर्दशा का अत्यधिक तीव्र शब्दो म वर्णन किया है।[1]

त्रिशूलजी ने विदेशी पूजीवादी साम्राज्यवाद की लोक उत्पीडनकारी अन्यायपूर्ण असाम्यवादी आर्थिक नीति का उद्घाटन कर भारतीयो की दुर्दशा पर प्रकाश डाला है। भारत म पूजीवादी व्यवस्था की स्थापना कर अग्रेजी शासको ने थोडे से भारतीयो को धनाधीश बनाकर उनकी सहायता से साधारण जनता को चूसने की अनोखी रीति निकाली थी। अत देश म विषमता अनेकता आदि कटु भावनायें फैल रही थीं। त्रिशूल ने उनकी इस नीति का विरोध करते हुए लिखा है—

> सभी प्रकृति के पुत्र जान सबको है प्यारी।
> पायें प्रकृति प्रसाद सभी हैं सम अधिकारी॥
> धनाधीश क्यों रहे एक दूसरा क्यों भिखारी ?
> है यह अति अन्याय लोक-उत्पीडनकारी।
> मिलता दीनों को नहीं समुचित श्रम का मोल,
> प्रकट म देखें लोग पर भरी ढोल म पोल।

पडित रामनरेश त्रिपाठी न 'पथिक' खण्डकाव्य म प्रेम

---

1 ठाकुर गोपालशरणसिंह संचिता प० १११

की आर्थिक दुर्दशा के चित्र प्रस्तुत किये हैं। देश-दशा से परिचित होने के लिए पथिक एक वर्ष तक भ्रमण करता है। देश के प्राकृतिक सौन्दर्य को देख वह आश्चर्य निमग्न हो जाता है कि इतने सुन्दर तथा प्राकृतिक वैभव से पूर्ण देशवासी क्षुधा-तृषित क्यों रहते हैं। यह कैसी विडम्बना है कि कृषकगण अन्न उत्पन्न करके भी दाने दाने को तरसते हैं—

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में।
मांस नहीं है निरी सांस है शेष अस्थि पंजर में।।
अन्न नहीं है वस्त्र नहीं है रहने का न ठिकाना।
कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिगाना।।[1]

त्रिपाठी जी ने स्वदेश प्रेम के अतिरेक में देश-दशा का अत्यधिक करुण एवं भावात्मक चित्र खींचा है। उनकी यह सबसे बड़ी विशेषता है कि तत्कालीन देश-दशा के चित्रण के लिए कथा काव्य का आश्रय लिया है। *पथिक का क्रूर एवं अन्यायी नृप अंग्रेजी शासन का प्रतीक है जिसकी अनीति के कारण देश की आर्थिक व्यवस्था का विध्वंस हुआ था।*

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने भारत की आर्थिक विपन्नता के प्रतीक भिखारी की स्थिति और स्वरूप दोनों का स्पष्ट और सप्राण चित्र खींचा है—

वह आता —
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुंह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।।[2]

इसी कविता में 'निराला' जी ने भारत की *दयनीय स्थिति का अत्यन्त करुण* चित्र खींचा है।

भिक्षुक को अपने बच्चों के साथ जूठी पत्तलें चाटने में भी चैन न मिल पाता था क्योंकि उन्हें झपट लेने को कुत्ते अड़े हुए थे। किसी भी देश की इससे अधिक आर्थिक दुर्दशा क्या होगी। तोड़ती पत्थर कविता में निरालाजी ने पूंजीवाद के कारण उत्पन्न भारत की निम्न वर्ग की नारी की दयनीय दशा का सजीव एवं प्रभावात्मक चित्र प्रस्तुत किया है—

वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।

---

१ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ४५
२ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अपरा पृ० ६६

नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन भर बधा यौवन
नत नयन प्रिय-कर्म रत मन
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार-बार प्रहार —
सामने तरु मालिका अट्टालिका प्रकार ॥[1]

विदेशी शासन की दानवी प्रवृत्ति के कारण भारतीय जीवन में जिस अभाव एवं हाहाकार का साम्राज्य था उसका यथार्थ मार्मिक वीभत्स चित्रण 'दिनकर' जी ने किया है—

पर शिशु का क्या हाल सीख पाया न अभी जो आंसू पीना ?
चूस चूस स्तन माँ का सो जाता रो विलप नगीना।
विवश देखती माँ अंचल से नन्हीं जान तड़प—उड़ जाती
अपना रक्त पिला देती यदि फटती आज वज्र की छाती।
वक्र वक्र में अबुध बालकों की भूखी हड्डी रोती हैं
'दूध-दूध!' की कदम कदम पर सारी रात सदा होती है।
दूध-दूध! ओ वत्स मन्दिरों में बहरे पाषाण यहाँ हैं
दूध-दूध! तारे, बोलो इन बच्चों के भगवान कहाँ हैं ?[2]

इन पंक्तियों में कवि हृदय का हाहाकार करुणा से भीग कर बोझिल हो गया है और उसकी तीव्रता उसकी गहनता और बढ़ जाती है। इसी देश में शोषक वर्ग अपने श्वानों को दूध से नहलाते दिखाई देते हैं। कवि हृदय अपने देश की विषमता दयनीयता और अभावों को देख चीत्कार कर उठता है कि जैसे हो कि हो पूरा हमारे कष्टों को आराम नहीं है। उसमें असीम साहस आ जाता है और अभाव के निराकरण के लिए वह प्रयत्नशील दिखाई देता है।

ग्रामवासिनी भारतीय जनता की शोचनीय आर्थिक अवस्था का उदाहरण था उसकी दयी दिनानिवा अधिक कष्टकर थी। बाढ़ से बचने के लिए साधनों का अभाव था। सियारामशरण गुप्त ने बाढ़ कविता में बाढ़ से उत्पीड़ित दीन-हीन ग्रामीणों की विपत्ति का करुण दृश्य खींचा है। साम्राज्यवाद की शोषक नीति के सहयोग बनी हुई बाढ़ आदि आधिदैविक विपत्तियाँ कृषक को भिखारी बना

१ निराला तोड़ती पत्थर (१६२० ई०) पृ० २०
२ रामधारीसिंह दिनकर हुंकार पृ० २२
३ वही पृ० २३
४ वही पृ० २२
५ वही पृ० २१

कर
के सहा

शान्त होती थीं —

छोड़ कर दल रूप भिक्षुक का रूप धार
आई आज आड़ है तुम्हारे द्वार ।
पथ पर जाते हो स्वयं ही जहाँ
आये हैं यहाँ ये लोग आप ही तुम्हारे यहाँ।
याचक खड़ा है पथ ही स्वत ।
आज आज होवे अत
देकर दया का दान
कष्ट तो मिटाओ क्षुधा इनकी महा महान ।[1]

कवियों ने देश के आर्थिक शोषण आर्थिक विपन्नता तथा अर्थाभाव के कारणों पर उनकी उठाकर इतिवृत्तात्मक भावात्मक आदि अनेक शैलियों में काव्य रचना की है। अपने युग के आर्थिक अभाव का यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर कवियों ने अपनी वाणी सार्थक की है। ये चित्र जनता के हृदय को स्पर्श करने वाले हैं।

काव्य में सामाजिक दुर्दशा का चित्रण

सन् १६२० के पश्चात् हिंदी काव्य क्षेत्र में छायावाद एव रहस्यवाद की प्रवृत्ति के विकास के कारण द्विवेदीयुगीन अतिशय इतिवृत्तात्मक और आदर्श निरूपिणी काव्य धारा समाप्तप्राय होने लगी थी। अत इस युग के अधिकांश कवियों ने सामाजिक परिस्थितियों के स्थूल चित्रण की अपेक्षा अपनी व्यक्तिगत लौकिक प्रेमानुभूति को सूक्ष्म छायात्मक रहस्यात्मक एव विशेषण प्रधान शैली में अभिव्यक्त किया है। मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का आभास दे कर नवीन कल्पनाओं एवं मान्यताओं को उद्भूत किया गया है। कवि-वर्ग की सामाजिक चेतना कुंठित हो गई थी। अत द्विवेदी युग की तुलना में इस युग के काव्य में सामाजिक दुर्दशा के स्थूल अथवा भावात्मक चित्र अल्प संख्या में मिलते हैं।

द्विवेदी युग से चले आ रहे कवियों ने अवश्य सन १६२० के बाद भी अपनी कविताओं में सामाजिक रूढ़ियों कुरीतियों अनीति आदि का वर्णन इतिवृत्तात्मक रूप में किया है। ये कवि हैं नाथूराम शंकर शर्मा, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध मैथिलीशरण गुप्त रूपनारायण पाडेय वियोगी हरि आदि।

नाथूराम शंकर शर्मा ने काव्य में इतिवृत्तात्मक शैली में विधवाओं की दुरवस्था वृद्धों का बालिका कन्याओं से विवाह सामाजिक पाखण्ड, बाल विवाह आदि कुरीतियों का वर्णन किया है।[2] मैथिलीशरण गुप्त ने विधवा[3] कविता में विधवाओं के प्रति सामाजिक अत्याचारों और व्यभिचार का भंडाफोड़ किया है। स्त्रियों के प्रति असभ्य

१ सियारामशरण गुप्त दूर्वादल पृ० ६७
२ शंकर सर्वस्व पृ० २६३ (काव्य रचना का समय नहीं दिया गया है)
३ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ६२
४ वही पृ० ६४

म बेमेल विवाह का विरोध और स्त्री शिक्षा का प्रचार कर नारी वर्ग की जड़ता एव अज्ञानता को मिटाने का उद्योग किया गया है जिससे पुरुष क साथ समाज का नारी वर्ग भी देश की उन्नति म सहायक हो सके। 'वृद्ध विवाह' म भारतवासियों की कूप मण्डूकता और वृद्ध विवाह के कुपरिणामों का दिग्दर्शन करा कर बाल विवाह का भी कवि ने विरोध किया है।[1] द्वापर म गुप्तजी ने कृष्णकथा क माध्यम स नारी की असहाय स्थिति की ओर विधृता काव्य खड म सकेत किया है। नारी पत्नीत्व के उच्च आदर्श स उतर कर दासी मात्र रह गई थी।[2]

रूपनारायण पाण्डेय ने भी इतिवृत्तात्मक शैली म सामाजिक कुरीतियों नारी की अशिक्षा और विधवाओं की अवस्था क दयनीय सम्बन्ध म लिखा है। अयोध्यासिंह उपाध्याय की सामाजिक चेतना अत्यधिक जागरूक है। उन्होंने तत्कालीन सामाजिक कुरीतियों दुर्बलताओं का अत्यन्त सजीव चित्र व्यंग्यात्मक शैली म खींचा है। डा० द्वारिका प्रसाद न लिखा है— कवि ने समाज के कायर आलसी अकर्मण्य परमुखापेक्षी धर्मान्ध अन्धविश्वासी छुआ-छूत फैलाने वाले ढोंगी पाखण्डी मनचले, निर्लज्ज आदि महापुरुषों पर अच्छी कवितायें कसी हैं।[5] वृद्धों द्वारा युवतियों स विवाह पर हास्यपूर्ण शैली म व्यंग्य करते हुए लिखा है—

हो बड़े बूढ़े न बुढ़ियों को ठगें
पाउडर मुह पर न अपने वे मलें॥
ब्याह के रंगीन जामा को पहन
बेईमानी का पहन जामा न लें॥
छोकरी का ब्याह बूढ़े से हुए
चोट जी म लग गई किसके नहीं।
किसलिए उस पर गढ़ाये दांत वह
दांत मुह में एक भी जिसके नहीं॥[6]

वियोगी हरि न भी भारत युग की सामाजिक दुर्दशा का चित्रण ब्रजभाषा म किया है। बाल विधवा' म स्पष्ट कह दिया है—

जहाँ बाल विधवा हिये रहे धधकि अँगार।
सत-सीसतता को तहाँ करिहौ किमि सचार॥[7]

१ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत प० ४६
२ वही प० ४०
३ मैथिलीशरण गुप्त द्वापर प० २५
४ रूप नारायण पाडेय पराग। प० १८ १६
५ डा० द्वारिकाप्रसाद प्रिय प्रवास म काव्य संस्कृति और दर्शन पृ० २३२
६ अयोध्यासिंह उपाध्याय चुभते चौपदे प० १६
७ वियोगी हरि वीर सतसई प० २२
८ निराला काव्य और व्यक्तित्व प० १११

रामनरेश त्रिपाठी की भी भारत की विधवा के प्रति पूर्ण सहानुभूति थी। 'विधवा का दर्पण' कविता में उस विधवा का चित्र है जिसने राष्ट्र के हित अपने पति का उत्सर्ग कर दिया था। इसकी विधवा दयनीय होते हुए भी गौरव की वस्तु है।

छायावादी एवं रहस्यवादी कवियों में केवल निराला ने वर्तमान की यथार्थता को विस्मृत नहीं किया है। अतिशय कल्पना के आरोप के उस युग में भी निराला साधारण समाज और मानव जीवन की ओर दृष्टि निक्षेप करते हैं।[1] उन्होंने भारतीय विधवा का जो चित्र अपनी 'विधवा'[2] कविता में खींचा है, वह अपूर्व है। शंकर अथवा मैथिलीशरण गुप्त की भाँति उनकी लेखनी ने भारतीय विधवा जीवन की कुंठाओं, विकृतियों, सामाजिक अन्याय एवं अत्याचार का वर्णन इतिवृत्तात्मक शैली में नहीं किया है। निराला जी ने भारतीय विधवा के स्निग्ध रूप के साथ उसकी मन स्थिति के विश्लेषण में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विक्षोभ के स्वर को मिला दिया है। मधु में छिपे विष की मार व्यक्त किया है। स्थिरता में आवेग मानव मनोवृत्ति की यथार्थता का मनोवैज्ञानिक उद्घाटन किया है। विधवा के प्रति कवि की संवेदनात्मक अनुभूति गहरी होने के कारण वह सहज ही पाठकों की समस्त सहानुभूति एवं करुणा का पात्र बन जाती है —

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शांत भाव में लीन
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।।[3]

विधवा का इतना भावात्मक एवं प्रभावोत्पादक चित्रण इसके पूर्व नहीं हुआ था।

सियारामशरण गुप्त ने 'आर्द्रा' में लघु कथाओं के रूप में काव्य द्वारा सामाजिक रूढ़िवादिता का सुन्दर एवं मार्मिक चित्रण किया है। 'नुदास' में अर्थाभाव और कन्या के विवाह की समस्या ली गई है। 'एक कौड़ी भी नहीं है पास ऋण ले लिया है ग्राम' सा कन्या के विवाह और दहेज की प्रथा माता पिता के लिए विष से भी अधिक घातक हो जाती है। बेटी को विष पान में ही अपने माता पिता की मुक्ति का उपाय मिलता है।[4]

हिन्दू समाज को विशिष्ट वर्ग वाली व्यक्तियों में अस्पृश्यता की भावना का भी प्रमुख हाथ था। समाज में उच्चवर्ग में निम्न अथवा शूद्र वर्ण के लिए व्याप्त

१ निराला काव्य और व्यक्तित्व पृ० १११
२ निराला अपरा पृ० ५६
३ वही पृ० ५६
४ सियारामशरण गुप्त आर्द्रा पृ० २७-३६ द्वितीयावृत्ति

हीन भावना तथा भेदभाव उसे पंगु बना रहे थे। उसमें असमानता तथा मनोमालिन्य बढ़ता आ रहा था। समाज का एक वर्ग अस्पृश्य होने के कारण संकीर्णता और अज्ञानता से भरा हुआ था। समाज बहिष्कृत इस वर्ग के कारण राष्ट्रीय जीवन और तथा राष्ट्रीय भावना का समुचित विकास संभव नहीं था। विदेशी शासक इनकी अज्ञानता का लाभ उठा सहज ही अपना धर्म में दीक्षित कर इन्हें अपना समर्थक बना लेते थे। गांधीजी ने इसी कारण देश की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों को राष्ट्रवाद के अनुकूल बनाने के लिए अछूतों की समस्या पर विशेष ध्यान दिया।[1]

अछूतों की समस्या तथा उनके उद्धार के विषय को लेकर हिंदी में काव्य रचना तत्कालीन अधिकांश राष्ट्रीय कवियों ने की है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वदेश-संगीत' में समाज में व्याप्त भेदभाव तथा अस्पृश्यता की भावना का वर्णन 'अछूत' कविता में किया है।

हरिऔध जी ने भी छुआछूत की निन्दा की है। कवि की धार्मिकता इतनी सहिष्णु है कि उसकी आत्मा सामाजिक पाखंड कूपमण्डूकता भेदभाव संकीर्ण विचार के कारण मिटते हुए राष्ट्रीय रंग को देखकर व्यथित हो जाती है—

पाँव छू छू उनके तरे हैं छितितल पापी
और हम छाँह से अछूत की हैं टलते।।[2]

वियोगी हरि ने अछूत कविता में अस्पृश्यता निवारण पर बल दिया है। अस्पृश्यता को समाज की काली करतूत कहा है—

अपनावन समुझे न जे अपनहिं अंग अछूत।
क्यों करि छूत हैं छूत व करि कारी करतूत।।[3]

साकेत महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने राम सीता का कोल किरात भील, आदि निम्न जातियों के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ते दिखाया है। वर्धा आश्रम की भांति उन्हें कातने बुनने का उपदेश दिया जाता है। अतः उन्हें भी अस्पृश्यता अमान्य है। पंचवटी खण्ड में गुप्त जी की सहानुभूति निम्न वर्ग के साथ साथ पशु वर्ग के प्रति भी है। मैथिलीशरण गुप्त की वैष्णव भावना अति विस्तृत एवं महान है जो प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना से भरी हुई है। 'आर्द्रा' में सियाराम शरण गुप्त ने कथा-काव्य द्वारा अछूतों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्र खींचा है।

हिन्दी कविता में सामाजिक दुर्दशा के अन्य रूपों के साथ अछूतों के प्रति सामाजिक अत्याचार के अधिक चित्र नहीं मिलते। विभिन्न विद्वानों ने छायावादी और रहस्यवादी कवियों द्वारा सामाजिक उपेक्षा के भिन्न भिन्न कारण खोजे हैं

१ M. K. Gandhi—Hindu Dharma—P. 10
२ हरिऔध कल्पलता पृ० ८
३ वियोगी हरि वीर सतसई पृ० ७८

लेकिन उनकी तत्कालीन सामाजिक निरपेक्षता अथवा विमुखता राष्ट्रवाद की दृष्टि से खटकती है। इसमें संदेह नहीं कि यह उनकी वर्तमान से पलायन की प्रवृत्ति का ही परिणाम था।

साम्प्रदायिकता तथा प्रादेशिकता आदि

भारत का चिरकाल से यह दुर्भाग्य रहा है कि यहाँ फूट, वैर, अनेकता आदि दुर्भावों के कारण ही विदेशियों से आक्रान्त होता रहा है। हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि भारत की अवनति का मूल कारण आपसी फूट तथा वैर रहा है। अन्यथा वीरता का अभाव न था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद रूपी विष लता ने भी भारतीयों की इस दुर्बलता का पूर्ण लाभ उठाया। साम्प्रदायिकता तथा अनेकता के अनुकूल वातावरण में अबाध रूप से वह बढ़ती गई। भारतीयों की जातीय कटुता के कारण ही अंग्रेजों की कूटनीति फली फूली और हम उनके अत्याचार सहन करते रहे। हरिऔध जी ने भारतीयों की दुर्दशा के इस रूप का अति व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया है—

> हरिऔध कटुता न जाति में जो फली होती।
> क्यों कूटनीति वाला कूट कूट कूटता।।[1]

आज हमारे घर में फूट पाँव जोड़कर बैठी है, वैर अकड़ा हुआ खड़ा है, अनबन की बन आई है और रगड़े झगड़े गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।[2] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी फूट को ही भारतीयों के विनाश का कारण माना है। उन्होंने भारतवासियों को साम्प्रदायिक विभिन्नता को मिटा कर हिन्दुत्व के एकत्व में अभिन्न हो जाने का उपदेश दिया था। श्री मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता का सांस्कृतिक पक्ष अति प्रबल है अतः उन्होंने समस्त देशवासियों को हिन्दूपन के गर्व तथा संस्कृति की रक्षा के लिए प्रोत्साहित किया था। उनका हिन्दू शब्द अति व्यापक है। उन्होंने जैन, बौद्ध, सिक्ख, वैष्णव, शैव सभी धर्मावलम्बियों को हिन्दू की परिभाषा के अन्तर्गत लिया है। मुसलमानों को भी गुप्त जी ने हिन्दू ही माना है क्योंकि परिस्थितिवश उन लोगों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। ये सभी मूल रूप में हिन्दू हैं, इस कारण गुप्त जी को जातीयता अथवा धार्मिक मतमतान्तर के आधार पर भारतीयों का विभाजन अनिष्टकर लगता है।

> वैष्णव, शैव, शाक्त, सिख, जैन
> हो कि न हो या कुछ हो ऐन
> पर तुम में है हिन्दू रक्त,
> हो इस पुण्य भूमि के भक्त।।[3]

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पद्य प्रसून पृ० ३५
२ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे ४
३ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० १६

हीन भावना तथा भेदभाव उसे पंगु बना रहे थे। उसमें असमानता तथा मनोमालिन्य बढ़ता जा रहा था। समाज का एक वर्ग अस्पृश्य होने के कारण संकीर्णता और अज्ञानता से भरा हुआ था। समाज बहिष्कृत इस वर्ग के कारण राष्ट्रीय जीवन और तथा राष्ट्रीय भावना का समुचित विकास सम्भव नहीं था। विदेशी शासक इनकी अज्ञानता का लाभ उठा सहज ही अपने धर्म में दीक्षित कर, इन्हें अपना समर्थक बना लेते थे। गांधीजी ने इसी कारण देश की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थितियों को राष्ट्रवाद के अनुकूल बनाने के लिए अछूतों की समस्या पर विशेष ध्यान दिया।[१]

अछूतों की समस्या तथा उनके उद्धार के विषय को लेकर हिन्दी में काव्य रचना तत्कालीन अधिकांश राष्ट्रीय कवियों ने की है। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने 'स्वदेश-संगीत' में समाज में व्याप्त भेदभाव तथा अस्पृश्यता की भावना का वर्णन 'अछूत' कविता में किया है।

'हरिऔध' जी ने भी छुआछूत की निन्दा की है। कवि का धार्मिक मन इतनी सहिष्णु है कि उसकी आत्मा सामाजिक पाखंड, कूपमण्डूकता, भेदभाव, संकीर्ण विचार के कारण मिटते हुए राष्ट्रीय रंगों को देखकर व्यथित हो जाती है—

पाँव छू छू उनके तरे हैं छिलितल पापी
और हम छाँह से अछूत की हैं डरते ॥[२]

वियोगी हरि ने 'अछूत' कविता में अस्पृश्यता निवारण पर बल दिया है। अस्पृश्यता को समाज की काली करतूत कहा है—

अपनावन भजहू न जे अपनहिं अंग अछूत।
क्यों करि ह्वै हैं छूत वै करि कारी करतूत ॥[३]

साकेत महाकाव्य में मैथिलीशरण गुप्त ने राम सीता को कोल किरात भील आदि निम्न जातियों के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ते दिखाया है। वर्धा आश्रम की भाँति उन्हें कातने बुनने का उपदेश दिया जाता है। अतः उन्हें भी अस्पृश्यता अमान्य है। पंचवटी खण्ड में गुप्त जी की सहानुभूति निम्न वर्ग के साथ साथ पशु वर्ग के प्रति भी है। मैथिलीशरण गुप्त की वैष्णव भावना अति विस्तृत एवं महान है जो प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना से भरी हुई है। 'आर्द्रा' में सियाराम शरण गुप्त ने कथा-काव्य द्वारा अछूतों की दयनीय स्थिति का मार्मिक चित्र खींचा है।

हिन्दी कविता में सामाजिक दुर्दशा के अन्य रूपों के साथ अछूतों के प्रति सामाजिक अत्याचार के अधिक चित्र नहीं मिलते। विभिन्न विद्वानों ने छायावादी और रहस्यवादी कवियों द्वारा सामाजिक उपेक्षा के भिन्न भिन्न कारण खोजे हैं

१ M K. Gandhi—Hindu Dharma—P 10
२ हरिऔध कल्पलता पृ० ८
३ वियोगी हरि वीर सतसई पृ० ७८

लेकिन उनकी तत्कालीन सामाजिक निरपेक्षता अथवा विमुखता राष्ट्रवाद की दृष्टि से खटकती है। इसमें संदेह नहीं कि यह उनकी वर्तमान से पलायन की प्रवृत्ति का ही परिणाम था।

साम्प्रदायिकता तथा प्रादेशिकता आदि

भारत का चिरकाल से यह दुर्भाग्य रहा है कि यह दल फूट वैर अनेकता आदि दुर्गुणों के कारण ही विदेशियों से आक्रान्त होता रहा है। हमारा इतिहास इसका साक्षी है कि भारत की अवनति का मूल कारण आपसी फूट सदा पर रहा है। अन्यथा वीरता का अभाव न था। अंग्रेजी साम्राज्यवाद रूपी विष लता ने भी भारतीयों की इस दुर्बलता का पूर्ण लाभ उठाया। साम्प्रदायिकता तथा अनेकता के अनुकूल वातावरण में अबाध रूप से यह बढ़ती गई। भारतीयों की जातीय कटुता के कारण ही अंग्रेजों की कूटनीति फली फूली और हम उनके अत्याचार सहन करते रहे। हरिऔध जी ने भारतीयों की दुर्दशा के इस रूप का अति व्यंग्यात्मक शैली में वर्णन किया है—

हरिऔध कटुता न जाति में जो फली होती।
क्यों कूटनीति वाला कूट कूट कूटता।।[1]

आज हमारे घर में फूट पाँव जोड़कर बैठी है और अकड़ा हुआ खड़ा है मनबल की बन आई है और रगड़े झगड़े गुलछर्रे उड़ा रहे हैं।[2] श्री मैथिलीशरण गुप्त ने भी फूट का ही भारतीयों के विनाश कारण माना है। उन्होंने भारतवासियों को साम्प्रदायिक विभिन्नता को मिटा कर हिन्दुत्व के एकत्व में अभिन्न हो जाने का उपदेश दिया था। श्री मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीयता का सांस्कृतिक पक्ष अति प्रबल है अतः उन्होंने समस्त देशवासियों को हिंदूपन के गर्व तथा संस्कृति की रक्षा के लिए प्रोत्साहित किया था। उनका हिन्दू शब्द अति व्यापक है। उन्होंने जैन बौद्ध, सिक्ख वैष्णव शैव सभी धर्मावलम्बियों को हिन्दू की परिभाषा के अन्तर्गत लिया है। मुसलमानों को भी गुप्त जी ने हिंदू ही माना है क्योंकि परिस्थितिवश उन लोगों ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। ये सभी मूल रूप में हिन्दू हैं इस कारण गुप्त जी को जातीयता अथवा धार्मिक मतमतान्तर के आधार पर भारतीयों का विभाजन अनिष्टकर लगता है।

वैष्णव, शैव, शाक्त सिख, जैन
हो कि न हो या कुछ हो ऐन,
पर तुम में है हिंदू, रक्त,
हो इस पुण्य भूमि के भक्त।।[3]

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' पद्म प्रसून पृ० ३५

२ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' चुभते चौपदे ४

३ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० १६

गुरुकुल की रचना कर श्री मथिलीशरण गुप्त ने हिन्दुओं के बीच फलते हुए धम सम्बन्धी विभेद को मिटाना चाहा है। उन्होंने स्वयं इस पुस्तक के उपोद्घात म लिखा है यदि इस पुस्तक स हम मे परस्पर कुछ भी एकता की प्रवृत्ति उत्पन्न हुई तो लेखक का सारा श्रम साथक हो जाएगा।[1] हिन्दुओं से सिक्खों का विरोध बढ रहा था व हिन्दुओं स धम के आधार पर साम्प्रदायिक विभेद करना चाहत थ। गुप्त जी ने इस ग्रन्थ की रचना द्वारा यह स्पष्ट किया है कि मूलत सिक्ख धम हिन्दू धम से भिन्न नही है। सिक्ख गुरुओं क जीवन चरित उनके वीर कार्यों तथा सिक्ख परम्परा का संक्षिप्त इतिहास देते हुए सिद्ध किया है कि सिक्खों की धार्मिक तथा दार्शनिक विचारधारा गीता क सिद्धान्तो के अनुरूप थी। सिक्ख धम हिन्दू धम का एक उपसम्प्रदायमात्र है—

हिन्दू जाति एक जननी है जात उसी का सिक्ख समाज,
किन्तु आज यह रूठ रहा है हुआ हठी हेकड हा! लाज।।[2]

इस ग्रन्थ क परिशिष्ट म गुप्त जी ने साम्प्रदायिक विभेद की भावना को मिटा कर सिक्खो को राष्ट्र का सच्चा नागरिक बनाना चाहा है तथा उनकी राष्ट्रीय भावना की प्रशसा अनेक स्थलों पर की है। साकेत महाकाव्य म गुप्त जी ने कहा है कि अनेकता मे राष्ट्र का बल बिखर जाता है—

एक राज्य न हो बहुत से हो जहाँ
राष्ट्र का बल बिखर जाता है वहाँ।।[3]

बहुत से राज्य का अर्थ वतमान काल म साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता की हानिकर भावना से है।

साम्प्रदायिकता का सबसे विषम रूप था हिन्दू मुसलमानो के मध्य बढ़ती हुई विद्वेषाग्नि। यद्यपि इसका बहुत कुछ कारण अंग्रेजो की कूटनीति थी क्योंकि व इन दो प्रबल धम सम्प्रदायो को आपस म लडा कर अपना स्वाथ साधन करते थे। देश का यह दुर्भाग्य था कि शताब्दियों से इस देश म बसकर भी मुसलमान इसे अपना वतन नही मानते थे। वे अज्ञानवश एक देश रूपी नौका के यात्री होने पर भी एक दूसरे से धार्मिक मतभेद क कारण भारत की नौका डुबा रहे थे। पडित रामचरित उपाध्याय ने मुसलमानो को इस साम्प्रदायिकता की लहर म बह जाने से रोका है। उनमे देश प्रेम की भावना जाग्रत करनी चाही है—

भारत ही मे पदा होते भारत ही म मरते हो,
दुख सुख हानि-लाभ सब कुछ तुम भारत ही मे रहते हो।

१—मथिलीशरण गुप्त गुरुकल पृ० २४
२—वही पृ० २४६
३—मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृ० २४

बहको मत कुछ समझो बूझो सबको मुसलमानों के
हिन्दुस्तान हमारा ही है हम हैं हिन्दुस्तान के ॥[1]

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध ने भी भारतवासियों को जातीयता की रक्षा का संदेश दिया था। 'हरिऔध' जी के जाति शब्द का अर्थ अति विस्तृत था जिसमें केवल हिन्दू जातियों का ही नहीं वरन् मुसलमान जाति का भी समाहार हो जाता है। हिन्दू मुस्लिम दंगों से वे अति विक्षुब्ध हो गये थे। इस विषय में संदपूर्ण शब्दों में उन्होंने कहा है—

जो निबाहो नेह के नाते न तुम। जो न बाँट कर खाओ गुरी।
तो छुरी बेढंग आपस में चला। मत गले पर जाति के फेरो छुरी ॥[2]

श्री सियारामशरण गुप्त का आत्मोत्सर्ग हिन्दू मुस्लिम विरोध के प्रबल वेग के विनाशचक्र में रक्तरंजित मानवता की करुण कहानी है। इसका रचना काल विक्रम संवत् १९८८ है जब भारत की दो महान् जातियाँ एक दूसरे के रक्त से अपने हाथ रंग रही थीं और जिन्हें शान्त करने के प्रयास में अमरशहीद श्रद्धेय गणेश शंकर विद्यार्थी जी को प्राणोत्सर्ग करना पड़ा था। अंग्रेजों की कूटनीति तथा भेद बुद्धि हिन्दू मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक विद्वेष का विष घोल राज्य करने की युक्ति सफल हो रही थी। कानपुर में हड़ताल हुई लेकिन मुसलमानों ने साथ नहीं दिया। हिन्दू मुस्लिम भाई भाई का स्वर मन्द पड़ गया था। मुसलमानों ने अंग्रेजों के हाथों की कठपुतली बन उत्पात मचाने का बहाना खोज निकाला।[3] विद्यार्थी जी से इस वैर बुद्धि के गरल को विनष्ट करने की प्रार्थना की गई। हिन्दू मुस्लिम दंगे की बात सुन वे दुर्घटना-ग्रस्त स्थलों पर गये और उन्हें समझाया कि वे भाई भाई हैं और भाई का रक्तपात पशुत्व से भी गर्हित कार्य है। उन्होंने धार्मिक एकता के मूल तत्वों को समझाने का प्रयास किया—

नहीं दूसरा है वह कोई
उसे रहीम कहो या राम ॥[4]

प्रेम तथा अहिंसा द्वारा द्वेषभाव मिटाने का संदेश दिया। स्वयं विद्यार्थी जी ने हिन्दू दलों के बीच फँसे हुए कुछ मुसलमान परिवारों की रक्षा भी की थी। किन्तु हिन्दू मुसलमानों के संयुक्त राष्ट्र को आदर्श मानने वाले दोनों के हितसंरक्षक विद्यार्थी जी की राष्ट्रीय भावना बर्बरता के सम्मुख सफल न हुई। मजहब का गला घोंट कर मजहब की धूम मचाने वालों की कमी न थी और अन्त में साम्प्रदायिकता का बोल बाला और मुसलमानों द्वारा विद्यार्थीजी का वध। दो धर्मों को मिलाने के प्रयत्न में

---

१ पं० रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती पृ० २३
२ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध 'चुभते चौपदे' पृ० २७
३ सियारामशरणगुप्त आत्मोत्सर्ग पृ० १७
४ वही पृ० २०

उन्हें आत्मोत्सर्ग करना पड़ा था। आर्द्रा में सियाराम जी ने साम्प्रदायिकता के नृशंस परिणाम को दिखाने के लिए लघु कथा-काव्य अग्नि परीक्षा[1] लिखा। हिन्दुओं का कीर्तन जलूस निकलते ही मुसलमानों ने उसे पत्थर गिरा कर रोका। धर्म के नाम पर दोनों जातियाँ लड़ गईं। जितना ही रक्त बहता था, विद्वेषाग्नि उतनी ही बढ़ती जाती थी। गुलाबचन्द के घर के किवाड़ तोड़ आततायी मुसलमान उसकी पत्नी सुभद्रा को उठा ले गये। अबला नारी किसी प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा कर पति के पास लौटती है लेकिन साम्प्रदायिकता से भी अधिक कठोर सामाजिक बन्धनों के कारण गुलाबचन्द उसे स्वीकार नहीं करते और अन्त में वह आत्मघात कर लेती है। साम्प्रदायिकता और सामाजिक रूढ़िवादिता के दो चक्कों के बीच हिन्दू नारी पिस जाती है। सियाराम जी ने इस कथा को अपनी सम्वेदना के स्पर्श से अत्यधिक करुण बना दिया है। पाठक को साम्प्रदायिकता से अधिक हिन्दू समाज की नृशंसता खलती है। इस कथा में सुभद्रा ने अपने पति से कहा भी है—

अच्छी बात! वैसी ही परीक्षा अभी दूँगी मैं
पीछे नहीं हूँगी मैं
मुझ पर जैसा क्रूर तुमने प्रहार किया
नागरिकों ने भी नहीं वैसा घोर वार किया।।[2]

काव्य में कहानी के द्वारा श्री सियाराम शरण गुप्त कृत आर्द्रा में अग्नि परीक्षा में हिन्दू मुस्लिम दंगा की भूमिका पर सुभद्रा नाम की हिन्दू नारी के सतीत्व के ओजमय दर्शन मिलते हैं जिसने सीता की भाँति सतीत्व परीक्षा देकर प्राण त्याग दिये।

भारतीय संस्कृति एवं शिक्षा की दुर्दशा

विदेशी शासन ने भारतीयों को केवलमात्र राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं सांस्कृतिक दृष्टि से भी पंगु कर दिया था। पश्चिमी शिक्षा पद्धति ने अधिकांश शिक्षित जनसमुदाय के मनोविज्ञान को बदल दिया। नवीन पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित शिक्षित वर्ग अपने सांस्कृतिक मूल्यों तथा आदर्शों को विस्मृत ही नहीं कर बैठा था वरन् उन्हें हीन दृष्टि से भी देखने लगा था। यह भारत के पतन का अन्तिम सर्ग था। हिन्दी साहित्यकारों ने तत्कालीन शिक्षित भारतवासियों की विकृत मनोवृत्ति का ग्लानियुक्त शब्दों में वर्णन किया है। शिक्षा भिक्षुक की भिक्षा मात्र रह गई थी जो दासता की कड़ियाँ कसने में अधिक साधक थी। श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध के शब्दों में—

क्या ऐसी ही सुफलदायिनी है अब शिक्षा?
क्या अब यह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा?

१ सियारामशरण गुप्त आर्द्रा पृ० ६१
२ वही: पृ० ६६

क्या यह है वह नहीं दासता बेड़ी कसती ?
क्या न पतन के पाप-पंक में है वह फंसती ?
क्या वह सोने के सदन को नहीं मिलाती धूल में ?
क्या मन पर कीट नहीं बसी वह भारत हित फूल में ?[1]

वह भारत जिसने सम्पूर्ण विश्व को ज्ञान विज्ञान की शिक्षा दी थी उचित शिक्षा के अभाव में विवेकशून्य हो गया था। विदेशी शासक जिस शिक्षा का प्रचार कर रहे थे वह देश तथा जाति पर मर मिटने की अपेक्षा उनकी स्वार्थ सिद्धि की पूर्ति में सहायक थी। अतः इसी कारण गांधीजी ने असहयोग आन्दोलन के समय ही सरकारी स्कूलों के बहिष्कार का प्रस्ताव रखा था और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार के लिए राष्ट्रीय विद्यालयों के स्थापन का पूर्ण प्रयत्न किया था। उस समय गांधीजी का यह कार्य देशवासियों को असम्भव तथा अति कठिन-सा प्रतीत हुआ था। हरिऔध' जी के विचार में यह कार्य सरोवर की कुछ बूंदों के ही समान था।[2]

तत्कालीन शिक्षा के ही कारण कुछ राष्ट्रीय नेताओं के मस्तिष्क में भी यह अविचार पुष्ट हो गया कि पश्चिम के सिद्धान्तों वहाँ के रहन सहन दीक्षा में रंग कर भारत का सच्चा सुधार होगा। विशेषकर नरम-दल वालों का अंग्रेजी शासकों तथा उनकी संस्कृति के प्रति किसी प्रकार का विरोधभाव न था। पंडित रामचरित उपाध्याय ने अपने काव्य में नेताओं के इस वर्ग विशेष पर आक्षेप किया है।[3]

श्री माखनलाल चतुर्वेदी ने भारतीय आत्म-गौरव के नाश का मूल कारण तत्कालीन शिक्षा को माना है—

जुल्म और भय ने नीरवता अथवा शान्ति जमाई जो,
वह है मत्यु हमारा गौरव रूप बनाकर आई जो
फिर जो की तालीम आत्म गौरव का नाश हुआ सारा
मनुष्यत्व मर मिटा अरे हो-बुरी मौत हमको मारा॥

(५ जुलाई १९२१)

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भारत की दुर्दशा का कारण तत्कालीन शिक्षा पद्धति को माना है। विदेशी शासकों द्वारा प्रचलित शिक्षा का उद्देश्य केवल राज्य कार्य के संचालन के लिए प्रजा को तैयार करना था—

प्रजा नितान्त परिग्रहहीन हो शक्ति जाय मिट मन की
शिक्षा का उद्देश्य यही है, नीति यही शासन की।

---

१ अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कल्पलता पृ० ४०
२ वही पृ० ४१
३ रामचरित उपाध्याय राष्ट्र भारती पृ० ४८
४ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७१

चरित्रहीन डरपोक अनिश्चित प्रजा अधीन रहेगी
है यह भाव निरञ्जन नृप का सदा अनिति सहेगी ॥[1]

हिन्दी नाट्य साहित्य में दुर्दशा के अनेक रूपों का चित्रण (१६२० ३७ ई०)

इस युग म रचित भारतीय दुर्दशा का अकन करने वाले नाटकों की सख्या अति अल्प है। अधिक सख्या ऐतिहासिक नाटकों की ही मिलती है। भारतेन्दु युग म अवश्य भारत की राजनीतिक सामाजिक धार्मिक आर्थिक दुर्दशा को प्रत्यक्ष रूप से नाटकों की कथावस्तु के लिए चुना गया था। उनके पश्चात् जयशकर प्रसाद ने हिन्दी साहित्य का उच्च कोटि के अनेक साहित्यिक नाटक प्रदान किये। इनके प्राय सभी नाटक ऐतिहासिक हैं जिनसे भारत म सास्कृतिक जागरण का प्रयास किया गया है। इस युग के अन्य नाटककारों ने प्रसाद जी की ही परम्परा में ऐतिहासिक नाटकों की रचना कर भारत के विगत गौरव का चित्र खींचा है। अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटककार हैं—बेचन शर्मा उग्र बदरीनाथ भट्ट चतुरसेन शास्त्री उदय शंकर भट्ट जमुनादास मेहरा हरिकृष्ण प्रेमी और सुदर्शन। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अवश्य अपने युग की सामाजिक समस्याओं को लेकर समस्या नाटक भी लिखे हैं। अत अधिकांश नाटककारों ने ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से प्रच्छन्न रूप म अपने युग की राजनीतिक सामाजिक आर्थिक समस्याओं और विषम परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराया है।

आध्यात्मिक नतिक पतन

बेचन शर्मा उग्र के महात्मा ईसा नाटक म प्रतीकात्मक शैली मे लेखक ने अपने युग आध्यात्मिक नतिक पतन की झलक दिखाई है। इस नाटक म ईसा के युग और देश की समस्यायें एव परिस्थितियां वही दिखाई गई हैं जो अग्रेजी शासन काल म भारत की थी। वस्तुत नाट्यकार ने प्रच्छन्न रूप म राजा हरोद तथा महारानी हरोदिया के चारित्रिक पतन अनाचार अनैतिकता म अपने युग के भारतीय शासक वग का नतिक पतन दृष्टिगत कराया है।[2] राजा नैतिक एव आध्यात्मिक दृष्टि से पतित था तो प्रजा की दुर्दशा क्यों न होती। धार्मिक स्थान पडे-पुरोहित, महन्त आदि नतिक पतन एव आध्यात्मिक हीनता को प्राप्त हुए थे। उग्र जी ने एनाजर का चरित्र चित्रण अप्रत्यक्ष रूप म अपने युग और अपने देश के धर्माचार्यों के नतिक पतन को दिखाने के लिए किया है।[3] अपने देश में इस समय धम का उद्देश्य अति विकृत हो गया था। वह ब्राह्मण वर्ग को भोजन कराने और मन्दिरों म स्वादिष्ट भोग्य पदार्थ प्रसाद रूप म चढ़ाने तक सीमित हो गया था जसा कि इस नाटक म दिखाया गया है। नाटक म महात्मा ईसा की सूक्ष्म दृष्टि एव सत्याराधना धार्मिक

१ रामनरेश त्रिपाठी पथिक प ० ४७
२ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० ५६
३ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ ४०

अनाचार को मिटाने के लिए प्रयत्नशील है और हमारे देश म गांधी जी उसी काम को कर रहे थे।

जयशंकर प्रसाद ने अपने सभी नाटको म सत्य असत्य धर्म अधर्म न्याय अन्याय, नीति-अनीति का सघर्ष दिखाया है। यह भी आलोच्य काल की विशेषता थी। उनके नाटको म देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन के प्रतीक पात्र हैं—राज्यश्री में शान्ति भिक्षु, विशाख म महापिगल स्कन्दगुप्त म प्रपचबुद्धि कापालिक अजातशत्रु म देवदत्त। विशाख नाटक म राजा नरदेव विलासी एवं उच्छृंखल प्रवृत्ति के जमीदार तालुकदार भारतीय नरेश आदि पूजीवादी वग का प्रतीक है जिनके कारण ग्रामीण सुन्दरियो की मर्यादा अरक्षित हो गई थी। प्रसाद जी ने अपने युग की समस्याओ का ऐतिहासिक कथा म कल्पना के योग द्वारा मूर्त किया है। अजातशत्रु म मागधी अथवा श्यामा और देवदत्त का नैतिक पतन सत्य रूप गौतम बुद्ध का विरोध करता है। इसी प्रकार अन्य नाटको म भी दो प्रकार के पात्र दृष्टिगत होते हैं। प्रसाद जी ने भी उग्र जी की भांति अपने युग की धार्मिक मिथ्यावादिता अनैतिकता आडम्बर आदि की झाकी दिखाई है। विशाख नाटक म बौद्धो के चारित्रिक पतन का वर्णन महन्त द्वारा चन्द्रलेखा को बन्दी बनाना राजा नरदेव का बौद्ध मठो को भस्म करने की आज्ञा देना आदि दृष्टान्त हैं।

वर्तमान काल म भारत के देश-जीवन के चारित्रिक पतन का सबसे बड़ा उदाहरण वेश्याओ की घृणित वृत्ति थी। देश का यह दुर्भाग्य था कि नारी के इस पतित रूप पर सामाजिक मान्यता की मुहर लगी हुई थी। समाज के उच्च वर्ग सम्भ्रान्त परिवारो तथा मन्दिर जैसे धर्म स्थानो में वेश्याओ का नृत्य-गान एक गौरव की बात बन गई थी। सामाजिक जीवन की इस पतित मनोवृत्ति की ओर उग्र जी के महात्मा ईसा नाटक म सकेत मिलता है। एलाजर धर्म मन्दिर को विलास भवन बना देना चाहता है। उसके शब्दो म धर्म मंदिर म विलास भवन कोई बुरी बात तो नही है इविड ! जिसने धर्म की सृष्टि की है विलास भी तो उसी की पवित्र रचना है—है न केविड ?[1] शासक वर्ग की ओर से इस नैतिक पतन को रोकने की अपेक्षा प्रोत्साहन मिल रहा था। कैसर हेरोद के शासन म महारानी हेरोदिया ने प्रार्थना स्थानो पर वेश्या का नाच करवाने की आज्ञा दी थी।[2] इस ध्येय की पूर्ति के लिए एलाजर जसे चरित्रहीन तथा लोभी व्यक्ति धर्माचार्य के पद पर नियुक्त किये गये थे। लेखक के अपने युग म भारत की भी यही दशा थी। देश के मन्दिर विलास साधना के केन्द्र बन गये थे और अंग्रेजी शासक वर्ग देश में इस पतन म अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहा था। जयशंकर प्रसाद के नाटको म भी वेश्यावृत्ति से सम्बन्धित सामाजिक पतन के चित्र मिल जाते हैं। उनके अजातशत्रु नाटक मे श्यामा वार

१ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा ४२

२ वही पृ० ४२

विलासिनी के चित्र द्वारा वेश्या समस्या की ओर सकेत किया गया है। काशी की वारविलासिनी का रूप अपनाने के बाद श्यामा स्पष्ट शब्दों म यह मोचती है कि भारतीय समाज म पत्नी की अपेक्षा वेश्या को अधिक मान मिलता है।[1]

श्यामा को वेश्या जीवन अपनाने क बाद बडे-बड श्रेष्ठी और राजपुरुषो के द्वारा सम्मान प्राप्त होता है शताब्दियो से चली आ रही इस निकृष्ट वृत्ति ने वतमान युग म विकट रूप धारण कर लिया था। गाधी जी इसके निराकरण द्वारा सामाजिक शुद्धि के लिए क्रियाशील थे जिससे राष्ट्रवाद का समुचित विकास सम्भव हो सके।

हरिकृष्ण प्रेमी क एतिहासिक नाटक रक्षा-बधन म भी प्रच्छन्न रूप स देश के नैतिक पतन की ओर एकाध स्थलो पर इगित किया गया है। इस नाटक म धनदास लेखक के अपने युग के नतिक आदर्शों से च्युत धनिक व्यापारी वग का प्रतीक है। वह देश-कल्याण की अपेक्षा अपने ही लाभ की बात सोचता है—जो ज्यादा कीमत देगा उसी के हाथ माल बेचेंगे। देशी विदेशी का प्रश्न इस वग के सम्मुख महत्व नही रखता था।

देश-जीवन के आध्यात्मिक नतिक पतन के चित्रण हिन्दी साहित्य म अप्रत्यक्ष एवं प्रच्छन्न रूप से ही अधिकतर लिए गए हैं।

राजनीतिक दुदशा

इस युग के नाटको म राजनीतिक दुदशा का चित्रण भी प्रच्छन्न साकेतिक अथवा प्रतीकात्मक शैली में मिलता है। जमनादास मेहरा न अवश्य पजाब केसरी नामक राजनीतिक नाटक में अपने युग की विषम राजनीतिक परिस्थितियों, आदोलनों साइमन कमीशन के बहिष्कार आदि का वणन किया है।

उग्र जी का महात्मा ईसा नाटक प्रतीकात्मक शैली म देश की युगीन राजनीतिक दुदशा का विशद चित्र उपस्थित करता है। महात्मा ईसा वस्तुत महात्मा गाधी हैं और उनके युग की राजनीतिक अवस्था प्रच्छन्न रूप मे भारत की विदेशी साम्राज्यान्तगत दुदशाग्रस्त स्थिति। महात्मा ईसा के देश के समान इस देश में भी सत्ताधारी शासक दल अत्याचार का डमरू बजाकर ताडव नृत्य कर रहा था[2] जिसे रोकने के लिए महात्मा ईसा की भाति गाधी जी का जन्म हुआ था। इस नाटक म हेरोद की निरकुशता अत्याचार अनाचार आदि भारत म विदेशी शासको के दुव्यवहार का प्रतिबिम्ब है। हेरोद के समान विदेशी शासकों की भी भारतीय प्रजा के साथ यही नीति थी— राजा के लिए कोई भी कम पाप नही। राजा पाप और पुण्य का नियन्ता है। जैसे ससार की सभी वस्तुओ का भोक्ता मनुष्य है क्योंकि परमात्मा ने उसे सबका सम्राट बनाया है—उसी प्रकार मनुष्यों का सम्राट्

---

१ जयशकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० ७७
२ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा प० ८१

भी अपनी प्रजा के भाग्य का भाग स्वेच्छा से कर सकता है।[1] शासक एवं दरबारी सम्राट के कृपापात्र थे, जिनके मतानुसार राजा की आज्ञा मानना प्रजा का कर्तव्य था, चाहे शासक धर्म मन्दिर को वेश्या भवन बना दें अथवा प्रजा के सिर पर राजस्व कर का बोझ लाद दें। शासक द्वारा किए गए अत्याचार भारत में अंग्रेजी शासन व्यवस्था में नौकरशाही द्वारा किए गए अत्याचारों का प्रतिरूप है। बड़े बड़े पद और उपाधियों का लालच देकर प्रजा द्वारा जघन्य से जघन्य कार्य करवाए जाते थे।[2] राष्ट्रीय उत्थान के लिए अग्रसर व्यक्तियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। महात्मा ईसा द्वारा असत्य एवं अन्याय के निराकरण के लिए किया गया अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन है क्योंकि इस नाटक की रचना आन्दोलन काल में हुई थी। असहयोग आन्दोलन में विदेशी शासकों द्वारा जिस नृशंस एवं अन्यायकारी दमन नीति से काम लिया गया था उसका भी प्रच्छन्न रूप से वर्णन मिल जाता है। असहयोगी सत्याग्रहियों पर कोड़े लगवाए गए थे। औरतों और बालकों पर अत्याचार किया था, सिपाहियों ने औरतों की इज्जत लेने में भी संकोच नहीं किया था। उग्र जी ने सत्ताधारियों के काले कारनामों का वर्णन इन शब्दों में किया है— सो तो ठीक है प्रभो! परन्तु इन सत्ताधारी यहूदियों का हृदय काले बादलों से भी काला वज्र से भी कठिन तथा मृत्यु से भी भयंकर है।[3]

देश का यह दुर्भाग्य था कि शासकों के भय से अथवा स्वार्थ साधन [illegible] होकर भारतीय पूंजीपति जमींदार आदि राष्ट्रीय चेतना का विरोध [illegible] महात्मा ईसा नाटक में राजनीतिक दुर्दशा के इस रूप का भी [illegible] शासकों ने भारतवासियों को शराब पीना चापलूसी करना आदि [illegible] का चस्का लगवा कर उनकी मानसिक अवस्था विकृत कर दी था। [illegible] निर्धन व्यक्तियों को छल द्वारा फोड़ कर सत्याग्रह को [illegible] प्रच्छन्न रूप से इस नाटक में इन सबका वर्णन मिलता है।[4] [illegible] को राजद्रोह ईश्वर निन्दा शान्ति भंग आदि अपराध [illegible] था। पराधीन भारत में न्यायालय और विचारपति [illegible] इस नाटक में महात्मा ईसा कहते हैं— मैं क्या कहूं [illegible] और रक्षक ही भक्षक—वहाँ पर क्या कहा जा सकता है [illegible] को अदालत मानता हूं और न हेरोद को सम्राट—[illegible]

१—बेचन शर्मा 'उग्र' महात्मा ईसा पृ० ५६

२ वही पृ० १५५

३ वही पृ० १४३

४ वही पृ० १७७

५ वही पृ० १५१

नही कहना है।[1] गांधीजी भी इसी कारण न्यायलय को निरर्थक मानते थे और ऐसा ही बयान सत्याग्रही नदी के नाते आंदोलन के उपरान्त दिया था। शासक वर्ग और न्यायालय की स्वेच्छाचारिता का वर्णन डेविड ने अधिक यथार्थ शैली मे किया है— इसे कहते हैं स्वेच्छाचार। अधिकार का दुरुपयोग का ऐसा ज्वलन्त उदाहरण संसार के इतिहास मे खोजने से भी न मिल सकेगा। ।[2] इस नाटक के वक्तव्य म स्वय लेखक ने लिखा है— मेरे हृदय म आग सुलग रही थी उसे ही मैंने इस नाटक के रूप म फूक दिया है। यह आग पराधीनता के अभिशाप की आग है जिसके प्रकाश मे भारत का अतीत-गौरव चमक उठा है।

जयशकर प्रसाद के नाटकों म युगीन राजनीतिक दुदशा का चित्रण ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम स साकेतिक रूप म हुआ है। उन्होंने अपने अधिकांश नाटकों म गौरव युक्त अतीत सस्कृति इतिहाससम्मत योग्य शासक उनकी शासन पद्धति एव राजनीतिक आदर्शों से सयुक्त कथानक प्रस्तुत कर पाठक वर्ग को अपनी राजनीतिक पराधीनता एव दुदशा के मूल कारणो की ओर से विक्षुब्ध कर उनके निराकरण के लिए कर्म करने की प्रेरणा दी है। प्रच्छन्न एव अप्रत्यक्ष रूप म इनके नाटक देशवासियो को विदेशी शासन पद्धति उनकी कुटिल नीति तथा अत्याचारो से मुक्त होने के लिए उत्साहित करते हैं। प्रसाद जी के अजातशत्रु राज्यश्री 'चन्द्रगुप्त स्कदगुप्त विशाख आदि नाटकों म राजनीतिक उथल पुथल के चित्र मिलते हैं। इसका यह कारण है कि स्वय प्रसाद जी का युग राजनीतिक दृष्टि से शान्तिपूर्ण नही था। अजातशत्रु नाटक म अजात अराजक स्वच्छन्द अन्यायी और अत्याचारी राजा का प्रतीक है। प्रजा की रक्षा की अपेक्षा उन पर आतक जमा कर राज्य करना चाहता है। अग्रेजी शासक वर्ग का भारतीय प्रजा के साथ यही व्यवहार था। चन्द्रगुप्त नाटक म चाणक्य एव चन्द्रगुप्त अत्याचारी राजा नन्द और विदेशी शक्ति के आक्रमण से राष्ट्र का उद्धार करते हैं ? राज्यश्री नाटक मे भी षडयन्त्र विद्रोह रक्तपात एव सघर्ष का दिग्दर्शन कराया गया है। यह देश की युगीन स्थिति थी। 'अजातशत्रु' नाटक म अजात और देवदत्त सभ्य गणों की परिषद म जिस वाक् चातुरी से वृद्ध जना को अपनी ओर कर लेते हैं प्राय उसी वाकचातुरी से अग्रेजी शासकों ने भी प्रतिष्ठित एव सम्माननीय देशवासियो को प्रजा-वत्सलता के नाम पर मूक बना लिया था। विशाख नाटक म राजा नरदेव शासक वर्ग के पतन का प्रतीक है— हा जो विपत्ति म आश्रय है जो परित्राण है वही यदि विभीषिकामयी कृत्या का रूप धारण करे तो फिर क्या उपाय है। राजा के पास प्रजा न्याय कराने के लिए जाती है किन्तु जब वही अन्याय पर आरूढ़ है तब क्या किया जाय। प्रसाद

१ बेचन शर्मा उग्र' महात्मा ईसा पृ० १७५
२ वही पृ० ७७
३ जयशंकर प्रसाद विशाख पृ० ७८

जी के सभी नाटकों में उनके अपने युग की राजनीतिक दुर्दशा प्रतिध्वनित हो रही है।

इस युग के अन्य नाटककारों ने प्रसाद जी का अनुकरण किया है। अन्य ऐतिहासिक नाटकों में भी भारतीय इतिहास के वीर पुरुष एवं नारी चरित्रों की प्रतिष्ठा की गई है। इतिहास के माध्यम से वर्तमान राजनीतिक दुर्दशा की समस्या दिखाई गई है। अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटक हैं— बद्रीनाथ भट्ट का दुर्गावती नाटक, उदयशंकर भट्ट के विक्रमादित्य और दाहर अथवा सिंध पतन नाटक, बाबू लक्ष्मीनारायण का महाराणा प्रताप का देशोद्धार नाटक, हरिकृष्ण प्रेमी का रक्षा बंधन नाटक, सुदर्शन का जय पराजय नाटक। इन नाटकों के मूल में अवस्थित संघर्ष लेखकों के अपने युग का राजनीतिक संघर्ष है जो भारतीयों द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के हेतु किया जा रहा था।

अकबर विदेशी साम्राज्यवाद का प्रतीक है जो फूट डलवा कर देश म राज्य करना चाहता है। राजपूतो मे फूट डलवा कर शक्तिसिंह को प्रताप के विरुद्ध अपने पक्ष म मिला कर अकबर ने जिस कुशल राजनीति अथवा कूटनीति का परिचय इस नाटक म दिया है वह वस्तुत अग्रजी शासन की नीति थी। अकबर कहता है— जाओ बेवकूफ बहादुरो जाओ ! लड़ो खूब लड़ो बेइज्जती पाने के लिए लड़ो गुलामी को गले लगान के लिए जान लड़ाओ ! और अकबर ! अकबर आराम करेगा ! लोहो से लोहा को लड़ाकर फूलो की खुशबू लेगा—नवरोज के मेले के मजे देखेगा।[1] राष्ट्रीयता और स्वाभिमान को विदेशी राज्य में विद्रोह समझा जाता था।[2]

सुदर्शन द्वारा लिखित जय पराजय नाटक म राजपूतो की आपसी फूट, मेवाड म चल रहे षडयन्त्र विद्वेष आदि युगीन बातें हैं। अग्रेजी शासन काल म देश के अन्तगत कई स्वतन्त्रता विरोधी शक्तियां—षडयन्त्र विद्वेष भावना आदि काम कर रही थी। इस नाटक म भी प्रच्छन्न रूप स अपने अपने युग की राजनीतिक दुदशा की ओर सकेत किया गया है। अनघ नामक गीतिनाट्य म मथिलीशरण गुप्त ने अप्रत्यक्ष रूप से अपन युग की राजनीतिक दुदशा की ओर इगित किया है। मघ दुदशा क निराकरण के लिए प्रयत्न करता है।

बाबू जमनादास मेहरा ने पजाब केसरी' नाटक म अग्रेजी काल म राजनीतिक पराधीनता के कारण देश-दुदशा का प्रत्यक्ष चित्र खीचा है। देश की निधनता तथा पाठशालाओ की दुदशा का कारण पराधीनता था।[3] अकाल पीड़ित भारतवासियो को अवसर पर सरकार द्वारा सहायता नही दी जाती थी। कांग्रेस भूकम्प के समय पजाब केसरी तथा स्वयसेवको न पीड़ितों की सहायता की थी। सरकार तो उनकी असहाय अवस्था स अपना स्वाथ साधन करना चाहती थी। राष्ट्रीय काय क्रम अहिंसात्मक आन्दोलन का दमन हथियार द्वारा किया जा रहा था।[4] इस नाटक में जमुनादास मेहरा ने निर्भीक स्पष्ट कटु शब्दो मे अग्रेजी शासन की निन्दा की है—

माश कर डाला इन्हीं मोचों न सारे देश का।
बीज बोया हाय ! भारत में इन्हीं न द्वेष का।
ठोकरें खा बूट की सभलगे ये झख मार कर।
सब मजा मिल जायेगा इनको विदेशी वेश का॥

१ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा पृ० ३५
२ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा पृ० ३६
३ जमनादास पजाबकेसरी प० १४
४ वही प० ५७
५ वही प० ६६

संगठन हो गर नहीं मांगी मिलेगी भीख भी।
शीघ्र ही आ जायगा इनका समय भी शेष का॥
पाप का बेड़ा सदा भरपूर होकर डूबता।
देश घाती को मिलेगा फल हमारे क्लेश का॥[1]

जमुनादास मेहरा का 'पंजाब केसरी नाटक संस्कृत नाट्य शैली पर लिखा कलात्मकता एवं भाषा की दृष्टि से अधिक उच्चकोटि का नाटक न होने पर भी राष्ट्रीय भावना विषय की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण नाटक है। यह नाटक अपने युग का सच्चा परिचायक है। देशवासियों को उत्साह और देशभक्ति से भर देने के लिए इसमें पर्याप्त शक्ति है।

हरिकृष्ण प्रेमी के ऐतिहासिक नाटकों में भी प्रच्छन्न रूप से युगीन राजनीतिक परिस्थिति का विवेचन मिलता है। 'रक्षा-बंधन नाटक' में बहादुरशाह और मुल्लू खां की बातचीत में अंग्रेजी शासकों की स्वार्थपूर्ण कुटिल नीति का उद्घाटन होता है। जब बहादुरशाह की सहायता के लिए पुर्तगाली आये तो मुल्लू खां कहते हैं—

मुल्लू खां—मैं इस फिरंगी को नहीं चाहता।

बहादुर—क्यों सूबेदार?

मुल्लू खां—जिस शख्स के हाथ में तलवार हो उससे दोस्ती करने में खतरा नहीं लेकिन जिसके हाथ में तराजू भी हो और तलवार भी उससे दोस्ती करना अपने गले में फांसी लगाना है।

बहादुर—क्या?

मुल्लू खां—क्योंकि तलवार जब सर पर तनती है तो साफ दिखाई देती है लेकिन तराजू कब हमारा सब कुछ डंडी के पासंग में मार ले जाती है कुछ पता नहीं चलता।

बहादुर—है तो ठीक। जिन पुर्तगीजों ने गुजरात के पुत्तन पॅट मंगलोर थाना, सोलाजा और मुजफ्फराबाद को जलाकर खाक किया है और चार हजार आदमियों को गुलाम बना कर विलायत भेजा वे आज मेरी मदद को क्यों आए हैं इसमें जरूर कुछ राज है।

मुल्लू खां—राज यही है कि वे हिन्दुस्तान की बादशाहत चाहते हैं। इधर आपको राजपूतों से लड़ाकर कमजोर कर देंगे उधर दिल्ली का तख्त डावांडोल है ही फिर उन्हें अपना उल्लू सीधा करने में देर न लगेगी।[2]

इस बातचीत में लेखक ने युगीन राजनीतिक परिस्थिति का परिचय दिया है। अंग्रेजी सरकार की तराजू हमारा सब कुछ उसी के पासंग में मार कर ले जा रही थी। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच फूट डालकर दंगे करवा कर और दोनों शक्तियों को क्षीण करके अपना स्वार्थ-साधन कर रही थी। उनकी

---

१ जमनादास मेहरा पंजाब केसरी पृ० ७४
२ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बंधन पृ० २५

कुत्सित नीति का ही परिणाम मुस्लिम-लीग जैसी मुसलमानों की कट्टर साम्प्रदायिक संस्था थी। अधिकांश मुसलमान हिन्दुओं के प्रति द्वेष भाव से भर कर अंग्रेजी सहायता के बल पर राष्ट्रीय शक्ति क्षीण कर रहे थे। इस समय भारत की राजनीतिक स्थिति जितनी विकट थी वैसी कदाचित् ही किसी अन्य देश की रही होगी।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि प्रसाद जी ने हिन्दी साहित्य में उच्चकोटि के साहित्यिक एवं सांस्कृतिक नाटकों द्वारा अपने युग के संघर्ष को मूर्त रूप प्रदान किया है। उनके युग की परिस्थितियाँ की स्पष्ट झलक कलात्मकता साहित्यिकता ऐतिहासिकता भावुकता, दार्शनिकता एवं मानवता के आवरण में यत्र तत्र मिल जाती है। बदरीनाथ भट्ट उदयशंकर भट्ट हरिकृष्ण प्रेमी सुदर्शन आदि के नाटकों में युगीन राष्ट्र संघातक शक्तियों—फूट स्वार्थ-परता संघर्ष आदि पर प्रकाश डाला गया है। उग्रजी ने महात्मा ईसा नाटक में ईसाई धर्मानुरागी शासकों की नृशंसता स्वार्थ-परता पर व्यंग्य कसा है। उनके इस नाटक में यह स्पष्ट ध्वनित है कि ईसा जैसी महान आत्मा के अनुयायियों ने भारत को पराधीन बनाकर और जनता पर अत्याचार करके अपने धर्म का अनादर किया है। इस युग के नाट्य साहित्य में भारत की राजनीतिक दुर्दशा का चित्रण प्रच्छन्न सांकेतिक अथवा प्रतीकात्मक शैली तथा विभिन्न नाट्य रूपों में मिलता है। प्रथम रूप से चित्रण करने वाले नाटक इने गिने ही हैं। इन्हीं नाटकों में राजनीतिक दुर्दशा के प्रच्छन्न चित्रण का कदाचित् यह कारण था—अंग्रेजी शासकों की दमन नीति अधिक कठोर हो गई थी इसलिए शासन सम्बन्धी आलोचना अधिक सम्भव नहीं थी। ऐसे नाटकों का प्रदर्शन भी नहीं किया जा सकता था और रंगमंच पर प्रदर्शन नाटक का आवश्यक तत्त्व है।

आर्थिक संकट

भारतीय इतिहास से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटकों में आर्थिक संकट के चित्र प्रायः नगण्य हैं। इसका कारण यह है कि अंग्रेजी साम्राज्य के पूर्व भारत कभी भी आर्थिक दृष्टि से विपन्न नहीं हुआ था। वह अपने धन धान्य के लिए विश्व विख्यात था। उग्रजी के महात्मा ईसा नाटक में अवश्य प्रच्छन्न रूप से आर्थिक संकट का उल्लेख मिलता है। इस नाटक में यह दिखाया गया है कि जनता सत्ताधारियों से आतंकित थी लेकिन उसमें विरोध का साहस नहीं था। इसका कारण यह था कि शासक के अनाचार के विरोध का दण्ड था भूख से मर जाना।[1]

बाबू जमनादास मेहरा के पंजाब केसरी नाटक में स्वर्गीय लाला लाजपत राय जी के जीवनादर्शों के साथ देश के आर्थिक संकट का भी वर्णन किया गया है। विदेशी शासन में देश निर्धनता के साथ दैवी विपत्तियों का भी कोपभाजन बना हुआ था।[2] लेखक ने अकाल पीड़ितों की दशा का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है—

---

१ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० ८३
२ बाबू जमनादास मेहरा पंजाब केसरी पृ० १४

दिया ध्यान एक धर्मी ने ना दानी ने नहिं दाता ने।
अन्न दिया पुत्री देकर हा! बड़े बड़े गुणज्ञाता ने ॥
विक धन कुल वधुओं के बहनों को बेचा भ्राता ने ॥
पति ने बेचा पत्नी को बालक को बेचा माता ने ॥
मरे हजारों बिना अन्न, फिर भी नहीं देखा त्राता ने।
करता हो सब करता है यह किये विधान विधाता ने ॥[1]

लाला लाजपतराय तथा अन्य राष्ट्रभक्तों ने अकाल पीड़ित धनविहीन जनता को सहायता की थी। भारतीय धनिक वर्ग से राष्ट्रीय न्याय भिक्षा मांगी थी।[2] पंजाब केसरी ने नौकरशाही के अत्याचारों से गरीब जनता को मुक्त करने का प्रयत्न किया था— भाइयो ? आओ मैं चलता हूं तुम पीछे-पीछे आओ। ग्राम ग्राम में चलकर वहां उन भूखे भाइयों का अन्न से पेट भराओ। हम किसी तरह धन रहेंगे तो न्याय की दुहाई मचायेंगे और ईश्वर से प्रार्थना करेंगे कि हम न्याय प्राप्त हों।[3] वास्तव में भारत की आर्थिक दशा अत्यधिक करुण थी।

हिन्दी नाटकों में सामाजिक दुरवस्था का चित्रण

इस युग के हिन्दी साहित्य में सामाजिक दुर्दशा के प्रतिरूप नाटकों की संख्या अति अल्प है। प्रायः ऐतिहासिक नाटकों के माध्यम से अतीत गौरव और इतिहास की पृष्ठभूमि में नवीन सामाजिक समस्याओं की ओर संकेत किया गया है। लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अवश्य युग जीवन से समस्याएं लेकर समस्या नाटकों की परम्परा का प्रचलन प्रारम्भ किया था। कतिपय एकांकी नाटक भी सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखे जाने लगे थे।

महात्मा ईसा नामक नाटक में उग्रजी ने रंगाजर के चरित्र चित्रण में अपने युग के महन्तों के पतित जीवन और धार्मिक पाखण्ड का उच्छेद किया है। भारतीय सामाजिक धर्म-व्यवस्था में सत्यता की अपेक्षा मिथ्यात्व अन्धविश्वास और पाखण्ड बढ़ गया था। उसकी ओर प्रच्छन्न रूप में महात्मा ईसा के देश की सामाजिक स्थिति के चित्रण द्वारा संकेत किया है।[4] अतः यह नाटक प्रतीकात्मक शैली में भारत की सामाजिक दुर्दशा के कुछ पक्षों पर प्रकाश डालता है। उदयशंकर भट्ट ने दाहर अथवा सिंध पतन नाटक में सामाजिक रूढ़ियों अन्धविश्वास और धार्मिक मिथ्यात्व का निरूपण ऐतिहासिक कथा के माध्यम से किया है।[5] सिंध के महाराजा दाहर

१ बाबू जमनादास मेहरा पंजाब केसरी पृ० ३६
२ वही पृ० ४१
३ वही पृ० ५१
४ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० ३८
५ 'हमारी जातीयता में धर्मवाद की निकम्मी थोथी रूढ़ियों ने हमें विवेक से गिरा दिया मनुष्यत्व से खींच कर दासता भ्रान्ति विद्रोह विवशशून्यता के गढ़े में ले जाकर पटक दिया।'

उदयशंकर भट्ट दाहर अथवा सिंध पतन अपने पाठक से

अत्यन्त उदार वीर एव धम सहिष्णु व्यक्ति थे। उन्होंने शूद्रों को ब्राह्मण वग के समान पद दिया था। अत उच्च वग धम मिथ्यात्व तथा प्रतिहिंसा की भावना से भर कर राज पुरोहित द्वारा निषेध किये जाने पर स्वय राजा युद्ध के लिए न जाकर राजकुमार को भेजते हैं। इस अधविश्वास का अन्तिम परिणाम विदेशियों की विजय म घटित होता है। इस नाटक द्वारा भट्ट जी ने अपने युग में सवण एव अवण म बीच बढते भेदभाव की ओर आकृष्ट कर निम्न वग को अन्य वर्गों के समान स्थान देने की प्रेरणा दी है। इस नाटक के सदृश वतमान काल म भी ब्राह्मण अथवा उच्च वग की मनोवृत्ति अत्यन्त सकुचित थी, व नीच जातियों को अधिकार देना धम प्रतिकूल मानते थे।[1] गांधीजी समाज म प्रविष्ट धम के मिथ्यात्व पाखंड भेदभाव के दुष्परिणामों से परिचित थे। इसी कारण इन्होंने इस मनोवृत्ति के विरुद्ध आन्दोलन सगठित किया था।

हिन्दी के प्रमुख नाटयकार जयशकर प्रसाद ने अपने नाटकों म अतीतकालीन भारत के उज्ज्वल पक्ष का चित्रण किया है। अत राष्ट्रीय जीवन के अभावात्मक पक्ष का सकेत मात्र ही उनके नाटकों मे मिलता है। सामाजिक दुदशा के भी स्थूल चित्र न खींच कर उस ओर इगित मात्र किया है। विशाख' नाटक म सामाजिक अनीति का वणन मिलता है। मठो म महन्त आदि अनतिक जीवन व्यतीत करते थे और शासक वग म भी नतिकतापूण आचरण का अभाव था। इससे समाज की दरिद्र कन्याओं का जीवन सकटापन्न हो गया था। यह प्रसाद जी के अपने युग के सामाजिक पतन का प्रतिबिम्ब है। उनके कतिपय नाटकों मे हिन्दू समाज की विधवा स सम्बन्धित समस्या को भी लिया गया है। ध्रुवस्वामिनी राज्यश्री और अजातशत्रु मे विधवाओं की समस्या जीवन और आदश को ढूढा जा सकता है। प्रसाद जी वधव्य को समाज के लिए अभिशाप मानते हैं। भारतीय विधवा नारी के प्रति समाज की उपेक्षा को दृष्टि म रख कर ध्रुवस्वामिनी नाटक म विधवा विवाह को इतिहास सम्मत तथा शास्त्र विहित सिद्ध किया गया है। विधवा की दुदशा क चित्रण की अपेक्षा समस्या के निदान की ओर नाट्यकार की विशेष दृष्टि है। राज्यश्री नाटक मे राज्यश्री पति की चिता से उतर कर दश सेवा के लिए वधव्य वेदना सहती है। अजातशत्रु' नाटक म भी प्रसाद जी ने विधवा मल्लिका का उदात्त एव महान् रूप प्रस्तुत किया है। वह चाहती तो पति के साथ भस्म हो सकती थी लेकिन मानवता की सेवा के लिए वह जीवित रहती है। प्रसाद जी ने राज्यश्री और मल्लिका जसी महान् विधवा नारियों के चरित्रांकन द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि समाज जिस विधवा को अभिशाप समझता है वह अभिशाप नहीं वरदान बन सकती हैं। ध्रुवस्वामिनी नाटक म प्रसाद जी ने एक अन्य समस्या अनमेल विवाह की ओर भी इंगित किया है। रामगुप्त जैसे क्लीव एव विलासी राजा के साथ सुन्दरी वीर नारी ध्रुवस्वामिनी का विवाह नितान्त

१ उदयशकर भट्ट बाहर अथवा सिन्ध पतन पृ० ३४

प्रसगत था। कभी-कभी ऐसा विवाह का परिणाम अत्यन्त भयकर होता है और अन्त विद्रोह को जन्म देता है क्योंकि नाटक म प्रणाक एव कायर रामगुप्त अपनी पत्नी को शकराज के पास भेजने को तयार हो जाता है। अनमल विवाह प्रसाद जी के अपने युग की विषम समस्या थी।

जयशंकर प्रसाद ने अजातशत्रु नाटक म वतमान युग के समाज म व्याप्त सवण अवण जसी भयंकर समस्या पर भी प्रकाश डाला है। सवण अवण के सघष को रानी वासवी और विरुद्धक म मूतमान किया है। रानी दासी की पुत्री है अत अन्य अपमानित होती है। इस अपमान ने उसके हृदय म विद्रोह की अग्नि भडका दी है।[1] ब्राह्मण कन्या मागधी का वेश्यावृत्ति अपनाना सामाजिक ह्रास का सूचक है। प्रसाद जी के प्राय सभी नाटकों का अन्त प्रभावशाली होता है। राष्ट्रीय विघटन म सहायक शक्तियों की हार और निर्माण शक्ति की विजय होती है। प्राचीन सास्कृतिक आदर्शों के आधार पर राष्ट्र का सास्कृतिक पुनर्निर्माण करना उद्देश्य है। हरिकृष्ण प्रेमी के शिवा-साधना नाटक म शिवाजी द्वारा स्पष्ट किया है कि वर्ण और जातिभेद स्वराज्य सुख और शान्ति में बाधक है।[2] लेखक के मतानुसार साम्प्रदायिकता का मूल कारण तराजू हाथ म लेकर आने वाले विदेशी शासक थे। प्रेमी जी मुसलमानों को भारत की सम्पत्ति मानते थे और उन्हें पूरा विश्वास था कि मुसलमान भारत को ही अपनी जन्मभूमि मान कर एक राष्ट्रीयता के सूत्र म गुथ जावेंगे लेकिन साथ ही आशंका भी थी कि ये विदेशी जातियां इन दोनों महान् संस्कृतियों को कभी मिलकर एक न होने देंगी।[3]

सामाजिक समस्याओं को लेकर लक्ष्मीनारायण मिश्र ने समस्या नाटकों को जन्म दिया। प्रसाद की भांति अतीत-गौरव गान गाना इनकी प्रतिभा को, अपने युग तथा जनता की दृष्टि से न्याय्य नहीं लगा। डा० देवराज उपाध्याय ने मिश्र जी की नाटयकला के सम्बन्ध म लिखा है— प्रसाद जी चाहते हुए भी आधुनिक समस्याओं के साथ न्याय नहीं कर सके। उनकी प्रतिभा प्रेरणा के लिये सदा अतीत का मुह जोहती रही जिससे वे पूर्ण रूप से मुक्त नहीं हो सके। पर मिश्रजी हिन्दी के प्रथम नाटककार हैं जो देह झाड कर नवीनता के रगमच पर आ गये और उसी का जयोच्चार करने लगे। सन्यासी (स० १९८८) नाटक म मिश्रजी ने सह शिक्षा की समस्या को लिया है सिंदूर की होली (स० १९८९) मे आधुनिक मनुष्य की धनलिप्सा के कारण उत्पन्न जघन्य-वृत्ति का वणन किया है। भारतीय समाज मे एक ओर भारतीय सस्कार, सास्कृतिक आचार विचार थे और दूसरी ओर पश्चिमी

---

१ जयशंकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० ५६ ५७
२ हरिकृष्ण प्रेमी शिव साधना पृ० १७
३ वही पृ० १६१
४ डा० नगेन्द्र—सम्पादक सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ

शिक्षा से उत्पन्न संस्कार विचार आदि। इन दोनों का संघर्ष तथा उसमे उत्पन्न अनेक समस्याएं भारतीय शिक्षित जीवन को ग्रस्त कर रही थी। इनका चित्रण ही मिश्र जी का लक्ष्य है। यह समस्याए सम्पूर्ण राष्ट्र से सम्बन्धित नहीं थी केवल एक वर्ग विशेष से ही इनका सम्बन्ध था। अतः राष्ट्रवाद के प्रभावात्मक पक्ष निरूपण की दृष्टि से इन नाटकों का अधिक महत्त्व नही है।

इसी समय सामाजिक समस्याओं को लेकर भुवनेश्वर प्रसाद ने कुछ एकांकी नाटक भी लिखे जो इनकी पुस्तक कारवां में संग्रहीत हैं। प्रतिमा का विवाह (१९३२ ई०) में उन्होंने प्रेम और विवाह का रूप स्पष्ट किया है। आज के समाज मे शिक्षित स्त्रियाँ प्रतिष्ठा चाहती हैं मातृत्व नही श्यामा एक वैवाहिक विडम्बना (१९३२ ई०) में अनमेल विवाह की समस्या है। इनके एकांकी नाटकों में पश्चिमी सभ्यता संस्कृति से प्रभावित शिक्षित उच्चवर्ग की समस्याओं को ही लिया गया है। राष्ट्र के विभिन्न सामाजिक वर्गों की समस्याओं का विवेचन इस युग के एकांकी नाटकों में नहीं मिलता।

साम्प्रदायिकता

हिन्दी नाट्य साहित्य में साम्प्रदायिकता का वर्णन भी प्रच्छन्न रूप में हुआ है। हिन्दू काल से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटकों में यवनों का विदेशी शक्ति के रूप में लिया गया है क्योंकि तब तक वे इस देश में बस कर इसका अंग नहीं बन पाये थे। मुस्लिम काल से सम्बन्धित ऐतिहासिक नाटकों में हिन्दुओं और मुसलमानों को धर्म के आधार पर अलग रखा है। दोनों जातियों के बीच धार्मिक कट्टरता विद्वेष प्रतिहिंसा की ध्वनि का स्पष्ट अभिव्यक्ति है। बदरीनाथ भट्ट का दुर्गावती नाटक जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का प्रताप प्रतिज्ञा नाटक तथा लक्ष्मीनारायण का महाराणा प्रताप का देशोद्धार नाटक इसके निदर्शन हैं।

दुर्गावती नाटक में वीर रानी दुर्गावती के उज्ज्वल चरित्र के सम्मुख अकबर अथवा अन्य मुसलमान चरित्रों का अपेक्षा अधिक कालिमा से युक्त दिखाया गया है इसी प्रकार प्रताप प्रतिज्ञा अथवा महाराणा प्रताप का देशोद्धार नाटक में महाराणा प्रताप के चरित्र की विराटता के वर्णन में ही नाट्यकार ने अपनी समस्त शक्ति लगा दी है जिनके सम्मुख मुसलमान पात्र अथवा शासकों की आत्मीयता नहीं था सकने। प्रताप प्रतिज्ञा नाटक में प्रच्छन्न रूप में अकबर अंग्रेजी साम्राज्यवाद का प्रतीक है। शक्तिसिंह उस जन विशेष का प्रतीक है जो स्वार्थ एवं प्रतिशोध भावना से भर कर विदेशी सहायता के बल पर राष्ट्र भक्त प्रताप के विरोधी बन राष्ट्रीयता की जड़ काट रहे थे। मानसिंह भारत को गुलामी की जंजीरों में जकड़ा विदेशियों को 'जूठन खाने वाले' देशद्रोही हैं।[1] यदि इस नाटक को प्रतीकात्मक शैली में लिया गया माने तो यह अपने युग की राजनीतिक परिस्थितियों की ओर संकेत करता

---

१ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा पृ० २७

हुआ साम्प्रदायिकता से मुक्त मानते प्रयों में राष्ट्रीय नाटक कहा जायगा लेकिन प्रत्यक्ष रूप से इन नाटकों से यही ध्वनित होता है कि यह विरोधी हैं प्रत्यायी हैं, वे मानवीयता के प्रेरक नहीं बन सकते। ये नाटककार हिन्दू संस्कृति हिन्दू धर्म और हिन्दू वीर चरित्र के प्रति ही श्रद्धान्वित है। ये साम्प्रदायिकता के विघातक रूप को दिखाकर उसके निराकरण का प्रयास न कर वरन् इनसे साम्प्रदायिकता की भावना बढ़ना ही है।

हरिकृष्ण प्रेमी ने हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक एकता का प्रयास किया है। और राष्ट्रवाद के विकास की दृष्टि से रखकर साम्प्रदायिकता के घातक प्रभाव को दिखाया है। 'रक्षा-बन्धन' नाटक में बहादुरशाह मुसलमानों का प्रतीक है। यह प्रतिहिंसावश बदला लेने के लिए मेवाड़ से युद्ध करना चाहता है। अब मुसलमान विदेशी नहीं थे वे इसी देश के अंग बन गये थे। बहादुरशाह इस तथ्य से परिचित है लेकिन केवल विद्वेष की भावना से प्रेरित होकर फिरंगी की सहायता से मेवाड़ को विनष्ट करने के लिए सन्नद्ध होता है। वह जानता है कि फिरंगी से दोस्ती करना अपने गले में फांसी लगाना है।[1] शाह दास मोलिया उसे उसकी भूल के सम्बन्ध में समझाते हुए कहते है—

भूलता है बहादुर! हिन्दुस्तान में रहने वाला मुसलमान भी हिन्दू है। क्या अपने भाइयों का खून बहाना चाहता है? जिस शाख पर बैठा है उसी को काटने पर क्या आमादा है?[2]

बहादुरशाह पर इस कथन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह फिरंगियों से सहायता लेकर मेवाड़ पर आक्रमण करता है। आलोच्य काल में भी साम्प्रदायिकता की अग्नि प्रबल होती जा रही थी। यद्यपि खाँ और हुमायूं जैसे उदारवृत्ति महान आत्मा मुसलमान कांग्रेस के साथ राष्ट्रीय उत्थान कार्य में लगे थे लेकिन बहादुरशाह जैसे संकीर्ण बुद्धि स्वार्थी एवं प्रतिहिंसा से प्रेरित मुसलमान प्रजा शासकों की सहायता लेकर विद्रोहाग्नि फैलाने में संलग्न थे। देश की सामयिक आवश्यकता को दृष्टि में रखकर प्रेमी जी ने यह नाटक लिखा है।

'दाहर अथवा सिन्ध पतन' में उदयशंकर भट्ट ने वर्ण भेद प्रान्त भेद आदि के दुष्परिणामों को दिखाया है। साम्प्रदायिकता अथवा प्रान्तीयता की जो संकीर्ण भावना देश की राष्ट्रीय भावना को आघात पहुँचा रही थी उसका प्रत्यक्ष चित्र यहाँ मिलता।

कथा-साहित्य में दुर्दशा के अनेक रूपों का चित्रण

कथा-साहित्य मानव जीवन के अधिक निकट है क्योंकि इसमें मानव जीवन के विभिन्न अंगों अथवा क्षेत्रों के यथातथ्य चित्रण का सुयोग रहता है। काव्य की अपेक्षा उपन्यास तथा कहानियों में समाज और जीवन की वि[illegible]

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा बन्धन पृ० २५
२ वही पृ० २७

होती है। अत हिन्दी उपन्यास एव कहानियो म युगीन देश दुदशा क सभी पक्षो चित्रण विशद् रूप मे मिलता है।

आध्यात्मिक तथा नतिक पतन का वणन

भारत क आध्यात्मिक नैतिक-पतन का वणन उपन्यास तथा कहानियो म सबस अधिक किया गया है। भारतीय समाज के पतन के इस रूप का विशद् चित्रण प्रेमचन्द सूयकान्त त्रिपाठी निराला विनोदशकर व्यास विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कमला चौधरी जयशकर प्रसाद आदि के उपन्यास तथा कहानियो म मिलता है। इनम भारतीय जीवन की विषमताओ का यथाथ चित्रण किया गया है।

भारतीयो के चारित्रिक पतन ने दुव्यसनो का आश्रय लिया था। वेश्यावृत्ति इसका प्रमुख साधन था। वेश्यावृत्ति ने कुष्ठरोग की भाति भारतीय समाज को विकलाग कर दिया था। इस अमानवीय कुत्सित घृणित वृत्ति क कारण देश क आध्यात्मिक नैतिक उच्चादर्शों को गहरा आघात पहुचा था। नारी को अपनी विला सिता-पूर्ति का साधन बनाने के लिए पुरुष वग न वेश्यावत्ति जसी घृणित एव गहित वृत्ति को प्रश्रय दिया था। प्रेमचन्द जी के सेवासदन उपन्यास की प्रमुख समस्या वेश्यावृत्ति है जिसके मूल म दहेजप्रथा जसी सामाजिक कुरीतिया एव झूठी प्रतिष्ठा काय करती लक्षित होती है।[1] समाज के प्रतिष्ठित कहलान वाले व्यक्तियो द्वारा वेश्याओ का आदर सम्मान तथा धार्मिक स्थानों पर उसका महत्व देखकर इस उपन्यास की महत्वाकाक्षिणी किन्तु परिस्थितियो से विवश नायिका सुमन पर प्रतिक्रिया होती है। समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन के कारण वेश्यावृत्ति जसी घृणित कुप्रथा ने नगर के सावजनिक स्थानो को अपना कायक्षत्र बना लिया था। सम्मान्य प्रतिष्ठित शक्ति सम्पन्न एव धनिक वग अपनी वासना पूर्ति की साधन इस वत्ति को मिटाने की अपेक्षा इस प्रश्रय दे रहा था। सूयकान्त त्रिपाठी निराला के अप्सरा उपन्यास मे अग्रेज अफसरो भारतीय राजाओ एव रईसो तथा भारतीय नौकरशाही के नैतिक पतन पर प्रकाश डाला गया है।[2] भारत क धनिक वग का पतन अपनी पराकाष्ठा पर पहुच गया था।[3]

प्रेमचद जी की रामलीला' जयशकर प्रसाद की चूडीवाली सुदशन की घोर-पाप' विनोदशकर व्यास की पतित प्रत्यावत्तन सुख' कहानिया वेश्यावृत्ति से सम्बधित आध्यात्मिक नतिक पतन पर प्रकाश डालती हैं। रामलीला' कहानी म प्रेमचन्द जी न हिन्दू समाज क कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों के मानसिक पतन का

१ प्रेमचद सेवासदन प० ६७

२ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अप्सरा प० १० ३६, १२७

३ वही प० १२६

४ प्रेमचन्द की सव श्रेष्ठ कहानिया पृ० ५६

चित्रण किया है जो रामलीला जसे धार्मिक पर्व पर भी धनप्राप्ति, स्वार्थ-साधन तथा वासनापूर्ति करने म सकुचित नही होते। धम के नाम पर ईश्वर की आरती म एक रुपया डालना लोगों को इष्ट न था किन्तु वेश्याओ के हावभाव पर मुग्ध होकर वे अशर्फिया दे डालते थ। राम लक्ष्मण और सीता का स्वाग करने वाले गरीब बालकों को राह खच भी नही दिया गया। जयशकर प्रसाद ने वेश्यावृत्ति का समस्त दोष सामाजिक रूढ़िवादिता को दिया है। उनके अनुसार वश्या के पास भी हृदय होता है और वह भी कुलवधू बनना चाहती है।[1] सुदशन की 'घोर-पाप' नामक कहानी म भी वश्यावृत्ति का मूल कारण धनिक वग की नतिक भ्रष्टता मानी गई है। मेहताबराय जसे सम्मानित तथा समाज म आचरण के लिए प्रसिद्ध व्यक्ति छिप कर वेश्याराधन करत हैं लेकिन प्रत्यक्ष रूप मे उसके प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं। विनोद शकर व्यास की 'पतित' कहानी म दिखाकर जसे पतित एव वासना की साधना करने वाले व्यक्तियो के कारण रागिनी जसी सदविचार और एकनिष्ठ प्रेम म पगी नारियाँ वश्यावृत्ति अपनाने को वाध्य होती है। सामाजिक कट्टरता इसका कारण है।[3] प्रत्या वतन कहानी मे व्यास जी ने युग की परिवर्तित स्थिति म वश्यावृत्ति के कारण पति द्वारा उपेक्षित नारी की नतिकता को भी असरक्षित दिखाया है। सुख कहानी में समाज के उच्चवर्ग का नैतिक पतन आर्थिक विपन्नता की स्थिति तक ले जाता है। धन सुख का मूल न होकर विलास का साधन है। अत दूसरे के सहारे मनुष्योचित जीवन व्यतीत करने म ही सुख है।[5]

विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक के मा उपन्यास मे श्यामनाथ का चरित्र नतिक पतन का दृष्टान्त है। वेश्याओं के यहां मनोरजन करना उसके जीवन का लक्ष्य था। कौशिक जी ने आदशवाद तथा देश के चारित्रिक उत्थान की भावना से प्ररित होकर यह उपन्यास लिखा है और ह्रासोन्मुख जीवन का यथाथ चित्रण किया है।

प्रेमचन्द विश्वम्भरनाथ शर्मा तथा सुदर्शन को एक ही परम्परा का कथा लेखक कहा जा सकता है। समाज सुधार की प्रेरणा से सचालित होकर उन्होंने वेश्यावृत्ति के कारण सामाजिक पतन के चित्र खीचे। जयशकर प्रसाद म भावना की प्रधानता है। निराला ने नैतिक पतन पर अवश्य प्रकाश डाला है किन्तु उनकी कहानियो का मूलाधार मानव हृदय की भव्यतम कोमल प्रवृत्ति प्रेम है। इनकी कहानियों म दार्शनिकता की मात्रा अधिक होने के कारण चारित्रिक पतन सीमाग्रस्त तक पहुच

---

१ जयशकरप्रसाद आकाश-दीप पृ० ११३
२ सुदशन तीथ यात्रा प० ३
३ विनोदशकर व्यास अस्सी कहानियां पृ० १६२
४ वही प २१६
५ वही प० १६६

पर ठहर जाता है और वया का अन्त ममार से निवृत्ति मे होता है। इनके मतानुसार इन्द्रिय सुख भोग की लालसा भारत की आध्यात्मिक नैतिक दुदशा का कारण है।

इन्द्रिय-सुख भोग की प्रबल इच्छा ने केवल व्यक्तिगत जीवन को ही विकृत नही किया था वरन् सावजनिक क्षेत्र धमस्थानो को भी विषाक्त बना दिया था। धम का सत्य स्वरूप भूल कर लोग बाह्याडम्बर धमकाड को ही धम समझने लग थे। प्रमचन्द के सेवासदन उपन्यास म वेश्या द्वारा मन्दिर मे सगीत प्रसाद जी के ककाल तथा तितली म तीथस्थान और धम के अड्डो पर व्यभिचार आदि का पर्दाफाश किया गया है। पुरातनता की रूढिवादिता के विरुद्ध प्रसाद जी का विरोधी स्वर अधिक प्रखर है। प्रयाग काशी हरिद्वार मथुरा तथा वृन्दावन जसे पवित्र तथा पुण्य स्थानो का जीवन उपन्यास म अकित है जहा जारज सतानो का अभाव नही है और जिनका स्वर लक्ष्य न रूढिगत सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओ पर कठोर प्रहार किया है और व्यक्तिवादी चिन्तन तथा व्यवहार को महत्व दिया है।[1] पुरुष समाज म नतिक आचरण का नही सम्पत्ति का आदर दिया जाता था। प्रसाद के ककाल उपन्यास मे श्री चन्द्र व मगलदेव प्रमचन्द के प्रेमाश्रम उपन्यास मे ज्ञानशकर वैयक्तिक दृष्टि स पतित होने पर भी सामाजिक दृष्टि स आदरणीय है।

भारतीय समाज क आध्यात्मिक नतिक पतन का प्रमुख कारण था विदेशी शासन व्यवस्था। जो शासन ही अन्याय अधम अत्याचार पर आधारित था, उसकी प्रजा म न्याय धम आचार नीति की आशा कम की जा सकती थी। पूजीवादी व्यवस्था और शासको की आचरण भ्रष्टता का ही परिणाम था कि ताल्लुकेदार जमीदार सेठ आदि धनिकवग के चारित्रिक पतन की सीमा नही रह गई थी। उनकी नतिक अनतिक उचित अनुचित धम अधम न्याय अन्याय की विवक बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। सूयकान्त त्रिपाठी निराला के अलका उपन्यास म समाज के उच्च एव धनिक वग के ताल्लुकेदार व नतिक पतन का वणन किया गया है। अग्रेजी शासन काल में यह वग सरकारी उपाधि प्राप्ति के लिये अनतिक एव घृणित कम करने से भी नही चूकता था। इस उपन्यास का मुरलीधर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उसके पिता मह ने सम्पत्ति प्राप्त की पिता न प्रतिष्ठा अब उसक लिए कोई दुरूह दुग विजय के लिए नही रह गया था[2] अत प्रतिष्ठा के लिए खिताब पाने का जो अचूक मन्त्र उनके सेक्रेटरी बाबू माहनलाल न दिया उससे देश की दुदशा की भयकरता पर प्रकाश पडता है—

पहले छुरी चम्मच काटा पकडा कर साहबी ठाट सें भोजन करना सिखलाया। फिर धीरे धीरे स्वास्थ्य क नाम पर शराब का नुस्खा रखा। फिर छिप छिपा कर सरकारी अफसरो के साथ भोजन करने को प्रोत्साहन। फिर बगीचे की कोठी

१ डा० सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास पृ० ६४
२ सूयकान्त त्रिपाठी निराला अलका पृ० २२

म वाकायदा पच मराठ साधन और दगी विलायती सरकारी अफसरा थ। थम नम म निमयण। एक माल क मन्दर लखनऊ इलाहाबाद और कानपुर आदि की खूबसूरत मे खूबसूरत वश्यायें पकड कर लाकर सरकारी अधिकारियों को पेश कर-कर पत्नी गई। दूसरे साल सम्राट के जन्मदिन के उत्सव म स्टेशन पायनीयर लीडर आदि म दस्ता सो उन्हें पन्की नहीं मिली।[1] सुरसाधर की आत्मा का पतन वश्यामा तक सीमित न रहा उनके इस लोभ की अग्नि म नहर क सद्गृहस्थ तथा ग्राम की निर्दोष रूपसियों का सतीत्व होम किया जान लगा।

"देहात की सुन्दरी विधवायें भ्रष्ट की हुई अविवाहिता युवतियाँ एकमात्र माता जिनकी अभिभाविका थीं और अपना पेट नहीं पाला सकती थीं और इस तरह क स ध अथ स लडकों का पाम स ब्याह कर दना चाहती थी लगान म छूट माफी आदि पाने की गरज स युवतियाँ व बहुधा म आकर सर्ती जाता थी या भज दी जाती थी। और बात पर किसी गिरफ्तारी की जगह जान वान कारण गढ लिए जात थ। जमींदार के लोग स्वय सहायक रहन थ कोई डर वाला बात न हान पाती थी। किस्साखा जिलदार इस तरह क मामला म सुराग लगाने वाले और तय करने वाल थ। सरकारी कमचारी इसम सहायक थ।" नाभा जसा साधारण स्त्री का मर्जी क खिलाफ लाने का पूरा षडयन्त्र रचा जाता था। विदेशी शासन की सहायता द्वारा राष्ट्रीय जीवन का पतन अत्यन्त विनाशकारी था। प्रेमचन्द जी न भी सेवासदन उपन्यास म इस ओर इंगित किया है कि अग्रेजी शिक्षा ने लोगों को इतना उदार बना दिया था कि वश्याओं का अब उतना तिरस्कार नहीं होता था। निरालाजी ने समाज क इस पतन का चित्रण अधिक यथाथ एव स्पष्ट शैली म किया है।

विदेशी शासकों द्वारा प्रचारित पूँजीवादी व्यवस्था क कारण देश का आध्यात्मिक नैतिक पतन बढ़ता जा रहा था फैक्टरी मिल आदि इनके अड्डे थ और शराब की दूकान उत्तेजक तत्व। प्रेमचन्द कृत रगभूमि उपन्यास म सूरदास फैक्टरी क लिए जमीन नहीं देना चाहता क्योंकि वह जानता है कि उससे गाँव की नैतिकता को आघात पहुँचेगा। श्रीमती कमला चौधरी की कहानी श्रमी की अभिलाषा[4] म श्रमिक वग की बढ़ती हुई धनाभिलाषा मस्ता को अपनी पत्नी का सतीत्व बच कर धन एकत्र करने के लिए प्रेरित करती है। उच्च वग क सेठ जी तथा निम्न वग के श्रमिक क नैतिक पतन म अन्तर नहीं था। दोनों क बीच नारी की मर्यादा अरक्षित थी।

माहनियाँ को जाना देर न लगी—इस हिंदू समाज के वातावरण म पल

---

२ निराला अलका पृ० २६

१ वही पृ० २४ २५

३ प्रेमचन्द सेवासदन पृ० ६७

४ कमला चौधरी उन्माद पृ० १२८

हुए पुरुष स्त्रियों के सतीत्व की कैसी रक्षा करना जानते हैं। नीच जाति का गरीब मस्ता ही नहीं, उच्च जाति के सम्पत्तिशाली सभ्य समाज के सेठ जी भी मस्ता से कम नहीं हैं। उनकी आँखें भी स्त्री की इज्जत का मूल्य उतना ही आँकती हैं जितनी मस्ता की।[1]

पूँजीवादी व्यवस्था के कारण वर्ग भेद अथवा असमानता बढ़ती जा रही थी श्रमिक वर्ग को अथक परिश्रम के पश्चात् भी भरपेट भोजन उपलब्ध नहीं हो पाता था अन्य भौतिक साधनों का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। मजदूर कोई आशा कोई उम्मीद ही क्यों करे? उसके हृदय में धनवान बनने की अभिलाषा ही क्यों हो? और हो भी तो इस घृणित कमाई के सिवा पैसा कमाने का उसके पास दूसरा जरिया ही क्या है? परिश्रम से तो भरपेट रोटी भी मयस्सर नहीं होती। मजदूर की आर्थिक विपन्नता सामाजिक असमानता तथा शासन व्यवस्था ने उसे कुकर्म की ओर अग्रसर किया था। श्रीमती कमला चौधरी ने देश के आध्यात्मिक नैतिक पतन के कारण की ओर इंगित करते हुए उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी कर दिया है। इनका नारी के प्रति विशेष सहानुभूति पूर्ण दृष्टिकोण है। अमीर और गरीब सभी के हृदय में समान रूप से धन प्राप्ति की लालसा विद्यमान रहती है जिसकी पूर्ति के लिए वह अनुचित मार्ग अपनाने में भी संकुचित नहीं होता।

आर्थिक पतन के एक अन्य रूप का वर्णन भी तत्कालीन कथा-साहित्य में मिलता है जिसका सम्बन्ध देशवासियों के साथ विश्वासघात से है। कतिपय व्यक्ति राष्ट्रीय संग्राम के आवेश में राष्ट्र भक्त बन गये थे किन्तु अभाव और दरिद्रता न सह सकने के कारण नैतिकता से च्युत हो गए थे। सार्वजनिक कार्य के लिए एकत्रित चन्दे के हिसाब किताब में गड़बड़ करना उधार लेकर न देना आदि उनके पतन के द्योतक थे। नेता बन कर नाम कमाने और प्रतिष्ठा बढ़ाने की महत्वाकांक्षा ने उन्हें इतना जकड़ रखा था, वह उसके लिए देश सेवा तो क्या अत्यन्त घृणित से घृणित काम करने के लिए सदैव प्रस्तुत रहते थे।[2]

हिन्दी कथा साहित्य में पुरुष लेखकों के साथ महिला लेखिकाओं ने भी समाज के आध्यात्मिक नैतिक पतन के सुन्दर करुण यथार्थ तथा कटु व्यंग्यपूर्ण चित्र खींचे हैं। गाँधी जी ने जीवन में नैतिकता पर विशेष बल दिया था क्योंकि भारत देश नैतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोण भूलकर भौतिकतावादी होता जा रहा था।

पराधीनता-जन्य दुर्दशा का चित्रण

कथा साहित्य में पराधीनता के अभिशापवश भारतीय दुर्दशा का चित्रण

१ कमला चौधरी उन्माद पृ० १३७
२ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ० ११०

अधिक स्पष्ट रूप से तथा यथार्थ में किया गया है। तत्कालीन असह्य राजनीतिक परिस्थितियों शासक द्वारा भारतीयों पर अत्याचार शासन सम्बन्धी अव्यवस्था अन्याय, अनीति आदि के अनेक दृश्य अथवा चित्र उपन्यास तथा कहानियों में मिलते हैं। भारतवासियों को पराधीन बनाने के लिए जिस चातुर्य एवं कौशल का खेल अंग्रेजों ने खेला था उसका वर्णन प्रेमचन्द जी की राजभक्त कहानी में मिलता है। अंग्रेजों ने ऐसे षड्यन्त्र रचे, छल तथा कपट किया कि अवध के बादशाह का चारित्रिक पतन हुआ और रियाया के दिल से बादशाह की इज्जत और मुहब्बत उठ गई।[1] भारत अन्याय अत्याचार अधम, अनीति की भित्ति पर स्थापित साम्राज्यवाद की क्षुधा का ग्रास बन गया।

यह युग राष्ट्रीय चेतना का युग था। अनेक धार्मिक सामाजिक राजनीतिक संस्थाओं द्वारा जन जीवन में राष्ट्रीय भावना का संचार हो चुका था। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए जनता का संगठन विदेशी शासकों की दृष्टि में अक्षम्य था। जलियावाला बाग की निर्मम घटना उनकी बर्बर दमन-नीति का इतिहास प्रसिद्ध उदाहरण है। प्रथम महायुद्ध में विश्व के सम्मुख वीरता की धाक बैठा देने वाले वीर पंजाब के युवकों को जलियावाला बाग में पशु से भी गई बीती मृत्यु मिली थी। आचार्य चतुरसेन शास्त्री की अभाव कहानी तथा सुदर्शन की भग्न-हृदय' कहानी में जलियावाला बाग की घटना के उल्लेख के साथ सरकार द्वारा लगाए मार्शल ला रौलेट एक्ट और पंजाब निवासियों द्वारा सहन किये अनेक नृशंस एवं अमानवीय अत्याचारों का वर्णन मिलता है। चतुरसेन शास्त्री की अभाव' कहानी में एक विशाल अट्टालिका में एक युवक बैठा सोच रहा है—किस प्रकार प्राणों पर खेल कर अंग्रेजों की सहायता की गई थी लेकिन अब वे ही सुन्दर युवक जलियावाला बाग में मुर्दे पड़े हैं उनको लाश का भी प्रबन्ध नहीं है। ओफ! हत्यारे डायर! युवक सिसकियां लेकर रोने लगे—रोते रोते ही धरती पर लेट गये। डाक्टर के अभाव में स्त्री मर रही थी किन्तु मार्शल ला के कारण डाक्टर रोगिणी तक जाने में असमर्थ था। किसी प्रकार डाक्टर साहस कर चला तो गोरे सार्जन्ट की बन्दूक का कुन्दा उसकी ओर था। डाक्टर कर्नल मंजूर था किन्तु काला आदमी' था इस कारण उसे कीड़े की भांति रेंग कर रोगिणी के घर जाना पड़ा।[2] लोगों के घर में एक बूंद पानी न था, गली के कुओं पर निर्लज्ज गोरों का पहरा था। डाक्टर को पानी लाने के प्रयत्न में कुन्दो

१ प्रेमचन्द प्रेम पचीसी पृ० ६७-६८
२ आचार्य चतुरसेन शास्त्री अभाव पृ० ३१
३ वही पृ० ३२

का मार से कुचल दिया गया।'[1] इस प्रकार दमन की अत्यधिक तीव्र प्रतिक्रिया देशवासियों में हुई थी। क्या ये मन में डाक्टर साहब सरकारी वर्दी तथा विदेशी कपड़ा का परित्याग कर राष्ट्रीयता का गौरव अनुभव करते हैं। विदेशी के प्रति घृणा का स्वर इस कहानी में मुखर है। सुदर्शन की भग्न हृदय कहानी की कथावस्तु में भी जलियावाला बाग तथा अंग्रेजी अत्याचार की कुटिल नीति की कटु आलोचना की गई है। लाला छज्जूमल का एकमात्र पुत्र जलियावाला बाग की घटना में घायल होकर घर आता है लेकिन कोई डाक्टर पकड़ धकड़ के डर से किसमें साहस था कि रात्रि को घर से निकलता। प्रातःकाल उनके वृद्ध पिता के बाहर निकलते ही अकारण पुलिस ने पकड़ लिया। उनकी अनुपस्थिति में उनका पुत्र डाक्टर के अभाव में मृत्यु को प्राप्त हुआ और प्रसव की पीड़ा न सह सकने के कारण पुत्रवधू ने भी पति का साथ दिया। भूल के कारण पकड़े गये छज्जूमल जब लौट कर घर आए तो देखा कि उनका घर उजड़ चुका था। अंग्रेजों की दमन नीति में छज्जूमल जैसे कितने ही निरीह एवं निर्दोष व्यक्तियों का घर उजड़ गया था। राजनीतिक पराधीनता के कारण उद्भूत दुर्दशा का इससे अधिक करुण चित्र सम्भव नहीं है। सुदर्शन जी की कहानी में करुण रस की अगाध धारा प्रवाहित हुई है। अंग्रेजी सरकार ने भारतीयों को भी पत्थर का बना दिया था पुलिस के पास अपने भाइयों का दुख दर्द सुनने के लिए हृदय नहीं रह गया था। चतुरसेन शास्त्री तथा सुदर्शन दोनों लेखकों ने तत्कालीन परिस्थितियों तथा अन्याय का यथातथ्य वर्णन एवं यथार्थ चित्रण किया है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के अलका उपन्यास की कथा का प्रारम्भ ही भारतीय जीवन की विषम परिस्थितियों के वर्णन से होता है। महासमर का अन्त हुआ और भारत में महाव्याधि फैली। महामारी की जहरीली गैस ने भारत को घर के धुएं की तरह घेर लिया चारों ओर त्राहि त्राहि हाय हाय मच गई।'[5] युक्तप्रान्त में इसका विशेष प्रकोप हुआ और गंगा का पावन जल भी कल्मष से युक्त हो गया। गंगा के दोनों ओर तीन तीन कोस के घाट पर एक-एक घाट में जब दो-दो हजार लाशें पहुंच रही थीं भारत के साठ लाख आदमी मृत्यु को प्राप्त हुए थे नृशंस विदेशी

---

१ कांटे पर पहुंचने पर ज्यों ही उन्होंने पैर में चांदी छोड़ी त्यों एक गोरे ने लात मार कर कहा—साला! भाग जाओ।

डाक्टर साहब ने तान कर एक घूंसा उसके मुंह पर दे मारा। क्षण भर में

२ ३ सिपाहियों ने बन्दूक के कुन्दों से अंग्रेज डाक्टर को कुचल कर धरती पर डाल दिया।

मेरी खाल की हाय पृ० ३४ चतुरसेन शास्त्री

४ फौजी लोग नगर में घूम रहे थे अपनी जान और मान को कौन खतरे में डालता सुदर्शन सुप्रभात पृ० ६७

५ निराला अलका पृ० ६

शासन ने महासमर में प्राप्त विजय का उत्सव मनाने का कार्य आरम्भ किया। निराला जी ने तत्कालीन भारतवासियों की राजनीतिक पराधीनता के कारण विवश एवं दयनीय स्थिति का अत्यधिक प्रभावोत्पादक शब्दों में वर्णन किया है। इसी समय सरकारी कर्मचारियों ने घोषणा की, सरकार ने जंग फतह की है, आनन्द मनाओ। गरीब लोग अपने अपने दरवाजों पर दिए जला कर रखें। पति के शोक में मग्न विधवा, पुत्र के शोक में क्षीण माता, भाई के दुःख में मुरझाई बहन और पिता के प्रयाण से दुःखी असहाय बाल विधवाएँ न दूसरी स्थिति की चिन्ता कर कांपते हुए अपने हाथों में दिए जला जला कर द्वार पर रख आईं ... घर घर रोने लगीं। पुलिस घूम घूम कर देखने लगी किसी घर में शान्ति का चिह्न तो नहीं।[1]

प्रेमचन्द, सुदर्शन, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के कथा साहित्य में तत्कालीन दुर्दशा ग्रस्त राजनीतिक परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण मिलता है। प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर प्रायः अपने सभी उपन्यासों तथा अधिकांश कहानियों में ग्राम, नगर एवं देशी रियासतों की प्रजा की असहाय स्थिति, पुलिस एवं अधिकारीगणों के अन्याय, न्यायालयों की निष्पक्षता, रिश्वत, डाँट, बेगार आदि प्रचलित कुरीतियों का वर्णन किया है जिनका मूल कारण देशवासियों की पराधीनता था। रंगभूमि इनका राजनीतिक उपन्यास है जिसमें असहयोग आन्दोलन (१९२०-१९२१) के समय की राजनीतिक परिस्थितियों, शासक वर्ग की अनीति, अन्याय आदि का विस्तृत विवरण मिलता है। न्यायालय सरकार की वणिक नीति के कारण व्यापारालय बन गए थे। वहाँ न्याय की अपेक्षा धन की प्रतिष्ठा थी। अदालतें गीता की बलि-वेदी थीं।[2] न्याय और सत्य के नाम पर कोई भी कार्य असम्भव था लेकिन खुशामद और रिश्वत से सभी कार्य सुलभ थे। कर्मभूमि उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने अमरकान्त के शब्दों में इसका उद्घाटन किया है। प्रेमचन्द जी की जेल

---

१ वही पृ० १०

२ सरकार यहाँ न्याय करने नहीं आई है, राज्य करने आई है। न्याय करने से उसे कुछ मिलता है? कोई समय वह था, जब न्याय को राजा की बुनियाद समझा जाता था। अब वह जमाना नहीं है। अब व्यापार का राज्य है और जो इस राज्य को स्वीकार न करे उसके लिए तोपों का निशाना मारने वाली तोपें हैं। तुम क्या कर सकते हो? दीवानी में मुकदमा दायर करोगे वहाँ भी सरकार ही के नौकर चाकर न्याय पद पर बैठे हुए हैं।

—प्रेमचन्द : रंगभूमि दूसरा पृ० १६१

३ प्रेमचन्द रंगभूमि पृ० १३

४ वही पृ० २१५

कहानी म मदुला के शब्दो म अ ग्रेजी सरकार के अ यायपूण आचरण का वणन मिलता है । किसानो और गाव वालो के लिए वह कहती है— अदालत और हाकिमों स तो उन्होने याय की आशा करना ही छोड दिया ।[1]

सुदशन की भी सुभद्रा का उपहार' कहानी म यायालयों की निरथकता पर प्रकाश डाला गया है। केवल गवाही द्वारा सिद्ध कर असत्य को सत्य और अ याय को याय बना देना यायालय का काय रह गया था सच्चा याय नहीं होता था ।[2] विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की धुन कहानी म न्यायालयों को गरीब अज्ञानी किसानो के धन हडपने का साधन बताया गया है ।[3] याय बहुत महगा था जिसमे किसान साधारण मजदूर बन जाता था । यायालयो द्वारा सवम अधिक शोषण ग्राम वासी कृषक वग का हुआ था । कानून कुमार नामक सवादात्मक कहानी मे प्रेमचद जी ने देश के चारित्रिक पतन स्त्रियो का दशा भिखमगो की समस्या आदि समस्त विकृतिया का एकमात्र आधार विदेशी शासन व्यवस्था म ढू ढा है ।[4] लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा कहानी म प्र मचन्द जी ने विदेशी शासको की दनीति का स्पष्ट शब्दा म वणन किया है। धम एव न्याय का गला घाट कर ही भारतीय अधि कारी उच्चपद प्राप्त कर सकता था । विदेशी शासन मे देश की सच्ची दशा के परि चायक समाचार पत्रो का पढना दीन किसानों की रक्षा करना जुम था । साधु स यासियो पर भी कडी दृष्टि रखने का आदेश था । राष्ट्रीय पाठशालाए खोलने, पचायत बनाने वाले तथा जनता को मादक वस्तुओ के निषेध के लिए काय करने वालो के नाम देशद्रोहियों म लिखे जाते थे । पराधीनता का अभिशाप इतना कठोर था कि वे भी व्यक्ति राजद्रोही थे जो जनता म स्वास्थ्य के नियमो का प्रचार अथवा सघातक बीमारियो स उनकी रक्षा का उपाय करत थे ।[5] अत राष्ट्रीय उन्नति मे

---

१ प्रमचद मानसरोवर प० १२ भाग (७)

२ यहां न्याय रुपये के मोल बिकता है जो ज्यादा वकील करे जो ज्यादा रुपया खर्चे उसी की जीत है ।

—सुदशन सुप्रभात प० १११

३ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल प० ४३

४ कानून कमार––(आप ही आप, देश की दशा कितनी खराब होती चली जाती है । गवनमेंट कछ नहीं करती । बस दावतें खाना और मौज उड़ाना उसका काम है । ' राजनतिक कहानियां और समर-यात्रा प० १७

५ प्रेमचन्द प्रेम चतुर्थी । प० ६७-६८

शताब्दियों की पराधीनता के कारण देशवासियों में आत्मगौरव अथवा स्वाभिमान की मात्रा रह ही नहीं गई थी। हाकिम[1] उनके लिए भय की वस्तु बन गया था चाहे वह विदेशी था अथवा स्वदेशी।

इसके अतिरिक्त विदेशी शासन ने भारतीयों की मानसिक अवस्था विकृत कर दी था। दश में एसे व्यक्तियों का अभाव नहीं था जो झूठा सम्मान तथा खिताब पाने के मोह में राष्ट्रघातक बन गये थे। विनोदशंकर व्यास की भाग्य का खेल कहानी के श्यामराम ऐसे ही व्यक्ति हैं जिन्होंने रायबहादुर का खिताब पाने के लिए असहयोग के समय सरकार की सहायता की थी।

देशी रियासतों की दशा और भी बुरी थी। रियासतें भी गुलामी और ऋण में फसी हुई थी। प्रेमचन्द की कहानी वज्रपात में विलासी और विवेकहीन महाराजा द्वारा ऋण लेकर राजप्रासाद बनाने का उल्लेख मिलता है। बड़ी रियासतों में राजनीतिक अत्याचार अधिक बढ़ गया था। उनकी आन्तरिक स्वाधीनता नाममात्र की हो था तथा पोलिटिकल एजेन्टस और राज्य कर्मचारियों की दुहरी मार प्रजा पर पड़ रही थी। ऐसे महाराजे सरकार के साथ राष्ट्रीय चेतना के दमन में अधिक कठोरता से काम ले रहे थे। प्रेमचन्द ने रंगभूमि उपन्यास में रियासत में हो रहे अत्याचार का विस्तार से वर्णन किया है। यहा तक कि स्त्रियों पर भी अत्याचार होता था।[3]

प्रेमचन्द विश्वम्भरनाथ शर्मा सुदर्शन निराला चतुरसेन शास्त्री प्रभृति कथा साहित्यकारों ने राष्ट्रहित एवं राष्ट्रीय उत्थान की भावना से प्रेरित होकर सामयिक जीवन से राजनीतिक दुर्दशा सम्बन्धी अनेक तथ्यों का उद्घाटन किया है। देशवासियों को उनकी दुर्दशा के इस प्रमुख रूप से परिचित कराके उनमें विदेशी शासन की नृशंसता निर्ममता अत्याचार अन्याय असत्य के प्रति घृणा की भावना को जागृत करना उनका विशेष उद्देश्य था। प्रेमचन्द का राजनीतिक दुर्दशा के चित्रण में भी एक विशेष उद्देश्य था। प्रेमचन्द जी राजनीतिक दुर्दशा के चित्रण में भी एक विशेष आशावादिता से प्रेरित होकर अन्त में राष्ट्रीयता सत्य धर्म न्याय की ही विजय दिखाते हैं। इस क्षेत्र में सबसे अधिक संख्या में प्रेमचन्द जी ने ही लेखनी चलाई है। प्राय सभी उपन्यास एवं कहानीकारों ने निर्भीक रूप से यथातथ्य चित्रण किया है जिसमें अतिरंजितता नहीं है।

आर्थिक शोषण

हिन्दी कथा-साहित्य में भी आर्थिक शोषण के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है। नागरिकों की अपेक्षा ग्रामीण जनता आर्थिक शोषण से अधिक क्षुब्ध

---

१ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ० ५

२ विनोदशंकर व्यास मस्ती कहानियाँ पृ० २६६

३ प्रेमचन्द रंगभूमि दूसरा भाग पृ० ६६

थी। नगर तथा ग्राम दोनों की भिन्न आर्थिक समस्यायें थीं। नागरिक शिक्षित जन के सम्मुख नौकरी की समस्या थी लेकिन ग्रामवासियों का तो सम्पूर्ण जीवन ही विदेशी शासकों की पूंजीवादी व्यवस्था पर आश्रित हो गया था। अन्य हस्त-उद्योग के अभाव में कृषि-कर्म ही भारत के बहुसंख्य ग्रामवासियों की आजीविका का एकमात्र साधन रह गया था। नवीन वैधानिक प्रणाली से अनभिज्ञ जमीन्दारी व्यवस्था से ग्रस्त महाजनों के ऋणी अशिक्षित एवं अज्ञानी कृषक को परिवार के लिए भोजन जुटाना भी कठिन था। आर्थिक संकट की विभीषिका से परास्त होकर नगरों में मजदूर बन कर रहने के अतिरिक्त उनके पास अन्य कोई चारा न था। जमींदारी प्रथा के राहु ने उनकी जमीन का अधिकार भी सुरक्षित न रखा था। देश की बढ़ती हुई निर्धनता में राष्ट्रीय हित की उपेक्षा हुई और साम्राज्यवादी स्वार्थ साधना की भावना प्रबल हुई। प्रेमचन्द, जयशंकर प्रसाद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन, वृन्दावनलाल वर्मा, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि साहित्यकारों के उपन्यासों एवं कहानियों में ग्रामीण तथा नागरिक जीवन की आर्थिक अवस्था, समस्याओं तथा अर्थाभाव के करुण प्रभावोत्पादक चित्र मिलते हैं। प्रेमचन्द जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है क्योंकि इन्होंने ही सर्वप्रथम देश की पूंजीवादी शोषण प्रवृत्ति को उपन्यास तथा कहानियों में मुखरित किया है।

प्रेमचन्द जी के 'प्रेमाश्रम' और 'गोदान' उपन्यास को कृषक जीवन की विपन्नता का इतिहास कहना चाहिए। अन्य उपन्यास—जैसे कायाकल्प, कर्मभूमि में भी अनेक स्थल इससे सम्बन्धित मिल जाते हैं। प्रेमाश्रम उपन्यास में जमीन्दारी व्यवस्था से उत्पीड़ित ग्रामीण जनता की विवशता और कष्टों का मार्मिक चित्र मिलता है। उपन्यास के प्रारम्भ में ही सुक्खू, दुखरन, मनोहर आदि की बातचीत में ग्रामीणों की आर्थिक दुर्दशा के कई कारण खुल जाते हैं। हाकिमों द्वारा रिश्वत लेना, गांव वालों का अपमान और भर्त्सना, मालगुजारी न दे पाने पर जाफा, बेदखली, अस्तराज आदि दण्ड ग्रामीणों की आर्थिक दुर्दशा के कारण थे।[1] इसके अतिरिक्त खेती में बरकत ही नहीं रही थी।[2] हाकिमों का दौरा क्या था गांव वालों की मौत थी—

कादिर—हाकिमों का दौरा क्या है, हमारी मौत है। बकरीद में कुर्बानी के लिए जो बकरा पाल रखा था, वह कल सकर में पकड़ा गया। रज्जी मुखर पांच रुपये नकद देता था मगर मैंने न दिया था। इस वक्त सात से कम का माल न था।

मनोहर—यह लोग बड़ा अंधेर मचाते हैं। आते हैं इन्तजाम करने, इंसाफ करने लेकिन हमारे गले पर छुरी चलाते हैं। इससे कहीं अच्छा तो यही था कि दौरे बन्द हो जाते। यहां न होता कि मुकदमे वालों को मदर जाना पड़ता। इस

१ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृ० ६

२ वही पृ० ७

सांसत से तो जान बचती ।[1]

नगरो में खुलने वाली व्यापारिक सस्थाओ से देश को लाभ के स्थान पर हानि पहुच रही थी। प्रेमाश्रम उपन्यास मे राय साहब इस सम्बध म कहते हैं—इस लिए कि सेठ जगतराम और मिस्टर मनषूर जी का विभव देश का विभव नही है। आपकी यह कम्पनी धनवानो को और भी धनवान बनायेगी पर जनता को इससे बहुत लाभ पहुचने की सम्भावना नही। निस्सदेह आप कई हजार कुलियो को काम मे लगा देंगे पर यह मजूरे अधिकाश किसान ही होगे और म किसानों को कुली बनाने का कट्टर विरोधी हू। मैं नही चाहता कि व लोभ के वश अपने बाल-बच्चो को छोड़कर कम्पनी की छावनिया म जाकर रहें और अपना आचरण भ्रष्ट करें। अपने गाँव मे उनकी एक विशेष स्थिति होती है। उनम आत्म प्रतिष्ठा का भाव जाग्रत रहता है। बिरादरी का भय उन्हें कुमार्ग से बचाता है। कम्पनी की शरण म जाकर वह अपने घर के स्वामी नहीं दूसरे के गुलाम हो जाते है और बिरादरी के बधना स मुक्त होकर नाना प्रकार की बुराइयां करने लगते हैं। कम-स कम अपने किसानो को इस परीक्षा म नही डालना चाहता।[2]

प्रेमचन्द जी ने प्रेमाश्रम उपन्यास में जमीन्दारी प्रथा का उत्पीड़नकारी प्रभाव दिखाया है और गोदान म महाजनी द्वारा कृषक शोषण। सरकार की ओर से किसानो को ऋण देने की कोई व्यवस्था नही थी। जमीदारी व्यवस्था दवी विप त्तियों और सामाजिक रूढ़िवादिता अधविश्वास से त्रस्त कृषक के लिए महाजना से मनमाने सूद पर धन लेने क अतिरिक्त अय कोई चारा न था। गोदान का होरी आर्थिक विपन्नता के कारण ऋण लेता है। अशिक्षित होरी का ऋण दिन दूना रात चौगुना बढता जाता है। उसका अनाज खलिहान म ऋण के ब्याज अदा करने म ही बिक जाता है बल बिक जाते हैं और अन्त म वह मजदूर बन पेट की समस्या को हल करता हुआ मृत्यु को प्राप्त होता है। मृत्यु के समय भी उसकी आर्थिक समस्या विकराल रूप धारण कर खड़ी हो जाती है। घर की समस्त संचित पूजी—बीस आने पैसे—भारतीय कृषक वग की आर्थिक दुर्व्यवस्था की सूचना देते हुए गोदान के लिए अर्पित हो जाते हैं।[3] अर्थाभाव ने होरी की विवेक-बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी उसम नैतिकता की अनतिकता भावना का अभाव हो गया था तभी तो वह अपनी छोटी पुत्री का विवाह धन के लालच में वृद्ध के साथ कर देता है।[4] प्रेमचन्द जी के अय उपन्यासो कायाकल्प कमभूमि आदि में भी कृषको के यथाथ जीवन के चित्र मिलते हैं। कायाकल्प में लेखक ने भारतीय नरेशो के अधीन निम्न वग की जनता की दुर्व्यवस्था पर प्रकाश डाला है। छाती फाड कर काम करने वाले मजदूरो

---

१ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृ० ४६

२ वही पृ ७६ ८०

३ प्रमचन्द गोदान पृ० ३६५

४ वही पृ० ३५६

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने निरुपमा उपन्यास में कृषकों की आर्थिक दुर्दशा की झलक दिखाई है। निराला जी ने भी इस उपन्यास में यह स्पष्ट कर दिया है कि जमींदार तो विदेशी सरकार के दलाल मात्र थे जो अपने कारिन्दों के साथ मिलकर कमीशन खाते थे। तत्कालीन शासन-व्यवस्था इतनी दोषपूर्ण थी कि रिश्वत बेगार आदि उसके आवश्यक अंग थे। निराला जी ने अलका में आर्थिक दुरवस्था को नैतिक चारित्रिक पतन का कारण दिखाया है। महादेव केवल धन प्राप्ति के लिए ग्राम की कुलीन सुन्दरी विवाहिता शोभा की असहाय अवस्था से लाभ उठाना चाहता है। अनीति का मार्ग अपनाते हुए उसकी अन्तरात्मा धिक्कारती है किन्तु धन की आवश्यकता उसकी सद्वृत्ति को कुण्ठित कर देती है। वह सोचता है—पर उसे तरक्की करनी है दुनिया इसी तरह उत्थान के चरम सोपान पर पहुंची है वह गरीब है इसीलिए अमीरों के तलुवे चाटता है उसके भी बच्चे हैं उन्हें भी आदमी बनना है लड़कियों की शादी में तीन-तीन, चार-चार और पांच-पांच हजार का सवाल हल करना है इतना धन का रास्ता देखने पर यह संसार की मंजिल वह कम तय करेगा।[1]

बाबू राधिकारमण प्रसाद सिंह के उपन्यास पुरुष और नारी में १९२०ई० से ३७ ई० तक भारत के राष्ट्रीय जीवन की गतिविधि का निरूपण किया गया है। उन्होंने भारत की आर्थिक दुर्दशा का कारण विदेशी सरकार की नौकरशाही की दोहन नीति में खोजा है—'नौकरशाही की दोहन-नीति भारत की सारी शक्ति को तिलचट्टे की तरह चाट रही है। आज तो देश त्रिदोष में गिरफ्त है—गुलामी गरीबी बेकारी—'[2] शासक वर्ग की शान शौकत भारतवासियों की गरीबी पर पल रही थी।[3] लेखक ने देहात की तबाही का वर्णन किया है—स्टेशन से दाईं ओर रेलवे लाइन की बगल में तमाम खेत हैं। धान कट चुका है। मगर उन उजाड़ ठूंठियों भरे खेतों में औरतों और बच्चों का हुजूम है। चिथड़े लपेटे बच्चे और औरतें हाथों में सूप और झाड़ लिये एकाध कटे छटे बिखरे धान की बाल की तलाश में सूखी जमीन बुहार रहे हैं। आपस में छीना झपटी का बाजार भी गर्म है। दो दाने धान के लिए बच्चे चीखते हैं औरतें एक दूसरे का सर नोंचती हैं।[4] लेखक को भारत की आर्थिक दुर्दशा की इस विभीषिका में देशवासियों की निष्क्रिय जड़ता खल जाती है—भारत की यह गरीबी, नौकरशाही की यह दोहन-नीति पैसे वाला की यह संगदिली मांसखोरों की यह खुद गर्जी। फिर भी लोग आराम से राम का नाम लेते हैं सत्तू चाटकर सुबह से शाम करते हैं। यह जहालत है कि नावदान में रेंगते हैं और स्थिति का पता नहीं। यह जड़ता है कि रूखा भात और साग खाकर भी दांत नहीं किटकिटाते। जो अमीर हैं उसे आराम की तलाश है जो गरीब हैं उसे राम की तमाशा है। और देश गुलाम है तो रहे—हमारी रोटी दाल का इन्तजाम दुरुस्त रहे।[5] गरीबों को श्रम का मूल्य नहीं मिलता था।[6] कसी असहाय स्थिति थी। अर्थाभाव के बीच दशा का नैतिक पतन

१ प्रेमघन कायाकल्प पृ० १०६ नवां संस्करण नवम्बर १९५३
२ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अलका पृ० १३
३ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० ६
४ वही पृ० ११
५ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० ५७
६ वही पृ० ५८ पृ० ५६

भयंकर था। राधिकारमण प्रसाद सिंह ने सम्पूर्ण राष्ट्र के आर्थिक संकट को राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा है।

प्रेमचन्द जी की 'कफन' 'अलगोझा' 'सवा सेर गेहूँ' 'ईदगाह' आदि प्रसिद्ध कहानियों में हिन्दुओं और मुसलमानों नगर और समाज की आर्थिक कठिनाइयों का दिग्दर्शन है। सवा सेर गेहूँ कहानी में लेखक ने शंकर नामक कुरमी किसान को साधु के आतिथ्य सत्कार के लिये गये सवा सेर गेहूँ का ऋण न चुकाने के परिणाम स्वरूप आजीवन विप्र महाजन की दासता करते दिखाया है। अन्नदाता कृषक धर्मभीरुता अज्ञानता अशिक्षा के कारण कृषक से सेवक बन जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् दासता का बोझ उसके पुत्र को ढोना पड़ता है। ब्राह्मण वर्ग भी धन के लोभ में कर्त्तव्य च्युत होकर 'महाराज' से महाजन बन गया था।[१]

प्रेमचन्द के सदृश विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' ने भी 'बेदखली'[२] 'धुन'[३] आदि कहानियों में भारतीय कृषक वर्ग की आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण किया है। भारतीय कृषक जमींदारी व्यवस्था में जमींदार साहूकार और उनके कारिंदों की शोषण नीति तथा मुकदमेबाजियों में पिस रहा था। कौशिक जी की 'अपराधी' कहानी में सरकारी अफसरों और कर्मचारियों की शोषण प्रवृत्ति का व्यंग्यात्मक चित्र मिलता है। — उधर जिस गाँव में डिप्टी साहब पहुँचे हैं उस गाँव की दशा क्या कही जाय वे यही समझते हैं कि यमदूत आ गये। वे सोचते हैं कि जो कुछ बाल बच्चों के खाने के लिए रखा है डिप्टी साहब की नजर कर देंगे हम समझ लेंगे अकाल पड़ गया।[४] सूखी रोटी खाने पर भी लगान का बोझ और बेदखली का भय कृषक को आक्रान्त किये रहता था बेदखली कहानी इसका उदाहरण है। अर्थलोभ के कारण जमींदार अति नीच प्रवृत्ति के हो गये थे— आजकल के जमींदार तो चमार हैं। विष्ठा में पड़ा हुआ पैसा उठा लें।[५] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने 'श्यामा' कहानी में शोषित कृषक की दयनीय आर्थिक स्थिति का मार्मिक वर्णन किया है— महाराज आठ रुपये बीघे के हिसाब से जमींदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोड़ी जब खेत कुछ देने लगे तब परसाल इन्होंने बेदखल कर दिया पहले इजाफा लगान बीघा पीछे पाँच रुपये माँगते थे। अपने पास इतना दम न था। खेत छोड़ दिये। पर किसान जाय कहाँ क्या खाय? फिर उन्हीं जमींदार दयाराम महाराज के पैरों नाक रगड़नी पड़ी। उन्होंने पाँच रुपये बीघे पर ढाई बीघे का एक खेत दिया। खेत बिल्कुल ऊसर है। मैं जानता था। पर लेना पड़ा। खेती न करें तो महाजन उधार नहीं देता। भूखों मरा नहीं जाता। खेती में साढ़े बारह का पूरोपूर डांड पड़ गया। कुछ न हुआ। एक बैल था साझे में जोत लेते थे वह भी मरा इधर श्यामा की अम्मा थी वह भी भगवान के यहाँ गई। परमात्मा ने

१ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ४ पृ० १८६
२ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ४ पृ० १८६
३ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, कल्लोल पृ० १३२
४ वही पृ० ४३
५ वही पृ० १२४

भयकर था। राधिकारमण प्रसाद सिंह ने सम्पूण राष्ट्र के आर्थिक सकट को राजनीतिक दृष्टिकोण से देखा है।

प्रमचन्द जी की कफन अलगोझा', 'सवा सेर गेहू ईदगाह आदि प्रसिद्ध कहानिया म हिन्दुआ और मुसलमानो नगर और समाज की आर्थिक कठिनाइयो का दिग्दर्शन है। सवा सेर गेहू कहानी मे लेखक ने शकर नामक कुरमी किसान को साधु के आतिथ्य सत्कार के लिये गये सवा सेर गेहू का ऋण न चुकाने के परिणाम स्वरूप आजीवन विप्र महाजन की दासता करत दिखाया है। अन्नदाता कृपक धम भीरुता अज्ञानता अशिक्षा के कारण कृपक से सेवक बन जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् दासता का बोझ उसके पुत्र को ढोना पडता है। ब्राह्मण वग भी धन के लोभ म कत्तव्य च्युत होकर महाराज' से महाजन बन गया था।[1]

प्रमचन्द के सदृश विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ने भी बेदखली[3] धुन'[4] आदि कहानियो मे भारतीय कृपक वर्ग की आर्थिक कठिनाइया का चित्रण किया है। भारतीय कृपक जमीदारी व्यवस्था मे जमीदार साहूकार और उनके कारिंदा की शोषण नीति तथा मुकदमेबाजियो म पिस रहा था। कौशिक जी की अपराधी कहानी म सरकारी अफसरो और कर्मचारिया की शोषण प्रवृत्ति का व्यग्यात्मक चित्र मिलता है। —उधर जिस गाव म डिप्टी साहब पहुचे है उस गाव की दशा क्या कही जाय वे यही समझत हैं कि यमदूत आ गये। व सोचते है कि जो कुछ माल बच्चा के खाने के लिए रखा है डिप्टी साहब की नजर कर देंगे हम समझ लगे अकाल पड गया।[5] सूखी रोटी खाने पर भी लगान का बोझ और बेदखली का भय कृपक को आक्रान्त किये रहता था बेदखली कहानी इसका उदाहरण है। अथलोभ के कारण जमीदार अति नीच प्रवृत्ति के हो गये थ— आजकल के जमीदार तो चमार हैं। विष्ठा म पड़ा हुआ पैसा उठा लें।[6] सूयकान्त त्रिपाठी निराला ने श्यामा कहानी म शोषित कृपक की दयनीय आर्थिक स्थिति का मार्मिक वणन किया है— महाराज आठ रुपये बीघे के हिसाब से जमीदार दयाराम महाराज ने तीन बीघे खेत दिये थे। मैंने कई साल तक खेतों को खूब बनाया, खाद छोडी जब खेत कुछ देते लगे तब परसाल इन्होने बेदखल कर दिया पहले इजाफा लगान बीघा पीछे पांच रुपये मागत थे। अपन पास इतना दम न था। खेत छोड़ दिये। पर किसान जाय कहाँ क्या खाय ? फिर उन्ही जमीदार दयाराम महाराज क परा नाक रगड़नी पड़ी। उन्होंने पाँच रुपय बीघे पर ढाई बीघे का एक खत दिया। खेत बिल्कुल ऊसर है। मैं जानता था। पर लेना पड़ा। खेती न करें तो महाजन उधार नहीं देता। भूखो मरा नही जाता। खेती म साढ़े बारह का पूरोपूर डांड पड गया। कुछ न हुआ। एक बल था साझे म जोत लेते थे वह भी मरा इधर श्यामा की अम्मा थीं वह भी भगवान के यहाँ गईं। परमात्मा ने

१ प्रेमचद मानसरोवर भाग ४ पृ० १८६
२ प्रेमचद मानसरोवर भाग ४ पृ० १९६
३ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक। कल्लोल पृ० १३२
४ वही पृ० ४३
५ वही प १२४
६ वही पृ० १४८

भीषण परिणाम की ओर संकेत किया है।

सुभद्रा कुमारी चौहान की संस्मरणात्मक कहानियों म आर्थिक विपन्नता की सीधे सादे चित्र' मिलते हैं। राही कहानी म सुभद्रा जी ने समस्त प्रकार के अपराध का मूल कारण पेट की भूख में ढूढ़ा है। मजदूरी जब नही मिली तो चोरी के अति रिक्त जीविकोपाजन का और साधन ही क्या था।[1] रामवृक्ष बेनीपुरी की वह चोर था कहानी म भी चोरी का प्रमुख कारण निधनता विवशता, असहाय स्थिति में ढूढा गया है— सड़ा मुर्दा चोरी का पेशा। सड़ा मुर्दा—बदबू उकबाई। कलेजा मुह को आता। लेकिन दूसरा चारा क्या था? या अथाह सागर में डूबो या इस सड़े मुर्दे को पकड़ो। अकेले रहता तो लालू यह पेशा कभी न करता—मर जाना पसन्द करता। किन्तु ये बच्चे यह बीवी कभी भी उसकी सुन्दरी प्यारी स्त्री। सड़े-मुर्दे को पकड़ कर उसने भव-सागर पार करने का निश्चय किया।[2]

विदेशी शासको की पू जीवादी नीति ने देश म विषमता का ऐसा विष भर दिया था कि निम्न वग धन की लालसा के मद में अन तिकता को अपनाने म भी सकोच नही करता था। श्रीमती कमला चौधरी की श्रमी की अभिलाषा'[3] भिखमगे की बिटिया[4] कहानियाँ इसका उदाहरण हैं।

नागरिक जीवन का अशिक्षित एव निम्न वर्ग ही आर्थिक समस्याओं स ग्रसित नही था, शिक्षित समुदाय के सम्मुख भी अथ एक जटिल समस्या बन गया था। शिक्षा का जो रूप विदेशी सरकार द्वारा प्रचलित किया गया था उसम शिक्षित होने के पश्चात आजीविकोपाजन के लिए केवल सरकारी नौकरी का साधन शेष रह जाता था। स्वतत्र व्यवसाय अथवा आत्मनिर्भरता की शिक्षा नहीं दी जाती थी। श्री निराला जी के निरुपमा उपयास का नायक कृष्ण कुमार से डी० लिट० की डिगरी लेकर आता है लेकिन अनेक टक्करें मारने पर भी उसे नौकरी नही मिलती। अन्त म वह जूते साफ करने का व्यवसाय कर समाज के प्रति विद्रोह करता है। मोहनलाल महतो वियोगी की पाच मिनट (१६२ ई०) कहानी मे भारतीय ग्रेजुएट की बेकारी पारिवारिक कष्ट दरिद्रता और भूख से त्रस्त होकर कुसग मे पड़ने का उल्लेख किया गया है। वह अपराध करता है खून करता है और चोरी, डाके डालता है।[5]

उपेन्द्रनाथ अश्क ने मध्य वग एव निम्न वग के जीवन स कथावृत्त लेकर देश की आर्थिक विपन्नता के चित्र खींचे हैं। आर्टिस्ट (१६३४ ई) कहानी मे कलाकारों की आर्थिक विपन्नता की ओर सकेत किया है—गाने के शौकीन तो बहुत हैं पर दाम देकर सुनने वाला का अभाव है।[6] ऐरोमा (१६३२ ई) कहानी में लेखक ने

१ सुभद्रा कुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० ७३
२ रामवृक्ष बेनीपुरी बेनीपुरी ग्रन्थावली चिता के फूल पृ० ४६
३ कमला चौधरी उन्माद पृ० १२८
४ वही पृ० १०६
५ विनोद शंकर व्यास-सम्पादक मधुकरी दूसरा खण्ड पृ० १३२
६ उपेन्द्रनाथ अश्क सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ पृ० ७६

दुरवस्था के निराकरण का प्रयास भी किया है।

इस क्षेत्र म भी प्रेमचन्द जी का नाम अग्रगण्य है इन्होंने ग्राम नगर, हिन्दू मुसलमान ईसाई पुरुष नारी सभी वर्गों की सामाजिक समस्याओं को लेकर सबसे अधिक उपन्यास और कहानियां लिखी हैं। भारत के प्राय सभी भागों तथा जातियों में दहेज अनमेल विवाह, विधवा दुर्गति छुआछूत अन्धविश्वास, वेश्यावृत्ति आदि सामाजिक कुरीतियां व्याप्त थीं। इसी कारण गांधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन के रचनात्मक कार्यक्रम मे समाज सुधार के कार्य पर विशेष बल दिया गया था। ये सामाजिक समस्याएं नगर तथा ग्राम दोनों प्रकार के जीवन को आक्रान्त कर रही थी किन्तु विशेषकर नागरिक जीवन तथा नारी' इससे अधिक त्रस्त थे। इन प्रमुख सामाजिक समस्याओं का एक एक कर विवेचन अधिक युक्तिसगत होगा।

विधवाओं की समस्या

भारतीय समाज की अतिशय रूढ़िवादिता के कारण विधवा का पुनर्विवाह घोर पाप समझा जाता था। समाज द्वारा उनके सरक्षण की उचित व्यवस्था भी नहीं थी अत उनकी असहाय तथा दयनीय स्थिति से कामुक लोग लाभ उठाने लगे। प्रेमचन्द क प्रतिज्ञा उपन्यास की मूल समस्या विधवा है। इस उपन्यास के प्रमुख पात्र अमृतराय त्यागी तथा देश प्रेमी हैं। अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरान्त उन्होंने विधवा विवाह का व्रत लिया है। पूर्णा असमय म विधवा हो जाती है। उदर-पोषण के साधन के अभाव म पड़ोसी बदरीप्रसाद के यहां आश्रय लेती है। उसके आश्रयदाता का पुत्र कमलाप्रसाद उसके सौंदर्यपूर्ण यौवन तथा विवशता का अनुचित लाभ उठाना चाहता है। किसी प्रकार साहस कर वह अपने सतीत्व की रक्षा करती है। अन्त में अमृतराय द्वारा स्थापित विधवाश्रम मे आश्रय लेती है। प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास में विधवा की दयनीय असहाय अरक्षित अवस्था का मार्मिक चित्र खींचा है। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द जी ने इस उपन्यास म विधवा की मनःप्रवृत्ति का उद्घाटन कर इस तथ्य का विवेचन भी किया है कि कठोर सयम व्रत नियम आदि के आवरण म भी विधवा हृदय म सुख की प्रबल आकांक्षा छिपी रहती है जो अनुकूल अवसर पाकर प्रकट हो जाती है।[१]

कथा साहित्य में इस युग में विधवा-समस्या से सबधित कई उपन्यास तथा कहानियां मिलती हैं। सूर्यकान्त त्रिपाठी ने अलका उपन्यास में सामाजिक अधकार के इस पक्ष की भर्त्सना करते हुए लिखा है— इसी भारत म आश्रयहीन बालिका और तरुणी विधवाए भी हैं। उन्हे खाने को नहीं मिलता भूख के कारण विषम को भी उन्हे ग्रहण करना पड़ता है चिरसचित सतीत्व धन से भी हाथ धोना पड़ता है।[२] जैनेन्द्रकुमार ने परख (सन् १९२९) लिख कर विधवा की समस्या तथा उनकी मनोभावनाओं को मनोवैज्ञानिक ढग से रखने का प्रयास किया है। विधवा कट्टो

१ प्रेमचद प्रतिज्ञा पृ १४५
२ वही पृ १३१
३ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला अलका पृ० ४२

के पर्यवेक्षण का विश्लेषण करते हुए उन्होंने उनके हृदय में भी कोमलता, उदारता तथा सहनशीलता आदि विशेष गुणों का सम्मिलित कर डाला है। बिहारी और बच्चों के द्वारा यह विश्व द्वारा ब्रजनन्दकुमार ने स्वच्छन्द सामाजिक दायित्व को सहा था है। विधवा समस्या व अवस्थित वातावरण की स्वस्थ परम्पराओं का पोषण देते थे उनके दर्शन के साथ सत्यता। मन की स्वाभाविक गति का भवन मनोनुकूल किया है।

जनार्दन प्रसाद मालवीय के उपन्यास 'प्रवाह' (सन् [illegible]) में जीवन के उषाकाल में ही विधवा हो जाने वाली नारी के मानसिक व सामाजिक अधिकार तथा स्वाभाविक भावनाओं का विरोध किया जा रहा है। वासना और वात्सल्य में उलझी विधवा की रक्षा नहीं समाज की। 'धर्मपत्नी' (सन् [illegible]) उपन्यास में भाभी जी के लिए ही है कि समाज द्वारा दुःखार्त विधवा नारी को प्रेम का भी अधिकार नहीं रह गया था। उनके पास भौतिक जगत की कुठाओं से मुक्ति का केवल एकमात्र साधन था आत्मघात। बाबू जी भी के व धार्मिक उपन्यास केवल उपन्यासकार होने की दृष्टि से लिखे गये व इनका कोई विशेष दृष्टिकोण नहीं होता। 'पतिता की साधना' में उन्होंने विधवा मन के द्वन्द्वात्मक भावों के स्वरूप का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया है। युवती विधवा जिसने चारित्रिक गुण का प्रभाव ही देखा था किस मानसिक स्थिति में जीवन धारण करती है इस पर भारतीय समाज विचार नहीं करता। मानसिक दुर्बलतावश यदि विधवा संयम से गिर जाती है तो पतिता का जीवन व्यतीत करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ता है। विधवा माता हरि ने प्राप्त पुत्र का जीवन रक्षा के लिए पतिता गर्विता का जीवन बिताती है, अन्ततः राष्ट्रीय की रक्षा करती है। अन्त में हरि पापमयी समाज के लिए विद्रोही बन कर माता और अपने पुत्र को प्राप्त करता है। उसकी माँ द्वारा विधवा माता को स्वीकार करना सामाजिक परिवर्तन का सूचक है।[1]

कहानीकारों में प्रेमचन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', विनोदशंकर व्यास, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान ने इस समस्या के सम्बन्ध में अपना विशेष दृष्टिकोण रखा है। प्रेमचन्द की बड़ी वाली विधवा 'बूढ़ी काकी'[2] में विधवा एवं वृद्धा नारी की समस्या ली गई है। निराला जी की कहानियों में विधवाओं के प्रति किये गये सामाजिक अन्याय के प्रति विद्रोह प्राप्त मिलता है। सामाजिक अन्याय की प्रतिक्रियावश उन्होंने 'ज्योतिर्मयी' कहानी में युवती विधवा द्वारा विधवा विवाह का समर्थन कराया है। प्रेमचन्द और जैनेन्द्र कुमार से एक पग आगे बढ़ कर इन्होंने विधवा विवाह को क्रियात्मक रूप भी प्रदान किया है। रघुराम तथा पति से अपरिचित बारह वर्ष की आयु में विधवा हो जाने वाली ज्योतिर्मयी का, युवक विजय की और आकर्षित हो

१ भगवतीप्रसाद वाजपेयी पतिता की साधना
२ प्रेमचंद मानसरोवर भाग १ पृ० ५७
३ वही भाग ८ पृ० १४८
४ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला लिली पृ० २१

जाना स्वाभाविक था। समाज-सुधार के उस युग में जबकि गांधाजी विधवा विवाह के समर्थक थे विजय के पिता के मित्र ने षड्यन्त्र रचकर विजय की अभिज्ञता में यह विवाह सम्पन्न कराया। विजय के पिता दहेज के लोभ में विवाह करते है। विजय को जब राह में यह ज्ञात होता है कि उसका विवाह विधवा ज्योतिमयी से हुआ है तो वह प्रसन्नता के स्थान पर चीख उठता है। लेखक ने इस कहानी में तत्कालीन शिक्षित युवकों की मनोवृत्ति का चित्रण भी किया है। उन्हें सिद्धान्त रूप में तो विधवा विवाह मान्य था किन्तु जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र में नही। उस समय विधवा विवाह आन्दोलन चल पड़ा था वह अखबारो का विषय था लेकिन न तो युवकों में साहस था और न उनकी मनोवृत्ति इसके अनुकूल बन पाई थी।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'कल्याणी'[1] कहानी में विवाह का रंग चढ़ते ही विधवा हो जाने वाली कल्याणी की करुण कथा लिखी है। विधवा के प्रति पुरुष समाज का ही अभिशाप नही था वरन् अन्धविश्वास के कारण स्वयं नारी का व्यवहार भी उसके प्रति कठोर हो गया था। वह अमंगल का प्रतीक समझी जाती थी। कल्याणी विवाह के पश्चात् नववधू का साज सजा कर लौट रही थी तभी रेल दुर्घटना में उसके पति की मृत्यु हो गई। उसके पति अपने मित्र जयकृष्ण पर उसकी रक्षा का भार छोड़ जाते हैं। सौभाग्यवती स्त्रियां उसकी छाया से दूर भागती है और जयकृष्ण की पत्नी अमंगल की दुर्भावना से शंकित रहती है। अन्त में स्वयं जयकृष्ण उसके सौन्दर्य पर मोहित हो जाते हैं वह भी उनकी ओर आकृष्ट होती है किन्तु अपने प्रेम का प्रतिदान नही चाहती और उनका घर त्याग कर चली जाती है। कहां? अज्ञात है। सुभद्राकुमारी चौहान ने नारी हृदय की सम्पूर्ण कोमल भावनाओं के साथ विधवाओं पर किये जाने वाले सामाजिक अत्याचार को हृदयंगम किया है। विधवा हृदय-शून्य नहीं होती उसमें भी प्रेम की कोमल किन्तु शाश्वत भावना विद्यमान रहती है इसकी ओर इंगित करते हुए भी लेखिका ने कल्याणी के आदर्श चरित की रक्षा की है। यथार्थता के फेर में पड़कर नारी का पतित रूप उन्हें स्वीकृत नहीं है। इसी कारण पाठकों की विशेष सहानुभूति उनकी विधवा के लिये उमड़ती है।

विनोदशंकर व्यास की 'पूर्णिमा' 'हृदय की कसक' 'मान का प्रश्न'[2] कहानियां विधवा समाज और प्रेम के संघर्ष से अनुप्राणित हैं। 'पूर्णिमा' कहानी में कृष्ण नामक युवक विधवा हीरा से प्रेम करता है हीरा के हृदय में भी पुरुष के लिए प्रबल लालसा है लेकिन समाज का भय बाधक है और कृष्ण का जीवन समाज की वेदी पर अर्पित हो जाता है। हीरा अपनी मनोवृत्तियो को समाज के अंकुश से भी वश में नही रख पाती वह गृहस्थी बसाती है और व्यास जी उसकी गोद में तीन साल का बच्चा छोड़ उसे पुनः पति से वंचित कर पाठकों के सम्मुख उसकी स्थिति अधिक दयनीय रूप में प्रस्तुत करते हैं। विधवा समाज की क्रूरता तथा दैवी विपत्ति का एक साथ शिकार बनती है और लेखक एक दार्शनिक वातावरण में उसका उद्धार कृष्ण के मित्र

---

१ सुभद्राकुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० ३७

२ विनोद शंकर व्यास : अस्सी कहानियाँ पृ० २०४

द्वारा करवाता है।[1] उद्धार का रूप लेखक की आदर्शवादी एवं दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट नहीं हुआ है। हृदय की कसक कहानी में भी व्यास जी अठारह वर्ष की विधवा शांता की मन स्थिति उसके प्रेम तथा विवाह के बीच समाज के भय कसक और आदर्श का चित्रण किया है। इस कहानी में विधवा के हृदय की गुत्थियाँ खोलकर उसके सत्य स्वरूप को इन शब्दों में रखा गया है— निगोड़ा समाज मतलबी है। वह दूसरों को सुखी नहीं देख सकता—किसी के दुख में हाथ भी नहीं बटा सकता। फिर ऐसे समाज के कसक की क्या चिंता ? मैं तुम्हारे साथ रहकर परम सौभाग्यवती समझूँगी। अमर मेरा सौभाग्य अपने समाज को खलेगा तो देखने देना।[2] व्यास जी की आदर्शवादी प्रवृत्ति जीवन की क्षणभगुरता का सहारा लेकर विधवा के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती— तो देखा—यह शरीर और यह रूप एक दिन मिट्टी में मिल जाएगा किन्तु मेरी आत्मा सदा तुम्हारे साथ रहेगी। मेरा शरीर चाहे कहीं भी रहे लेकिन तुम्हें मेरे वियोग का दुख नहीं उठाना पड़ेगा।[3] शांता इसी अन्तस सिद्धान्त को लेकर निष्य जीवन व्यतीत करती है। मान का प्रश्न कहानी में विधवा सुम। पर सामाजिक अत्याचार की निममता[4] सुभद्रा के यौवन की सहज प्रेम सबधी लालसा तथा सामाजिक मान मर्यादा के बीच संघर्ष दिखाया गया है। अन्त में मान का प्रश्न विजयी होता है और सुभद्रा आत्मघात कर लेती है। विधवा की करुण दशा के प्रति व्यास जी की पूर्ण सहानुभूति है। उन्होंने इसे सामाजिक समस्या के साथ वैयक्तिक समस्या का रूप भी दिया है किन्तु समाज एवं व्यक्ति की इस दुर्दशा के प्रति उनकी आदर्शवादी तथा भावुक प्रवृत्तिपूर्ण न्याय नहीं कर सकी। जीवन की क्षणभगुरता तथा प्रेम के शुद्ध सात्विक स्वरूप के प्रतिष्ठापन में सामाजिक अत्याचार एवं व्यक्तिगत भावनाओं का स्वर दब गया है। निराला के सदृश विधवा के संबंध में उनके विचार क्रांतिकारी नहीं हैं प्रेमचन्द के समान उन्होंने विधवा विवाह तथा वनिताश्रम की स्थापना का उद्योग कर समस्या के निराकरण का प्रयत्न भी नहीं किया गया है और सुभद्रा कुमारी चौहान के सदृश विधवा नारी के भारतीय संस्कारवश स्वत प्रेरित आदर्शरूप की पूर्ण प्रतिष्ठा में भी उन्हें सफलता नहीं मिली है।

प्रेमचद ने विधवा विवाह तथा वनिताश्रम की स्थापना द्वारा विधवाओं की आर्थिक समस्या के हल भी ढूँढे थे। विधवा की अन्तर्कथा को प्रेमचन्द जी ने हृदय से अनुभव किया था। निराला तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने विधवा विवाह करा कर समाज की उपेक्षा का साहस प्रदर्शित किया है। विधवा नारी की समस्या केवल सामाजिक एवं आर्थिक नहीं थी वैयक्तिक और आन्तरिक भी थी।

१ विनोद शंकर व्यास अस्सी कहानियाँ पृ० २१०
२ वही पृ० २६४
३ वही पृ० २६४
४ वही पृ० २८६

जाना स्वाभाविक था। समाज-सुधार के उस युग में जबकि गांधाजी विधवा विवाह के समर्थक थे विजय के पिता के मित्र ने षड्यन्त्र रचकर विजय की अभिज्ञता म यह विवाह सपन्न कराया। विजय के पिता दहेज के लोभ म विवाह करते हैं। विजय को जब राह म यह ज्ञात होता है कि उसका विवाह विधवा ज्योतिमयी से हुआ है तो वह प्रसन्नता के स्थान पर चीख उठता है। लेखक ने इस कहानी म तत्कालीन शिक्षित युवकों की मनोवृत्ति का चित्रण भी किया है। उन्हें सिद्धान्त रूप म तो विधवा विवाह मान्य था किन्तु जीवन के व्यवहारिक क्षेत्र में नहीं। उस समय विधवा विवाह आन्दोलन चल पड़ा था वह अखबारों का विषय था लेकिन न तो युवकों म साहस था और न उनकी मनोवृत्ति इसके अनुकूल बन पाई थी।

सुभद्रा कुमारी चौहान ने कल्याणी'[1] कहानी म विवाह का रग चढ़ते ही विधवा हो जाने वाली कल्याणी की करुण कथा लिखी है। विधवा के प्रति पुरुष समाज का ही अभिशाप नहीं था वरन् अधविश्वास के कारण स्वयं नारी का व्यवहार भी उसके प्रति कठोर हो गया था। वह अमगल का प्रतीक समझी जाती थी। कल्याणी विवाह के पश्चात नववधू का साज सजा कर लौट रही थी तभी रेल दुर्घटना म उसके पति की मृत्यु हो गई। उसके पति अपने मित्र जयकृष्ण पर उसकी रक्षा का भार छोड़ जाते हैं। सौभाग्यवती स्त्रिया उसकी छाया से दूर भागती है और जयकृष्ण की पत्नी अमगल की दुर्भावना से शकित रहती है। अन्त म स्वय जयकृष्ण उसके सौन्दय पर मोहित हो जाते हैं वह भी उनकी ओर आकृष्ट होती है किन्तु अपने प्रम का प्रतिदान नहीं चाहती और उनका घर त्याग कर चली जाती है। कहा? अज्ञात है। सुभद्राकुमारी चौहान ने नारी हृदय की सम्पूर्ण कोमल भावनाओं के साथ विधवाओं पर किये जाने वाले सामाजिक अत्याचार को हृदयगम किया है। विधवा हृदय-शून्य नहीं होती उसम भी प्रम की कोमल किन्तु शाश्वत भावना विद्यमान रहती है इसकी ओर इगित करते हुए भी लेखिका ने कल्याणी के आदश चरित की रक्षा की है। यथार्थता क फर म पडकर नारी का पतित रूप उन्हे स्वीकृत नहीं है। इसी कारण पाठकों की विशेष सहानुभूति उनकी विधवा के लिये उमडती है।

विनोदशकर व्यास की पूर्णिमा हृदय की कसक मान का प्रश्न'[2] कहानियां विधवा समाज और प्रम के सघष से अनुप्राणित हैं। पूर्णिमा कहानी में कृष्ण नामक युवक विधवा हीरा से प्रेम करता है हीरा के हृदय म भी पुरुष के लिए प्रबल लालसा है लेकिन समाज का भय बाधक है और कृष्ण का जीवन समाज की वेदी पर अर्पित हो जाता है। हीरा अपनी मनोवृत्तियो को समाज के अकुश से भी वश मे नहीं रख पाती वह गृहस्थी बसाती है और व्यास जी उसकी गोद म तीन साल का बच्चा छोड उस पुन पति से वचित कर पाठकों के सम्मुख उसकी स्थिति अधिक दयनीय रूप म प्रस्तुत करते हैं। विधवा समाज की क्रूरता तथा दैवी विपत्ति का एक साथ शिकार बनती है और लेखक एक दार्शनिक वातावरण म उसका उद्धार कृष्ण के मित्र

१ सुभद्राकुमारी चौहान सीधे सादे चित्र प ३७
२ विनोद शकर व्यास। अस्सी कहानियाँ पृ० २०४

द्वारा करवाता है।[1] उद्धार का रूप लेखक की आदर्शवादी एवं दार्शनिक प्रवृत्ति के कारण स्पष्ट नहीं हुआ है। हृदय की परख कहानी में भी व्यास जी अठारह वर्ष की विधवा शांता की मन स्थिति, उसके प्रेम तथा विवाह के बीच समाज के भय कलंक और आदर्श का चित्रण किया है। इस कहानी म विधवा के हृदय की गुत्थिया खोलकर उसके सत्य स्वरूप को इन शब्दो म रखा गया है— निगोड़ा समाज मतलबी है। वह दूसरा को सुखी नही देख सकता—किसी के दुख में हाथ भी नही बटा सकता। फिर एसे समाज के कलंक की क्या चिंता ? मैं तुम्हारे साथ रहकर परम सौभाग्यवती समझूगी। अमर मरा सौभाग्य अन्य समाज को खलेगा तो देखने दना।[1] व्यास जी की आदर्शवादी प्रवृत्ति जीवन की क्षणभगुरता का सहारा लेकर विधवा के इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती— तो देखो—यह शरीर और यह रूप एक दिन मिट्टी म मिल जाएगा किन्तु मरी आत्मा सदा तुम्हारे साथ रहेगी। मेरा शरीर चाह कही भी रहे लेकिन तुम्हें मेरे वियोग का दुख नही उठाना पडेगा।[2] शाता इसी अटल सिद्धान्त को लेकर दिव्य जीवन व्यतीत करती है। 'मान का प्रश्न कहानी म विधवा सुभद्रा पर सामाजिक अत्याचार की निममता[3] सुभद्रा के यौवन की सहज प्रेम सबधी लालसा तथा सामाजिक मान मर्यादा के बीच सघर्ष दिखाया गया है। अन्त में मान का प्रश्न विजयी होता है और सुभद्रा आत्मघात कर लेती है। विधवा की करुण दशा के प्रति व्यास जी की पूर्ण सहानुभूति है। उन्होंने इसे सामाजिक समस्या के साथ मर्मान्तिक समस्या का रूप भी दिया है किन्तु समाज एव व्यक्ति की इस दुर्दशा के प्रति उनकी आदर्शवादी तथा भावुक प्रवृत्तिपूर्ण न्याय नही कर सकी। जीवन की क्षणभगुरता तथा प्रेम के शुद्ध सात्विक स्वरूप के प्रतिष्ठापन म सामाजिक अत्याचार एव व्यक्तिगत भावनाओ का स्वर दब गया है। निराला के सदृश विधवा के सबंध मे उनके विचार क्रांतिकारी नहीं हैं प्रेमचन्द के समान उन्होने विधवा विवाह तथा वनिताश्रम का स्थापना का उद्योग कर समस्या के निराकरण का प्रयत्न भी नहा किया गया है और सुभद्रा कुमारी चौहान के सदृश विधवा नारी के भारतीय सस्कारवश स्वत प्रेरित आदर्शरूप की पूर्ण प्रतिष्ठा म भी उन्हें सफलता नही मिली है।

प्रेमचद ने विधवा विवाह तथा वनिताश्रम की स्थापना द्वारा विधवाओ की आर्थिक समस्या के हल भी ढूंढे थ। विधवा की अन्तकथा को प्रेमचन्द जी ने हृदय से अनुभव किया था। निराला तथा भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने विधवा विवाह करा कर समाज की उपेक्षा का साहस प्रदर्शित किया है। विधवा नारी की समस्या केवल सामाजिक एव आर्थिक नहीं थी वैयक्तिक और आन्तरिक भी थी।

---

१ विनोद शकर व्यास अस्सी कहानियाँ प० २१०
२ वही पृ० २६४
३ वही पृ० २६४
४ वही प० २८६

दहेज प्रथा

अधिकांश भागों म प्रचलित दहेज प्रथा के कारण इस अभाव ग्रस्त देश की कन्याओं का जीवन भार स्वरूप हो गया था। इस प्रथा के कारण मध्यवित्तीय जीवन म वैवाहिक जटिलता बढ़ गई थी कन्याओं का अनादर होने लगा था और प्राय सुन्दर सुयोग्य विवाह योग्य कन्याओं को उनके योग्य वर नहीं मिल पाता था। कथा-साहित्य म लेखकों ने समाज म प्रचलित इस कुप्रथा के दुष्परिणामों पर लेखनी उठाई है। प्रेमचन्द के सेवासदन उपन्यास की सुन्दरी महत्वाकांक्षिणी नायिका द्वारा वेश्यावृत्ति अपनाने का मूल कारण इसी म निहित है। रिश्वत जैसी दुबल मनोवृत्ति को यही जन्म देती है। निर्मला' उपन्यास म अनमेल विवाह दहेज प्रथा के कारण होता है जिसकी ज्वाला में एक पूरी गृहस्थी जल जाती है। अभिभावक ही नही स्वय शिक्षित नवयुवकों की मनोवृत्ति इतनी दूषित हो गई थी कि वे दहेज के रुपया पर चैन का जीवन बिताना चाहते थे।[1] निर्मला का जीवन समाज की बलिवेदी पर चढ़ जाता है उसकी सगाई टूट जाती है क्योंकि उसकी विधवा मां के पास दहेज म देने के लिये मोटी रकम नही थी। वृन्दावनलाल वर्मा के लगन तथा 'सगम उपन्यासो म दहेज के प्रश्न पर सवधियो के मनमुटाव तथा उसके कारण उत्पन्न समस्याओं का विश्लेषण किया गया है। सियारामशरण गुप्त ने अपने गोद' उपन्यास म सहज रूप से इस ओर सकेत कर दिया है कि तुच्छ धन के लोभ म सजीव लक्ष्मी जैसी कन्या को ठुकरा दिया जाता था।[3]

प्रेमचन्द जी ने छोटी कहानियों के माध्यम से भी दहेज प्रथा के भीषण परिणाम पर प्रकाश डाला है। उद्धार नामक कहानी म दहेज द्वारा उत्पन्न दूषित वैवाहिक प्रथा की भयकरता का वर्णन किया गया है। अभी बहुत दिन नही गुजरे कि एक या दो हजार रुपये दहेज केवल बडे घरों की बात थी छोटी-मोटी शादियां पांच सौ से एक हजार तक तै हो जाती थी पर अब मामूली विवाह भी तीन-चार हजार से नीचे नहीं तै होते। खर्च का तो यह हाल है और शिक्षित समाज की निधनता और दरिद्रता दिना दिन बढ़ती जाती है। [2] इसी प्रकार एक आंच की कसर नामक कहानी म प्रेमचन्द जी ने धनी मानी विद्वान लोगों की पतित मनोवृत्ति का निरूपण किया है जो बाह्य रूप से यश प्राप्ति के लिए समाज-सुधार तथा दहेज विरोधी थे किन्तु गुप्त रीति से दहेज लेते थे।

जयशकर प्रसाद की कहानी प्रतिमा म धनी मानी व्यक्तियों की अर्थ-लोलुपता पर प्रकाश डाला गया है। दरिद्र घर की कन्या द्वारा अधिक दहेज न लाने के कारण उसका तिरस्कार होता था और यह सामाजिक अप्रतिष्ठा का काय समझा जाता था। प्रसाद जी ने समाज को दोष देते हुए कहा है— मनुष्य इतना पतित कभी न होता

---

१ प्रेमचंद निर्मला पृ० २७
२ प्रेमचद मानसरोवर तृतीय भाग। पृ० ३८
३ सियारामशरण गुप्त गोद पृ० ८०

यदि समाज उसे न बना देता।'[1] 'प्रतिध्वनि' कहानी मे दरिद्रता और दहेज न जुटा पाने के कारण रामा अपनी पुत्री श्यामा का विवाह किये बिना ही चल बसती है। पेट की ज्वाला म श्यामा का सब कुछ बिक जाता है और अन्त मे वह पगली बनकर समाज के अभिशाप पर व्यग्य कसती हुई घूमती फिरती है।[2]

समाज मे अनमेल विवाह का कारण भी कन्यापक्ष वालो का अर्थाभाव था। राधिकारमण प्रसाद सिंह के पुरुष और नारी उपन्यास म इस ओर सकेत किया गया है। स्पष्ट रूप से अधिक नही कहा है। सुधा का विवाह अधेड एक दो बेटों के बाप से होता है जिसमे अन्य दुगुण भी थे।[3]

रामबक्ष बेनीपुरी की कहानी जुलेखा पुकार रही है (चिता के फूल म सगृहीत—इन कहानियों का निर्माण काल १६३० ३२ ई० है—बेनीपुरी परिचय—बेनीपुरी ग्रन्थावला) में यह दिखाया गया है कि केवल हिन्दू समाज म ही नही, मुसलमानों म भी दहेज तथा धन प्राप्ति की महत्त्वाकाक्षा मे युवक युवतियों का जीवन विनष्ट हो रहा था। सरकारी उच्च नौकरियों पर पहुच कर लोगा की मनोवत्ति वदल जाती थी उसमे सबधो की अपेक्षा स्वार्थ का अधिक समावेश हो जाता था।[4]

सामाजिक अन्धविश्वास तथा रूढ़ियाँ

अन्धविश्वास तथा रूढ़िवादिता ने सामाजिक मस्तिष्क की विवेक-बुद्धि भ्रष्ट कर दी थी। हिन्दी कथा साहित्य म सामाजिक अन्धविश्वास तथा रूढ़ियों के कुपरिणाम का चित्रण मिलता है। जयशकर प्रसाद ने ककाल और तितली उपन्यास म यथार्थवादी शैली म सामाजिक अन्धविश्वास रूढ़िवादिता मिथ्यात्व का भडाफोड कर उसकी कुरूपता का नग्न प्रदर्शन किया है। यथार्थवादी दृष्टिकोण होने के कारण उन्होंने समाज की गन्दगी को खोलकर रख दिया है। लेकिन इनका यथार्थवाद समाज के लिए अस्वस्थ अथवा हानिकर नहीं है।

सियारामशरण गुप्त ने गोद उपन्यास मे समाज की उस अनीति का उद्घाटन किया है जिसमें मिथ्यावाद के कारण निर्दोष कन्या का जीवन विनष्ट हो सकता था। देहाती समाज की कठोरता एव सकीर्णता का सरल कलात्मक मार्मिक चित्रण किया गया है। यद्यपि शोभाराम का चरित्र अधिक सबल नही है लेकिन वह लोकापवाद एव मिथ्यात्व के विरुद्ध विवाह करके समाज सुधार का प्रयास करता है। नारी उपन्यास म भी सियारामशरण जी ने लोकापवाद के कारण अस्तव्यस्त जीवन का सफल अकन किया है।

धर्म कर्म के नाम पर बाह्याडम्बर और अन्धविश्वास ने लोगों को जकड़ लिया था। अर्थ लिप्सा और स्वार्थ-पूर्ति के लिए धर्म का रूप गढ़ लिया जाता था। निराला

१ जयशकरप्रसाद प्रतिध्वनि पृ ७२
२ जयशकरप्रसाद आकाशदीप पृ० ६५
३ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० ६८ ६६
४ बेनीपुरी ग्रन्थावली [चिता के फूल पृ० २४ भाग १

जी ने निरुपमा उपन्यास म सुशिक्षित कुमार को सामाजिक रूढ़ियों तथा अन्धविश्वास से आक्रान्त दिखाया है। समाज ने कुमार और उसके परिवार को इसलिए दण्डित किया था कि वह शिक्षा के लिए विदेश गया था। इस उपन्यास की नायिका के अभिमत म ऐसे धम एव सामाजिक रीतियो का समथन करने से ज्ञान का विरोध होता है — जिन सामाजिक रीतियो के कारण कुमार जैसे शिक्षित मनुष्य को पीड़ा पहुँचती है उनका समथन करके वस्तुत ज्ञान की ओर बढ़ने का उसने विरोध किया है यह रीति के अनुसार धम नही[1]

वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यास कुण्डलीचक्र म सामाजिक अन्ध विश्वास की प्रतीक कुण्डली मिला कर विवाह करने की प्रथा का दुष्परिणाम दिखाया गया है। कुण्डली की वेदी पर बलि हो जाने वाले युवक युवती की यह कथा है। आपके ऐतिहासिक उपन्यासो म भी युगीन समस्याओं की झलक मिलती है। गढ़ कुण्डार म जातिवाद के प्रश्न को लिया गया है। राजपूतों की जात्याभिमान की मिथ्या भावना देश के विनाश का मूल कारण थी। इस उपन्यास में तीन प्रणय कथाए चलती हैं—तारा दिवाकर अग्निदत्त-मानवती होमवती और उसके दो प्रेमी नागदेव और पुण्यलाल। जाति भेद के विष के कारण प्रणय असफल होते हैं केवल तारा और दिवाकर का मिलन सभव होता है। डा० सुषमा धवन ने अपनी पुस्तक म लिखा है— उपन्यास म जातिवाद के प्रश्न के माध्यम से लेखक आधुनिक युग की परिस्थिति का विश्लेषण कर आज के मानव को सन्देश देने म सफल हुए हैं।[2] जातिवाद की भ्रान्त भावना कितनी विनाशकारी सिद्ध हो सकती है और राष्ट्रीय एकता को स्थापित करने म कितनी बाधा डाल सकती है इसकी चेतावनी लेखक ने उपन्यास द्वारा दी है और इसमे इतिहास से गृहीत जीवन का सन्देश निहित है जो आधुनिक युग के लिए उपादेय है। भयानक युद्ध एव रक्तपात के बीच मानवीय स्निग्ध भावना प्रेम की अभिव्यक्ति ही इस उपन्यास की प्राण प्रतिभा है।[3]

विवाह के सबध में जातिवाद की कट्टर भावना का वणन विशम्भरनाथ शर्मा कौशिक के भिखारिणी उपन्यास में मिलता है। व्यक्तिगत प्रम भावना को सामाजिक रूढ़ियों पर बलिदान करना पड़ता था अथवा समाज और जाति से च्युत। इस उपन्यास म जस्सो को आजीवन अविवाहित रहना पड़ता है क्योकि उसके रूप और यौवन पर मोहित रामनाथ सम्पन्न पिता का बेटा है जो जातिवाद के समथक हैं। उसके पिता ने समाज विरुद्ध विवाह किया था अत पिता के कार्य का फल बेटी को भुगतना पड़ता है। कौशिक जी आदर्शवादी लेखक हैं इस कारण उन्होने इस उपन्यास में व्यक्तिक भावना की अपेक्षा सामाजिक दायित्व को निभाने का प्रयत्न किया है। इनके विपरीत निराला जी प्रगतिवादी और क्रांतिकारी उपन्यासकार हैं जिनके निरुपमा उपन्यास की नायिका समाज एव जाति बहिष्कृत कुमार से विवाह कर

१ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला निरुपमा
२ डा सुषमा धवन हिन्दी उपन्यास पृ० ११७
३ वही पृ० ११८

सबधी जन समाज तथा जाति की उपेक्षा करती है ।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास मध्यवर्गी समाज से सबधित हैं । उन्होंने मध्य-वर्ग मे प्रचलित अहितकर रीति रिवाजों मान्यताओं और आदर्शों का तीक्ष्ण दृष्टि से विवेचन किया है । पतिता की साधना उपन्यास इसका उदाहरण है । राधिकारमण प्रसाद सिंह ने पुरुष और नारी उपन्यास मे इस सबध मे लिखा है— इस देश म धार्मिकता की गम बाजारी ही उसके गले में भीख की झोली डाल गई । अब जजीर तुडा कर थोडे खुले दिल से चौकडी भरना भी उसके जीवन के स्वास्थ्य के लिए जरूरी है । परलोक की धाधली म उसकी मिट्टी काफी पलीद हो चुकी । मैं जानता हू पुरुषो ने उसके गले की सांकल पर धम के मीने का पानी चढा कर उसे गले का हार करार दे रखा है । पर वह गले का हार गले का भार न होता तो किसी को इकार न था ।[1]

हिन्दी कहानी साहित्य म भी प्रचलित अन्धविश्वास के चित्र मिलते हैं । प्रमचद जी की नराश्य[2] कहानी म निरुपमा के पति इस कारण रूठे रहते हैं कि वह लडकियो को जन्म देती है । तेंतर कहानी म सामाजिक अन्धविश्वास के कारण तीन पुत्रो के पश्चात उत्पन्न कन्या को अमगल का प्रतीक समझ कर उसकी मां भी भली प्रकार लालन पालन नहीं करती ।[3] अत में किसी प्रकार का अनिष्ट न होने पर घर की वृद्धा माता को तेंतर का प्रभाव दिखाने के लिए असाध्य बीमारी का स्वाग रचना पडता है । बहिष्कार कहानी म कालिन्दी का पति अपनी पत्नी को अकारण निष्कासित कर देता है । गोविन्दी उच्च कुल की न थी उसके इस अभाव का लाभ उठाकर कालिन्दी का पति उसे और उसके पति को समाज से निकलवा देता है । अत में गोविन्दी उसका पति ज्ञानचन्द और उनका पुत्र सबका जीवन समाज की रूढ़िवादिता की कठोर वेदी पर अर्पित हो जाता है ।[4] प्रमचन्द जी ने सामाजिक अन्धविश्वास की निरथकता निराधारता और निस्सारता की ओर देश वासियों का ध्यान आकृष्ट किया है जो समाज मे जड़ता फैलाकर राष्ट्रीय जीवन को विवेक शून्य बना रहे थे ।

प्रमचद जी की परम्परा में आने वाले कहानी लेखक कौशिक जी ने सामाजिक रूढ़ियो और अन्धविश्वास को देश की आर्थिक दुदशा का कारण माना है । उनकी 'बिदसली' कहानी मे स्वय किसान कहता है कि पिता की मृत्यु म सामाजिक रीति वश रुपया लगाने लड़की के विवाह म सामथ्य से अधिक व्यय करने के कारण उसकी आजीविका के साधन बैल बिक गये ।[5] सामाजिक कुरीति, अज्ञानता और

---

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० १३
२ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ३
३ वही
४ वही भाग ५ पृ १०६
५ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल : पृ० १४५

अन्धविश्वास ने भारतीय जीवन को खोखला बना दिया था। भगवती प्रसाद वाजपेयी की कहानियों म भी मध्यवर्गीय समाज की मान्यताओं रीतियो आदर्शों का एक कटु आलोचक की भांति निरीक्षण एव विवेचन हुआ है। लेकिन इसके साथ ही साथ अपनी परम भावुकता आदर्शवादिता और भारतीयता के स्पर्शों से समाज के कुचक्रों, भयानक विवर्तों म पडे हुए घायल-उदास असहाय व्यक्तियो के हृदयो को रग देना, इन कहानियो की अपनी विशेषता है।[1]

सामाजिक रूढियों के कारण ग्रामीणों की सबसे अधिक दुर्दशा हुई थी जसा कि प्रेमचद, कौशिक आदि की कहानियों से स्पष्ट है। सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'सीधे सादे चित्र' नामक सस्मरणात्मक कहानी सग्रह म विमाता नामक कहानी म सामाजिक रूढिवादिता के कारण उद्भूत छोटी सी ग्रामीण बालिका की दयनीय स्थिति के सबध में लिखा है। एक ग्रामीण बाला अपने जीवन की समस्त सचित पूजी एक थाली और कटोरी भारती की मुन्नी म उठाये एकाकी अपने अनदेखे पति को इलाहाबाद जैसे विशाल शहर म ढूढने चल देती है।[2] ग्रामीण समाज कितना पिछडा हुआ था रूढि के कारण उसकी कितनी असहाय स्थिति थी इस और सुभद्रा जी ने सीधी सादी रीति से कटु व्यग्य कसा है।

सामाजिक अनाचार के प्रति हिन्दी साहित्यिक जागरूक थे और उनकी समाज सुधार की प्रवृत्ति ने ही उन्हे इन सामाजिक दुर्दशा के विषया पर लिखने के लिए प्रेरित किया था।

अछूत समस्या

हिन्दू समाज मे अस्पृश्यता अथवा अछूतो की समस्या अति विकट थी। समाज का एक अग समस्त सामाजिक अधिकारो से वचित होकर अति दीन हीन कष्ट कर जीवन बिताने को बाध्य हुआ था। गाधी जी ने समाज के इस वग म उठते हुए विद्रोह को देख लिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभिक काल म ही उन्होने अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को महत्व दिया था। जसा कि राष्ट्रवाद के विकास के इतिहास म स्पष्ट किया जा चुका है कि सन् १६३ के आन्दोलन में यह प्रमुख समस्या बन गई थी और विदेशी शासकों ने जब समाज के इस वग की विशेष सहानुभूति प्राप्त करने के लिए इनके पृथक मतदान की व्यवस्था करनी चाही तो गाधीजी ने आमरण अनशन कर उनकी राष्ट्रीय विभक्त-नीति का विरोध किया। उन्हें हिंदू समाज का शूद्रों के साथ व्यवहार अमानवीय तथा बर्बर लगता था। गाधीजी की विचारधारा के अनुकूल उपन्यास और कहानियों में भी समाज द्वारा बहिष्कृत इस वग की अज्ञानता दुर्बलता विपन्नता तिरस्कार एवं उसके परिणाम का सफल एवं मार्मिक चित्रण मिलता है।

प्रेमचद जी के उपन्यास 'कर्मभूमि' में अछूतो के साथ सवर्णों के दुर्व्यवहार का वर्णन मिलता है। इस उपन्यास म उन्होंने अछूतों के उद्धार उनमें शिक्षा तथा सदा

१ भगवतीप्रसाद वाजपेयी अभिनन्दन ग्रन्थ पृ० ६७

२ सुभद्रा कुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० १०७

धार के प्रसार का काय अमरनाथ द्वारा सपादित कराया है। निराला के निरुपमा उपन्यास म सवण अवण का भेद स्पष्ट किया गया है। गोविन्दवल्लभ पन्त के 'जूनिया उपन्यास में अवण जूनिया इस भेदभाव के कारण ही ईसाई धम ग्रहण कर लेता है। जूनिया अवण था इस कारण बाल्यावस्था म गुसाइ जी की बावली म पानी पीने के कारण गुसाइ जी ने लकडी लेकर उसका पीछा किया था और पिता ने पीटा था। शिकार के समय सिंह से प्राण रक्षा के लिए उसने शिव मदिर का आश्रय लिया था। जिसका दण्ड उसे ग्राम निकाला मिला। जूनिया का हृदय इन घटनाओं से विद्रोही हो जाता है वह अपनी पत्नी से कहता है – सानी देवमन्दिर की इमारत मेरे पुरखाओ ने एक एक पत्थर ढोकर चिनी है। उसके अन्दर की मूर्तिया भी उन्होने ही गढी हैं। वे देवता की पूजा का वरदान लने वाले हो गए और हम उनके चरणों की धूल जब काल हमें निगलने के लिये जबडा फलाता है तब उसके अन्दर जाकर अपनी प्राण रक्षा भी नही कर सकते।'[1] जूनिया जसे अवणों द्वारा ईसाई धम ग्रहण करने का प्रमुख कारण था, उन पर हिन्दू समाज द्वारा अत्याचार। सदियो से कुचली हुई जातियो को जब हिन्दू धम और समाज म कोई स्थान प्राप्त नहीं था दिन भर मेहनत करने पर भी जूठा खाने को और गदला पानी पीने को मिलता था तो वे ईश्वर दम्भ देते थे।[2]

उपन्यासों की भाँति प्रमचन्द निराला जयशकर प्रसाद की कहानियों में भी इस वग का विशेष वणन मिलता है। प्रमचन्द की ठाकुर का कुआँ कफन सद्गति 'मन्त्र आदि कहानियाँ शोषित अछूत वग के प्रति उनकी सहानुभूति की परिचायक हैं। ठाकुर का कुआ' कहानी म बीमार जोखू को स्वच्छ जल की उपलब्धि नहीं हो पाती क्योकि अछूतो के कुओं में किसी जानवर के गिर जाने से बदबू आ गई थी। ठाकुर ब्राह्मण के कुआ की सीमा का स्पश भी उनके लिए धम विरुद्ध था। उसकी पत्नी गगी साहस कर ठाकुर के कुएँ में पानी भरना चाहती है किन्तु ठाकुर का स्वर सुन उसके हाथ से रस्सी छूट जाती है और घडा कुएँ म गिर जाता है। समाज के अत्याचार से पीड़ित जाखू को वह गन्दे पानी का लोटा मुह म लगाये देखती है। इस कहानी मे प्रमचन्द जी न गगी के हृदय म समाज के उच्च वग की मिथ्यावादिता आचरणहीनता अन्याय के प्रति विरोध भावना और द्वन्द्व दिखाकर इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है कि निम्न वण में अपनी विवशता के प्रति विद्रोह पनपने लगा था जिससे राष्ट्रीय एकता को आघात पहुचता है।

जयशकर प्रसाद की विराम चिह्न कहानी म अछूतों के दयनीय जीवन का करुण चित्र है। अद्ध-नग्न बूढ़ा दूकान वाली तीन दिन से भूखी थी लेकिन मन्दिर का प्रसाद उसके लिए वर्जित था क्योकि वह अछूत थी। वह दूर से ही एक अधिक उतरा हुआ केला अपनी अजलि म रख कर नवद्य के रूप म चढ़ा कर, प्रसाद समझ कर ग्रहण कर लेती है। प्रसाद जी कहते हैं—भगवान् ने उस अछूत का नवेद्य ग्रहण

---

१ गोविन्द वल्लभ पन्त। जूनिया, पृ० ३१

२ वही। पृ० ६०,६१

किया या नही कौन जाने किन्तु बुढिया ने उसे प्रसाद समझ कर ही ग्रहण किया।[1] देश और समाज की यह कैसी विडम्बना थी जहा ईश्वर भी उच्च वर्ण की पैतृक सम्पत्ति बन गया था। वृद्धा का विद्रोही लडका अन्य अछूत वर्ग के साथ मन्दिर प्रवेश के लिए तत्पर होता है। सवर्ण आस्तिक भक्तो के झुण्ड ने अपवित्रता से भगवान् की रक्षा करने के लिए वृद्धा के पुत्र राधो के बलिदान से मन्दिर की देहली को पवित्र किया और बुढिया ने अपने प्राण देकर अछूतों के मन्दिर प्रवेश के दुस्साहस पर विराम चिन्ह लगा दिया।[2]

निराला की श्यामा कहानी मे निम्न वर्ग की समस्या एव विवशता का हृदय विदारक चित्र मिलता है। लगान के सात रुपये वसूल न कर पाने पर जमीदार शूद्र सुधुवा की अच्छी पिटाई करवाते हैं। पंडित रामप्रसाद के पुत्र बंकिम द्वारा उसके प्रति संवेदना प्रकट करने पर और सहायता देने पर बंकिम और सुधुवा को जाति बिरादरी से बहिष्कृत कर दिया जाता है। समाज के उच्चवर्गीय ठेकेदार मानवता के इस धर्म को सहन नही कर पाते कि एक ब्राह्मण का पुत्र शूद्र जाति के तुच्छ प्राणी की सहायता करे। सुधुवा की मृत्यु पर जमीदार के आतंक के कारण बिरादरी के लोग उसकी अन्त्येष्टि क्रिया के लिए भी एकत्रित नही होते। प्रेमचद की अपेक्षा इस क्षेत्र मे भी निराला जी की सामाजिक विचारधारा अधिक क्रांतिकारिणी है। वह समाज के अन्याय और अत्याचार का प्रतिशोध लेना जानती है। शूद्र श्यामा का ब्राह्मण बंकिम के साथ आर्य समाज के मन्दिर मे विवाह कराकर और आर्य समाज की सहायता से उसे शिक्षा दिलाकर वे डिप्टी कलक्टर के पद पर नियुक्त करते हैं। अन्त मे श्यामा द्वारा उसी जमींदार को डाली लौटा कर तिरस्कार करके निराला जी की क्रांति भावना सतुष्ट होती है। इसी प्रकार उनकी चतुरी चमार कहानी मे ग्रामीण समाज के इस निम्न वर्ग के मनोविकारो का लेखक द्वारा गम्भीर अध्ययन मिलता है। जमींदार के उत्पीडन के विरुद्ध यह वर्ग विद्रोही हो रहा था।[3]

साम्प्रदायिकता

राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष का प्रमुख विघटनकारी तत्त्व साम्प्रदायिकता है। भारत की राष्ट्रीयता को इसने राहु सम ग्रस लिया था। जिसका अन्तिम परिणाम देश का विभाजन हुआ। इसके विभिन्न अग हैं वमनस्य हिंसा घृणा प्रतिशोध आदि। मुस्लिम लीग की स्थापना हिन्दू मुस्लिम राष्ट्रविभेद की नीति पर हुई थी जो उत्तरोत्तर विकसित होती गई। असहयोग आन्दोलन के पश्चात् भारत के राष्ट्रीय जीवन मे हिन्दू मुस्लिम सयोग फलीभूत न हो सका। हिन्दू मुसलमानो के दगों ने प्रारम्भ होकर पाकिस्तान के जन्म मे ही अन्त किया।

१ जयशंकर प्रसाद इन्द्रजाल पृ० ११६

२ वही पृ १२२

३ वह एक ऐसे जाल मे फसा है जिसे वह काटना चाहता है भीतर से उसका पूरा जोर उभड़ रहा है पर एक कमजोरी है जिसमें बार-बार उलझ कर रह जाता है।—सम्पादक—विनोद शंकर व्यास मधुकरी दूसरा खण्ड पृ० ६

प्रेमचन्द जी के कायाकल्प उपन्यास में हिन्दू मुस्लिम दंगों का वर्णन किया गया है। वृन्दावनलाल वर्मा का प्रत्यागत उपन्यास साम्प्रदायिक विद्वेष तथा मोपला विद्रोह पर लिखा गया उपन्यास है।

प्रेमचन्द की हिंसा परमो धर्म कहानी में साम्प्रदायिकता का भीषण रूप दिखाया गया है। गाँव हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक भावना से मुक्त थे लेकिन शहर में धर्म के नाम पर मानवता का गला घोंटा जा रहा था। हिन्दू भक्तगण देहाती मुसलमान जामिद को कंठी कर धर्म कल्पना चाहते थे और मुसलमान काजी हिन्दू औरत का धर्म विनष्ट करने में संकुचित नहीं थे। धर्म के नाम पर बहू बेटियों की इज्जत के आबरू हो रही थी।[1] काजी साहब नैतिकता अनैतिकता को भूल कर कहते हैं— हां खुदा का यह हुक्म है कि काफिरों को जिस तरह मुमकिन हो इस्लाम के रास्ते पर लाया जाय। अगर खुशी से न आयें तो जब्र हो।[2] जामिद ने शहर का यह रूप देखा तो वहाँ की विषाक्त वायु में सांस लेते उसका दम घुटने लगा— वह जल्द से जल्द शहर से भाग कर अपने गांव में पहुंचना चाहता था जहाँ मजहब के नाम सहानुभूति, प्रेम और सौहार्द था। धर्म और धार्मिक लोगों से उसे घृणा हो गई थी।

जयशंकर प्रसाद ने भी साम्प्रदायिकता का दुष्परिणाम निर्दर्शित कराने वाली कहानियाँ लिखी हैं। सलीम[4] कहानी में प्रसाद जी ने साम्प्रदायिकता को मानवता का चुनौती दी है। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में मुसलमानों के गांव में हिन्दू और मुसलमान एक परिवार के सदस्यों की भाँति रहते थे लेकिन नवागन्तुक मुसलमान सलीम ने भारत में व्याप्त साम्प्रदायिकता के विष-वृक्ष का वपन करना चाहा। इस कार्य में उसे सफलता न मिल सकी क्योंकि प्रसाद जी की मानवता के सम्मुख धार्मिक संकीर्णता पराजित हो जाती है।

सुभद्राकुमारी चौहान की 'हींग वाला'[5] कहानी हिन्दू मुस्लिम दंगे की पृष्ठभूमि पर लिखी गई है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की हिन्दुस्तानी[6] कहानी में साम्प्रदायिकता के स्वरूप का विवेचन उसके कारणों तथा निवारण के साधनों का उल्लेख मिलता है। इस कहानी में कौशिक जी ने दोनों पक्षों की समस्याओं का निष्पक्ष रूप से चित्रण किया है। हिन्दू धार्मिक कट्टरता तथा अपने साथ खानपान का सम्बन्ध न रखने के कारण भारत के मुसलमानों को विक्षोभ होता था। उन्हें यह सन्देह था कि यदि हिन्दुस्तान आजाद हो गया तो हिन्दू-मुसलमानों के बीच छुआछूत के ऐसे झगड़े

---

१ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ५ पृ० ८६

२ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ५ पृ० ८८

३ वही पृ० ६१

४ जयशंकर प्रसाद इन्द्रजाल पृ० १२

५ सुभद्रा कुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० ६३

६ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ० २४।

उठ खड़े होंगे कि एक बला से निकल कर दूसरी में फसना पड़ेगा।[1] मुसलमानों में भी हिंदू धर्म के प्रति सहिष्णुता की भावना नहीं थी। वे हिंदुओं को काफिर और गाय की कुर्बानी को धर्म समझते थे। हिन्दुस्तान में पैदा होकर, यहां के अन्न से पल कर भी उनकी मल्की दिलचस्पी टर्की के साथ रहती थी। जब तक मुसलमान इस देश को अपना देश, देश के प्रत्येक व्यक्ति को भाई और देश के जानो माल की रक्षा के लिए अग्रसर न होंगे और हिन्दू मुसलमानों का तिरस्कार करेंगे तब तक राष्ट्र का उत्थान एवं विकास असम्भव था।[2]

सांस्कृतिक दुर्दशा

भारतीयों की सांस्कृतिक हीनता की जड़ें गहराई के साथ देशवासियों के आन्तरिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन में निहित थी। विदेशी शासकों की शिक्षा दीक्षा ने भारत की अन्तरात्मा का हनन किया था। स्वदेशी के प्रति शिक्षित समुदाय में एक ऐसी हीन भावना ने जकड़ लिया था कि पश्चिम के अन्धानुकरण में उन्हें जीवन की सार्थकता दृष्टिगत होती थी। भारतीय संस्कृति, जीवन दर्शन, धर्म सभी उनकी दृष्टि में हेय थे। प्रेमचन्द जी की 'पत्नी से पति'[3] 'शांति'[4] 'दो बहनें'[5] 'उन्माद'[6] आदि कहानियों में पश्चिमी चमक-दमक, जड़वादिता तथा अति भौतिक वादी संस्कृति की निःसारता प्रमाणित की गई है। भारतीयों की पतित मनोवृत्ति का वर्णन करते हुए लेखक ने 'पत्नी से पति' कहानी में सेठजी के शब्दों में सांस्कृतिक हीनता का चरम रूप दिखाया है—"हां लेकिन मुझे इसका हमेशा खेद रहता है कि ऐसे अभागे देश में क्यों पैदा हुआ—" 'शांति' कहानी में भारतीयों द्वारा पश्चिमी संस्कृति की भौतिक विचारधारा के अनुकरण के दुष्परिणाम पर प्रकाश डाला है।

तत्कालीन भारतीय शिक्षा पद्धति के दोषों का भी कतिपय उपन्यास तथा कहानियों में यत्र-तत्र वर्णन मिल जाता है। 'कर्म भूमि' उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने तत्कालीन शिक्षा पद्धति की बुराइयों का विवेचन किया है—"हमारे शिक्षार्थी में नर्मी को घुसने ही नहीं दिया जाता। यहाँ स्थायी रूप से मार्शल-ला का व्यवहार होता है। कचहरियों में पैसे का राज है, उससे कहीं कठोर कहीं निर्दय यह राज है। देर में आइये तो जुर्माना, न आइए तो जुर्माना, सबक न याद हो तो जुर्माना कोई अपराध हो जाय जुर्माना, शिक्षालय क्या है जुर्मानालय है। यही हमारी पश्चिमी शिक्षा का आदर्श है जिसकी तारीफों के पुल बांधे जाते हैं। यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान

---

१ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ २५४
२ वही पृ० २५५
३ प्रेमचन्द मानसरोवर भाग ७ पृ १७
४ वही पृ० ८
५ वही पृ ८५
६ वही ६२
७ वही पृ १६

देने वाले, पसे के लिए गरीबों का गला काटने वाले पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देने वाले छात्र निकलते हैं तो आश्चर्य क्या है ?[1]

यह शिक्षा अत्यधिक व्ययशील थी साधारण जन के लिए शिक्षा प्राप्ति का प्रयास ही व्यर्थ था। लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा नामक कहानी में इस तथ्य की ओर दृष्टि आकृष्ट करते हुए प्रेमचन्द जी ने इसके दोषों का उल्लेख किया है कि यह शिक्षा विलासिता का दास बनाकर अनावश्यकताओं की बेड़ी से जकड़ देती है।[2] यह शिक्षा एकांगी थी। व्यक्ति को केवल सरकारी नौकरी के लिए तैयार करने में ही इसकी इति हो जाती थी। अतः बेकारी की समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही थी। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'निरुपमा' उपन्यास में लन्दन से प्राप्त डी० लिट् डिग्री वाले कुमार को भारत में नौकरी का द्वार खटखटाकर तथा निराश हो कर मोची का स्वतन्त्र व्यवसाय अपनाते दिखाया है।

निम्न वर्ग में शिक्षा का प्रचार न होने से भारत की जनसंख्या का एक बड़ा भाग अन्धविश्वास रूढ़ियों, परम्पराओं में जकड़ा हुआ शासक वर्ग जमींदार आदि के अन्याय अत्याचार सह रहा था। इस वर्ग में शारीरिक श्रम के साथ बुद्धि की भी कमी नहीं थी। निराला की 'चतुरी चमार' कहानी में इस पर प्रकाश डाला गया है। निराला जी ने इस वर्ग को शिक्षित करने के लिए जाति और धर्म के विरुद्ध पग उठाया था।

हिंदी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द का विशिष्ट स्थान है उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष के प्रत्येक तत्व का स्पर्श अपनी प्रतिभा द्वारा किया है। उनकी समाज सुधारक आत्मा को दुर्दशा का चित्रण मात्र अभीष्ट नहीं है वरन् वह उसके निवारण का मार्ग भी प्रदर्शित करती चलती है। इनकी अधिकांश सामाजिक समस्याओं का सम्बन्ध मध्यवर्गीय समाज एवं कृषक वर्ग से है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द जी ने उपन्यास तथा कहानियों के विविध रूपों एवं शैलियों में इन दुर्दशाओं का अंकन किया है किंतु प्रमुखता वर्णनात्मकता तथा इतिवृत्तात्मकता की ही है। कहीं-कहीं विषय प्रतिपादन और उद्देश्य की स्थापना में कला को आघात भी पहुँचा है। प्रेमचन्द जी ने अपने युग की समस्याओं दुर्दशाओं एवं राष्ट्रविरोधी तत्वों का विस्तृत इतिहास लिख डाला है। सुदर्शन विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुभद्रा कुमारी चौहान को प्रेमचन्द की परम्परा में रखा जा सकता है। सुभद्रा जी में नारी सुलभ भावुकता एवं कोमलता की मात्रा अधिक है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को प्रेमचन्द का पूरक कहा जा सकता है उनमें दुर्दशा के प्रति आक्रोश की मात्रा और उग्रता अधिक है। प्रेमचन्द ने सामाजिक दुर्दशा के अन्त में समाधान प्रस्तुत किया था उसको निरालाजी ने मूर्त रूप प्रदान किया है। प्रेमचन्द की अपेक्षा ये अधिक प्रगतिवादी हैं। देश-दुर्दशा के कारणों का मापदण्ड कर वे उसे जड़ से मिटा डालना चाहते हैं। इसके लिए वे समाज, देश धर्म से टक्कर लेने के लिए तत्पर हैं।

---

१ प्रेमचन्द कर्मभूमि पृ० ५
२ वही प्रेम चतुर्थी पृ० ६६
३ सम्पादक—विनोदशंकर व्यास मधुकरी दूसरा खण्ड पृ० ६

जयशंकर प्रसाद ने देशदुदशा का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है उनकी सहानुभूति के पात्र समाज के निकृष्ट जीव हैं। समाज धम रूढ़िया का नग्न चित्रण यथार्थवादी शैली म किया है। प्रसाद जी का दृष्टिकोण सामाजिक न होकर व्यक्ति-वादी अधिक है। भगवती प्रसाद वाजपेयी की सवेदना स्त्री पात्रों पर अधिक है प्रम सबधी वयक्तिक भावना का चित्रण सामाजिक दुव्यवस्था की पृष्ठभूमि पर किया है। विनोदशकर व्यास सामाजिक दुदशा का वर्णन करते करते दार्शनिकता मे खो गये हैं। इनकी कहानियो म समाज सुधार का स्वर तीव्र नही है ऐसा लगता है वे अतिशय आदर्शवादिता के कारण समाज-सुधार का उद्दश्य विस्मृत कर बठते हैं। अन्त म यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के इन सभी उपन्यास एव कहानीकारो ने देश की दुदशा के अनेक रूपो को अतिनिकट स देखा था और राष्ट्रीय समाज सुधार धम सुधार सम्बन्धी सम्याम्रो क कायक्रम को स्वर प्रदान किया था।

निष्कर्ष

हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष अर्थात् भारतीय दुदशा क अनेक रूपा का चित्रण काव्य अथवा नाटक की अपेक्षा कथा-साहित्य म अधिक हुआ है। छायावाद रहस्यवाद की प्रवृत्ति की प्रमुखता के कारण काव्य क्षत्र म वतमान की अपेक्षा दार्शनिक एव कल्पना प्रधान व्यक्तिगत प्रमानुभूति के सूक्ष्म चित्रों की बहुलता थी। राष्ट्रीय कवियो की दृष्टि देश की सामाजिक अथवा सास्कृतिक दुदशा की अपेक्षा राजनीतिक दुदशा की ओर अधिक थी। विदेशी शासकों के अत्याचार नृशसता पराधीनता के अभिशाप की करुण पृष्ठभूमि क साथ कवि क संवेदनशील हृदय का अधिक सामजस्य हुआ था। भारतीय दुदशा का मूलभूत कारण भी यही था। देश की आर्थिक विपन्नता का भी कतिपय कवियो न करुण एवं मार्मिक वणन किया किन्तु द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली मे काव्य लिखने की प्रणाली का लगभग अत हो गया था। अत अधिक मात्रा म इस प्रकार का काव्य नही मिलता। हिन्दी म नाट्य साहित्य अधिकतर इतिहास की घटनाओ को लेकर लिखा गया। वर्तमान समस्याओं को लेकर लिखे गये नाटकों की सख्या अति अल्प है। नाटको म वर्तमान दुदशा क चित्र प्रच्छन्न अप्रत्यक्ष एव प्रतीकात्मक रूप म मिलते हैं। उपन्यास अथवा कहानियो म दुर्दशा के वणन का सबसे अधिक सयोग अथवा सुयोग था। अत राज नीतिक सामाजिक आर्थिक साम्प्रदायिक शिक्षा सबधी अनेक समस्याओं का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस समय के अधिकाश कथा-साहित्यकारों ने देश के यथार्थ जीवन का सूक्ष्म अवलोकन किया था दुर्दशा के विभिन्न रूपो का उनकी भावना से साधार णीकरण हुआ था। अत यथार्थ शैली मे देश-जीवन के अनेक अभावग्रस्त चित्र हिंदी कथा-साहित्य म बिखरे पड़े हैं। शासकों की कठोर दमन नीति के कारण राजनीतिक उपन्यासो तथा कहानियो की सख्या अधिक नही है किन्तु सामाजिक आर्थिक अभावों का चित्रण अत्यधिक उदार मनोवृत्ति से लेखकों ने किया है। अपने युग की राष्ट्रवाद में बाधा डालने वाली अनेक समस्याओं तथा तत्वों का निरूपण मात्र ही नहीं किया गया है अपितु उनसे राष्ट्रीय जीवन को मुक्त कर राष्ट्रीय एकता के प्रयास के साधनों का भी उल्लेख किया गया है। कथाकारों का यह प्रयत्न राष्ट्रवाद की दृष्टि से अत्यन्त स्तुत्य है।

हिन्दी साहित्य मे राष्ट्रवाद का भावात्मक पक्ष
(१९२०–३५)

भारतीय राष्ट्रवाद का लक्ष्य था भारत की स्वाधीनता अथवा विदेशी पराधीनता से मुक्ति। यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विभिन्न शक्तियाँ गतिशील थी। इस युग म भारत की स्वतन्त्रता के लिए दो प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से काय करती लक्षित होती हैं

(१) अहिंसात्मक

(२) हिंसात्मक

अहिंसात्मक प्रवृत्ति ने मानव की आत्मिक शक्ति का आधार ग्रहण कर मुक्ति का आग्रह किया किन्तु हिंसात्मक प्रवृत्ति ने मनुष्य की शारीरिक अथवा पाशविक शक्ति का सहारा लिया। अहिंसात्मक साधन सत्य अथात आध्यात्मिक आधारशिला पर अवलम्बित था जिसका नेतृत्व गाधी जी ने किया था। सन् १९२०-२१ के असहयोग आन्दोलन रचनात्मक कायक्रम तथा सन १९३० के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की क्रियान्वित कर रक्तपात रहित क्रान्ति तथा आत्मबलिदान के अपूव आदश द्वारा स्वाधीनता प्राप्त का उद्योग गांधी जी की अपूव देन थी। अध्यात्म प्रधान भारत देश के जनवासियों को गांधीजी द्वारा प्रदत्त राष्ट्रवाद के आदश रूप ने अधिक प्रभावित किया। जिस ओर इन्होने सकेत किया उसी ओर देश के लाखो व्यक्ति चल पडे। गांधीजी देश के राजनीतिक सामाजिक धार्मिक, आर्थिक सास्कृतिक जीवन को पराधीनता अभाव तथा दोषो से मुक्त करना चाहते थे। गाधीजी का राष्ट्रवाद भावना प्रधान था और विश्वास पर आधारित था उसमें तर्क तथा बुद्धि का अधिक आग्रह नही था। हिन्दी साहित्यकार गांधीजी के राष्ट्रवाद से अत्यधिक प्रभावित हुये। अत सत्याग्रह आन्दोलनों तथा रचनात्मक कायक्रम द्वारा देश जीवनके सभी पक्षों के उत्थान का पूण प्रयास हिन्दी-साहित्य में मिलता है।

हिंसात्मक साधन द्वारा विदेशी शासन व्यवस्था का अन्त कर देने का साहस पूर्ण काय विभिन्न क्रान्तिकारी दलों द्वारा सम्पूण भारत म गुप्त तथा सगठित रूप से चल रहा था। भगतसिंह चन्द्रशेखर आजाद आदि प्रसिद्ध क्रान्तिकारियो के अद्भुत हिंसात्मक काय एव वीरता पर देश मुग्ध हो गया था। देशवासियो म राष्ट्रीय उमग को भरने का सफल प्रयास भी इन वीर क्रान्तिकारियों के बलिदान द्वारा सम्पन्न हुआ किन्तु जनता की भावना का सहयोग इनके साथ अधिक नहीं हुआ था। वह सक्रिय रूप में इनके कायक्रम म भाग लेना उचित नहीं समझती थी। अत हिन्दी साहित्य में

इस दल के साधन का अधिक उल्लेख नहीं मिलता। इनके साथ सहानुभूति होने पर भी साहित्यकार इस साधन को राष्ट्रीय हित के प्रतिकूल समझते थे।

हिंदी काव्य मे गाधीवादी राष्ट्रवाद के सद्धान्तिक पक्ष की अभिव्यक्ति

गाधीजी द्वारा संचालित असहयाग आदोलन ठोस आध्यात्मिकता पर आधारित था। सत्य साध्य एव अहिंसा साधन थी। उनके मतानुसार सत्य का दृढ़ अथवा उच्च अथ था परमेश्वर। साधारण तथा अपर अथ म सत्य का व्यञ्जक था सत्याग्रह सत्य विचार तथा सत्य वाणी। सत्य अथवा परम तत्व की प्राप्ति के लिए आत्मा की शुद्धि परमावश्यक थी। अहिंसात्मक माग से अनुगमन द्वारा सत्य की प्राप्ति निश्चित थी। गांधी जी के सत्य तथा अहिंसा की सात्विक मीमांसा हिन्दी काव्य क्षत्र में श्री त्रिशूल श्री माखनलाल चतुर्वेदी श्री सियाराम शरण गुप्त श्री मथिलीशरण गुप्त पडित रामनरेश त्रिपाठी श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान आदि ने की है।

श्री त्रिशूल ने सत्याग्रह अथवा सत्य तत्त्व की विवेचना करते हुये लिखा है—

सत्य सष्टि का सार सत्य निबल का बल है
सत्य सत्य है सत्य नित्य है अचल अटल है।
जीवन-सर में सरस मित्रवर! यही कमल है
मोद मधुर मकरन्द सुयश सौरभ निमल है॥
मन मिलिन्द मुनिवृन्द के मचल मचल इस पर गये।
प्राण गये सो इसी पर न्योछावर होकर गये॥[1]

त्रिशूल जी ने सत्य तत्व का निरुपण इतिवृत्तात्मक शली म तथा अत्यधिक स्पष्ट शब्दो म किया है। उनके अनुसार गाधी जी का सत्य भारत का युग युग का सत्य है जिसका प्रयोग मुनिवृन्दो ने अपने जीवन मे किया था।

निसन्देह गाधीजी का सत्य चिर पुरातन सत्य था।[2] यह वही सत्य था जिस का आश्रय ले ध्रुव और प्रह्लाद ने अन्याय और अत्याचार के प्रतीक नृप उत्तानपाद तथा हिरण्यकश्यप पर विजय पाई थी।[3] इसी सत्यपालन के हेतु दशरथ ने कैकेयी के वरदान की पूर्ति में प्राण त्याग दिय थ। साकेत महाकाव्य म मथिलीशरण गुप्त ने स्वय दशरथ के मुख से इस सत्य की व्याख्या कराई है —

सुनो तुम भी सुरगण चिरसाक्षि सत्य से ही स्थिर है ससार।
सत्य ही सब धर्मो का सार, राज्य ही नहीं प्राण-परिवार,
सत्य पर सबका है सब वार।[4]

१ श्री त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र पृ० ४

२ I have nothing new to teach the world Truth and Non-Voilence are as old as the hills All I have done is to try experiments in both on a vast scale as I could
Nirmal Kumar Bose – Selections from Gandhi—p 13

३ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७२

४ मथिलीशरण गुप्त साकेत पृ ६४

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत की आध्यात्मिक भावना तथा जीवन दर्शन की अपने काव्य में व्याख्या की है। उनके अनुसार यह वह देश है जहाँ आत्मा के आतम भाव को जगाकर तथा मृत्यु के भय को मिटाकर पुनर्जन्म का पता लगाया गया है। जीवन-दर्शन त्याग सिखाता है और उसका अंतिम लक्ष्य आध्यात्मिक है।[1] भारतीय जीवन का सत्य निष्क्रियता अथवा अकर्मण्यता की शिक्षा नहीं देता वह कर्ममय है। गीता में इसी कर्ममय सत्य की शिक्षा दी गई है। गांधी जी को भी सत्य का यही रूप प्रिय था। जीवन की सत्चेतना तथा सदाचरण में ही इसका अस्तित्व है श्री मैथिलीशरण गुप्त के शब्दों में—

कर्म को कभी न हम त्यागें,
मर्म में अनुरागें, जागें।
भुक्ति को छोड़ न हम भागें
मुक्ति के लिए सदा जागें।

हृदय निर्मल चिर मंगल हो।
क्षमामय भारत की जय हो।

गांधीजी ने स्वराज्य को भारत का नैसर्गिक धर्म माना था यही उनका जीवन सत्य था। इस सत्य का आग्रह अत्यधिक प्रबल था। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने सत्याग्रह काव्य में गांधी जी के सत्याग्रह का विवेचन किया है।[2] श्रीमाखनलाल चतुर्वेदी की अदालत में सत्याग्रह कैदी के मावे बयान कविता में भी गांधीजी द्वारा प्रदत्त सत्याग्रह तथा अहिंसा का वर्णन किया गया है। सत्य की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक साधन गांधीजी को इष्ट था—

आज पशुबलो जगती तल में
पाया उद्धारक सिद्धान्त,
मिस्टर और हुजूरी जीते
हुए उसके पद कोमल कान्त।
पर इतना ही नहीं—राष्ट्र की
आज्ञा का उद्धारक कर्म
आज अहिंसक असहकारिता
है मेरे जीवन का धर्म
सब मतवाले कहें भले हाँ
मैं जड़ जीव निराला हूँ—
मैं तेरे पिंजड़े का कैदी
असहयोग मतवाला हूँ।[4]

१ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश संगीत पृ० ६३
२ वही पृ० ६५
३ वही पृ० १७६
४ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७१

अहिंसा म कष्ट-सहन तथा आत्मशक्ति का आग्रह था। गांधीजी ने अहिंसा को सिद्धान्त रूप म अपनाया था क्याकि बदले में रक्त बहाने की नीति उनके मन म अधार्मिक ही नही मानवता क प्रतिकूल भी थी। उन्होने विदेशी शासको की क्रूरता से नैतिक तथा आत्मिक बल की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया था। श्री माखनलाल चतुर्वेदी के शब्दों म—

जो कष्टों से घबडाऊ तो मुझ म कायर में भेद कहां ?
बदले म रक्त बहाऊ तो मुझ म डायर मे भेद कहां ?

× × ×

सुख पर आराध्य गमा दू तो मुझ में कसे ईमान मिले।
जो सत्य मिटा कर साधु बनू तो क्यों मुझको भगवान मिले ?

+ + +

ममता की मीठी मदिरा पर ललचा कर जो मर जाऊ मै।
तो माय भूमि आजाद हैन का पद प्रसाद क्यों पाऊ मैं ?[1]

चतुर्वेदी जी ने गांधी जी के अहिंसात्मक विचारों नैतिक एव आत्मिक बल की श्रेष्ठता तथा सत्य के वास्तविक स्वरूप का अंकन तत्कालीन गांधीवादी विचार धारा से प्रभावित होकर किया था। इन्हाने गांधी जी क सिद्धान्ता का विवेचन अधिक भावात्मक रूप से किया है।

श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की राष्ट्रीयता की टेक भी यही सत्य स्वाधीनता तथा कर्मण्यता है।[2]

प० रामनरेश त्रिपाठी न पथिक नामक प्रमाख्यानक खड-काव्य म गांधीजी के सत्य तथा अहिंसा की पुष्टि का है। उनका नायक पथिक स्वदेश प्रम हित अपना जीवन उत्सग कर दता है। सत्य न्याय तथा अहिंसा उसके जीवन का मूलाधार है। पत्नी तथा पुत्र की मृत्यु भी उसे सत्य तथा अहिंसा के माग स विचलित नही कर पाती। उसके अनुसार परहित-साधन तथा आत्मा का उत्कष ही सत्य धम है—

पर पीडन में विमुख और सम्मुख परहित-साधन में।
पर निन्दा में मूक बधिर रहना निज निश्चय मन में॥
आत्मा का अपमान न करना सत्य माग पर चलना।
है वह सत्य तुम्हें न उचित है सत से कभी विचलना॥[3]

अत्याचार से विक्षुब्ध युवक वग को हिंसोन्मुख देखकर वह अहिंसा की श्रेष्ठता तथा कल्याणकारिता को समझाते हुये कहता है—

कौड़ी से यदि बदलेगा निज अमूल्य मणिमाला।
उससे बढ़ कर जग में होगा कौन मूढ़ मतवाला।

---

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ५३
२ सुभद्राकुमारी चौहान मेरी टेक मुकुल पृ० १०७ षष्ठ सस्करण
३ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ ३४

रक्तपात करना बनता है कायरता है मन की।
अरि को वश करना चरित्र से शोभा है सज्जन की।।
भाग्यहीन जब किसी हृदय में क्रोध उदय होता है।
बढ़ती है पाशविक शक्ति आत्मिक बल क्षय होता है।।
क्रोध दया सुविचार न्याय का मार्ग भ्रष्ट करता है।
अपना ही आधार प्रथम वह दुष्ट नष्ट करता है।।[1]

श्रीधर पाठक ने 'भ्रमर-गीत' में गांधीवादी सत्य तथा अहिंसा अथवा प्रेम द्वारा विश्व को जीतने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। मधुकर देशवासियों का प्रतीक है जिसे सबोधित कर पाठक जी कहते हैं—

(१)
ग्रहण कर मधुकर नीति नई
मधुर गुंज मद से पल भर को भर दे भुवन जमी

(२)
पल ही में सब पलट पड़गी पूरन प्रेम-मयी
जग के बीच बनेगा तू जय त्रिभुवन का विजयी
ग्रहण कर मधुकर नीति नई।।[2] (सन १९२४)

देश का कल्याण इसी में था तथा भारत स्वतन्त्रता ही नहीं प्राणिमात्र के हृदय को तभी विजित कर सकता था जब शुष्क ज्ञान तत्त्व को त्याग प्रेम तत्त्व को ग्रहण करता। अतः गोपियों ने भ्रमर को कुंज कुंज में जाकर प्रेम की मंजुल गुंजार करने का संदेश दिया। भ्रमर-गीत में प्रतीकात्मक शैली में गांधीजी के राष्ट्रवादी सिद्धांतों का आरोपण कवि की नवीन उद्भावना थी।

हिन्दी-काव्य में सत्य तथा अहिंसा अर्थात राष्ट्रवाद के साधनों के विवेचन के साथ श्री त्रिशूल के सम्पूर्ण राष्ट्रवाद की भी व्याख्या एवं उसके अंशों का सविस्तार वर्णन किया है—

ऐक्य, राज्य स्वातन्त्र्य यही तो राष्ट्र अंग हैं,
सिर धड़ टांगें सदृश भुजा हैं संग संग हैं।
सप्तरंग इक मनुज मिले हैं एक रंग हैं
बूंद बूंद मिल जलधि बने लेते तरंग हैं।
व्यक्ति कुटुम्ब समाज सब मिले एक ही धार में।
मिला शान्ति सुख राष्ट्र के पावन पारावार में।।[3]

उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि राष्ट्रीयता की भावना वहीं पूर्ण होती है जहाँ अनेक मस्तिष्क होने पर भी सब के हृदय एक होते हैं और जाति देश के हानि

---

१ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ६४
२ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ १०८
३ त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र पृ० २६

लाभ का समान भाव से विचार रहता है। गांधीजी ने सम्पूर्ण भारत को राष्ट्रीयता की एक शृंखला में बांध दिया था—

कड़ी कड़ी से बन गई बहुत बड़ी जंजीर है।
अब गजेन्द्र को बांधने में समय है थोर है॥[1]

त्रिशूलजी ने अपने काव्य में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि गांधीजी ने मौखिक राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद को कर्मक्षेत्र में ला खड़ा किया था। उस अमूर्त भावना को कर्म में ढालकर मूर्त रूप प्रदान किया था।[2] इसका विवेचन गांधीजी के राष्ट्रवाद के व्यावहारिक रूप अथवा रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत किया जायेगा।

सियारामशरण गुप्त ने गांधी दर्शन को प्रत्यक्षरूप में स्वीकार किया है। उन के काव्य में जिस करुणा का स्वर प्रमुख है वह भौतिक कुंठाओं की करुणा न होकर भारतीय अध्यात्म की मानव करुणा है जो मानव मात्र का धर्म है। एक सत्य से अनुप्राणित होने के कारण प्राणिमात्र का समान अस्तित्व है। उनके काव्य में सत्य के इस स्वरूप की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। गांधीजी की सत्य अहिंसा से अनुप्रेरित नीति का समर्थन करते हुये वे लिखते हैं—

तूने हमें बताया—हम सब
एक पिता की हैं संतान
हैं हम सब भाई भाई हो
हैं सबके अधिकार समान
नहीं रहेंगे मानव हम यदि
मानव ही को पीसेंगे
सत्य अहिंसा निखिल प्रेम में
गूंज उठा तेरा जय-गान
पड़े बुद्धि पर थे ताले
आहा आ पहुंचा बापू तू
विप्लव की भाड़ू वाले।[3]

आत्मोत्सर्ग नामक कथा-काव्य की रचना ही सियारामशरण जी ने सत्य की रक्षा में प्राणाहुति करने वाले अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के त्याग पर की थी। बापू काव्य ग्रंथ में गांधी जी के व्यक्तित्व सिद्धांत और विशेषताओं का उल्लेख है।

अतः गांधीजी ने विश्व के सम्मुख पशुबल की अपेक्षा जिस सत्य तथा अहिंसा का सिद्धांत रखा था राष्ट्रवाद का जो उच्च आदर्श प्रस्तुत किया था उसका पूर्ण रूपेण अनुमोदन तत्कालीन हिन्दी-काव्य में मिलता है। इतिवृत्तात्मक भावात्मक प्रेमा

१ त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र, पृ० २८
२ वही पृ० ६
३ सियाराम शरण गुप्त शुभागमन'—पाथेय पृ० १००

स्यात्मक काव्य आदि विभिन्न रूपों में इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन विवेचन निरूपण किया गया है।

हिन्दी नाट्य साहित्य में गांधी जी के सत्य अहिंसा की अभिव्यक्ति

गांधीजी ने जो असहयोग अथवा सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा आत्म-त्याग मनोबल आत्मपीड़न का प्राचीन आदर्श रखा था उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति नाट्य-साहित्य में भी मिलती है। यंग इंडिया' में गांधीजी ने लिखा था—'पर मेरा विश्वास है कि हिंसा से अहिंसा की मर्यादा बलवती है दण्ड देने से क्षमादान कहीं बारीक का लक्षण है क्षमादान सच्ची वीरता का प्रमाण है। यदि दंड देने की मुझ में क्षमता है और मैं दंड देना स्वीकार नहीं करता तो वही क्षमा सच्ची क्षमा है। पांडेय बेचन शर्मा उग्र के 'महात्मा ईसा' नामक नाटक में महात्मा ईसा के व्यक्तित्व का चित्रण गांधी जी के व्यक्तित्व के सामंजस्य में हुआ है। उग्र जी ने गांधीजी के सत्य अहिंसा क्षमा आदि की पुष्टि महात्मा के जीवनचरित द्वारा कराई है। वस्तुतः दोनों दो देश दो धर्म और दो युग की एक ही महान् आत्मा हैं। इस नाटक में ईसा मसीह के व्यक्तित्व की प्रत्येक रेखा यह स्पष्ट कर देती है कि महात्मा गांधी के सदृश ईसाई मत भी सत्य का आराधक और अहिंसा का साधक है। ईसाई धर्म प्रवर्तक महात्मा ईसा को सत्य एवं अहिंसा की शिक्षा भारत देश में विवेकाचार्य के आश्रम में मिली थी।[1] अपने देश पहुंचकर ईसा देशवासियों को धार्मिक सत्याग्रह का मन्त्र देते हुए कहते हैं—भैया! इस समय यहूदियों की आत्मायें सत्य और धर्म के भावों से शून्य हैं। चारों ओर अनाचार और अधर्म का आतंक फैला हुआ है। इसलिये पहले लोगों में धार्मिकता और सत्याग्रह का मन्त्र फूंकना होगा।

पहला ना०—प्रभो सच्चा धर्म क्या है?

ईसा—सत्य के लिए मर मिटना भय से अपनी आत्मा का अपमान न करना तथा सब पर दया रखना।[2]

वे इस सत्य की प्राप्ति अहिंसात्मक साधन द्वारा करना चाहते थे—पशु-बल को यदि पशु बल दबायेगा तो वह महा पशु-बल हो जायगा, जिससे किसी को भी सुख न मिल सकेगा। अत्याचार के प्रतिकार के लिये धैर्य आत्म-दमन और अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ साधन हैं—अस्तु यदि कोई तुम्हारे एक कपोल पर प्रहार करे तो उसके सम्मुख हंस कर दूसरा गाल भी कर देना; तुम देखोगे विजय तुम्हारी होगी। फिर वह तुम्हें मारने के लिए हाथ न उठा सकेगा।[3] नाटक में महात्मा ईसा सत्य की प्राप्ति के लिए प्राणोत्सर्ग करते हैं। उत्सर्ग अथवा त्याग ही सेवामार्ग की ओर प्रवृत्त करता है जिससे धर्म यश और स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती है।[4] सत्य के इसी रूप का प्रतिपादन गांधी जी ने किया है। उग्र जी ने कौशल एवं सुन्दरता के साथ इस नाटक

१ बेचन शर्मा 'उग्र' महात्मा ईसा पृ० ४८

२ उग्र' महात्मा ईसा पृ १२४

३ वही पृ० १४६

४ वही पृ० १४६

म ईसाई धम के सत्य और अहिंसा का निरूपण कर तत्कालीन ईसाई धर्मानुगामी शासन वग को उनके धम के मूल म अवस्थित सत्य एव अहिंसा का उपदेश दिया है। इसके अतिरिक्त गाधी जी के राष्ट्रवाद के सद्धान्तिक पक्ष का अति विस्तृत परिष्कृत तथा विश्व एक्य के आग्रह से पूण रूप नाटक म मिलता है।

गांधी जी का यह विश्वास था कि सत्य ही ईश्वर है और सत्य की प्राप्ति का एकमात्र माग दया और क्षमा है[1] जयशकर प्रसाद के नाटकों मे ऐतिहासिक कथानकों द्वारा गाधी जी की सत्य एव अहिंसा सबधी विचारधारा का पुष्ट रूप मिलता है। 'विशाख' नाटक मे प्रसाद जी ने प्रमानन्द द्वारा प्रम दया सत्य का माग प्रदर्शित कराया है। प्रमानन्द राजा नरदव को न्याय म दण्डात्मक आदेश की अपेक्षा उसके करुणात्मक आदेश पालन का उपदेश देते हैं क्योंकि वही प्रजा म सद्गुणो को प्रकाशित करने वाला है।[2] प्रसाद जी के नाटको म सत्य का अधिक व्यावहारिक रूप मिलता है। वह जड न होकर मानव व्यवहार म विकसित दिखाई देता है। ऐतिहासिक स्थितियों के विस्तृत चित्रण मे सत्य की विजय होती है। चन्द्रगुप्त म धमराज्य की स्थापना के लिए चाणक्य और चन्द्रगुप्त क्रियाशील दिखाई पडते हैं। अजातशत्रु नाटक में स्वय गौतमबुद्ध सत्य के प्रणेता हैं। राज्यश्री नाटक मे सत्य के लक्ष्य की पूर्ति के लिए हषवद्धन तथा राज्यश्री धन-वैभव का परित्याग करते हैं--हषवद्धन भारत का यशस्वी सम्राट उदार वीर अहिंसावादी धार्मिक और कतव्यशील है।[3]

प्रसाद जी के मतानुसार मरतम हृदय म उच्च वृत्तियो का उन्नयन करते हैं किन्तु इसके लिये दया क्षमा जसी महान् भावना अपेक्षित है। अजातशत्रु नाटक का मूल भाव करुणा अथवा दया है। नाटक के प्रारम्भ म ही पद्मावती अपने भाई अजातशत्रु की निममता कठोरता उच्छृखलता स विक्षुब्ध होकर अहिंसा दया करुणा का पाठ पढ़ाना चाहती है--मानवी सृष्टि करुणा के लिए है या तो क्रूरता के निदशन हिंस्र पशु जगत म क्या कम हैं ?[4] गाधी जी का यह विचार था कि मानव स्वभाव आध्यात्मिक एव नैतिक सिद्धातों से बना हुआ है। व० सत् और असत् का सम्मिलित रूप है किन्तु असत् उसका कृत्रिम रूप है तथा सत् पुण्य और स्वतन्त्रता उसका वास्तविक रूप हैं। इसीलिए उन्होंने अपने दशन का आ धार मनुष्य के शारीरिक व्यवहार का न बना कर उसके आध्यात्मिक तत्व अथवा स्वात्म का बनाया था।[5] उनका यह भी विश्वास था कि मानव मात्र का स्वभाव अपने वास्तविक रूप में एक है क्योंकि आत्मा एक है। मनुष्य जीवन को नियमित तथा सयमित रूप स अग्रसर करने

---

१ Nirmal Kumar Bose Selections from Gandhi—p 6
२ जयशकर प्रसाद विशाख पृ ४१
३ जयशकर प्रसाद राज्यश्री पृ० ४
४ जयशकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० २६
५ Gopinath Dhawan The Political Philosophy of Mahatma Gandhi—p 117

याला तत्व एक है।[१] इसी आध्यात्मिक एव मनोवैज्ञानिक आधार पर उनके हृदय परिवर्तन का सिद्धात निर्भर था। जयशकर प्रसाद के नाटकों म गाधी जी की इस मनोवैज्ञानिक आध्यात्मिक एवं नैतिक विचारधारा की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। अजातशत्रु नाटक मे गौतम बुद्ध बिम्बसार को अहिंसा का उपदेश देते हुए छोटी रानी छलना के अविचार को दया करुणा के साधन से परिवर्तित करने का उपदेश देते है—

गौतम—शीतल वाणी मधुर व्यवहार-से क्या वन्य पशु भी वश म नही हो जाते? राजन ससार भर के उपद्रवो का मूल व्यग्य है। हृदय मे जितना यह घुसता है उतनी कटार नहा। वाक सयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। अस्तु अब मैं तुमसे एक काम की बात कहना चाहता हू। क्या तुम मानोगे-क्यों महारानी?[२]

गाधी जी की अहिंसात्मक नीति एकान्तिक अथवा सकीर्ण राष्ट्रवाद का पोषण नही करती। व इस सिद्धांत द्वारा विश्वमैत्री अथवा वसुधैव कुटुम्बकम की प्रशस्त भावना का विकास चाहते थे। प्रसाद जी को गांधी जी का अहिंसा सिद्धान्त पूर्णतया मान्य था। व भी परदु खकातरता की उच्च भावना से मडित अहिंसा को विश्व-मैत्री का एकमात्र माग मानत थ। अजातशत्रु नाटक मे श्यामा को गौतम बुद्ध इस माग के अनुसरण का ज्ञान प्रदान करते हैं।[३] गांधी जी के सदृश व भी नारी जीवन के लिए अहिंसा अथवा करुणा को आवश्यक कर्तव्य मानते हैं। कठोर पौरुष को स्त्रियां ही स्नेह कोमलता सहनशीलता सदाचार की शिक्षा दे सकती हैं। अजातशत्रु नाटक म मल्लिका का चरित्र इसका प्रमाण है। प्रेम अथवा करुणा हृदयपरिवर्तन का अमोघ अस्त्र है। इसी नाटक में अजात छलना शक्तिमती विरुद्धक प्रसेनजित् आदि पाशविक प्रवृत्ति के पोषक पात्रों का प्रेम और करुणा द्वारा हृदय परिवतन हो जाता है। चन्द्रगुप्त नाटक म प्रसाद जी ने चन्द्रगुप्त तथा कार्नेलिया का विवाह करा कर प्रेम और अहिंसा द्वारा विदेशी शक्तियो को विजित करने का आदश रखा है। यह एक ऐतिहासिक सत्य है। भारतीय सस्कृति तथा इतिहास के गौरवमय पृष्ठों में प्रवाहित सत्य तथा अहिंसा की अमृतधारा को हिन्दी नाटको म प्रतिबिंबित कर प्रसाद जी ने राष्ट्रीय भावना का शाश्वत रूप प्रस्तुत किया है।

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अशोक नामक एतिहासिक नाटक म कलिंग युद्ध के बीभत्स व्यापार तथा भयकर हत्याकाड के उपरान्त कलिंग के सन्यासी महाराज सवदत्त द्वारा अशोक को अहिंसा का उपदेश दिलाया है। यह इतिहास प्रसिद्ध घटना है कि कठोर हृदय अशोक कलिंग युद्ध की भयकर हिंसात्मकता से द्रवित हो गया था। उसकी मानवता इसके विरुद्ध चीत्कार कर उठी थी और उसने अहिंसा के उत्कृष्ट माग बौद्ध धम को ग्रहण कर, भारत तथा एशिया के कई देशो में इस

१ Ibid p 119
२ जयशकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० ३३
३ जयशकर प्रसाद अजातशत्रु पृ० १४६

धम का प्रचार किया था। मिश्र जी ने सवदत्त द्वारा सत्य एव अहिंसा के महत्व का प्रदशन किया है—

सवदत्त—डर क्या है सम्राट ! मुझे और किसी का नही केवल डर का डर है—डर मेरे पास न आये मुझे इसी का डर है—मैंने जो कुछ कहा सत्य कहा है सम्राट। आतक सत्य को दवाने म सफल नही हो सकता – कभी हुआ नही है। और फिर जो आप है वही मैं हू। न आप सम्राट है और न मैं सयासी हू। यह अन्तर केवल भ्रम है। जो वस्तु तलवार से ली जाती है वह तलवार स ही शासित होती है। यह विजय विजय' नही है विजय वह है जो मनुष्य की आत्मा म ईश्वरीय प्रकाश की किरण फेंके और वह विजय प्रेम से स्थापित होती है—तलवार से नही। यदि विजयी होना चाहते हो सम्राट तो सृष्टि के एक एक कोने म प्रम का सन्देश भेजो। इसम सफल हो सके तो अनन्त काल के लिए विजयी बने रहोगे।[1] इसके अनन्तर अशोक विश्व प्रेम का उपासक हो गया था।[2]

गाधी जी न शस्त्र की अपेक्षा प्रम तथा आत्मा के बल को अधिक महान् तया शक्तिशाली माना था।[3] उन्होने हिंसा का परित्याग सिद्धान्त रूप म किया था। उनकी इस विचारधारा की पूण अभिव्यक्ति मिश्र जी के इस नाटक म मिलती है। गांधी जी आत्मबल या मनोबल के माग को कायरता का सूचक नही मानत हैं। इसके अतिरिक्त गाधी जी का सत्य और अहिंसा केवल बौद्ध धम की धरणा एव दया नही थी सनातन धम म भी इसकी शिक्षा मिलती है। मिश्र जी न अपने युग की अहिंसा भावना का विश्लेषण सवदत्त द्वारा कराया है। कलिंग के महाराजा अशोक से युद्ध या आधीनता का सदेश पाकर भी नरसहार के लिए तत्पर नही होत क्योकि उनक मन म ईश्वर को अपनी सृष्टि का सहार इष्ट नही है। उनका पुत्र जयत रक्तपात में ही जीवन तथा वीरता के लक्षण देखता और अहिंसा को कायरता मानता है। सवदत्त उसकी मिथ्या धारणा के निवारण के लिए कहते हैं —

जयन्त ! जो जितने ही अत्याचार करत हैं उतने हो कायर होत हैं और जो अत्याचार को सहन करते हैं वे उतने ही वीर। युद्ध और हत्या से मनुष्य की आत्मा सदव पतित होती आई है कभी ऊंची नही हुई। तुम किसके साथ युद्ध करोगे जयन्त ? तुम क्या हो और अशोक क्या है। जिस हाड माम के पुतले को तुम सब कुछ समझ रहे हो वह तुम नहीं हो। तुम समझन हो मैं बुद्ध का अनुयायी हू किंतु दया और स्नेह की शिक्षा क्या तुम्हारे सनातन धम ने नही दी ?

श्री सियारामशरण गुप्त ने पुण्य-पव नामक ऐतिहासिक कथा सयुक्त नाटक म गाँधी जी के सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तो की पुष्टि की है। उन्ह सद्धान्तिक तत्व

१ लक्ष्मीनारायण मिश्र अशोक पृ० १४७
२ वही पृ० १४६
३ The force of arm is powerless when matched against the force of love or soul M K Gandhi Satyagrah—p 14
४, लक्ष्मीनारायण मिश्र। अशोक। पृ० १०६

विवेचन म सफलता मिली है। इन्द्रप्रस्थ के राजा सुत सोम अहिंसात्मक साधना द्वारा वाराणसी के निर्वासित हिमोमत राजा को सत्य धम मानव-परोपकार के माग पर लाते हैं। सुत सोम गांधी जी की भाति आत्मबल तथा आत्मबलिदान द्वारा सत्य प्रचार में विश्वास करते हैं। उन्हें शारीरिक बल प्रयोग अभीप्सित नही। इस नाटक म सुत सोम कहते हैं—

'इसीलिए कि सद्विचारों का यह उपाय मुझे अच्छा नहीं लगता। मैं तुम्हें या तुम मुझे मार डालते तो क्या इससे अभीप्सित फल की प्राप्ति हो जाती? यदि हम मनुष्य को जिला नही सकते तो हम उसको हत्या करने का अधिकार नही है। और साथ ही चाहता था कि यदि सम्भव हो, तो मैं तुम्हारे मन-परिवतन का प्रयत्न भी करूँ।'[1] गाधी जी की भाँति सुत सोम की अहिंसा का भी मूलाधार है मनुष्यमात्र की सद्भावना — सुत सो भक्त म मनुष्य मात्र की सदभावना में विश्वास है।[2]

उदयशकर भट्ट के विक्रमादित्य नाटक में युद्ध और सघर्ष को मूलाधार बनाने पर भी सत्य तथा अहिंसा को महान समझा गया है। विक्रमादित्य के चरित्र में दाशनिकता, क्षमा दया की रेखाए सत्य एव अहिंसा का ही परिणाम हैं।[3]

जयशंकर प्रसाद तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र ने भारतीय इतिहास के हिंदू काल की ऐतिहासिक कथाओं तथा महत् गरिमा के माध्यम से अपने युग की महान् राष्ट्रीय विचारधारा—सत्य तथा अहिंसा क सिद्धातों का निरूपण किया है। अब केवल भारतीय हिन्दुओं की भावनाओं का ही साधारणीकरण उनके साथ हो सकता था। हिन्दू धम इतिहास तथा सस्कृति के प्रति विशेष मोह होने पर भी गांधी जी का सत्य तथा अहिंसा किसी एक धम की परिभाषा मे बधा हुआ नही था। व सभी धर्मों को सत्य तक पहुचने क विविध माग मानते थ।[4] उन्होंने इस तथ्य का भी उन्मूलन किया था कि सभी धर्मों का मूल दया एव करुणा अर्थात् अहिंसा है।[5] गाधी जी ने इस्लाम धम को भी बौद्ध हिन्दू तथा ईसाई धम की भाति शान्तिप्रिय धम माना था केवल इन धर्मों की शाति की मात्रा मे अन्तर है।[6] भारतीय मुसलमानों की राष्ट्रीय भावना को जागृत करने तथा उन्हें भी सत्य एव अहिंसा के माग का अनुकरण कराने के लिये यह आवश्यक था कि उनके धम-ग्रन्थ मुस्लिम

१ सियाराम शरण गुप्त पुण्य पव पृ० १०६

२ वही पृ० १०८

३ उदयशकर भट्ट विक्रमादित्य पृ० १४

४ Gandhi My Religion—p 19

५ Ibid p 19

६ I do regard Islam to be a religion of peace in the same sense as christianity Buddhism and Hinduism are No, doubt there are differences in degree but the object of these religions is peace M K Gandhi—My Religion p 27

इतिहास के महान चरित्रों तथा घटनाओं से सत्य आत्मबल और अहिंसा के उदाहरण रखे जायें। हिन्दी नाट्य क्षेत्र में यह कार्य प्रेमचन्द जी द्वारा सम्पन्न हुआ है। गांधी जी के सत्य एवं अहिंसा का पाठ मुसलमानों को पढ़ाने के लिये ही उन्होंने कर्बला नाटक की रचना की थी। हिंदू इतिहास में रामायण तथा महाभारत का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है वही मुस्लिम इतिहास में कर्बला के संग्राम का है। वीरात्मा हुसैन इस नाटक के नायक हैं जिनके आत्मबलिदान की इसमें कथा है। हुसैन बड़े विद्वान सच्चरित्र शांत प्रकृति नम्र सहिष्णु ज्ञानी उदार और धार्मिक महापुरुष थे। यद्यपि अरब में उनकी जोड़ का अन्य वीर न था किन्तु उनकी आत्मा इतनी उच्च थी कि वह सांसारिक राज्य भोग के लिए संग्राम क्षेत्र में उतर कर उसे कलुषित नहीं करना चाहते थे। उनके जीवन का उद्देश्य आत्म शुद्धि तथा धर्म था। उनकी शक्ति न्याय व सत्य की शक्ति थी। दवयोग से अधम ने धर्म को दबा दिया उन्होंने निरन्तर संधि का प्रयास किया क्योंकि वे सत्य और अहिंसा में विश्वास करते थे। अन्त मे विवश होकर न्याय की रक्षा के लिए ही उन्हें युद्धरत होना पड़ा था। इस नाटक मे इस ओर भी संकेत मिलता है कि कुछ हिन्दू भी हुसैन के साथ थे। हिन्दू पात्रो के संवाद में हुसैन की धर्मनिष्ठा का वर्णन इन शब्दो में मिलता है—

'रामसिंह—हुसैन धर्मनिष्ठ पुरुष हैं। अपने बंधुओं का रक्त नहीं बहाना चाहते।

ध्रुवदत्त—जीव हिंसा महापाप है। धर्मात्मा पुरुष कितने ही संकट में पड़े किन्तु अहिंसा, व्रत को नहीं त्याग सकता।'[1]

आत्मत्याग का प्रशस्त रूप इस नाटक की इन काव्य पंक्तियों में मिलता है

मौत का क्या उसको ग़म है जो मुसल्मां हो गया।
जिसकी नीयत नेक है जो सिदक़ ईमां हो गया।।[2]

यह मुसलमानों के धर्म ग्रन्थों में भी उपदेश दिया गया है कि कत्ल करने की अपेक्षा दोस्त बना लेने में अधिक फायदा है।[3]

श्री मैथिलीशरण गुप्त के नाट्य काव्य अनघ का मूलभूत विचार बिन्दु भी सत्य अहिंसा है। गौतम बुद्ध का चरित्र भारत का इतिहास तथा साहित्य भारत की आध्यात्मिक प्रौढ़ता के प्रतीक हैं। अनघ' नाट्य काव्य का उद्देश्य कवि नाटककार ने प्रारम्भ में ही अभिव्यक्त कर दिया है कि इसमें उसे दयामय भगवान् बुद्ध के शुद्ध चरित्र और उनके सिद्धान्तों का अनुकरण अनुशीलन एवं अभिनय करना है। मघ भगवान् बुद्ध का एक साधनावतार है। गुप्त जी मघ द्वारा समाज में सत्य तथा अहिंसा की स्थापना करा कर अधम अनीति अन्याय को मिटा डालना चाहते हैं। मघ आत्मा की आज्ञा मानता है और सच्चे अर्थों में मानव धर्म का पालन करता

---

१ प्रेमचन्द कर्बला पृ० ३६
२ वही पृ ३६
३ वही पृ० २३०

है ।[1] वास्तव में मघ गांधी जी का प्रतिरूप है जो सत्य एवं अहिंसा के उच्चादर्शों से परिपूर्ण है ।[2] उसके मतानुसार सच्चा न्याय विधान वही है जिसमें किसी का मत स्वातन्त्र्य न छिने । सत्य तथा अहिंसा का पुजारी मघ, समाज और शासक वर्ग के अन्याय एवं अत्याचारों का विरोध करता है । सुरभि के शब्दों में मघ के जिन उच्चादर्शों तथा महान् चरित्र का वर्णन मिलता है वह गीता तथा वेदान्त का अध्यात्म है —

सयम ही उनके उच्च हृदय का बल है,
पर हित ही उनके प्रेम विजय का फल है ।
त्यागव्रत ही विश्वस्त कर्म है उनका,
निष्काम कर्म ही परम धर्म है उनका ।[3]

मघ धर्म को सनातन मानता है जो स्वयं सिद्ध है । गांधी जी के समान मघ भी मानवता की आराधना को सत्य का मूर्त रूप मानता है । उसकी अहिंसा का आधार भी क्षमा तथा प्रेम है । पाप से घृणा करो किन्तु पापी को प्रेम द्वारा परिवर्तित करो ।[4] वह आत्मबल संयुक्त अहिंसात्मक क्रान्ति द्वारा अत्याचार, अन्याय का दमन करता है । इसके लिये कारावास कठोर दंड भी सहर्ष स्वीकार करता है—

प्रेम करना है तो कर त्याग
नहीं तो है वह कोरा राग ।[5]

राजा रानी के संवाद में गुप्त जी ने भारतीय जीवन दर्शन राजनीति दर्शन के मूल तत्वों—प्रेम तथा त्याग का सुन्दर वर्णन किया है ।[6] अन्त में सत्य तथा अहिंसा की विजय दिखाई है । गुप्त जी ने काव्यात्मक शैली में लिखे इस नाटक में तत्कालीन सामाजिक राजनीतिक स्थिति की रूपरेखा के बीच सत्य तथा अहिंसा को मूर्त रूप प्रदान किया है ।

हरिकृष्ण 'प्रेमी' के नाटकों में भी गांधीवादी सत्य अहिंसा संबंधी विचारधारा ध्वनित हो रही है यद्यपि उसका स्पष्ट विवेचन नहीं किया गया है । जाति और धर्म के नाम पर मनुष्यता के नाम पर मनुष्यता के टुकड़े करना प्रेमी जी के सत्य के प्रतिकूल है । रक्षा-बन्धन नाटक में वे विक्रमादित्य द्वारा धर्म एवं सत्य का निरूपण करते हुए कहलाते हैं— मजहब मनुष्य के हृदय के प्रकाश का नाम है । जो मजहब का नाम लेकर तलवार चलाते हैं वे दुनिया को धोखा देते हैं वे धर्म का

---

१ मैथिलीशरण गुप्त अनघ पृ० १९
२ गांधी नीति की साकार प्रतिमा मघ के आदर्श चरित्र की कल्पना अनघ की मूल विशेषता है ।—उमाकान्त गोयल—मैथिलीशरण गुप्त कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता पृ० २३
३ मैथिलीशरण गुप्त अनघ पृ० १८
४ वही, पृ० ५६
५ वही, पृ० ८६
६ वही, पृ० ७२

अपमान करते हैं। सच्चा वीर वही है सच्चा राजपूत वही है जो न हिन्दुओं के अन्याय का हिमायती है और न मुसलमानों के। वह न्याय का साथी है और आजादी का दीवाना है। उसे अत्याचारी हिन्दू से ईमानदार मुसलमान ज्यादा प्यारा है। वह अत्याचारी मुसलमान का जितना दुश्मन है बेईमान और विश्वासघाती हिन्दू का उससे कहीं अधिक शत्रु। प्रेमी जी ने गांधी जी के सत्य एवं न्याय का विवेचन हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक एकता के लक्ष्य से किया है।

सेठ गोविन्ददास ने वर्तमान युग तथा सामाजिक जीवन से कथा लेकर प्रकाश नाटक में सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों का विवेचन किया है। इस नाटक में भी सत्य तथा अहिंसा की विजय होती है। इस नाटक के विषय में उन्होंने स्वयं लिखा है—'यह नाटक मैंने तारीख २५ जून १६३० को दमोह-जेल में लिखना प्रारम्भ किया और दस दिन में यह समाप्त हो गया।

× × ×

यह नाटक सामाजिक है। वर्तमान समाज का राजनीति से घनिष्ट सम्बन्ध हो गया है। इसलिये इसमें कुछ राजनीतिक बातों का भी समावेश हुआ है। अत इसे अंग्रेजी में सोशोपोलिटिकल ड्रामा कहा जाय तो अनुपयुक्त न होगा।'[1]

प्रकाश गांधीवादी विचारों का है। उसे नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति राजा जयसिंह के यहाँ दिये गये भोज में धनिक वर्ग तथा निर्धनों के बीच रखा गया भेदभाव अच्छा नहीं लगता। वह निर्धनों को धनवानों के भोज में असहयोग करने को कहता है। सत्य समाज के संगठन द्वारा वह जनता को सत्य का अनुभव तथा सत्य मार्ग का प्रदर्शन करा कर उनके दुखों का परिमार्जन करना चाहता है। अपनी मां को समझाते हुए प्रकाश कहता है—

वही तो बताता हूं। अजयसिंह के उद्यान से लौट कर हम सभी लौटे हुए लोगों ने एक सत्य समाज का संगठन किया है। उसका सभापति तेरा प्रकाश बनाया गया है। सत्य को संसार के सम्मुख रखना इस समाज का कार्य है। ग्राम और नगर वासियों के सुख दुख का एक दूसरे को सत्य अनुभव हो तथा उस सत्य अनुभव के पश्चात् सत्य मार्गों द्वारा ग्राम और नगर निवासियों के दुःखों का परिमार्जन किया जाय सभी संसार में सत्य-वस्तु की स्थिति और सत्य सुख की स्थापना हो सकती है। इस मार्ग पर पुल बांधने से ही समाज पार लग सकता है। महात्मा गांधी के सन् २१ के असहयोग और सन ३० के सत्याग्रह आन्दोलन के पूर्व यह कार्य आवश्यक था। इसके न होने के कारण ही ये आन्दोलन असफल हो गये। सत्य-समाज यही कार्य करेगा।'[2] सत्य की सर्वाधिक व्यावहारिक परिभाषा सेठ गोविन्ददास ने इसमें की है। राष्ट्रीय जीवन की चित्तवृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए सत्य के इस स्वरूप की स्थापना आवश्यक थी।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सामाजिक राजनीतिक

---

१ सेठ गोविन्ददास प्रकाश निवेदन

२ सेठ गोविन्ददास प्रकाश पृ० ५५

नाटकों में गांधी जी के सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्त विचार तथा व्यवहार की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। जयशंकर प्रसाद लक्ष्मीनारायण मिश्र उग्र जी मथिलीशरण गुप्त सियारामशरण गुप्त सेठ गोविन्ददास आदि नाटककारों ने सत्य तथा अहिंसा को संघर्ष तथा कर्ममय जीवन का महान् धर्म तथा आवश्यक कर्तव्य ठहराया है। उनके पात्रों ने कुशलता के साथ सत्य तथा अहिंसा के कठिन व्रत को निभाने का सफल अभिनय किया है। राष्ट्रवाद के इतिहास में ये नाटक हिन्दी साहित्य की अमर देन हैं।

कथा साहित्य में गांधी जी के राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति

काव्य तथा नाटकों की भांति हिन्दी कथा साहित्य में भी गांधी जी के दार्शनिक विचारों अथवा राष्ट्रवाद के सैद्धान्तिक पक्ष की अभिव्यक्ति मिलती है। इस युग के उपन्यास तथा कहानियों में गांधी जी के राष्ट्रवाद के कर्म पक्ष अथवा व्यावहारिक कार्यक्रम का जो विस्तृत वर्णन मिलता है उसमें सैद्धान्तिक पक्ष प्रतिध्वनित हो रहा है। उपन्यास तथा कहानी रचना के क्षेत्र में प्रेमचंद जी का नाम अमर एवं अग्रगण्य है। वे अपने युग की सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियों तथा गांधीवाद से विशेष रूप से प्रभावित थे। जिस समय गांधी जी देश जीवन को नवीन राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों एवं व्यवहारों में दीक्षित कर रहे थे उसी समय प्रेमचन्द जी की लेखनी द्रुत गति से देश की राजनीतिक सामाजिक धार्मिक आर्थिक समस्याओं तथा उनकी राष्ट्रीय विचारधारा एवं आन्दोलनों का अंकन कर रही थी। राष्ट्रीय पराधीनता के उन्मूलन के लिए जिस सत्य एवं अहिंसा के दार्शनिक सिद्धान्तों का आधार गांधी जी ने लिया था उसकी कर्ममय वीरता की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द जी के उपन्यासों तथा कहानियों में मिलती है।

गांधी जी का सत्य केवल सत्य भाषण मात्र नहीं था। विचार तथा कार्य द्वारा सत्य की साधना उन्हें इष्ट थी। प्रेमचन्द जी के प्रेमाश्रम रंगभूमि कायाकल्प, कर्मभूमि प्रभृति उपन्यासों में सत्य तथा अहिंसा का उपदेश मात्र अथवा जड़ रूप नहीं है। पात्रों ने अपनी गतिविधि एवं व्यवहार द्वारा गांधी जी के सत्य अहिंसा संबंधी सिद्धान्तों को क्रियाशील रूप में रखा है। प्रेमाश्रम के प्रेमशंकर रंगभूमि के सूरदास कायाकल्प के चक्रधर कर्मभूमि के अमरकान्त आदि पात्रों ने सत्य तथा अहिंसा को वाणी प्रदान की है।

गांधी दर्शन मूलतः आध्यात्मिक जीवन दर्शन है। उसका मानव की सद्प्रवृत्तियों में अनन्य विश्वास है। सत्यनिष्ठा एवं सहिष्णुतापूर्वक कष्ट सहन कर सत्याग्रही को अवश्य विजय प्राप्त होती है और वह असत्य तथा अन्याय के उन्मूलन में सफल हो जाता है इसकी पुष्टि प्रेमचन्द जी के प्रेमाश्रम रंगभूमि कर्मभूमि आदि उपन्यासों में दृष्टिगत होती है। प्रेमाश्रम में प्रेमशंकर किसानों की सेवा करके उनके अन्याय अत्याचार तथा शोषण की समस्या का अहिंसात्मक रीति से समाधान करना चाहता है।[1] यही उसके जीवन का सत्य है। इसी में राष्ट्र का कल्याण है। घृणा

---
१ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम। पृ० १४१

कटुता द्वेष आदि विभाजक प्रवृत्तियों के लिये उसके हृदय में स्थान नहीं है।[1] गांधी जी की अहिंसा के पुजारी प्रेमशंकर क्रुद्ध भीड़ से छात्रों स्वयं चोट खाकर डाक्टर प्रियनाथ की रक्षा करते हैं।[2]

इसी उपन्यास में प्रेमचन्द जी ने एक अन्य पात्र की सृष्टि गांधी जी के सिद्धान्तों की पुष्टि के लिए की है—यह हैं लखनपुर के मुसलमान किसान कादिर मियां। गांधी जी के राष्ट्रवाद के दार्शनिक अथवा विचार-पक्ष की पूर्णता इसी में थी कि मुसलमान और ग्रामीण भी उनका जीवन में प्रयोग करें। असहयोग आन्दोलन में हिन्दू मुसलमानों ने समान रूप से भाग लिया था और देश के अधिकांश मुसलमान सत्य तथा अहिंसा के सिद्धान्तों से प्रभावित हुए थे। प्रेमाश्रम की रचना इस आन्दोलन के बाद हुई थी। अत प्रेमचन्द जी ने कादिर को सत्य एवं अहिंसा के मार्ग का पूर्ण अनुगामी दिखाया है। सत्य से प्रेरित निश्चिन्त और निर्भय होकर ग्राम में रहता है। जिस समय गौसखां निर्दयता से लगान वसूल कर रहा था और इजाफा लगने से सारा गांव दब गया था उस समय भी सत्य के साधक कादिर को अपने सर्वनाश का भय नहीं था। प्रेमचन्द जी ने स्वयं उसके चरित्र की इस विशेषता के संबंध में लिखा है —

उसके हृदय में राग और द्वेष के लिए स्थान न था और न इस बात की ही परवाह थी कि मेरे विषय में कैसे कैसे मिथ्यालाप हो रहे हैं। वह गांव में विद्रोहाग्नि भड़का सकता था खां साहब और उनके सिपाहियों की खबर ले सकता था। गांव में ऐसे कई उद्दंड नवयुवक थे जो इस अनिष्ट के लिए आतुर थे। किन्तु कादिर उन्हें सभाले रहता था। दीनरक्षा उसका लक्ष्य था किन्तु क्रोध और द्वेष को उभाड़ कर नहीं वरन् सद्व्यवहार तथा सत्य प्रेरणा से।[3] यह हिंसात्मक रीति द्वारा अन्याय के प्रतिरोध के विरुद्ध है। उस प्रवृत्ति को आग में कूदने से कम नहीं समझता।[4] उसका सेवा भाव इतना प्रबल है कि किसी का कष्ट शीघ्र ही उसे द्रवित कर देता है।[5] अपनी जान बचाने के लिए फरेब करना उसके सिद्धान्त के विरुद्ध था। उसके जीवन का यह धर्म था कि सच कहने के लिए जेल भी जाना पड़े तो सच से मुंह न मोड़े।[6] प्रेमचन्द जी ने ग्रामीण जीवन के इस मुसलमान पात्र द्वारा गांधीजी के सिद्धान्तों की जितने सशक्त रूप में अभिव्यक्ति की है वह हिन्दीसाहित्य क्षेत्र में उन्हीं की विशेषता है।

रंगभूमि का सूरदास गांधी जी के सत्य तथा अहिंसा का मूर्त रूप है। 'सूरदास गांधी जी का ही प्रतिरूप है कहना चाहिये उनका लघु साहित्यिक संस्करण

१ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृ० १५२
२ वही पृ २६८
३ वही पृ ४३
४ वही पृ० ४७
५ वही पृ० ५०
६ प्रेमचन्द प्रेमाश्रम पृ० ८६

है। वह गांधी जी के विचारों और उनके अहिंसात्मक सत्याग्रह का सजीव प्रतिनिधि है।[1] विदेशी पूंजीवादी साम्राज्यवादी की मशीनी सभ्यता के आघात से देश को जर्जरित होने से बचाने के लिए वह अपने प्राणों का बलिदान दे देता है किन्तु सत्य तथा अहिंसा का परित्याग नहीं करता। गांधीदर्शन आस्तिक दर्शन है अतः सूरदास का ईश्वर पर अटूट विश्वास था।[2] सत्य न्याय तथा धर्म के लिए उसने आजीवन अथवा अहिंसा की लड़ाई लड़ी थी।[3] वह भीख मांग कर अपना निर्वाह करता है किन्तु अपनी जमीन नहीं बेचता क्योंकि इस जमीन से मुहल्ले वालों का बड़ा उपकार होता है आसपास के सब ढोर वहीं चरते हैं।[4] जान सेवक ने उसे कितने ही प्रलोभन दिये लेकिन वह सत्य पथ से विचलित नहीं हुआ। उसकी विवेक बुद्धि और न्यायशीलता इतनी जागरूक है कि वह बाप-दादा से मिली जमीन का मालिक स्वयं को नहीं मानता क्योंकि वह उसने अपने बाहुबल से पैदा नहीं की है।[5] उपन्यास के प्रारंभ में ही उसने सत्यासत्य का विवेचन कर दिया है[6] जिसका आधार वह जीवन पर्यन्त नहीं त्यागता। धर्मपालन में प्रवृत्त सूरदास सामाजिक लांछनों से भी भयभीत नहीं होता। सुभागी को कष्ट के समय आश्रय देता है क्योंकि— आदमी का धरम है कि किसी को दुःख में देखे तो उसे तसल्ली दे। अगर अपना धरम पालन में भी कलंक लगता है तो लगे बला से। इसके लिए कहां तक रोऊं। कभी न कभी तो लोगों को मेरे मन का हाल मालूम हो जायगा।[7] वह अहिंसा का अनन्य उपासक है। उसकी जमीन को लेकर जब नगर में विशाल आन्दोलन उठ खड़ा होता है और हिंसात्मक प्रणाली द्वारा जान सेवक को परास्त करने का आयोजन होता है तो सूरदास लठैतों से कहता है कि तुम लोग यह अधर्म क्यों मचा रहे हो। वह उन्हें हिंसा मार्ग के अवलम्बन से रोकता है।[8] उसे मर जाना इष्ट था किन्तु हिंसात्मक साधन प्रिय नहीं था।[9] रंगभूमि के दोनों गीतों में गांधी दर्शन के प्रति पूर्ण विश्वास तथा उसकी सशक्त अभिव्यक्ति मिलती है। रामदीन गुप्त ने प्रेमचन्द के इन गीतों के संबंध में लिखा है— इन गीतों का विश्लेषण करने पर स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द इनके द्वारा स्वाधीनता संग्राम के वीर सेनानियों को गांधी-दर्शन के मूल सिद्धान्तों का बोध कराना चाहते थे।[11]

---

१ रामदीन गुप्त प्रेमचन्द और गांधीवाद पृ० १६१
२ प्रेमचन्द रंगभूमि पृ० २३५
३ वही, पृ० ३६०
४ वही पृ० २०
५ वही, पृ० १२७
६ वही पृ० १७
७ प्रेमचन्द रंगभूमि : पृ० १६१
८ वही पृ० ५४५
९ वही, पृ० ३४५
१० रामदीन गुप्त प्रेमचन्द और गांधीवाद पृ० १६८

रंगभूमि के विनय कायाकल्प के चक्रधर तथा कर्मभूमि के अमरकांत सूरदास की तुलना में अधिक दुर्बल पात्र हैं। लेकिन इन्हे भी गांधीवादी सिद्धान्त पूर्णतया मान्य है। इनके चरित्रों में गांधी जी के सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति अधिक सशक्त रूप में नहीं हुई है। इन लोगों ने गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम को ही विशेष रूप से क्रियान्वित किया है। इनके द्वारा गांधी जी का सत्य अहिंसा का सिद्धान्त क्रियात्मक रूप में सम्मुख आता है। नारी पात्रों में प्रेमचन्द के रंगभूमि उपन्यास की नायिका सोफिया इस दिशा में कुछ अग्रसर दिखाई देती है। साम्प्रदायिकता तथा धार्मिक भेदात्मकता का उसमें लेशमात्र भी नहीं है। वह सत्यासत्य के निरूपण में सदैव रत रहती है। धर्मतत्वों को बुद्धि की कसौटी पर कस कर देखती है यह उसका स्वाभाविक गुण है। केवल धर्म ग्रन्थों के आधार पर कोई सिद्धान्त उसे मान्य नहीं है। अध्यात्म और आत्मदर्शन उसके चरित्र की विशेषता है।[1]

प्रेमचन्द जी के पश्चात् सियारामशरण गुप्त के उपन्यासों में गांधीवाद अथवा गांधी-दर्शन की अभिव्यक्ति मिलती है। इनके प्रसिद्ध उपन्यास गोद एवं अंतिम आकांक्षा हैं। उन्होने गांधी जी के सत्य की प्रतिष्ठा सामाजिक जीवन में अति सरल रूप में की है। 'गोद' उपन्यास में निद्य अपवाद के कारण कौसा की कन्या किशोरी का जीवन समाज की वेदी पर बलिदान होने जा रहा था तभी दोमाराम अन्त प्रेरणा तथा सत्य द्वारा प्रेरित होकर अपने परिवार की अनभिज्ञता में उससे विवाह कर लेता है।[2] सामाजिक अत्याचार का अहिंसात्मक रीति से निराकरण गांधी जी की विशेषता थी। सियारामशरण गुप्त ने दोमाराम द्वारा उस सिद्धान्त एवं आदर्श का पालन अवश्य कराया है किन्तु उसका चरित्र अत्यधिक दुर्बल है उसमें परिवार तथा बड़े भाई का सामना करने का साहस नहीं है। उससे अधिक सिद्धान्त पालन की शक्ति एवं सबलता विधवा सोना में है जो इस उपन्यास की गौण पात्र है। अंतिम आकांक्षा में आत्म चरित्र प्रधान शैली में स्वयं लेखक का व्यक्तित्व उभड़ आया है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' नामक राजनीतिक उपन्यास में १९२० ई० से ३७ ई० तक के राष्ट्रीय आन्दोलन की विस्तृत कथा दी गई है। गांधी जी के राष्ट्रवादी दार्शनिक विचारों का भी निरूपण विस्तार से किया गया है। उपन्यास के प्रारंभ में ही अहिंसा का विवेचन करते हुए लेखक ने लिखा है 'दलीप! अहिंसा कुछ दब्बूपन की दीनता नहीं है। जुल्म के आगे हम सर रोपते हैं कुछ सर नहीं झुकाते। निरी की अहिंसा और है बुजदिली की अहिंसा और। हमारी अहिंसा में जो हिंसा की बू है वह हमारी अपनी वृत्तियों से है—दूसरे से नहीं। और सच पूछो तो आज अहिंसा कांग्रेस की नीति ही नहीं गांधीत्व की भित्ति भी है। संसार इसे एक राजनीतिक शास्त्र समझा कर मैं तो इसे जीवन का मूल तत्व मानता हूं।'[3] अहिंसा के प्रभाव के संबंध में आगे कहलाया है अहिंसा तो वह तलवार है जिसकी चोट

१ प्रेमचन्द रंगभूमि पृ० ४२
२ सियारामशरण गुप्त गोद पृ १०७
३ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० २०

बचाव को कोई ढाल ही नहीं।[1] हिंसा और अहिंसा का अ तर स्पष्ट करते हुए लेखक ने लिखा है, हिंसा की तह म तुम्हारा भय है अहिंसा की तह म आत्मसयम है।[2]

प्रमचन्द-युग क अन्य उपन्यासकारो ने गांधीवादी सिद्धान्तो की सयोजना की अपेक्षा तत्कालीन उत्पीडन का अधिक वणन किया है। 'रगभूमि' के सूरदास जसे गांधी दशन को सजीव एव मूत रूप प्रदान करने वाले चरित्र की सजना अधिक न हो सकी।

कहानी के क्षेत्र म प्रमचन्द सुदशन तथा विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों म सत्य तथा अहिंसा की पुष्टि मिलती है। प्रमचन्द जी की 'विश्वास' कहानी का नायक आप्टे राष्ट्रसेवी प्रजा दुखपीडित अहिंसाव्रतधारी है। विदेशी शासको के अत्याचार ने विक्षुब्ध जनता को वह अहिंसा का उपदेश देता है। शुद्धात्मा, नैतिक आचरणपूण स्निग्ध प्रेम लसित आप्टे क सत्य तथा अहिंसा सबधी सिद्धान्तों ने मिस जोशी के हृदय का परिवतन कर दिया था।[3]

प्रेमचन्द जी की 'मकू' कहानी मे सत्याग्रही वीरो क अहिंसात्मक सिद्धान्त का वणन है। इनके जो महात्मा हैं, वह बडे भारी फकीर हैं। उनका हुक्म है कि चुपके से मार खा लो लडाई मत करो।[4]

सुदशन की 'अमरीकन रमणी', 'पथ की प्रतिष्ठा' 'सत्य माग' 'अधेरे म', 'कवी' 'कुमुद' का उपहार' आदि कहानियो म सत्य की पुष्टि मिलती है। गांधी जी के अपन युग का सत्य था अपने देश धम जाति सभ्यता रीति नीति के प्रति सच्चाई गौरव की भावना तथा इनका सम्मान। 'अमरीकन रमणी'[5] कहानी म मदनलाल तथा सावित्री के चरित्र प्राणिमात्र के प्रति दया करुणा की भावना तथा देशभक्ति के उदाहरण हैं। 'पथ की प्रतिष्ठा'[6] कहानी म सुदशन जी ने सिक्ख धम अकाली फूला सिंह के व्यक्तित्व म सदाचार, सच्चरित्रता न्याय एव सत्य को मूर्त किया है। महाराजा रणजीतसिंह ने सत्य धम पालन के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए साधारण प्रजाजन की भांति पंच क बीच अपने अपराध की क्षमा मांगी थी और दण्ड स्वीकार किया था। 'सत्यमाग'[7] में लेखक ने देशसेवा तथा देश क लिए प्राणोत्सग को सत्य माग कहा है। हिन्दू तथा मुसलमान दोनो क लिए जीवन का यही एक सत्य था। 'अधेरे म' कहानी द्वारा व सत्य की रक्षा के लिए भगवान को सरकारी नौकरी की अपेक्षा कष्ट सहन की प्ररणा देते हैं। अमीर मुसलमान अब्दुल वहीद द्वारा सत्य

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ २०
२ वही पृ० २०
३ प्रमचन्द मानसरोवर (भाग ७) पृ० ६१
४ वही, पृ० ६६
५ सुदशन सुप्रभात पृ० १२
६ सुदशन सुप्रभात पृ० ३८
७ वही पृ० ५१

की सेवा के लिए विवाह की प्रथम रात्रि म सुख त्याग स्याग वतन की खिदमत के लिए कारावास की कठोर यन्त्रणा सहन करने का निरूपण कैदी कहानी म किया गया है। सुभद्रा का उपहार सत्य की विजय दिखाने के लिए लिखी गई कहानी है। सच का सौदा कहानी म लेखक ने सत्य की विजय दिखाई है।[1] सुदर्शन जी ने राष्ट्रीय जीवन म व्याप्त सत्य का निरूपण एक अमरीकन रमणी कहानी में किया है। भारत वह देश है जहा सत्य गुण जीवन के स्वाभाविक अग हैं। इसी कारण भारतीय जीवन दर्शन म आध्यात्मिकता की प्रधानता है। अमरीकन रमणी भारत की इस आत्म परायणता पर अमरीका और फ्रास की ऐश्वयमय और दिखावे की सभ्यता को योछावर कर देना चाहती है।[2]

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियो मे सत्य बल अथवा आत्मबल और कर्तव्य की विजय दिखाई गई। अपराधी[3] कहानी म आत्मबल की इच्छा शक्ति पर विजय होती है कर्तव्य बल[4] कहानी म असत्य-बल के सम्मुख सत्ता भी झुक गई थी।

हिन्दी साहित्य म गाधी सचालित सत्याग्रह आन्दोलनो की अभिव्यक्ति

सन १९२० से १९३७ तक गाधी जी द्वारा दो महत्वपूर्ण देशव्यापी आन्दोलनो का सचालन किया गया—प्रथम १९२०-२१ का असहयोग आन्दोलन द्वितीय सन् १९३० का सविनय अवज्ञा आन्दोलन। इस सत्याग्रह आन्दोलनो में सत्य एवं अहिंसा उनका साधन थी। शीघ्र स्वराज्य प्राप्ति की आशा से उन्होंने देश जीवन म नवीन चेतना का रस घोल दिया था। असहयोग आन्दोलन का मूल-मन्त्र था राष्ट्र हित विरोधी शक्तियो के प्रति पूर्ण असहयोग द्वारा राष्ट्र जीवन को उन्नत पुष्ट तथा स्वतन्त्र करना। परवर्ती-अध्याय म इन आन्दोलनों तथा गांधी जी की राष्ट्रीय विचार धारा का विवेचन किया जा चुका है। हिन्दी साहित्य अपने युग की राष्ट्रीय भावना एव स्वतन्त्रता के लिए किये गये अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलनो से प्रभावित हुआ था। अत अब हिन्दी साहित्य के विभिन्न अगो मे इनकी अभिव्यक्ति के स्वरूप का विवेचन अपेक्षित है।

असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ करने के पूर्व गांधी जी ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया था और पराधीनता के अभिशाप से ग्रसित जनता को आदेश दिया था कि वह विदेशी शासकों से सब प्रकार के सबध तोड कर असहयोग करे। पडित रामनरेश त्रिपाठी ने पथिक खण्ड काव्य की रचना गांधी जी के महान व्यक्तित्व असहयोग आन्दोलन की प्रक्रिया तथा सिद्धान्तों स प्रभावित होकर की थी। इसमें प्रेमकथा का आधार लेकर त्रिपाठी जी ने तत्कालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्र खीचा है।

---

१ सुदर्शन सुदर्शन-सुधा पृ० ४७
२ सुदर्शन सुप्रभात पृ० ३६
३ कौशिक कल्लोल पृ० ११५
४ वही पृ १

इसका नायक पथिक सम्पूर्ण देश का पर्यटन करता है। जनता के कष्टों का परिचय पाने के उपरान्त जनता में नृप से सब प्रकार के सम्बन्धों का परित्याग करने की भावना भर देता है। इसका कारण यह है कि वह अन्यायी अधर्मी अत्याचारी शासक का साथ देना पाप समझता है। वह कहता है कि प्रजा यदि राजा का साथ छोड़ दे तो राजा अकेला क्या कर सकता है? जब तक प्रजा इस पाप से नियुक्त नहीं होती तब तक उसका कष्ट दूर नहीं हो सकता। असहयोग आन्दोलन निष्क्रिय प्रतिरोध नहीं था। गांधी जी ने इस आन्दोलन द्वारा कर्मवाद का सन्देश दिया था। जीवन संघर्ष से मुख मोड़ने की अपेक्षा पौरुष साहस सत्य न्याय श्रद्धा, करुणा उदारता सुशीलता, धर्म क्षमा आदि ईश्वरीय गुणों का विकास कर स्वदेश की सेवा को मनुष्य का परम धर्म माना था। उनके इस आदर्श की पूर्ति पथिक द्वारा होती है।[1] देशवासियों में, शासक वर्ग के प्रति विरोध भावना भरने के लिए पथिक पर राजद्रोह का अभियोग लगा कर मृत्यु दंड दिया जाता है उसकी पत्नी उसके लिए लाये गये विष का स्वयं पान कर लेती है पुत्र का वध किया जाता है लेकिन पथिक सत्य एवं अहिंसा का पथ नहीं त्यागता। शासकों की नृशंसता से क्रोधित युवक-वर्ग को शांति का पाठ पढ़ाते हुए अहिंसा का धर्म समझाता है। शारीरिक सुख त्याग कर वह मोह वस्त्र पहनता है। अन्त में सत्य का आग्रही प्राणोत्सर्ग कर सत्याग्रह आन्दोलन की सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होता है।

पंडित रामचरित उपाध्याय श्री त्रिशूल तथा नाथूराम शंकर ने द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मक शैली में सत्याग्रह आन्दोलन में सहयोग देने का आग्रह किया है। जीवन दर्शन एवं जीवन मार्ग के रूप में विकसित गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन को देश वासियों पर परम धर्म मानते हुए पंडित रामचरित उपाध्याय ने लिखा है—

तू सत्याग्रह के शस्त्र को धारण क्यों करता नहीं?
क्यों अपयश से डरता नहीं लज्जा से मरता नहीं॥[2]

सन् १९२०-२१ ई० का असहयोग आन्दोलन हिन्दू और मुसलमान की एकता के संयोग पर छेड़ा गया था। गांधी जी ने खिलाफत के प्रश्न पर मुसलमानों को भी राष्ट्रीय आन्दोलन के पक्ष में कर लिया था। श्री त्रिशूल ने इस सम्बन्ध में कहा है—

हिन्दू मुस्लिम योग एक ऐसा संयोग था
न भोगा किसी ने भी कुल भोग ऐसा,
न छूटा लगा दास्य का रोग ऐसा॥[3]

गांधी जी ने वैचारिक राष्ट्रवादिता को असहयोग आन्दोलन द्वारा कर्म क्षेत्र में ला खड़ा किया था। उस अमूर्त भावना को कर्म में ढाल कर मूर्त रूप प्रदान किया

---

१ रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृ० ४८
२ रामचरित उपाध्याय राष्ट्र भारती पृ० ४५
३ श्री त्रिशूल राष्ट्रीय मंत्र पृ० ४३

था। भारत को आत्म विश्वास से भर कर उन्नति और विकास के लिए धर्म-क्षेत्र में लाने के लिए गांधी जी के सदृश 'त्रिशूल' जी ने कहा है—

इनके हृदयों में अगर सुदृढ़ आत्म विश्वास हो।
आयें धर्म-क्षेत्र में उन्नति और विकास हो॥[1]

कवि ने देशवासियों को ऐक्य-सूत्र में बांध राष्ट्र यज्ञ में सम्मिलित होने और स्वातन्त्र्य रूपी सोम सुधा का पान कर मृत होती जाति को प्राणदान देने का अनुरोध किया है। असहयोग-आन्दोलन द्वारा ही पंजाब की जलियांवाला बाग वाली नृशंस घटना के घाव पर मलहम लगाया जा सकता था। अतः त्रिशूल जी ने असहयोग की कठिन परीक्षा देने के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया था।[2] कवि ने असहयोग की आग भड़काने के लिए बारबार भारतीयों की हीनावस्था तथा उनके उत्पीडन की ओर ध्यान आकृष्ट किया है—

न उसरे कभी देश का ध्यान मन से उठाओ इसे कर्म से मन वचन से।
न जलना पड़े हीनता की जलन से पतन का पतन है तुम्हारे पतन से।
असहयोग कर दो असहयोग कर दो॥[3]

नाथूराम शर्मा शंकर ने बलिदान गान में देशभक्त वीरों को गांधीजी का मन्त्र पढ़ कर सत्यधारी अगुआ के आगे बढ़ कर विदेशी शासकों की अत्याचार की वेदी पर बलिदान होने के लिए उत्साहित किया है—

सिंहो सत्यामृत प्रवाह में गोल बांध बहना होगा
पोल खोल खोट कुराज्य की कुशासन कहना होगा।
पग-बल ठेलेगा जेलों में वर्षों तक रहना होगा
मार खाय निर्दय दुष्टों की घोर कष्ट सहना होगा।
शांति जीवनाधार रक्त से यश कुण्ड भरना होगा
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा॥[4]

युग की पुकार को काव्य में इतिवृत्तात्मक शैली में प्रस्तुत कर इन कवियों ने अपने युग धर्म का पूर्ण निर्वाह किया है। इनका काव्य साधारण पाठक की बुद्धि के अनुरूप है यद्यपि रस एवं काव्य-कला की दृष्टि से इनकी रचनाओं को उत्कृष्ट कोटि के काव्य में अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता।

माखनलाल चतुर्वेदी और सुभद्राकुमारी चौहान ने असहयोग आन्दोलन का वर्णन अधिक भावात्मक शैली में कलात्मकता के आग्रह के साथ किया है। उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन के ध्येय और सिद्धान्तों की प्रत्यक्ष एवं सुस्पष्ट अभिव्यंजना की है। पापी शासन से असहयोग कर गांधी जी ने स्वेच्छया शासकों के दण्ड को स्वीकार

१　त्रिशूल　राष्ट्रीय मन्त्र　पृ　५०
२　वही पृ　३५
३　वही पृ　४१
४　सम्पादक—हरिशंकर शर्मा　शंकर सर्वस्व　पृ० २४८

किया था। सत्याग्रही कैदी के नाते उन्होंने अदालत में जो बयान दिया था उसका संक्षिप्त काव्य रूपान्तर चतुर्वेदी जी ने प्रस्तुत किया है—

सच कहता हूँ अत्याचारी शासन पर हा प्यार नहीं
जो करते हो प्यार छोड़ दे है इसमें उद्धार नहीं
अत्याचारी का वध कर दे यह पशुता दरकार नहीं
पापी प्यार हमारा चाहे यह उसको अधिकार नहीं,
+ + +
पापी शासन पर अप्रियता उपजाना श्रुति सम्मत है
इसीलिए जालिम पर ममता न हो यही मेरा मत है
बाकी एक उपाय बचा था जिसकी की गांधी ने याद
शीघ्र अहिंसक असहयोग से मातृभूमि होवे आजाद ॥[1]

गांधी जी ने असहयोग आंदोलन के लिए आत्म बलिदान को आवश्यक धर्म माना था इस धर्म के पालन में ही स्वराज्य संभव था। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में आन्दोलन के विविध प्रसंग – स्वराज्य आत्मबलिदान कारावास आदि के वर्णन मिलते हैं।[2]

सुभद्राकुमारी चौहान की कविता में सत्याग्रही के वीरत्व और नारी की भावुकता का मिश्रित भाव झलकता है। इसका कारण था कि गांधी जी द्वारा क्रियान्वित अहिंसात्मक राष्ट्रीय आन्दोलन ने भारतीय पुरुष एवं नारी दोनों को एक अपूर्व उत्साह स्वाभिमान तथा आत्मबलिदान की भावना से भर दिया था। राखी जैसे पुण्य पर्व पर नारी ने अपने सत्याग्रही वीरों के लिए गौरव का अनुभव किया था। सुभद्रा जी तत्कालीन नारी जागृति और राष्ट्रीय चेतना की प्रतीक हैं। वे अपने असहयोगी सत्याग्रही वीर भाई के लिए रेशम का नहीं लोहे की हथकड़ियों की राखी भेजती हैं जिससे वे भारत माता के बन्धन काटने में समर्थ हो सकें—

आते हो भाई ? पुनः पूछती हूँ—
कि माता के बन्धन की है लाज तुमको ?
तो बन्दी बनो देखो बन्धन है कैसा
चुनौती यह राखी की है आज तुमको ॥[3]

सुभद्रा जी के काव्य में अहिंसाव्रत धारी सत्याग्रही वीरों की संघर्ष प्रणाली का वर्णन प्रतीकात्मक शैली में भी मिलता है। 'विजयी मयूर'[4] कविता में मयूर सत्याग्रही का प्रतीक है। विदेशी सरकार की क्रोध रूपी काला घनघोर घटाओं के अत्याचार रूपी पत्थरों से भी उसने अपनी स्वराज्य की पुकार बन्द नहीं की। अन्त में मयूर की विजय सत्याग्रही वीर की विजय है।

१ माखनलाल चतुर्वेदी माता पृ० ७१ ७२
२ वही, पृ० ५५
३ सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ७०
४ सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ० ७६

सियारामशरण गुप्त ने 'बापू' काव्य-ग्रन्थ में महात्मा गांधी के प्रति अपनी मनम श्रद्धा एवं भक्ति समर्पित करते हुए सत्याग्रह आन्दोलन की लोकप्रियता पर प्रकाश डाला है। वस्तुत गांधी जी ने देशव्यापी आन्दोलन को जन्म दिया था। सियारामशरण जी ने लिखा है कि जब बापू अपने सत्याग्रही वीरों की टोली लेकर सत्याग्रह आन्दोलन के लिये चलते थे तो माग में जनता उत्सुकतावश उनके दर्शनों के लिए खड़ी रहती थी।[1] जनता उनकी स्वर्गीय पुण्य रश्मि सम शुचि कान्तिमय झलक देखकर अपना जीवन साथक समझती थी।[2]

सोहनलाल द्विवेदी ने भी आन्दोलन से सबधित कविताए लिखी हैं। 'सेगाव का सन्त'[3] 'दाण्डी यात्रा'[4] उनकी प्रसिद्ध रचनाए हैं। गांधी जी का सत्याग्रह आंदोलन जन आन्दोलन था। सम्पूर्ण देश राष्ट्रीयता के रग मे रंगकर आन्दोलन उत्साह से भर गया था। सोहनलाल द्विवेदी ने प्रसाद गुण सम्पन्न ओजपूर्ण भाषा म इसका उल्लेख किया है—

> क्या ग्राम ग्राम क्या नगर-नगर से कोटि कोटि चल पड़े किधर ?
> नवयौवन का आवेश लिये यह कौन चला जाता पथ पर
> नवयुग का सदेश लिये ?[5]

'दाण्डी यात्रा' कविता म गांधी जी द्वारा सविनय अवज्ञा आन्दोलन के समय दाण्डी जाकर नमक-कानून भंग करने का उल्लेख सजीव भाषा में मिलता है। बापू की दाण्डी यात्रा ने जनजीवन म हलचल मचा दी थी। इसम पत्नी पति को सहयोग दे प्रमुदित हुई थी भाई-बहन चल पड़े थे जननी ने अभिमान के साथ पुत्र को विदा किया था। इस प्रकार बच्चों बूढ़ों माँ-बेटो बहनों भाइयों की यह टोली मतवाली बनकर झूमती हुई उर पर गोली खाने चल दी थी।[6] युद्ध की इस नवीन प्रणाली का विस्तृत वणन द्विवेदी जी की इस कविता म मिल जाता है। आन्दोलन ने दिशाओं को कपा कर आगे और अपनी धूम मचा दी थी—

> कप उठीं दिशायें नीरव हो छा गया एक स्वर निर्विकार।
> भारत स्वतत्र करने का प्रण है यही यही रण-मोक्ष द्वार।।[7]

सविनय अवज्ञा आन्दोलन के मध्य म गांधी जी गोलमेज कान्फ्रेंस में सम्मिलित होने विलायत गए थे यद्यपि यह यात्रा व्यर्थ ही हुई थी। कवि बच्चन ने गांधी जी के विलायत प्रस्थान पर 'भारत माता की विनय' कविता गांधी जी की इस यात्रा का

---

१ सियारामशरण गुप्त बापू पृ० ११
२ वही पृ० १५
३ सोहनलाल द्विवेदी भरवी पृ ६४
४ वही पृ० ६६
५ सोहनलाल द्विवेदी भरवी पृ ४५
६ वही पृ० ७४
७ वही, पृ० ७५

भावात्मक चित्रण किया है।[1]

इन राष्ट्रीय आन्दोलनों में कारावास अथवा जेल का महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि विदेशी शासकों ने इन राष्ट्र वीरों को कारावास का कठोर दण्ड देकर देश की राष्ट्रीय भावना को कुचलने का साधन ढूंढ़ा था। वहाँ उन्हें अनेक प्रकार के कष्ट दिये जाते थे जिससे वे राष्ट्रीयता के सत्य मार्ग से विचलित हो जायें। विदेशी शासकों ने दमन की कोई भी योजना अछूती न छोड़ी लेकिन देशवासियों ने शान्तिपूर्वक गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर राष्ट्रीय भावना को अधिक प्रबल रूप प्रदान किया। गांधी जी की अहिंसात्मक नीति तथा सत्याग्रह आन्दोलन ने कारागृहों को मन्दिर बना दिया था जहाँ वन्दिनी भारतीय जनता को अपने सत्य रूपी कृष्ण की प्राप्ति हो सकती थी। हिन्दी-साहित्य में कवियों की वाणी में कष्ट-सहन की इस अनोखी रीति तथा कारावास का अनेक रूपों में वर्णन मिलता है। श्री त्रिशूल के अभिमत में कारागृह तो सत्याग्रही के लिये क्रीडास्थल बन गये थे जहाँ वे आनन्दपूर्वक देश की स्वतन्त्रता के लिये कष्ट सहन करते थे।[2] कवि ने मौन रूप से जेलखानों की मार को सहकर अनीति अन्याय और अधम से संघर्ष के लिए प्रेरित किया था। उन्होंने कारावास को रंगमहल का रूप दिया था—

सह कर सिर पर मार मौन ही रहना होगा,
आये दिन की कड़ी मुसीबत सहना होगा।
रंगमहल से जेल आहनी गहना होगा
किन्तु न मुख से कभी हन्त हा! कहना होगा।
डरना होगा ईश से और दुखों की हाय से
भिड़ना होगा ठोंक कर खम अनीति अन्याय से॥[3]

श्री मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्रीयता के आवेश में 'जन्माष्टमी' कविता में कृष्ण जन्म की पुण्य रात्रि का पुनः आह्वान किया है जिसमें हिन्दू जाति के पापों का प्रहरी सो जाये मां के बन्धन खुल जायें और कारागृह मन्दिर बन जायें। कृष्ण जन्म पाप का अन्त करने के लिये हुआ था। अतः इस काव्य में गुप्त जी ने प्रतीकात्मक शैली में भारत को अंग्रेज रूपी कंस की कुटिल नीति तथा पाप के साधन को कारागृह रूपी मन्दिर में वन्दिनी भारतीय जनता के सत्य रूपी कृष्ण द्वारा विनष्ट करना चाहा है। कवि के मतानुसार कुटिल नीतिज्ञ अंग्रेज रूपी कंस को असत्य विध्वंस कर ही देश में धन धान्य आमोद प्रमोद का माखन मिश्री मोहन भोग का

1 बच्चन प्रारंभिक रचनाएं (दूसरा भाग) पृ० १५
(यह प्रारंभिक कविताओं का प्रथम संग्रह तेरा हार के नाम से १९३२ ई० में प्रकाशित हुआ)
2 राष्ट्रीय झंकार दूसरा भाग पृ० ५
3 त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र पृ० ८
4 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ७२

सकता था और सभी यशोदा रूपी माताएं थालों को सजा कर अपने धान रूप गोपाला को भोजन करा सकती थी।[1] राष्ट्रीय भावना म हिंदू धार्मिक भावना का सामजस्य वष्णव कवि मथिलीशरण गुप्त की विशेषता है।

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता कदी और कोकिला[2] (सन् १९३०) मे सत्याग्रही कदी के प्रति कवि हृदय की सवेदना भावात्मकता के आग्रह के साथ अभिव्यजित हुई है। राष्ट्रीय भावना के उमेष का इससे सुदर उदाहरण हिंदी काव्य जगत् म विरल है। कारागृह की ऊची काली दीवारो चोरों बटमारो के डेरों के बीच घिरे सत्याग्रही कदियो को भरपेट भोजन भी प्राप्त नही होता था।[3] दिन भर ब्रिटिश राज की हथकडिया का गहना पहनकर कोल्हू चलाना मोट खींचना तथा मिट्टी कूटना सत्याग्रही कदियो का काम था। राष्ट्रभक्त कदियो की मौन रूप से दण्ड सहने की शक्ति एव कठोर परिश्रम ने ब्रिटिश साम्राज्य की अकड कम कर दी थी। ब्रिटिश साम्राज्य की जडे हिला दी थी। माखनलाल चतुर्वेदी ने व्यंग्यात्मक शली म कारागार के जीवन कदी की दशा का सजीव चित्र खीचा है—

क्या?—देख न सकतीं जंजीरों का गहना?
हथकड़ियां क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना
कोल्हू का चरक चू?—जीवन की तान
गिट्टी पर लिखे अगुलियों ने क्या गान?
हूं मोट खींचता लगा पेट पर जूआ
खाली करता हूं ब्रिटिश अकड़ का कूआ।
दिन मे करुणा क्यों जगे रुलाने वाली,
इसलिए रात में गजब ढा रही आली?
इस शान्त समय मे
अन्धकार को बेध रो रही क्यों हो?
कोकिल बोलो तो!
चुपचाप मधुर विद्रोह-बीज
इस भांति बो रही क्यों हो?
कोकिल बोलो तो![4]

काल शासन की काली रात्रि मे काली काल कोठरी म काली टोपी और काली कमली स युक्त परिधान तथा काली लोहश्रृङ्खला म आबद्ध कदी क समक्ष काली किन्तु स्वतन्त्र कोकिल का स्वर समय का शखनाद-सा सुनाई पड़ता है।[5]

१ मथिलीशरण गुप्त हिंदू : पृ० ७३ ७४
२ माखनलाल चतुर्वेदी हिम किरीटिनी पृ० १४
३ वही पृ० १५
४ वही पृ १७
५ वही, पृ० १८

स्वतन्त्र प्रकृति में इन वीर बन्दियों को संवेदना किन्तु साथ ही संघर्ष की प्रेरणा मिलती है। युगीन राष्ट्रीय भावना ने कवि के अन्तरतम तक का स्पर्श कर लिया था। वह उसकी अनन्य अनुभूति बन गई थी। कवि की राष्ट्रीय भावना भी गांधी जी के सदृश संकुचित अथवा सीमित नहीं है। अतः हथकड़ियों से प्यार तथा जंजीरों का हार केवल भारत की स्वाधीनता के लिए ही ग्रहण किये गये थे अपितु इनके द्वारा अखिल जगती-तल का उद्धार कर विश्व की परममुक्ति का द्वार खोल देना कवि को इष्ट था।[1]

सियारामशरण गुप्त ने बापू में गांधी जी के व्यक्तित्व कृतित्व एवं सिद्धांतों का विवेचन काव्य रूप में करते हुए कारागार के संबंध में भी लिखा है। कवि ने कारागार का अत्यन्त घृणित क्रूर एवं भयंकर चित्र खींचते हुए कारागार को अबन्धन का मुक्ति द्वार बनाने का समस्त श्रेय गांधी जी को दिया है—

धन्य वह कारागार?
वह तो अबन्धन का मुक्ति द्वार!
अंकुरित होकर यहां अखेद
मुक्ति-बीज क्रूर भित्ति-भूमि भेद
फूट पड़ा बाहर है
लाली लिये ले रहा लहर है
मृत्यु के निकेतन पर जीवन का पुण्य-ऋतु।
आ रहे वहां की तीर्थ यात्रा हेतु
लक्ष लक्ष नारी-नर
मंगलेच्छा सब सुखकारी कर
घर में तुम्हारे वे चरण चिह्न॥

सियारामशरण जी की गांधी जी पर अटूट श्रद्धा है। कवि सम्पूर्ण राष्ट्रीय आन्दोलन का समस्त श्रेय मान्यवर गांधी जी को देते हुए कहता है कि गांधी जी की प्रेरणा से राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख अंग कारागार सबके लिए सहजगम्य देवगृह बन गये थे।

छायावाद युग के अन्तिम चरण में छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त राष्ट्र की ठोस पृथ्वी पर उतर आये। उन्होंने भारतीय युग-जीवन पर दृष्टिपात किया। राष्ट्रीय संग्राम के अमर-सेनानी महात्मा गांधी के प्रति वे अमित श्रद्धा से भर गये। बापू के प्रति कविता में कवि ने बापू की सत्याराधना अहिंसा निर्भयता उदारता आदि विशिष्ट गुणों के स्मरण के साथ राष्ट्रीय आन्दोलन में कारागृह के महत्त्व पर श्रद्धान्वित शब्दों में प्रकाश डाला है क्योंकि कारागृह में ही मानव आत्मा की मुक्ति का

१ माखनलाल चतुर्वेदी हिम किरीटिनी पृ० ६६
२ सियारामशरण गुप्त बापू पृ० ३६

दिव्य जन्म हुआ है—

साम्राज्यवाद का कंस बंदिनी मानवता पशु बलाक्रांत
शृंखला दासता प्रहरी बहु निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रांत
कारागृह में दे दिव्य जन्म मानव आत्मा को मुक्त कांत
जन शोषण की बढ़ती यमुना तुमने की नत पद प्रणत शांत।[1]
(अप्रल १९३६)

सत्याग्रही के कर्तव्यों का विवेचन भी काव्य मे मिलता है। श्री त्रिशूल जी ने इतिवृत्तात्मक शैली म सत्याग्रही के कर्तव्यों की विवेचना इस काव्य में की है—

उसका है कर्तव्य जो कि सत्याग्रह ठाने
अन्यायी कानून असत्यावेश न माने।
छेड़े हरदम रहे प्रेम आनन्द तराने
निश्चित अपनी विजय सत्य के रण म जाने।
ज्यों ज्यों घहराती उधर क्षण क्षण जीवन जंग हो
त्यों त्यों गहराता इधर बुद्ध उमंग का रंग हो॥[2]

इसके साथ ही त्रिशूल जी ने सत्याग्रह क कठिन व्रत की आवश्यक मान्यताओं को भी स्पष्ट कर दिया था। इस व्रत का मूलाधार था त्याग। सत्याग्रही को अपने व्रत पर अटल रहकर धैर्यपूर्वक तथा सहनशक्ति द्वारा विपदाओं का सामना करना पड़ेगा—

यह व्रत है अति कठिन समझ कर इसको लेना
देह गेह प्रिय प्रिया पुत्र ममता तज देना।
अपने बल से नाव पड़गी इसमें खेना
करना होगा सामना भीषण अत्याचार का
सहना होगा घाव पर घाव तीर तलवार का॥[1]

सच्चा असहयोगी कष्ट सहन की परीक्षा म भयभीत नहीं होता। कारागार उसकी क्रीड़ा का आगार बन जाता है और जीवन के ध्येय स्वराज्य पर वह सब कुछ न्यौछावर कर देता है—

कारागृह गृह हुआ खलने औ खाने का।
तनिक नहीं भय कभी वहां आने जाने का॥
वहां बड़ आनन्द सहित हम तो जायेंगे।
काम करेंगे नहीं भाग्य पर पछतायेंगे॥
× × ×

१ सुमित्रानन्दन पंत युगान्त पृ० ६८
२ त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र पृ० ४
३ वही पृ० ८

इसीलिये हम ग्रह गया से लगे निज ध्येय को।
बस स्वराज्य उद्देश्य पर देंगे सभी विधेय को॥[1]

हिन्दी नाटकों में सत्याग्रह आन्दोलन की अभिव्यक्ति

बद्रीनाथ भट्ट सुदर्शन जयशंकर प्रसाद लक्ष्मीनारायण मिश्र उदयशंकर भट्ट गोविन्दवल्लभ पंत आदि ने ऐतिहासिक नाटकों की ही विशेषतया रचना की थी। उनके नाटकों का संघर्ष राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए युद्ध इस आन्दोलन को प्रेरणा मात्र देता है। उसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति इनके नाटकों में नहीं मिलती। बेचन शर्मा उग्र के महात्मा ईसा नामक नाटक में प्रच्छन्न रूप से सत्याग्रह अथवा असहयोग आन्दोलन का वर्णन मिलता है। गांधी जी और महात्मा ईसा के व्यक्तित्व द्वारा सत्य की प्रतिष्ठा का साधन एक ही है। महात्मा ईसा असत्य अन्याय तथा अनीति का उन्मूलन असहयोग तथा अहिंसात्मक सत्याग्रह की नीति द्वारा करते हैं। वे असहयोग की विवेचना भी कर देते हैं।[3] गांधी जी के सदृश महात्मा ईसा भी कहते हैं 'यदि पिता की आज्ञा पुत्र की आत्मा के विरुद्ध है तो उसे चाहिये कि वह अपने पिता से अत्यन्त नम्र शब्दों में असहयोग कर दे।' दुरात्माओं से असहयोग रूपी धर्म युद्ध कर कोड़ों की मार को विनोद और कारागार को विश्राम-स्थान समझने के लिए वे उपदेश देते हैं। महात्मा ईसा के सत्याग्रह आन्दोलन में भी गांधी जी अपने युग के सदृश बालक दल झंडियां लेकर गाते हुए जुलूस निकालते हैं। महात्मा ईसा भी सभा में भाषण करते दिखाये गये हैं। उनके आन्दोलन की प्रभावात्मकता का वर्णन हैरोद के इन शब्दों में मिलता है—कैसा विचित्र आदमी है। इसके आन्दोलन के सामने हमारा दमन पंगु है—प्राणहीन जान पड़ता है। वह लड़ता तो है पर उसकी लड़ाई कोई देख नहीं सकता। लोग तलवार से साम्राज्य की जितनी हानि कर सकते हैं उससे कहीं अधिक हानि बिना शस्त्र धारण किये ही ईसा कर रहा है। महात्मा ईसा। गलियों में, बाजारों में ग्रामों में—जहां देखो वहीं महात्मा ईसा। इस समय जनता का सर्वस्व यह ढोंगी महात्मा हो बना हुआ है। वस्तुतः यह गांधी जी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन का ही वर्णन है। गांधी जी की मुट्ठी भर हड्डियों के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव था कि लाखों जनता उनके साथ थी।[2] शासक वर्ग आन्दोलन के इस नवीन रूप से आतंकित हो गया था। उसने प्रजा द्रोह तथा शांति भंग का आरोप लगा कर सत्याग्रही वीरों को दण्डित किया। इस नाटक में असहयोग आन्दोलन का विस्तृत किन्तु प्रच्छन्न वर्णन किया गया है।

१ निहालचन्द वर्मा राष्ट्रीय झंकार (दूसरा भाग) पृ० ५
२ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० १२३
३ वही पृ० १२६
४ बेचन शर्मा उग्र महात्मा ईसा पृ० १२५
५ वही, पृ० १२६

बाबू जमनादास मेहरा के पजाब केशरी नाटक को पूणतया राजनीतिक नाटक कहना उपयुक्त होगा। इसम लाला लाजपतराय, राष्ट्रीय स्वय सेवकों और प्रजा द्वारा साइमन कमीशन के बहिष्कार का प्रत्यक्ष रूप से चित्रण किया गया है—

जिनको हालत हिन्द की लेने को लाया जा रहा।
फज भी उनका मदस हमको बताया जा रहा॥
सामने वे भी म हों आये हैं वे जिनके लिये ?
क्यो न हम अपन कह रोका डराया जा रहा ?
क्या यही है साइमन का वो कमीशन आपका।
जिनको आंखो से हमारे यू हटाया जा रहा ?
बरबे में उनको बन्द कर भारत दिखाया जा रहा।
औरतें हैं क्या जो घू घट मे छिपाया जा रहा ?[1]

जनता द्वारा कमीशन के तिरस्कार[2] सत्य पर अटल राष्ट्र भक्तों पर पुलिस के प्रहार लाला लाजपतराय पर लाठी के आघात उनकी मृत्यु आदि समस्त उल्लेख ओजपूर्ण शली म मिलते हैं। वे भारतीयो को अपनी करुण स्थिति पर विदग्ध कर राष्ट्र निर्माणात्मक काय मे सलग्न करने मे सहायक हैं।

इस युग म राष्ट्रीय आन्दोलन के सक्रिय रूप का वर्णन इन कतिपय रचनाओ म ही मिलता है। ऐतिहासिक नाटका का सघष अपन युग क सत्याग्रह आन्दोलन की ओर सकेत करता है। बदरीनाथ भट्ट के 'दुर्गावती मे स्वतत्रता की रक्षा के लिए अकबर रूपी विदेशी शक्ति स सघष है जयशकर प्रसाद के चन्द्रगुप्त म चद्रगुप्त चाणक्य की सहायता से विदेशी शक्ति—यूनानियो पर विजय पाता है। अजातशत्रु स्कन्दगुप्त ध्रुवस्वामिनी आदि प्रसाद जी के नाटक जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का प्रताप प्रतिज्ञा हरिकृष्ण प्रेमी के रक्षाबन्धन शिवा साधना मुदर्शन का जय पराजय गोविन्दवल्लभ पत का दाहर अथवा सिन्ध पतन राजमुकुट आदि सभी नाटकों में युद्ध विभीषिका का चित्रण मिलता है जो लखकों के अपने युग क राष्ट्रीय सघष को प्रतिध्वनित करते हैं। गोविन्दवल्लभ पत के राजमुकुट नाटक की प्रजा भी राजा क अन्याय अधम अनीति क कारण विद्रोहिणी हो जाती है।[3] इसी प्रकार विदेशी शासन-काल में इस युग म प्रजा ने आन्दोलन म भाग लेकर अंग्रेजी शासकों की दमन-नीति अत्याचार अन्याय आदि का विरोध किया था।

हिन्दी नाटका मे सत्याग्रह आन्दोलन के प्रत्यक्ष चित्र अधिक म मिलन पर भी साकेतिक प्रतीकात्मक एव प्रच्छन्न शली म लिख नाटकों का अभाव नहीं है।

---

१ बा जमुनादास मेहरा पजाब केसरी पृ० ६६
२ वही पृ १०२
३ गोविन्दवल्लभ पत राजमुकुट पृ० २२

कथा साहित्य में गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की अभिव्यक्ति

काव्य अथवा नाट्य-साहित्य की तुलना में कथा-साहित्य राजनीतिक आन्दोलनों का अधिक विशद एवं मुखर रूप प्रस्तुत करने में सक्षम हुआ है। कदाचित् इसका यह कारण है कि आन्दोलन के वर्णन अथवा सजीव चित्रांकन का इसमें अधिक सुयोग रहता है। कथा-साहित्य ने भावात्मकता की अपेक्षा वर्णनात्मकता को ही प्रधानता दी है। आन्दोलन के प्रत्येक मत स्थिति तथा दृश्यों का चित्र कथा-साहित्य में मिल जाता है। विशेष रूप से प्रेमचन्द जी ने राष्ट्रीय जागृति एवं स्वतन्त्रता के लिये किए गए आन्दोलन को साहित्यिक परिधान में आवृत कर शाश्वत रूप प्रदान किया है।

हिन्दी में शुद्ध राजनीतिक उपन्यासों की अधिक संख्या नहीं मिलती है। सामाजिक समस्याओं एवं राजनीतिक परिस्थितियों से मिश्रित उपन्यास ही अधिक संख्या में मिलते हैं। प्रेमचन्द के 'रंगभूमि' 'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' तथा राधिकारमण प्रसाद सिंह का 'पुरुष और नारी' उपन्यास राजनीतिक उपन्यास की संज्ञा पाने के लिए पूर्ण समर्थ हैं। प्रेमचन्द की 'रंगभूमि' असहयोग आन्दोलन की भूमिका पर लिखा गया सफल राजनीतिक उपन्यास है। 'प्रेमाश्रम' में राष्ट्रीय आन्दोलन द्वारा कृषक जागृति का चित्र मिलता है तो 'कर्मभूमि' में सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं अछूतों की समस्या। राधिकारमण प्रसाद सिंह के 'पुरुष और नारी' उपन्यास का काल क्षेत्र अति विस्तृत है। उपन्यास ने सन् १९२० के असहयोग आन्दोलन से कथा का प्रारंभ कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन की समाप्ति के पश्चात् प्रान्तीय स्वायत्त शासन के लिए प्रारंभिक चुनाव में समाप्ति की है। इस उपन्यास में सन् १९२०-३६ तक के राष्ट्रीय इतिहास के विकास का पूर्ण इतिहास उपलब्ध हो जाता है। आन्दोलन की बारीकियों एवं मानव-मनोविज्ञान का सम्पूर्ण विश्लेषण मिल जाता है।

प्रेमचन्द को 'रंगभूमि' उपन्यास की मूल प्रेरणा असहयोग आन्दोलन से मिली थी क्योंकि तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन का सजीव वर्णन तथा चित्र इसमें मिलते हैं। 'रंगभूमि' उपन्यास में दो कथायें एक साथ चलते हैं और अन्त में उन दोनों का एकीकरण हो जाता है। ये दो कथाएं सूरदास तथा विनयसिंह से संबंधित हैं। सूरदास गांधीवादी सिद्धान्तों का मूर्त रूप है और विनयसिंह राष्ट्रीय आन्दोलन की अभिव्यक्ति का साधन। कुंवर विनयसिंह की कथा का सीधा संबंध राष्ट्रीय आन्दोलन से है। कुंवर भरतसिंह तथा रानी जाह्नवी ने देश प्रेम की भावना से अभिभूत हो विनयसिंह को राष्ट्रीय शिक्षा दी थी।[1] कुंवर भरतसिंह ने विदेशी सरकार से असहयोग का व्रत ले रखा था।[2] असहयोग आन्दोलन के कार्य को राष्ट्रव्यापी पैमाने पर प्रसारित करने के लिए गांधी जी ने राष्ट्रीय स्वयं सेवकों का संगठन किया था। देश में इस समय

१ प्रेमचन्द रंगभूमि पृ० १४५

२ वही, पृ० २६३

एसा उत्साह था कि स्वाधीनता प्राप्ति की आशा म युवक समूह हप और उत्साह के साथ आत्म-बलिदान के लिए प्रस्तुत था। गाधी जी के आगमन के पूव अनेक सामाजिक राजनीतिक सस्थाओं के रहन पर भी स्वय सेवक नही मिल पाते थे। कुवर भरतसिंह न इस तथ्य का उदघाटन किया है।[1] विनयसिंह राष्ट्रीय स्वय सेवक के रूप में जसवत नगर जाता है। सवा और त्याग द्वारा वह वहा की जनता में राष्ट्रीय चेतना उद्बुद्ध कर देता है। राष्ट्रीय आन्दोलन की आग भारत के सभी क्षत्रो म फैली थी, देशी रियासतें भी इससे अछूती नही बची थी *रगभूमि इसका प्रमाण है।* राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन के लिए सरकार ने राष्ट्रीय सेवा म सलग्न विनयसिंह जैस व्यक्तियों को कारावास का कठोर दड दिया था। हजारो आदमी निरपराध मारे गये थे और पकड़ धकड़ में असाधारण तत्परता से काम लिया गया था। सूरदास की *कथा इस उपयास की प्रमुख कथा है। उसका भोपडा जातीय मदिर बन गया था।* वस्तुत उपयास के अन्तिम भाग मे उसकी जमीन का भगडा व्यक्तिगत न रह कर राष्ट्रगत आन्दोलन बन जाता है। स्वाथ साधक विदेशी शासन की शोषण प्रवृत्ति का राष्ट्रवादियो द्वारा विरोध होता है। यह आत्मबल लोकमत एव अहिंसा द्वारा भारत की मुक्ति का प्रयास है। *सत्याग्रही वीरो के प्राणोत्सग को देख कर पुलिस भी अपने* भाइयो का गला काटने स मुख मोड लेती है। यह पुलिस के इतिहास म नयी घटना थी और राष्ट्रवाद के विकास का सूचक। गाधी जी के राष्ट्रवाद ने सत्य एव अहिंसात्मक साधन द्वारा नौकरशाही का भी हृदय-परिवतन कर दिया था।[2]

कमभूमि उपयास म प्रमचन्द ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के युग की राजनीतिक परिस्थितिया जनता की विकसित राष्ट्रीय भावना तथा आन्दोलन के क्रियात्मक रूप को सम्मुख रखा है। अब जनता में इतनी चेतना आ गई थी कि वह अग्रेजी शासन म सहयोगी व्यक्तिया को सामूहिक रूप म धिक्कारती थी।[3] न्यायालयों मे अब इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि वह जनता की भावनाओ की उपेक्षा कर अत्याचार तथा अन्याय का पोषण करत। असहयोग आन्दोलन म सरकारी उपाधिया नौकरियों का त्याग कर विदेशी शासन से असहयोग किया गया था किन्तु सविनय अवज्ञा आन्दोलन म राष्ट्रीय एकता को स्वतत्रता का मूल मत्र माना गया था। कमभूमि में सुखदा अछूत आन्दोलन का नतृत्व करती है क्योकि अछूतों को पृथक मतदान का अधिकार देकर विदेशी शासक राष्ट्रीय अनेकता को प्रोत्साहन दे रहे थ।

१ प्रमचन्द रगभूमि पृ० २६२

२ सरकार के वे पुराने सेवक जिनमें से कितनों ही ने अपने जीवन का अधिकांश प्रजा के दमन करने ही मे व्यतीत किया था यों अकडत चले जाय अपना सवस्व यहां तक कि प्राणो को भी समर्पित करने को तयार हो जाय। —प्रमचन्द रगभूमि पृ ३३६

३ प्रेमचन्द कमभूमि पृ० ५६

४ वही पृ० ६४

सुखदा ने आन्दोलन में नया जीवन डाल दिया था लोगों ने पुलिस की गोलियों और बौछारों को सहर्ष सहन किया। धर्म और हक की लड़ाई में आत्मबल तथा बलिदान की भावना के सम्मुख पुलिस का पराजित हो लौट जाना गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन का विजय थी।[1] इस आन्दोलन में विश्वविद्यालय के अध्यापकों तथा विद्यार्थी वर्ग ने विशेष रूप से भाग लिया था। अछूत आन्दोलन के पश्चात् सीधे सरकार पर आक्रमण किया गया है। गांधी जी ने इस आन्दोलन को प्रारम्भ करने के पूर्व शासक वर्ग को पत्र व्यवहार द्वारा न्याय व सत्य के मार्ग पर लाना चाहा था लेकिन उनके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो गए थे। इस उपन्यास में सुखदा के शब्दों में इसका आभास लेखक ने दे दिया है।[2] सुखदा ने निम्न वर्ग की संस्थाओं तथा पंचायतों द्वारा हड़ताल करा कर सरकारी नीति का विरोध करवाना चाहा लेकिन इसमें अधिक सफलता न मिली। जन-जीवन में राष्ट्रीय चेतना का विकास करने के कारण उसे कारावास का दंड मिलता है। सत्याग्रही वीर पुरुषों और नारियों को जनता के अधिकारी वर्ग से जो सम्मान मिलता था वह राष्ट्रीय चेतना के विकास का मूल रूप था।[3] सुखदा के जेल जाने के पश्चात् रेणुका देवी लाला समरकान्त डा० शान्ति कुमार सभी राष्ट्रीय संग्राम का नेतृत्व कर बंदी बने। अन्त में नैना आन्दोलन के क्षेत्र में उतरती है। वह हड़ताल की अपेक्षा जुलूस का नेतृत्व कर म्युनिसिपल बोर्ड के दफ्तर की ओर चलती है। प्रेमचन्द जी ने इस दृश्य का चित्रण अत्यधिक सशक्त भावात्मक तथा अलंकारिक भाषा और शब्दों में किया है —

'नैना ने झण्डा उठा लिया और म्युनिसिपैलिटी के दफ्तर की ओर चली। उसके पीछे बीस पचीस हजार आदमियों का एक सागर उमड़ता हुआ चला और यह दल मेलों की भीड़ की तरह अश्रृंखल नहीं फौज की कतारों की तरह श्रृंखलाबद्ध था। आठ आठ आदमियों की असंख्य पंक्तियां गंभीर भाव से एक विचार एक उद्देश्य एक धारणा की आन्तरिक शक्ति का अनुभव करती हुई चली जा रही थीं और उनका तांता न टूटता था मानो भूगर्भ से निकलती चली आती हों। सड़क के दोनों ओर छतों पर दर्शकों की भीड़ लगी हुई थी। सभी चकित थे। उफफोह! कितने आदमी हैं। अभी चले ही आ रहे हैं।

जुलूस में नैना के शौर्य ने अधिक उत्साह भर दिया था। उसके पति ने उसे गोली मार दी और सब जुलूस और भी शांति के साथ गंभीर रूप में संगठित होकर आगे बढ़ा। बलिदान द्वारा इस आन्दोलन को अजेय एवं अभेद्य होने की शक्ति मिली। यह जुलूस मीलों लम्बी कतार में था। म्युनिसिपल बोर्ड भी इस आत्म बलिदान से पराजित हो गया। उसने मजदूरों को मकानों के लिए जमीन दे दी। इस आन्दोलन

१ प्रेमचन्द कर्मभूमि पृ० २१०
२ वही पृ० २५५
३ वही पृ० २६६
४ वही पृ० ३७३

ने विदेशी शासन की जड़ें हिला दी थी। असहयोग आन्दोलन की अपेक्षा सविनय अवज्ञा आन्दोलन अधिक काल तक चला था और अधिक सगठित था। असहयोग आन्दोलन म सरकार की कर सबधी नीति का विरोध भी नही किया गया था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन म किसानो की जागृति के फलस्वरूप अन्याय पर आधारित भूमि कर का विरोध किया गया था। प्रमचद जी ने किसानो द्वारा करबन्दी आन्दोलन का भी विशद विवरण दिया है। अमरनाथ के नेतृत्व म हरिद्वार के पास के गाव में यह आन्दोलन सचालित हुआ था। ग्रामीण जनता भूमिपतियो की निरकुश एवं स्वच्छन्द नीति से अत्यधिक त्रस्त थी। उसका विक्षोभ विद्रोह का रूप लेना चाहता था कि अमरकान्त ने स्वय बदी होकर अहिंसात्मक सत्याग्रह का उदाहरण रख जनता को पथ भ्रष्ट होने से रोका। आन्दोलन के तीन भिन्न रूपो के वर्णन के साथ प्रमचन्द जी ने जनता की यथार्थ मन स्थिति का भी परिचय दिया है। असहयोग आन्दोलन के समय अहिंसा आत्मबल सयम की जनता म बहुत कमी थी। अत गाधी जी ने देश को हिंसात्मक क्रांति से बचाने के लिए आन्दोलन स्थगित कर दिया था। उन्हें इसम सफलता नही मिली थी। विदेशी शासको ने इस सुअवसर का पूरा लाभ उठाया था। रगभूमि उपन्यास म सूरदास तथा विनयसिंह के बलिदान के उपरान्त भी जान सेवक रूपी विदेशी पूजीवादी नीति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। उन्हें अपने स्वार्थ साधन के लिए अनुकूल वातावरण मिल जाता है। सूरदास की जमीन पर फक्टरी बनना वस्तुत राष्ट्रीय सग्राम की असफलता का सूचक है। कर्मभूमि उपन्यास द्वितीय आन्दोलन की सफलता का तथा भारतीय जीवन के प्रत्येक वर्ग विशेष रूप से निम्न वर्ग की जागृति का सूचक है। रगभूमि म उच्च एव मध्य वर्ग द्वारा राष्ट्रीय सग्राम का सचालन किया गया है। सूरदास निम्न वर्ग का है किन्तु वह प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय सग्राम का सचालन नही करता। विनयसिंह आदि राष्ट्रीय स्वय सेवको ने उसके व्यक्तिगत सघर्ष को राष्ट्रीय रूप दे दिया था। कर्मभूमि म उच्च वर्ग मध्य वर्ग निम्न वर्ग किसान मजदूर अछूत सभी आन्दोलन म प्रत्यक्ष रूप से भाग लेते हैं। इस आन्दोलन म पग पग पर भारतीयो को सफलता मिलती है।

द्वितीय आन्दोलन काल म भी जनता की उत्तेजना म हिंसात्मकता का पूर्णतया निराकरण नही हो पाया था। वह अहिंसात्मक साधन से भ्रष्ट हो ईट पत्थर भी फेंकती है लेकिन प्राय अमरनाथ सुखदा या शान्तिकुमार के उचित निर्देशन के कारण अधिक नियत्रित एव सयत रहती है। प्रमचन्द जी के राजनीतिक उपन्यास रगभूमि से कर्मभूमि म विकसित राष्ट्रवाद प्रत्यक्ष दृष्टिगत होता है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने 'पुरुष और नारी'¹ उपन्यास म पुरुष और नारी के हृदय म उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व के मार्मिक एव मनोवैज्ञानिक चित्रण की पृष्ठभूमि म

---

१ यद्यपि इस उपन्यास का प्रकाशन काल १६३६ ई० है लेकिन रचना काल शोध विषय के अन्तर्गत आ जाता है। महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उपन्यास होने के कारण इसे लेना असगत न होगा।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम का विशद चित्र खींचा है। उन्होंने स्वयं लिखा है—'आज देश की आजादी की जो जंग छिड़ी है उसी की पट भूमि पर मैंने जीवन की एक बुनियादी जंग का रखा है।'[1] गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलनों की अभिव्यक्ति के लिए भिन्न काल में रचित प्रेमचन्द जी के दो उपन्यास मिलते हैं लेकिन राधिकारमण प्रसादसिंह ने आन्दोलनों के उपरान्त उपन्यास लिखा था अतः उन्होंने एक ही उपन्यास में ई० सन् १९२० से १९३६ तक के काल की राजनीतिक परिस्थितियों को समावृत कर लिया है। सन् १९२० में गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था। उपन्यास के प्रारम्भ में ही असहयोग आन्दोलन के समय की परिस्थितियों का वर्णन मिलता है—'१९२ साल। जलियांवाला बाग की आग अभी बुझी नहीं है। महात्मा गांधी ने राष्ट्र के अन्तर में नवीन चेतना का जादू फूंका है। भारत पहली बार चौंक कर सुनता है—ब्रिटिश सरकार की मिलजाई के प्रयास के बदले अपनी आध्यात्मिक शक्ति की तलाश ही उसकी जिन्दगी की सांस है।'[2] असहयोग आन्दोलन के पूर्व राष्ट्रीय चेतना को क्रियात्मक रूप देकर जन संगठन का प्रयास नहीं हुआ था। लेखक ने इसका उल्लेख भी किया है कि 'आराम कुर्सी की फुरसत वाली सीढ़ी सर पर नौकरशाही की सलीमशाही को काफी हो चुकी थी' अतः अब आन्दोलन का विस्तृत एवं नवीन रूप सम्मुख आया। इस आन्दोलन का विद्यार्थी वर्ग पर विशेष प्रभाव पड़ा था—'आज उसके सामने न दीन है न दुनिया न बन्धन है न माया न कला है न कविता। बस जो कुछ है—वह देश और देश का सन्देश।'[3] उपन्यास का नायक अजीत एम० ए० का विद्यार्थी लेकिन राष्ट्र की पुकार पर परिवार की इच्छा के विरुद्ध देश के लिए दिल पर सिल रखकर सत्याग्रह रूपी मागत के जौहर व्रत में खादी रूपी केसरिया बाना पहन कर सम्मिलित हो जाता है। 'अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के व्रती वीर जान हथेली पर रखकर तलवार की धार पर चल थे।'[4] 'महात्मा जी ने आजादी का बीज इस मिट्टी में रोप दिया है अब जवानी का लहू उसे सींच सांस कर पनपा कर ही दम लेगा।'[5] ऐसा उस समय देशवासियों का दृढ़ विश्वास था। लेखक ने असहयोग आन्दोलन के समय निकलने वाली प्रभात-फेरियों राष्ट्रीय गीतों आदि की झलक दिखाकर तत्कालीन राष्ट्रीय वातावरण को मुखर किया है।

इस उपन्यास के अजित जैसे कितने ही युवकों ने असहयोग आन्दोलन में जोश

---

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी भूमिका पृ० ३
२ वही पृ० ४ ५
३ वही पृ० ५
४ वही, पृ० ४
५ वही पृ० २१
६ वही, पृ० २४

में रस की फेनिल बोतल को त्याग कर राष्ट्रीयता को अपनाया था। इसके पश्चात् लेखक ने दो साल बाद की कथा का मोड़ लिया है। चौरी चौरा की घटना ने गांधी जी को असहयोग स्थगित करने के लिए प्रेरित किया। देश-जीवन में पुनः शिथिलता आ गई लेकिन मर मिटने की लहर मिटी नहीं थी।[1] इस आन्दोलन ने भारत को जगा दिया था। सार्वजनिक जीवन की नैतिक मर्यादा ऊँची हो गई थी और गांधी टोपी की कल्पनावाजी लोगों के दिल में लौ लगा चुकी थी।[2] कुछ वर्ष तक गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम की पूर्ति में अजित लगा रहा। पुनः सन् १९३० में देश की हवा फिर बदली। कांग्रेस का रुख गरम हुआ और साबरमती के गत में तूफान उठा। 'सरकार की भृकुटि पर फिर बल आया। कायरों ने बिल ढूँढा वीरों ने ताल ठोका'[3]। लेखक ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन की राजनीतिक परिस्थिति का विस्तृत चित्र खींचा है। गांधी इर्विन पैक्ट के टाके टूटने समझौते के लिए गांधी जी का लन्दन जाकर गोलमेज-सभा से निष्फल लौटने नजरबन्द होने का भी उल्लेख उपन्यास में मिल जाता है।

गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन काल में दाण्डी मार्च कर कानून भंग किया था। इसके उल्लेख के साथ राधिकारमण प्रसाद सिंह ने पुरुष और नारी उपन्यास में सत्याग्रह आन्दोलन की प्रक्रिया का भी वर्णन किया है— आज आश्रम में काफी हलचल है। जेल जाने वालों पर कंचन बरस रहा है। इस बे हथियार बेवर की लड़ाई में पतर देख कर गांव वाले दंग हैं। जन के जत्थे के इर्द गिर्द हजारों की भीड़ जमी है। अजब माजरा है। जेल जाना एक जश्न है। किसी के चेहरे पर एक शिकन तक नहीं। सर पर चन्दन का टीका गले में गजरा, हाथ में तिरंगा झण्डा और झण्डा ऊंचा रहे हमारा।[4] पिकेटिंग और गिरफ्तारी के लिए जुलूस जाते थे। इन जुलूसों में राष्ट्रीय गीत गाते थे।

बिरादराने नौजवां बढ़ चलो बढ़ चलो।
झुके न हिन्द का निशां बढ़े चलो बढ़ चलो॥

अब दुकानों के सम्मुख विलायती कपड़ा एक तमाशा बन गया था। नारी ने भी ब्रिटिश द्वार से पजा लेने के लिए सिपाहियाना ठाठ बनाया था।[5] इस आन्दोलन को नारी ने जितना कारावास दण्ड सहन कर सहयोग दिया था वह इसके पूर्व नहीं था। इस उपन्यास में सुधा का त्याग प्रशंसनीय है। जेल तो मानों सनम का देश

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ ६४
२ वही
३ वही पृ० ८७
४ वही पृ० १३२
५ वही पृ १३७
६ वही पृ० १४१

हो गया था।[1] सत्याग्रह का जोर उठता और गिरता रहा कितने ही घर वीरान हुए और कितने ही मुकुल असमय मुरझा गये।[2] अन्त में यह सत्याग्रह आन्दोलन भी समाप्त हुआ।

राधिकारमण प्रसाद सिंह ने आन्दोलन के पश्चात की राजनीतिक परिस्थितियो का भी उल्लेख किया है। सन् १९३४ में प्रान्तीय स्वायत्त शासन के अधिकार का नियम बना। कांग्रेस में चुनाव के प्रश्न पर दो दल हो गए एक समर्थक और दूसरा विरोधी। लेखक ने अजीत के माध्यम से अपने विचार अभिव्यक्त किए हैं। वे कांग्रेस द्वारा तख्तनशीनी को राष्ट्रीय त्याग और साधन में बाधक मानते हैं। मैं तो समझता हूं मसनद की हवा लगी और कांग्रेस की त्याग का तमाम साधना हवा हुई। आपस में वह छीना झपटी वह मैं मैं तू तू होगी कि तुम देख लेना।[3] इसके साथ ही लेखक का यह भी मन्तव्य है कि कांग्रेस का आश्रम अब तपोभूमि न रहा था। यद्यपि लेखक ने राष्ट्रवाद की दृष्टि से उपन्यास का अन्त अति निराशाजनक दिखाया है लेकिन सत्याग्रह आन्दोलन एवं तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के विशद चित्रण से अन्त में यह प्रत्यक्ष ध्वनित है कि राष्ट्र की रग रग में चेतना की लहर दौड़ चुकी थी नगर ग्राम पुरुष-नारी सभी समान रूप से इसके भागी थे। उपन्यासकार ने इस उपन्यास की रचना में राजनीतिक परिस्थितियां राष्ट्रीय आन्दोलनों और देशभक्ति को पट भूमि के रूप में अंकित किया है उनका प्रमुख लक्ष्य तो राष्ट्र की तत्कालीन परिस्थितियों में पुरुष और नारी के हृदय में उठने वाले अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करना ही है। उपन्यास-कला के संयोग से और मानव मनोवृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण में राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक सजीव हो गया। पुरुष और नारी की विशेष गुत्थियों पर जिस अनोखे ढंग से लेखक ने प्रकाश डाला है उससे भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन शुष्क एवं जड़ इतिहास न रहकर सरस एवं कलात्मक हो गया है। देशभक्ति और नारी का प्रेम चिरकाल से पुरुष के अन्तर्द्वन्द्व का कारण रहे हैं और चिरकाल तक इनके बीच संघर्ष चलेगा इस तथ्य का उद्घाटन करते हुए राधिकारमण प्रसाद जी ने इस उपन्यास के रूप में राष्ट्रीय आन्दोलन को शाश्वत साहित्य का रूप दिया है।

कहानी में सत्याग्रह आन्दोलनों के विशद रूप का चित्रण सम्भव न होने के कारण उसके विभिन्न पक्षों का सफल एवं पूर्ण चित्रण हुआ है। असहयोग आन्दोलन तथा सविनय अवज्ञा आन्दोलन से प्रेरित होकर कहानीकारों ने पारिवारिक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के बीच आन्दोलन का कार्यक्रम, स्थूल चित्र उनका प्रभाव

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० १५३
२ वही, पृ० १५१
३ वही पृ० १८५
४ वही, पृ० १८५

तथा उनके कारण उत्पन्न संघर्ष का चित्र खींचा है। असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भ के साथ ही सरकारी नौकरियों न्यायालयों शिक्षालयों से असहयोग प्रारम्भ हो गया था। प्रेमचन्द जी की लाल फीता या मजिस्ट्रेट का इस्तीफा कहानी में डिप्टी मजिस्ट्रेट हरविलास सरकारी नौकरी छोड़ देते हैं।[1] हरविलास ने अपने त्यागपत्र में लिखा था—मेरे विचार में वर्तमान शासन सत्पथ से सम्पूर्णतः विचलित हो गया है। यह आशा प्रजा के जन्मसिद्ध स्वत्वों को छीनना और उनके राष्ट्रीय भावों का वध करना चाहती है।[2] स्वयं प्रेमचन्द जी ने भी असहयोग आन्दोलन में सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। सुदर्शन जी की अंधेरे में कहानी में लाला भगतराम की सरकारी नौकरी दफ्तर टूट जाने के बाद समाप्त हो जाती है और नौकरी के अभाव में वे कष्टकर जीवन व्यतीत करते हैं। इसी समय देश में असहयोग की पुकार उठी और वे दिन रात देश सेवा में लग गये। अब उन्हें सच्चा प्रकाश मिल गया था। अतः दारिद्र्य के कष्ट सहन करने पर भी वे सरकारी नौकरी ठुकरा देते हैं।[3] सुभद्राकुमारी चौहान की तांगेवाला कहानी में तांगेवाले ने सरकारी नौकरी न कर तांगा चलाने का स्वतन्त्र व्यवसाय इसीलिये किया था कि उसमें किसी की गुलामी न थी। इस कहानी में लेखिका ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है कि सत्याग्रह आन्दोलनों ने साधारण जनता में जागृति कर दी थी। तांगेवाला दो बार सत्याग्रह आन्दोलन में जेल हो आया था।[4]

जुलूस निकालना नारे लगाना राष्ट्रीय गीत गाना धरना देना सभाएं करना तथा सरकार की कुटिल नीति का सभाओं में उद्घाटन करना जेल जाना अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के प्रमुख साधनों का स्थूल वर्णन प्रेमचन्द की जुलूस' 'जेल' समरयात्रा कहानियों में सुदर्शन की कैदी हार-जीत अन्तिम साधन कहानियों में तथा सुभद्राकुमारी चौहान की गौरी कहानी में मिलता है। प्रेमचन्द की जुलूस कहानी में सामान्य जनता द्वारा कांग्रेस के राष्ट्रीय कार्यक्रम में भाग लेने का वर्णन है। राष्ट्रीय स्वयं सेवकों का दल अपने स्वत्वाधिकारों की प्राप्ति और विदेशी दासता के प्रतिकार के लिए जुलूस में नारे लगाता चलता था। पुलिस के अत्याचार लाठियों के निर्दय प्रहार उनके घोड़ों के टापों की चोट सहन करता हुआ जुलूस अविचल भाव से सुसंगठित रूप में चलता रहता था। 'यह पेट के भक्तों किराये के टट्टुओं का दल न था। यह स्वाधीनता के सच्चे स्वयं सेवकों का आजादी के दीवानों का संगठित दल था—अपनी जिम्मेदारियों को खूब समझता था।[5] कांग्रेस

---

१ सरकारी प्रजा हित नीति पर उन्हें लेशमात्र भी विश्वास न रहा था।
—प्रेमचन्द प्रेम चतुर्थी पृ ७२ सातवीं बार

२ प्रेमचन्द प्रेम चतुर्थी पृ० ७४

३ सुदर्शन सुप्रभात पृ० ७८

४ सुभद्राकुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० ३२

५ प्रेमचन्द मानसरोवर पृ ५५

को जनता की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई थी यद्यपि वह गाधी जी के सत्य एव अहिंसा की पूरी सहानुभूति प्राप्त हुई थी यद्यपि वह गाधी जी के सत्य एव अहिंसा की नैतिकता मे तप कर सहनशक्ति का पूण पाठ नही पढ पाई थी। प्रमचन्द्र जी ने इस कहानी म उन्मत्त जनता को हिंसा-काय से रोकने के लिए सत्याग्रही वीरो द्वारा पीछे लौटना दिखाया है। अत सत्याग्रह आन्दोलन म अहिंसात्मकता का पूण रक्षा की गई थी। जेल कहानी में प्रमचन्द जी ने सत्याग्रह आन्दोलन का जीवित चित्र अकित किया है। देश-जीवन म राष्ट्रीय भावना तपस्या बन गई थी। भारत की निहत्थी और सशक्त जनता ने भी अपने अन्तर म अपार शक्ति का अनुभव किया था और सामूहिक रूप से आन्दोलन म भाग लिया था।[1] सुदशन की कदी कहानी म धनाढ्य परिवार के अब्दुल वहीद को असहयोग आन्दोलन के समय ओजस्विनी वक्तृता देने के कारण कारावास का दण्ड मिलता है। और वे विवाह की पहली रात्रि मे वतन की खिदमत के लिए दण्ड स्वीकार करते हैं। हार जीत[2] तथा अतिम साधन कहानियो में सुदशन जी ने पारिवारिक जीवन मे सत्याग्रह आन्दोलन की झाकी दिखाई है। समर यात्रा कहानी मे प्रेमचन्द ने ग्रामीण जीवन म आन्दोलन तथा गाधी जी के प्रभाव का दिखाया है। गाधी जी द्वारा सचालित आन्दोलन नगर तक सीमित नही थे उनम ग्रामीण जनता ने भी उत्साहपूवक सहयोग दिया था। गाँव वाले स्वराज्य के दीवाने, गाधी टोपी वालो का हृदय से स्वागत करते थे। राष्ट्रीय वीरो को देख कर नौहारी का बुढापा भाग गया था।[4] उनमें आत्मसम्मान की भावना जाग्रत हो गई थी। जेल और फासी गाँव वालो के लिए भी गौरव की वस्तु बन गये थे।[5] असहयोग आन्दोलन के समय गाव के हिन्दू व मुसलमान दोनो ने समर यात्रा में भाग लिया था। उस समय ऐसा उत्साह ऐसी उमग गाववालो म छा रही थी मानो स्वराज्य ही मिल गया हो।

निराला जी की चतुरी चमार कहानी मे भी गाँव वालो म आन्दोलन के प्रभाव को दिखाया है। गावो म तिरगा झण्डा फहराया जाता था वहा भी काग्रेस का जोर था। इस कहानी का रचनाकाल सन् १६२३ ई० है जब असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया था। इसम आन्दोलन तथा उसके स्थगन की प्रतिक्रिया का वणन मिलता है—इन्ही दिनो देश म आन्दोलन जोरो का चला—यही जो चतुरी आन्यियो के कारण फिस्स हो गया है। होटल म रहकर देहात से आने वाले शहरी

१ वही पृ० १४
२ सुदशन सुप्रभात प ८
३ वही प० ८३
४ वही प० ६३
५ प्रमचन्द मानसरोवर पृ ७५
६ वही पृ० ८०, ८१

युवक मित्रो मे सुना करता या गढा कोला म भी आन्दोलन जोरों पर है—छ-सात सौ तक का जोत किसान लोग इस्तीफा देकर छोड चुके हैं—वह जमीन अभी तक नही उठी—किसान रोज इकट्ठे होकर झडा गीत गाया करते हैं। साल भर बाद जब आन्दोलन म प्रतिक्रिया हुई जमीदारों ने दावा करना और रियाया को बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया तब गाव के नेता मेरे पास मश्वरा के लिए आए बोले—गाव म चल कर लिखो। तुम रहोगे तो मार न पडेगी लोगो की हिम्मत रहेगी अब सख्ती हो रही है।[1]

गाधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन की सबसे बडी विशेषता थी इसम नारी का प्रमुख रूप म भाग लेना। रगभूमि मे सोफिया कर्मभूमि म सुखदा रेणुका देवी नैना उपन्यास साहित्य द्वारा प्रेमचन्द को अमर नारी देन है। इसके साथ ही उनकी कहानियो म भी नारी का विशेष स्थान है। जेल कहानी मे मृदुला अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर हसते हुए बिना किसी प्रतिवाद या अपने पक्ष की सफाई के जेल चली जाती है।[2] पत्नी से पति कहानी म नारी जागृति तथा उसम बढ़ते हुए साहस का वर्णन है गोदावरी राष्ट्रहित के लिए राष्ट्र विरोधी पति का तिरस्कार करती है।[3] शराब की दूकान म मिसेज सक्सेना शराब की दुकान पर धरना देती हैं। जुलूस कहानी मे मिट्ठनबाई अपने दरोगा पति द्वारा सत्याग्रहियो पर किये गये अत्याचार स अत्यन्त क्षुब्ध हो जाती है। वह सरकार द्वारा पति की पदोन्नति को दगाह की कीमत समझती है।[4] सुदर्शन जी की अतिम साधन कहानी म पति की इच्छा के विरुद्ध स्वदेशी का व्रत न पूरा करन के कारण सुशीला प्राण दे देती है[5] हार जीत कहानी म सुदर्शन जी ने आन्दोलन से प्रभावित होकर उसम सक्रिय रूप स भाग लेन वाले सेठ साहब के पुत्र तथा पत्नी स उसका विरोध करवाया है।[6] सीधे साद चित्र म सुभद्रा कुमारी चौहान की गौरी न विलासी मायब तहसीलदार की अपेक्षा दो बच्चो के पिता काग्रेसी कार्यकर्ता सीतारामजी को विवाह का पात्र बनाया है। सत्याग्रह आन्दोलन में सीताराम जी की कारावास यात्रा म वह उनके बच्चो की देख रेख कर त्याग और आदर्श का उदाहरण रखती है।[8]

आन्दोलन म भाग लने के लिए पुरुष की अपेक्षा नारी ने अधिक त्याग तथा

१ विनोद शकर व्यास सम्पादक मधुकरी (दूसरा खड) पृ १५
२ प्रेमचन्द मानसरोवर पृ० ६
३ वही पृ० १६
४ वही पृ० ५१
५ वही पृ ५८
६ सुदर्शन सुप्रभात पृ० १०१
७ वही पृ ८६
८ सुभद्रा कुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० १३

संघर्ष किया था। प्रेमचन्द सुदर्शन सुभद्राकुमारी चौहान आदि कहानीकारों की रचनाओं से यह स्पष्ट है कि उसे सबसे अधिक विरोध अपने परिवार वालों का करना पड़ा था। कुमारी कन्याओं को माता पिता का जैसे रंगभूमि उपन्यास की सोफी सुभद्राकुमारी चौहान की गौरी विवाहित स्त्रियों को अपने पति तथा ससुराल वालों का जैसे कर्मभूमि उपन्यास की सुखदा मन्ना राधिका रमण प्रसाद सिंह के पुरुष और नारी उपन्यास की सुधा और कहानी कहानियों में पत्नी से पति में गोदावरी तथा जुलूस में मिट्ठनबाई अपने पति का विरोध करती हैं। नारी ने राष्ट्रीय कार्यक्रम से प्रभावित होकर अपने व्यक्ति सर्वथा के बलिदान का अपूर्व आदर्श रखा था। ग्राम की नारी भी सक्रिय सहयोग देने में पीछे न रही थी। प्रेमचन्द की समर यात्रा कहानी में बूढ़ी नोहरी पुलिस और दरोगा के मुख पर उनकी कुटिलता का वर्णन करती है तथा गांव वालों को अपनी ओजस्विनी वक्तता से राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए अनुप्रेरित करता है।

इसके अतिरिक्त बच्चों में भी राष्ट्रीय भावना लहरा रही थी।[1] जुलूस कहानी में प्रेमचन्द जी ने कालेज-स्कूल के बच्चों स्त्रियां बुढ़ियां मजदूरों द्वारा आन्दोलन में भाग लेने का विशेष रूप से वर्णन किया है।

रामवृक्ष बेनीपुरी की चिता के फूल नामक कहानी संग्रह में १६३ ३२ के सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा तत्कालीन राजनीतिक स्थिति का विशद एवं स्पष्ट चित्र मिलता है।[3] चिता के फूल कहानी में गांधी जी द्वारा राउण्ड टेबुल कान्फ्रेंस से असफल होकर लौटने, सीमाप्रान्त में लाल कमीज दल के संगठन राष्ट्रीय नेताओं गांधी जी ज्वाहरलाल नेहरू आदि की गिरफ्तारी अब्दुल गफ्फारखां के सपरिवार निर्वासन गांधी जी के बबई लौटने पर कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक नये वाइसराय से गांधी जी की खता किताबत नये वाइसराय द्वारा आंदोलन दबाने के प्रयत्न का उल्लेख मिलता है। यह सब समाचार ग्रामवासियों को भी विस्तार में मिलने लगे थे। देश की निरन्तर बढ़ती हुई गतिविधि राष्ट्रीय नेताओं के प्रयत्न ने उनमें एक अपूर्व उत्साह भर दिया था। सरकार द्वारा कांग्रेस कमेटियां के गैरकानूनी करार दिये जाने पर ग्राम का बच्चा बच्चा विक्षुब्ध हो गया था और राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणोत्सर्ग की बाजी लगा बैठा था।[4] कुछ पुलिस अफसरों ने सारे कानून अपने हाथ में ले लिए थे जिससे राष्ट्रीय नेता अपने पथ से विचलित नहीं हुए। इस द्वितीय आन्दोलन की सबसे बड़ी विशेषता थी कि गैरकानूनी करार दिये जाने पर भी कांग्रेस

१ प्रेमचन्द मानसरोवर पृ० ८

२ वही पृ० ६२

३ इन कहानियों का संग्रह बाद में किया गया था किन्तु रचना १६३० ३२ के काल में हुई थी। —बेनीपुरी परिचय बेनीपुरी ग्रन्थावली भाग १

४ बेनीपुरी ग्रन्थावली भाग १ चिता के फूल पृ० २

५ बेनीपुरी ग्रन्थावली चिता के फूल, भाग १ पृ ४

के कामो की शृखला पूरी तरह अक्षुण्ण चल रही थी यहा तक कि स्वराजी डाक का बाजाब्ता सगठन हो गया था राष्ट्रीय अखबार बन्द होने पर भी काग्रेस की बुलेटिनें नियमित रूप से प्रकाशित होती थी। काग्रेस के कार्यकर्ताओ मे फौजी प्रवृत्ति बढ गई थी। बेनीपुरी जी ने लिखा है— वे प्रकट और गुप्त लडाइया की कलाएँ धीरे धीरे जानने लगे है। नये वाइसराय ने कहा था वह एक महीने म आन्दोलन कुचल देगा उसकी शेखी धूल म मिल गई—रामू के आनन्द का क्या कहना?[1] रामू जैसे छोटे छोटे ग्रामीण बालको ने राष्ट्र के लिए प्राण निछावर कर दिए थे। उस दिन झोपडी रोई कहानी मे राधो जैसे निधन किंतु मेधावी विद्यार्थियों द्वारा अध्ययन छोड कर राष्ट्रीय आन्दोलन म भाग लेने धन तथा परिवार के त्याग का उत्कृष्ट उदाहरण रखा है।

प्रथम आन्दोलन की अपेक्षा द्वितीय सत्याग्रह आन्दोलन के समय स्थिति बहुत बदल चकी थी। बडे घरानों के युवको ने भी प्रतिष्ठा पाने की महत्वाकाक्षा से राष्ट्रीयता को अपना लिया था। अब राष्ट्रीयता जेल जाना देशभक्ति का प्रदशन सम्मान की वस्तु थ। जेलो की स्थिति म भी बहुत कुछ सुधार आ गया था। ए० क्लास के कदियो को तो सब प्रकार की सुविधाए मिलती थी। यह राष्ट्रवाद के विकसित रूप का ही परिणाम था। गाधी जी का एसा प्रताप था कि उन्होंने देशभक्ति को खादी अहिंसा सत्याग्रह द्वारा साधारण जनता के लिए भी अति सहज बना दिया था।

इस राष्ट्रीय आन्दोलन के काल म राष्ट्रीय कायकर्ताओ की विचारधारा म परिवतन होने लगा था। समाजवादी विचारधारा अधिक प्रबल होने लगी थी इसका सकेत भी रामवृक्ष बेनीपुरी की वह चोर था कहानी म मिल जाता है।[४]

सत्याग्रह आन्दोलना का मूलाधार बलिदान की भावना थी। अत इसका विस्तृत विवेचन भी अपेक्षित है।

बलिदान की भावना

गांधीजी ने अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन द्वारा देशवासियोंके सम्मुख आत्म त्याग का प्राचीन भारतीय आदर्श रखा। वे तलवार की अपेक्षा कष्ट सहन का अपूव सिद्धान्त रखकर विदेशी शासका का हृदय परिवतन कर स्वराज्य लेना उचित सम

---

१ बेनीपुरी ग्रंथावली चिता के फूल भाग १ पृ० ६

२ वही पृ० १०१

३ वही पृ० १०२

४ वही पृ० ४१

५ बेनीपुरी ग्रन्थावली भाग १ : चिता के फूल : पृ० ४१

करते थे।[1] अधिक से अधिक व्यक्तियों को आन्दोलन में सम्मिलित कर मनोबल द्वारा विदेशी शासकों से असहयोग कर मुक्ति प्राप्ति का साधन अधिक मनोवैज्ञानिक तथा जनकल्याणकारी था। हिन्दी-साहित्य में बलिदान की भावना का सुन्दर एवं प्रशस्त वर्णन मिलता है।

काव्य

रामचरित उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, नाथूराम शंकर शर्मा, त्रिशूल, सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी प्रभृत राष्ट्रीय कवियों ने देशवासियों को प्राणोत्सर्ग का सन्देश दिया था। प० रामचरित उपाध्याय देश पर प्राण न्योछावर करने के लिये देशवासियों को प्रेरित करते हुए कहते हैं—

देश प्रेम रस छके हुए हम अग्नि कुण्ड में खेलेंगे
पराधीन हो किन्तु नहीं अब त्रिविध वेदना झेलेंगे।[2]

भारत की सत्याग्रही जनता के लिए देश निकाला, स्वर्गवास, फाँसी, मुक्ति तथा नजरबन्दी की सजा काशी जी की पुण्य एवं सुखदायिनी यात्रा बन गई थी।[3] उपाध्यायजी की भाँति त्रिशूल ने भी आत्मोत्सर्ग का उच्च आदर्श प्रस्तुत किया था। उनके अनुसार सत्याग्रही का यह मुख्यतम धर्म था कि वह विदेशी शासकों के क्रूर अत्याचारों को मौन रूप से हिंसा तथा घृणा की भावना परित्याग कर सहे।[4]

त्रिशूल तथा पण्डित रामचरित उपाध्याय की भाँति शंकर कवि ने भी देशवासियों को असहयोग आन्दोलन के पुण्य यज्ञ में आत्माहुति देने का महान संदेश दिया था—

देशभक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।
लोकमान्य गुरु गांधी जी का प्रेम मन्त्र पढ़ना होगा,
साथ सत्य धारी प्रभुओं के अब आगे बढ़ना होगा॥[5]

---

१ आओ बढ़ो सपूतगण स्वतन्त्रता हुंकार सुनो
अपने ही हाथों अब अपना करो करो उद्धार सुनो।
स्वतन्त्रता देवी के पद पर यदि निज शीश चढ़ाओगे,
पाओगे सुख सुयश लोक में अन्त परमपद पाओगे।
—महात्मा गांधी यंग इण्डिया प० ६

२ रामचरित उपाध्याय राष्ट्रभारती प्रथम संस्करण पृ० ३०

३ वही पृ० २६

४ त्रिशूल राष्ट्रीय मन्त्र प्रथमावृत्ति पृ० ८

५ सम्पादक हरिशंकर शर्मा शंकर सर्वस्व पृ० २४८

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत माता के कल्याण के लिए भारतवासियों को आत्म त्याग तथा बलिदान का पाठ पढ़ाया था—

मातृभूमि को वेदी मान
करो धर्म-सगत बलिदान।[1]

महात्मा गाधी न देशवासियों को बलिदान का ऐसा महामन्त्र दिया था कि जन जीवन म पराधीनता के प्रति विद्रोह कर जेल जाने एव अनेक अन्य कष्ट सहन करने की क्षमता आ गई थी। इस बलिदान की उत्कृष्ट भावना का ही यह परिणाम था कि जेलों मे सत्याग्रहियो की ऐसी भीड थी कि उनम जगह नही रह गई थी। स्वतन्त्रता के साधको ने प्राणो की बाजी लगा दी थी। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य म बलिदान की भावना अधिक पुष्ट रूप म अभिव्यक्ति हुई है। राष्ट्रीय झडे पर जीवन भेंट कर दना गौरव की बात समझी जाती थी।[2]

सियारामशरण गुप्त ने अमर शहीद गरोशशकर विद्यार्थी द्वारा राष्ट्र की साम्प्रदायिक एकता के प्रयत्न म किये जाने वाले अपूर्व बलिदान को राष्ट्रीय कथाकाव्य का ही रूप दे दिया था। आत्मोत्सग गरोशशकर विद्यार्थी का राष्ट्रहित अमर पद प्राप्त करने का महान राष्ट्रीय काव्य है।

इतिहास से वीर चरित्रो को लेकर काव्य रचना हुई जिन्होने युग युग स चल आ रहे बलिदान का उच्च आदश स्थापित किया। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान न झासी की रानी कविता द्वारा सन् १८५७ ई के स्वातन्त्र्य सग्राम म देश की स्वतन्त्रता क लिए वीरगति प्राप्त करने वाली वीर भारतीय नारी झाँसी की रानी का महानचरित्र ओजपूर्ण शब्दो मे रखा। भारत क पुरुषो को ही नही नारी को भी बलिदान क लिए अभिप्ररित किया। दश की बहिनो का प्रतिनिधित्व करती हुई श्रीमती चौहान ने देश के भाइयो को सग्राम मे कट मरन के लिए विदाई दी। उन्होने अपन अपने वीर भाइयों को यह सदेश दिया कि व स्वातन्त्र्य सग्राम मे पीछे न हटें नही तो बहनो को निभय मरने का बरदान द जाय।

त्रिशूल शकर तथा रामचरित उपाध्याय ने इस काल म भी द्विवदीयुगीन इतिवृत्तात्मक शैली मे ही बलिदान का आदश रखा है। उनके काव्य म भावात्मकता का ही प्राधान्य है। माखनलाल चतुर्वेदी सुभद्राकुमारी चौहान तथा सियारामशरण गुप्त के काव्य मे मार्मिकता अधिक है। श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की कविता म बलिदान की भावना वीर रस मडित है उसमे करुणा की अपेक्षा उत्साहवद्ध क गुण अधिक है। माखनलाल चतुर्वेदी मे बलिदान का स्वर अधिक स्पष्ट है किन्तु मार्मिकता

---

१ मथिलीशरण गुप्त हिन्दू चतुर्थावृत्ति प ७५
२ माखनलाल चतुर्वेदी माता प० ५५
३ वही प० ७६
४ सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल प १ ६

तथा करुणा का प्राधान्य है। उनकी बलिदान भावना के पीछे राजपूत-काल का गर्जन-तर्जन अथवा ओज नहीं है वह गांधी युग के सुसंस्कृत एवं संयत ओज से पूर्ण है। सियारामशरण गुप्त ने बलिदान की भावना को करुण चरित्र-काव्य के रूप में रखा है। आत्मोत्सर्ग पाठकों को करुण वातावरण में बलिदान के लिए प्रेरित करता है। इन सभी कवियों का बलिदान द्वारा राष्ट्रीय जीवन को चेतन करने का प्रयास अद्भुत है।

गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में बलिदान की भावना का प्राधान्य था। सोहनलाल द्विवेदी ने अधिक ओजपूर्ण किन्तु सरल भाषा में जन-जीवन में जाग्रत बलिदान की भावना का विवेचन किया है —

किसने स्वतन्त्रता को मांगी
पग पग मग मग में सुलगा दी?
मग मग में धधक उठी ज्वाला
पर मिटने का उम्मेद लिये
यह कौन चला जाता पथ पर
नवयुग का नव सवेरा लिए?

हिन्दी काव्य में बलिदान की भावना को वर्णनात्मक भावात्मक एवं अन्योक्ति पद्धति में अभिव्यक्त किया गया है।

हिन्दी नाटकों में बलिदान की भावना

सन् १९२० ३७ में रचित हिन्दी नाटकों में भी बलिदान की भावना का कई रूपों में चित्रण किया गया था। भारतीय इतिहास की वीर-कथाओं के माध्यम से वीरतापूर्ण बलिदान का पोषण किया गया था। ईसाई धर्म एवं मुसलमान धर्म के महापुरुषों की चरित्र कथा द्वारा भारत में बसने वाले सभी धर्म तथा जातियों के लिए बलिदान का महत्त्व दिग्दर्शित कराया गया था। गांधी जी द्वारा संचालित सत्याग्रह आन्दोलन में वीर गति पाने वाले राष्ट्र भक्तों के बलिदान की भी झलक दिखाई गई थी।

भारतीय इतिहास प्रसिद्ध वीराख्यान लेकर बलिदान का महत्त्व प्रदर्शित करने वाले प्रसिद्ध नाटक हैं—बद्रीनाथ भट्ट का 'दुर्गावती' जयशंकर प्रसाद के चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त राज्यश्री आदि जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द का प्रताप प्रतिज्ञा हरिकृष्ण प्रेमी का रक्षा बन्धन, शिवा साधना सुदर्शन का 'जय पराजय'। बद्रीनाथ भट्ट के दुर्गावती नाटक में अकबर से राज्य की रक्षा हेतु वीर रानी दुर्गावती की प्राणाहुति की इतिहास प्रसिद्ध कथा ली गई है। भट्ट जी ने दुर्गावती के वीर चरित्र के ओजपूर्ण वर्णन द्वारा अपने युग की भारतीय नारी को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए बलिदान होने के लिए प्रेरित किया है। जयशंकर प्रसाद ने भारतीय इतिहास के हिन्दू काल से उन महान् वीर राजाओं और नारियों को अपने नाटकों के लिए चुना है जिन्होंने देश की

रक्षा के लिए प्राणो की बाजी लगा दी थी। चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त हर्षवर्द्धन, राज्यश्री ध्रुवस्वामिनी आदि वीर पुरुष एव नारी पात्र हैं जो देश को स्वतन्त्रता के लिए बलिदान होने का सदेश देते हैं। प्रताप प्रतिज्ञा नाटक मे जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने राजपूताने के इतिहास प्रसिद्ध वीरवर स्वतन्त्रता के उपासक दृढव्रती महाराणा प्रताप के जीवन की कथा ली है। इस नाटक म प्रताप ने दलित देशवासियो को गाधी जी के सदृश चित्तौड रूपी दश के उद्धार के लिए बलिदान का माग अपनाने को प्रेरित किया है—

वीरो! मवाड के अभिमान! चित्तौड की आशा! आज तुम्हे पाकर हृदय उत्साह से भर गया है। चित्तौड क खडहरो का शून्य हृदय हमारी अकमण्यता पर हाहाकार कर रहा है। एक बार उसे फिर स्वाधीनता-सग्राम के लाल दिन दिखाने को जी चाहता है। चलो हम ससार को दिखा द कि पद-दलित देशो के शेष शूर किस तरह अत्याचारियों की जड हिला दत हैं। आज से मेवाड का प्रत्येक पवत हमारा दुग प्रत्येक वन हमारा युद्ध-क्षेत्र और प्रत्येक गुफा हमारा राजमहल होगी। चित्तौड का उद्धार हमारा लक्ष्य होगा और बलिदान हमारा माग। जय मेवाड।[1]

जगलों म मारे मारे फिर कर बाल-बच्चों को अनेक कष्ट दकर भूख से तडपने पर भी महाराणा प्रताप ने अकबर की आधीनता स्वीकार नही की थी क्योकि मातृभूमि के स्वाधीनता यज्ञ म हसते-हसते प्राणोत्सग करने की उन्होने प्रतिज्ञा की थी।[2] स्वाधीनता की प्रबल आकाक्षा प्रलयाग्नि बनकर[3] उनके हृदय मे भडक रही थी। जिस भूमि पर उन्होने जन्म लिया है वह ईश्वर से भी पूज्य और प्राणो से भी प्यारी है।[4] अपने अन्तिम समय मे व कहते हैं— मैं चाहता हू कि इस पीडित भारत वसुन्धरा पर कभी कोई एसा माई का लाल पैदा हो जिसके हृदय रक्त की अन्तिम बूदें इसके स्वाधीनता-यज्ञ म पूर्णाहुति दें इस सदा के लिए स्वाधीन कर दें जिसके इगित पर बरसो क बिछुडे हुए कोटि-कोटि भारतीय एक सूत्र म बधकर सर्वस्व बलिदान करने मातृ मन्दिर की ओर दौड पडे। मेरी प्रतिज्ञा तो अधूरी रह गई सामत! हृदय मे अतृप्ति की एक आग छिपाए जा रहा हू। उफ![5] निस्सन्देह भारतवासियों को सवत्र बलिदान करके ही स्वतन्त्रता की उपलब्धि हुई है। इस नाटक के गीतों मे भी हसते हसते बलिदान होने के लिए देशवासियों को प्रेरित किया गया है।[6]

---

१ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा पृ० १३
२ वही पृ० ५४
३ वही पृ० १३
४ वही : पृ० ४१
५ वही पृ० ६५
६ वही पृ० २२ ८७

बाबू लक्ष्मीनारायण कृत महाराणा प्रतापसिंह का उद्धार नाटक भी देश के उद्धार के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाता है। हरिकृष्ण प्रेमी के रक्षा बन्धन नाटक में स्वदेश प्रेम एवं मान के लिए बलिदान देने वाले राजपूतों का वर्णन मिलता है। राजपूत पुरुष ही नहीं नारियां भी बलिदान के महत्व को समझती थी। इस नाटक में राजपूत नारियां सतीत्व की रक्षा के लिए मरण का गीत गाते हुए चिता पर चढ़कर बलिदान का अद्भुत आदर्श रखती हैं।[1] हमारा इतिहास साक्षी है कि स्वाधीनता पराधीनता का विचार तज वे केवल एक बात जानती थी रण में अपनी आहुति देना[2]। नाटक के गीत भी बलि-पथ का दीवाना बनने की प्रेरणा देते हैं।[3] बलि-वेदी पर मर मिटने के लिए आग्रह करते हैं—

पहनो बन्धु मरण का ताज।
जन्मभूमि की रखलो लाज॥

इसी प्रकार 'शिवा-साधना' नाटक में शिवाजी का चरित्र बलिदान का सजीव चित्र है जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया है। लेखक ने शिवाजी के कथन में बलिदान को स्वतन्त्रता की साधना के लिए आवश्यक माना है—' एक सैनिक की वीरता एवं एक भावुक का आत्म बलिदान बूंद-बूंद में एकत्र होकर अगणित सिंधु भर देता है। तब जाकर किसी दिन स्वतन्त्रता की साधना सम्पूर्ण होती है।[4] इस नाटक में भी गीत द्वारा स्वतन्त्रता के लिए तन मन प्राण लुटाने का आह्वान किया गया है।[5]

बेचन शर्मा उग्र का महात्मा ईसा और प्रेमचन्द का कर्बला नाटक, क्रम से ईसाई एवं मुसलमान महापुरुषों के चरित्रांकन द्वारा भारत में बसने वाली अल्प-संख्यक ईसाई एवं मुसलमान जातियों के बलिदान का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं। महात्मा ईसा' में भारतीय परिस्थितियां राष्ट्रीय संग्राम अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के अनुकूल ईसा का चरित्र निर्मित कर उग्र जी ने बलिदान का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है। महात्मा ईसा का बलिदान सत्य, न्याय अहिंसा एवं देशहित रक्षार्थ हुआ था। यही कारण है कि उनके अनुयायियों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ी।[7] कर्बला' नाटक में प्रेमचन्द जी ने मुस्लिम इतिहास के धर्म प्रधान महापुरुष हुसन के बलिदान की कथा लिख कर देश के मुसलमानों को बलिदान के लिए प्रेरित किया है।

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० ६८
२ वही पृ० ६६
३ वही पृ० ३२
४ वही पृ० ३३
५ हरिकृष्ण प्रेमी शिवा-साधना पृ० १५२
६ वही पृ० १५३
७ बेचन शर्मा उग्र' महात्मा ईसा पृ० १६७

रक्षा के लिए प्राणों की बाजी लगा दी थी। चन्द्रगुप्त स्कन्दगुप्त हर्षवर्द्धन राज्यश्री ध्रुवस्वामिनी प्रभृति वीर पुरुष एवं नारी पात्र हैं जो देश को स्वतन्त्रता के लिए बलिदान होने का सदेश देते हैं। प्रताप प्रतिज्ञा नाटक में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने राजपूताने के इतिहास प्रसिद्ध वीरवर स्वतन्त्रता के उपासक, दृढव्रती महाराणा प्रताप के जीवन की कथा ली है। इस नाटक में प्रताप ने दलित देशवासियों को गांधी जी के सदृश चित्तौड़ रूपी देश के उद्धार के लिए बलिदान का मार्ग अपनाने को प्रेरित किया है—

वीरों! मेवाड़ के अभिमान! चित्तौड़ की आशा! आज तुम्हें पाकर हृदय उत्साह से भर गया है। चित्तौड़ के खडहरों का शून्य हृदय हमारी अकर्मण्यता पर हाहाकार कर रहा है। एक बार उसे फिर स्वाधीनता-सग्राम के लाल दिन दिखाने को जी चाहता है। चलो हम ससार को दिखा दें कि पद-दलित दशा के दीप शूर किस तरह अत्याचारियों की जड़ हिला देते हैं। आज से मेवाड़ का प्रत्येक पर्वत हमारा दुर्ग प्रत्येक वन हमारा युद्ध-क्षेत्र और प्रत्येक गुफा हमारा राजमहल होगी। चित्तौड़ का उद्धार हमारा लक्ष्य होगा और बलिदान हमारा मार्ग। जय मेवाड़।[1]

जगलों में मारे मारे फिर कर बाल-बच्चों को अनेक कष्ट देकर भूख से तड़पने पर भी महाराणा प्रताप ने अकबर की आधीनता स्वीकार नहीं की थी क्योंकि मातृभूमि के स्वाधीनता यज्ञ में हसते-हसते प्राणोत्सर्ग करने की उन्होंने प्रतिज्ञा की थी।[2] स्वाधीनता की प्रबल आकांक्षा प्रलयाग्नि बनकर[3] उनके हृदय में भड़क रही थी। जिस भूमि पर उन्होंने जन्म लिया है वह ईश्वर से भी पूज्य और प्राणों से भी प्यारी है।[4] अपने अन्तिम समय में वे कहते हैं— मैं चाहता हूँ कि इस पीडित भारत वसुन्धरा पर कभी कोई ऐसा माई का लाल पैदा हो जिसके हृदय रक्त की अन्तिम बूँदें इसके स्वाधीनता-यज्ञ में पूर्णाहुति दें इसे सदा के लिए स्वाधीन कर दें जिसके इगित पर बरसों के बिछुड़े हुए कोटि-कोटि भारतीय एक सूत्र में बधकर सर्वस्व बलिदान करने मातृ मन्दिर की ओर दौड़ पड़ें। मेरी प्रतिज्ञा तो अधूरी रह गई सामत! हृदय में अतृप्ति की एक आग छिपाए जा रहा हूँ। उफ![5] निस्सन्देह भारतवासियों को सर्वत्र बलिदान करके ही स्वतन्त्रता की उपलब्धि हुई है। इस नाटक के गीतों में भी हसते हसते बलिदान होने के लिए देशवासियों को प्रेरित किया गया है।[6]

---

१ जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द प्रताप प्रतिज्ञा पृ० १३
२ वही पृ० ५४
३ वही पृ० १३
४ वही पृ० ४१
५ वही पृ० ६५
६ वही पृ २२ ८७

बाबू लक्ष्मीनारायण कृत 'महाराणा प्रतापसिंह का देशोद्धार' नाटक भी देश के उद्धार के लिए बलिदान का पाठ पढ़ाता है। हरिकृष्ण प्रेमी के 'रक्षा बन्धन' नाटक मे स्वदेश प्रेम एव मान के लिए बलिदान देने वाले राजपूतो का वर्णन मिलता है। राजपूत पुरुष ही नही नारियाँ भी बलिदान के महत्व को समझती थी। इस नाटक म राजपूत नारियाँ सतीत्व की रक्षा के लिए मरण का गीत गाते हुए चिता पर चढ़कर बलिदान का अद्भुत आदर्श रखती हैं।[1] हमारा इतिहास साक्षी है कि स्वाधीनता पराधीनता का विचार तज वे केवल एक बात जानती थी 'रण म अपनी आहुति देना'[2]। नाटक क गीत भी बलि-पथ का दीवाना बनने की प्रेरणा देते हैं।[3] बलि-वेदी पर मर मिटने के लिए आग्रह करते हैं—

पहनो बन्धु मरण का साज।
जन्मभूमि की रखलो लाज ॥[4]

इसी प्रकार 'शिवा-साधना' नाटक म शिवाजी का चरित्र बलिदान का सजीव चित्र है जिन्होंने स्वतन्त्रता के लिए अपना सम्पूर्ण जीवन अर्पित कर दिया है। लेखक ने शिवाजी के कथन म बलिदान को स्वतन्त्रता की साधना के लिए आवश्यक माना है— 'एक सैनिक की वीरता एक एक भावुक का आत्म बलिदान बूँद-बूँद में एकत्र होकर अगणित सिंधु भर देता है। तब जाकर किसी दिन स्वतन्त्रता की साधना सम्पूर्ण होती है।'[5] इस नाटक म भी गीत द्वारा स्वतन्त्रता के लिए तन मन प्राण लुटाने का आह्वान किया गया है।[6]

बेचन शर्मा उग्र का 'महात्मा ईसा' और प्रेमचन्द का 'कर्बला' नाटक क्रम से ईसाई एव मुसलमान महापुरुषो के चरित्रांकन द्वारा भारत म बसने वाली अल्प-संख्यक ईसाई एव मुसलमान जातियो के बलिदान का महत्त्व प्रदर्शित करते हैं। 'महात्मा ईसा' म भारतीय परिस्थितियां राष्ट्रीय संग्राम अहिंसात्मक सत्याग्रह आन्दोलन के अनुकूल ईसा का चरित्र निर्मित कर उग्र जी ने बलिदान का उत्कृष्ट रूप प्रस्तुत किया है। महात्मा ईसा का बलिदान सत्य न्याय अहिंसा एव देशहित रक्षार्थ हुआ था। यही कारण है कि उनके अनुयायियों की संख्या दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ी।[7] 'कर्बला' नाटक म प्रेमचन्द जी ने मुस्लिम इतिहास के धर्म प्रधान महापुरुष हुसैन के बलिदान की कथा लिख कर देश के मुसलमानों को बलिदान के लिए प्रेरित किया है।

---

१ हरिकृष्ण प्रेमी रक्षा-बन्धन पृ० ८८
२ वही : पृ० ६६
३ वही पृ० ३२
४ वही पृ० ३३
५ हरिकृष्ण प्रेमी शिवा-साधना पृ० १५२
६ वही पृ १५१
१ बेचन शर्मा उग्र' महात्मा ईसा पृ० १६७

युगीन राष्ट्रीय आन्दोलन म प्राणाहुति देने वाला म लाला लाजपतराय स सबधित नाटक पजाब केसरी मिलता है। इस नाटक में पजाब केसरी लाला लाजपतराय द्वारा बलिदान का महत्त्व प्रकाशित करते हुए लेखक ने लिखा है—'यदि पराधीनता की बेडी काटते हुए प्राण निछावर हो तो इसस बढ कर मुक्ति का माग और दूसरा नही।'

अत हिन्दी नाटयकारो ने हिन्दू मुसलमान ईसाई धर्मावलम्बी जनता की आस्था एव धार्मिक विचारधारा के अनुकूल बलिदान के उज्वल दृष्टात रख कर राष्ट्र की मुक्ति के लिए बलिदान की शिक्षा दी है। गाधी जी ने राष्ट्रीय सग्राम म धम तथा जातीयता की सकीण भावना का परित्याग कर बलिदान के लिए समस्त देशवासियो का आह्वान किया था। उनके विचार हिन्दी नाटको म प्रतिबिम्बित मिलते हैं।

कथा-साहित्य मे बलिदान की भावना

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासो म भारतीय राष्ट्रीयता स प्ररित बलिदान की उच्चतम भावना स मडित उत्कृष्ट पात्रो का सजीव रूप प्रस्तुत किया है। उनके रग भूमि उपन्यास म सूरदास विनयसिंह इन्द्र दत्त,सोफिया रानी जाह्नवी आदि के चरित्रो में बलिदान की भावना मूतमान हुई है। असहयोग आन्दोलन की पृष्ठभूमि पर रचना होने के कारण इस उपन्यास म प्रतिध्वनित है कि उस समय सत्य के लिए मिट जाना गौरव की बात थी।[१] इन्द्रदत्त की मृत्यु पर स्वय विनयसिंह कहते हैं कितनी वीर मृत्यु पाई है।[२] इन्दुलकार विनयसिंह के त्याग भाव क सम्बन्ध म कहते हैं—कुअर साहब मरने-जीने की चिंता नहीं मरना तो एक दिन होगा ही अपने भाइयों की सेवा करते हुए मारे जाने से बढ कर और कौन मौत होगी। धन्य है आप को जो सुख विलास त्यागते हुए अभागो की रक्षा कर रहे हैं। इस उपन्यास मे बलिदान के कई रूप सम्मुख आते हैं विनयसिंह इन्द्रदत्त द्वारा राष्ट्र के लिए प्राणोत्सग किया जाता है सूरदास पूजीवादी तथा मशीनी उद्योग से राष्ट्र को बचाने के लिए अहिंसा तथा सत्य की आराधना म प्राण त्यागता है रानी जाह्नवी ने धन सम्पत्ति ही नहीं अपना पुत्र राष्ट्र की वदी पर न्यौछावर कर दिया है राष्ट्र की साधना मे इन्द्र का पारिवारिक जीवन विच्छिन्न हो जाता है। सोफिया परिवार और अपने जीवन सवस्व विनयसिंह के साथ अपना जीवन भी त्याग दती है। इस राष्ट्रीय आदोलन में बलिदान का जो महान रूप सम्मुख आता है उसका वणन इन शब्दो म मिलता है —

१ जमनादास मेहरा पजाब केसरी प० ६१
२ प्रेमचन्द रगभूमि पृ० ३३७
३ प्रमचद रगभूमि पृ० ३३६
४ वही प० ३४१

गये ! ऐसा प्रभावशाली दृश्य कदाचित् तुम्हारी आँखों ने भी न देखा होगा। जो वीरों का मुँह फेर सकते थे बड़े बड़े प्रतापी भूपति तुम्हारी आँखों के सामने राख में मिल गए जिनके सिंहनाद से दिक्पाल थर्राते थे बड़े बड़े प्रभुत्वशाली योद्धा यहाँ विश्रान्ति में मिल गए। कोई यश और कीर्ति का उपासक था, कोई राज्य विस्तार का कोई मत्सर ममत्व का। कितने ज्ञानी विरागी योगी पंडित तुम्हारी आँखों के सामने चिताग्रस्त हो गए। सच कहना कभी तुम्हारा हृदय इतना आनन्द पुलकित हुआ था ? कभी तुम्हारी तरंगों ने इस भाँति सिर उठाया था ? अपने लिए सभी मरते हैं कोई इहलोक के लिए कोई परलोक के लिये आज तुम्हारी गोद में वे लोग आ रहे हैं जो निष्काम थे जिन्होंने पवित्र विशुद्ध न्याय की रक्षा के लिए अपने को बलिदान कर दिया।[1] रानी जाह्नवी विनयसिंह की वीर मृत्यु पर माँ की ममता भूल कर गौरव का अनुभव करती हैं।

कर्मभूमि उपन्यास में भी प्रेमचन्द जी ने अमरकान्त सुखदा रेणुका देवी समरकान्त नैना के व्यक्तित्व में आदर्श की प्रतिष्ठा की है। अमरकान्त सुखदा रेणुकादेवी द्वारा सुख सम्पत्ति का त्याग समरकान्त का प्राचीन रूढ़िवादिता धन तथा झूठी प्रतिष्ठा के मोह का त्याग बलिदान के ही विभिन्न रूप हैं। इस उपन्यास में भी नैना ने राष्ट्रीय संग्राम में जीवन की आहुति दी है। प्रेमाश्रम उपन्यास में प्रेमशंकर द्वारा धन-सम्पत्ति के त्याग और ग्रामीणों की उन्नति के लिए रचनात्मक कार्य में भी बलिदान की भावना निहित है। अतः प्राणदान के साथ राष्ट्रीयता के लिए धन-सम्पत्ति रागात्मक एवं भावात्मक सम्बन्धों का बलिदान अत्यधिक महत्व रखता है।

राधिकारमण प्रसाद सिंह का पुरुष और नारी उपन्यास राष्ट्रीय संग्राम के लिए किये गए युवक और नारियों के बलिदान की कथा है। अजीत जैसे कितने ही विद्यार्थियों ने असहयोग आन्दोलन छिड़ते ही सूट-बूट त्याग परिवार से सबंध तोड़ और धन-सम्पत्ति पर लात मार कर साबरमती आश्रम की ओर पग उठाया था। इस उपन्यास में लेखक ने अजीत जैसे युवकों को आँखों की उलझन न गले की फिरकन छोड़ कर भारत की आजादी-लाखों की रोटी करोड़ों की नून-तेल लकड़ी का प्रश्न सुलझाने के लिए राष्ट्रीय संग्राम में सम्पूर्ण जीवन होम करते दिखाया है।[3] लेकिन उसके चरित्र की मानवीय दुर्बलता—'रस की फनिल बोतल' की आकांक्षा उसके समस्त बलिदान को उत्कर्ष के चरम पर नहीं पहुँचा पाती। गांधी जी ने राष्ट्रीय वीरों के लिए शरीर की आवश्यकताओं से कहीं ऊँची मंजिल कूती थी यह उस उच्चता तक नहीं पहुँच पाता। प्रेमचन्द जी ने अपने कर्मभूमि उपन्यास में

---

१ प्रेमचन्द दूसरा भाग पृ० ३४३

२ वही पृ० ३७५

३ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० ४

नायक अमरकान्त के चरित्र में भी मानवीय दुर्बलताओं को दिखाया है लेकिन उपन्यास के अन्तिम भाग में उसका सुधरा हुआ रूप सम्मुख आता है। राधिकारमण प्रसाद सिंह के अजीत का चरित्र निरन्तर पतनोन्मुख सम्मुख आता है।

इस उपन्यास में भी सुधा का चरित्र बलिदान की दृष्टि से अधिक महत्व रखता है। असहयोग आन्दोलन के उत्साह में अजीत ने जिस नारी के प्रेम को बन्धन समझ कर, अवहेलना की थी वही आन्दोलन की प्रेरक शक्ति बन जाती है। किसी भी विरोध के बवण्डर में वह अपनी ऊंचाई से जौ भर भी नहीं झुकती।[1] राष्ट्र के नाम पर सुधा का सारा व्यक्तित्व निछावर हो गया। वह सेवा और त्याग का प्रतीक बन जाती है। उसकी सेवा तो सरासर साधना हो रही है। उसमें न कहीं ग्रहण है न विज्ञापन।[1] पारिवारिक सुख का बलिदान कर महिलाओं को देश सेवा के लिए तैयार करती है। अजीत को राष्ट्र धर्म से च्युत न होने देने के लिए ही वह विषपान कर राष्ट्र की वेदी पर अपने प्राण अर्पित कर देती है। गौण पात्रों में छन्नूलाल जैसे राष्ट्र भक्त की पुत्र-वधू का बलिदान भी स्तुत्य है — चौधरी घराने की बेटी को दो दाने के लिए चक्की पीसना पड़ा लेकिन उसकी देश भक्ति स्वाभिमान, महम्मन्यता ने किसी का दान स्वीकार न किया।

उपन्यासों की अपेक्षा बलिदान भावना से पूर्ण कहानियां अधिक संख्या में लिखी गई। प्रेमचन्द की सभी राजनीतिक कहानियां — जुलूस, समर यात्रा, सुहाग की साड़ी आदि में देश के लिए बलिदान के विभिन्न रूपों का चित्रण मिलता है। राष्ट्रीय स्वातंत्र्य संग्राम काल में स्वराज्य के लिए बड़े से बड़ा बलिदान किया जा रहा था। नारी पुरुष बच्चे बूढ़े सभी इस क्षेत्र में अग्रसरित थे। सुदर्शन की हार जीत कहानी में स्वार्थ का बलिदान, कैदी[4] में धनाढ्य युवक द्वारा पारिवारिक सुख और ऐश्वर्य का बलिदान, अंधेरे में[5] कहानी में सरकारी नौकरी की अस्वीकृति का बलिदान प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी में भगतराम ने आर्थिक कष्टों के बीच सरकारी नौकरी न करने का जो आदर्श रखा था वह अन्धकार में हुआ था किसी प्रकार की वाहवाही अथवा यश प्राप्ति के लिए नहीं न जाने कितने भारतीय परिवारों ने इस प्रकार बलिदान देकर भारत को स्वतंत्र किया है। इस बलिदान की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हुए सुदर्शनजी ने लिखा है — यह बलिदान अनाज के दाने का बलिदान है, जो अन्धकार में पृथ्वी के अन्दर धंस जाता है और अपने आप अपने जैसे बीसों

१ राधिकारमण प्रसाद सिंह पुरुष और नारी पृ० ११२
२ वही पृ० ११३
३ वही पृ० २५४
४ सुदर्शन सुप्रभात पृ० ६१
५ वही : पृ० ८०
६ वही : पृ० ७८

दान उत्पन्न कर देता है। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की कहानियों में भी राष्ट्रीय संग्राम में बलिदान देने का उल्लेख मिलता है। विश्वास कहानी में स्वराज्य सोपान के सम्पादक प्रसन्नता के साथ अपना परिवार तथा प्रेस का कार्य सहकारी सम्पादक पर छोड़ कर जेल जाते हैं। राष्ट्र के लिए किए गये बलिदान ने सी० आई० डी० विभाग की ओर से उनका भेद लेने के लिए नियुक्त उनके सह-सम्पादक शुक्ल जी को भी हृदय परिवर्तित कर उन्हें सच्चा देश भक्त बना दिया।[१] इसी प्रकार कौशिक जी ने शान्ति कहानी में दिखाया है कि राष्ट्र-उन्नति के लिए धन सम्पत्ति के बलिदान में ही सच्ची शान्ति मिलती है।[२] हिन्दुस्तानी कहानी में राष्ट्रीय-एकता के लिए धार्मिक कट्टरता के बलिदान पर लेखक ने विशेष बल दिया है।[३]

सुभद्राकुमारी चौहान की गौरी राष्ट्रीय भावना को महत्व देने के कारण नायब तहसीलदार की अपेक्षा विधुर राष्ट्र-सेवी से विवाह कर राष्ट्र के लिए युवती हृदय की आकांक्षाओं के बलिदान का आदर्श रखती है।[४] चतुरसेन शास्त्री की अभाव कहानी में भी बलिदान के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।[५]

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि स्वाधीनता की प्रकाशपुरी में जाने के लिए बलिदान की आवश्यकता थी— देवता जीवन नहीं मांगते। वे जीवन के भोगों की, जीवनी की लालसाओं की, जीवन के सुखों की और जीवन की विषय वासनाओं की बलि मांगते हैं। बोलो क्या तैयार हो।[६] इस बलिदान के लिए देश तत्पर था स्वार्थ पर कर्तव्य को और प्रेम पर पवित्र आत्म-सत्ता को महत्व दिया गया था। जिन्होंने प्राण देकर बलिदान का आदर्श रूप रखा था उनसे धन, जन तथा लालसाओं का बलिदान देने वालों का महत्व कम नहीं था। कथा साहित्य में बलिदान की भावना का सुन्दर, यथार्थ एवं प्रेरणादायक चित्रण मिलता है।

हिन्दी-साहित्य में गांधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम का विवरण

गांधी जी ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण एवं पुनरुत्थान के लिए रचनात्मक कार्यक्रम की विस्तृत योजना बनाई थी। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए स्वयं-सेवकों का विशाल दल संगठित किया गया था जिससे देश में सामूहिक रूप में जागृति आ सकती और सच्चे अर्थों में स्वतन्त्रता की प्राप्ति होती। गांधी जी ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक अंग के सुधार के लिए जिस अनेकांगी कार्यक्रम को क्रियान्वित किया था उसके अन्तर्गत प्रमुख रचनात्मक कार्य थे—स्वदेशी का प्रचार एवं विदेशी का बहिष्कार

१ विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक कल्लोल पृ० ६१
२ वही पृ० ११
३ वही पृ० २५६
४ सुभद्राकुमारी चौहान सीधे सादे चित्र पृ० १५
५ चतुरसेन शास्त्री मरी खाल की हाय पृ० ३७
६ सुदर्शन सुप्रभात पृ० १०

चर्खा खादी तथा अन्य ग्रामोद्योगों का विकास, मादक द्रव्य निषेध सामाजिक कुरीतियों को मिटाना अस्पृश्यता निवारण ग्राम सुधार योजना अर्थात् गांवों की सफाई शिक्षा एव अन्धविश्वासों का निराकरण, साम्प्रदायिक एकता तथा धार्मिक समानता की चेष्टा स्वभाषा प्रेम की शिक्षा तथा राष्ट्रभाषा का प्रचार। ये रचनात्मक कार्य गाधी जी की राष्ट्रवाद सम्बन्धी आर्थिक सामाजिक धार्मिक राजनीतिक नीति के अन्तर्गत समाहित थे। इनकी पूर्ति द्वारा उन्होंने स्वतन्त्र भारत के आदर्श रूप की व्याख्या की थी।

जसा कि गाधी जी के राष्ट्रवाद के व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा चुका है व स्वदेश के प्रचार एव स्वदेशी के बहिष्कार द्वारा राष्ट्र के कला कौशल हस्त उद्योग को विकसित कर उसकी अर्थनीति को व्यवस्थित और बेकारी की समस्या को सुलझा कर राष्ट्रीय प्रतिमा का बढ़ाना चाहते थे। खादी चर्खा तथा अन्य ग्रामोद्योगों को वे भारतीय मन स्थिति एव व्यवहार के अनुकूल मानते थे। भारतीय उद्योग धधा ने पश्चिमी जगत् की भांति कल कला अथवा मशीनी विद्या म प्रगति नही की थी अत चर्खा द्वारा साधारण अपढ ग्रामवासी सरलता से सूत कात सकता था। हाथ करघे अथवा चर्खे के लिए अधिक पू जी की भी आवश्यकता नही थी। स्त्रिया बूढे बच्चे भी अपनी आजीविका का उपार्जन कर सकते थे। इसके द्वारा देश की आर्थिक दशा सुधर सकती थी।[1] घर बठे रोजी देने का यह अचूक साधन था। ग्रामीणो की दशा सुधारने म चर्खा खादी अति सहायक थे। इसी कारण गाधी जी ने प्रत्येक राष्ट्र कर्मी के लिए चर्खा कातना आवश्यक धर्म माना था क्योकि इससे वह स्वावलम्बी बन सकता था और आत्मशुद्धि का भी यह अद्भुत प्रयास था। राष्ट्रवाद के लिए अस्पृश्यता की भावना अहितकर थी क्योकि विदेशी शासको ने भी इससे लाभ उठा कर विभेद नीति द्वारा अछूतो को अपनी ओर मिलाना चाहा था। इसके अतिरिक्त अछूत ईसाई धर्म को भी अपनाते जा रहे थ। निस्सन्देह गाधी जी को इसम सफलता मिली थी। आत्मबल अथवा नैतिक बल प्रयोग द्वारा दक्षिण के कुछ मन्दिरो के द्वार अछूतो के लिए खुल गए थे। भारत ग्रामों का देश है। गाधी जी ने विशेष रूप स ग्राम सुधार एव ग्रामवासियों की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए स्वय सेवको का सगठन किया था। हिन्दू मुस्लिम साम्प्रदायिक एकता गाधी जी के जीवन का महान व्रत था। विदेशी भाषा के स्थान पर वे देश भाषा की प्रतिष्ठा करना चाहते थे इस प्रकार राष्ट्रीय नेताओ एव स्वयसेवकों द्वारा किए गए कार्यों साधनो और उपायो क रचनात्मक पक्ष की भी अभिव्यक्ति हिन्दी साहित्य म मिलती है।

हिन्दी साहित्य म राष्ट्रवाद के अभावात्मक पक्ष का विस्तृत विवेचन किया जा चुका है। साहित्य म राष्ट्रीय दुर्दशा का यह चित्रण निष्प्रयोजन नही किया गया था। इन रचनाओं ने जनता को देश-दशा सुधारने की प्रेरणा दी थी। प्रत्यक्ष रूप म जो रचनात्मक कार्य किये गये थे वे हिन्दी साहित्य में मार्मिक अभिव्यक्ति प्राप्ति

१ किशोरीलाल मशरूवाला गांधी विचार दोहन पृ० १२२

करने म असमथ रह थ। राष्ट्रीय कविता में देश-जीवन के कष्टो जेल, शहीद कभी स्वदेश प्रम आन्दोलन राजनीतिक असन्तोष बलिदान आदि की अभिव्यक्ति अधिक मिलती है।

स्वदेशी का प्रयोग एव विदेशी का बहिष्कार

राष्ट्रीय क्षत्र म गाधी जी के आगमन के पूव ही स्वदेशी आन्दोलन तीव्र गति से चल चुका था। अत स्वदेशी प्रचार प्रयोग तथा अभिवृद्धि सम्बन्धी काव्य द्विवदी युग म अधिक मात्रा म लिखा गया था। गाधी जी ने स्वदेशी आन्दोलन को अधिक क्रियात्मक रूप देने के लिए स्वयसेवकों की सेना का सगठन किया था जो घर घर और विदेशी वस्तुओ की दूकानो पर जाकर धरना देते थ। इस प्रकार कष्ट सहन का आदश रख कर देशवासियो का हृदय-परिवतन इनका लक्ष्य था। काव्य की अपेक्षा उपन्यासो एव कहानियो म इसका विस्तृत चित्रण मिलता है क्योंकि उसम इसकी अभिव्यक्ति की अधिक सभावना थी। काव्य म स्वदेशी की उन्नति का सकेत अथवा सूक्ष्म उल्लख मात्र मिलता है। मथिलीशरण गुप्त ने स्वदेशी सगीत म भारतवासियो को मिल जुल कर अपना व्यापार बढ़ाने का उपदेश दिया है। क्योंकि विदेशी वस्तुओं के प्रयोग से राष्ट्रीय अथ-व्यवस्था विच्छिन्न हो रही थी। रूपनारायण पाडेय ने चर्खे का सुदशन चक्र माना है जिसके द्वारा भारतवासियों की विजय प्राप्त होगी।[२] चर्खे का महत्त्व[३] प्रतिपादित करत हुए उन्होंने भी चर्खे द्वारा विदेशियों को परास्त करने का प्रण किया था। गाधी जी न देश की साम्प्रदायिक एव आर्थिक स्थिति का सूक्ष्म अवलोकन कर खादी और चर्खे के प्रचार पर बल दिया था। खादी और चर्खे के प्रचार द्वारा समाज की विधवाओ को अपने भरण पोषण का साधन मिल सकता था जिससे समाज मे उनकी स्थिति सुदृढ़ हो सकती थी और उन्हे दूसरो के भिक्षा-दान पर जीवित न रहना पड़ता। सियारामशरण गुप्त न खादी की चादर[४] नामक करुण कथा काव्य मे इस ओर ध्यान आकृष्ट किया है। असहाय निराश्रित एव सामाजिक अत्याचार से पीड़ित चम्पा चर्खे से सूत कात कर दो आने पसे का दूध खरीद कर गंगा की लहरो को समर्पित कर देती है कि व उसे उसकी भूख से मृत बच्ची की भूखी हड्डियों तक पहुचा दें। सियाराम जी की खादी की बढ़ोल बुनी चादर राष्ट्र का करुणा के ताने बाने स बुनी हुई है।

सोहनलाल द्विवदी न गांधी जी के खादी सम्बन्धी विचारो को काव्य-रूप प्रदान करत हुए प्रत्येक दृष्टि स राष्ट्रीय उत्थान के लिए उपयोगी ठहराया है।[५]

१ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत पृ० ६६
२ रूपनारायण पांडेय पराग पृ० ३५
३ वही पृ० ३२
४ वही पृ० ३६
५ सियारामशरण गुप्त आर्द्रा पृ० ६८

उनके मत म राष्ट्रीय एकीकरण आर्थिक सुसम्पन्नता ग्राम-सुधार एव विदेशी साम्राज्यवाद रूपी शत्रु पर विजय प्राप्ति का एकमात्र साधन खादी है । द्विवेदी जी के शब्दों म—

खादी ही बढ़ चरणों पर पड़ नूपुर-सी लिपट मनायेगी
खादी ही भारत से रूठी आजादी को घर लायेगी [1]

गाधी जी के स्वदेशी सबधी रचनात्मक कायक्रम व सदेश को काव्यमयी वाणी द्वारा घर घर पहुचाने का श्रेय इन कवियो को मिलेगा।

अस्पृश्यता निवारण

गाधी जी की राष्ट्रीय भावना म अस्पृश्यता निवारण अथवा अछूतों की दय नीय स्थिति का निराकरण अत्यधिक महत्त्व रखता था। हिन्दू समाज एव राष्ट्रीयता के लिए वे इस भेदभाव अथवा ऊच-नीच की भावना को घातक समझते थे । वर्ण व्यवस्था म विश्वास रखने पर भी वे अस्पृश्य जातियो अथवा निम्न वग को समाज म समानाधिकार दिलाना चाहत थ । मथिलीशरण गुप्त ने गाधी जी की इस विचारधारा का अनुमोदन करते हुए अछूतोद्धार कविता में लिखा है—

देकर सबको आदर-दान
दो निज मनुष्यत्व को मान।[2]

गाधी जी की भाति मैथिलीशरण गुप्त की राष्ट्रीय भावना भी अति विनाश एव वर्णाश्रम धम समथक है। नीची जातियो के प्रति वष्णव कवि की पूण सहानुभूति है। पचवटी खण्डकाव्य में लक्ष्मण निम्न वर्ग को समान भाव से देखते हैं । स्वदेश सगीत म 'छूत नामक कविता में अस्पृश्यता निवारण पर विशेष बल दिया है।[3] उनकी यही वदिक विनय' थी कि देशवासी धर्म कर्म म अटल रह चारो वण अपने अपने गुणो का विकास करें युवक उपकारी हों नारी रूप शील युत हो पशु पुष्ट हो दूध की धार बहे मेघ समय पर जल बरसायें और आपस मे मेल बढ़े ।

सियारामशरण गुप्त ने एक फूल की चाह नामक कथा काव्य में अछूत जीवन से सबधित मार्मिक कथा लिखकर अप्रत्यक्ष रूप स पाठकों को सहानुभूति अछूतों के प्रति अर्जित कर, अछूतोद्धार की प्रेरणा दी है

रूपनारायण पाडेय न गाधी जी के अस्पृश्यता निवारण सबधी रचनात्मक काय क्रम से प्रभावित होकर अछूतोद्धार' कविता लिखी थी।[4] इस प्रकार काव्य की अनेक शैलियों म गाधी जी के रचनात्मक कार्यक्रम के इस पक्ष का उल्लेख मिलता है।

१ सोहनलाल द्विवेदी भरवी पृ० ८
२ मथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ११४
३ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश सगीत पृ० १०७
४ वही पृ० १३६
५ रूपनारायण पांडेय पराग प १२६

ग्राम सुधार

अपने राष्ट्र का विस्तार ग्रामों में ही हुआ है। किन्तु दुर्भाग्यवश ग्रामवासी अति दीन हीन दशा में,अज्ञानान्धकार में कूपमण्डूक बने निज अधिकारों स वंचित हैं। गांधी जी का विशेष ध्यान इस ओर गया था। ग्राम सुधार उनके रचनात्मक कार्यक्रम का महत्त्वपूर्ण अंग था। मैथिलीशरण गुप्त ने गांधी जी के ग्राम सुधार योजना को काव्य द्वारा वाणी प्रदान की है। उनके मत म आज का युवक वर्ग अपनी विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त कर ग्रामों को मिथ्या विश्वास, संक्रामक रोग, आर्थिक शोषण के अभिशाप स मुक्त कर, ग्रामवासियों के साहस विश्वास निर्भयता स्वास्थ्य आदि वरदानों स सुसज्जित कर, देश विदेश का समाचार सुना कर उनके कला कौशल ज्ञान विज्ञान का विकास कर उन्हें अपने निज स्वत्व के प्रति सचेत कर सकता है। इस नवयुवक वर्ग को लक्षित कर गुप्त जी ने कहा है—

करना है यदि देशोद्धार
तो कुछ त्याग करो स्वीकार।[1]

नगर जीवन का सुख त्याग कर रही शिक्षित नवयुवक वर्ग ग्राम सुधार तथा देशोद्धार कर सकता था। धन जन से श्रेष्ठ नहीं है। अत शिक्षित नवयुवक वर्ग अंग्रेजों की अधम चाकरी की अपेक्षा उत्तम खेती द्वारा स्वावलम्बी बन कर देश का अधिक कल्याण कर सकता है।[2]

सोहनलाल द्विवेदी ने ग्राम-जीवन का मार्मिक चित्र खींचते हुए, गांवों में बसे हिन्दुस्तान का पुनर्निर्माण करने को प्रोत्साहित किया है। गांधी ने सेगांव (सेवाग्राम) को एक आदर्श ग्राम बना दिया था—कवि की आकांक्षा है कि सभी गांव सेगांव बन जाएं।

सेगांव बनें सब गांव आज हम में से मोहन बने एक,
उजड़ा वृन्दावन बस जावे फिर सुख की वंशी बजे नेक,
गूंजे स्वातन्त्र्य की तानें गंगा के मधुर बहावों में।
है अपना हिन्दुस्तान कहां वह बसा हमारे गांवों में।।[3]

सोहनलाल द्विवेदी ने देशवासियों को गांधी जी के सदृश झोपड़ियों की ओर चलकर अन्याय अनीति युग युग के दुख दैन्य मिटाने के लिए अभिप्रेरित किया है।[4] वस्तुत ग्राम सुधार द्वारा स्वतन्त्रता अपने सच्चे अर्थों में चरितार्थ हो सकती थी।

समाज सुधार

काव्य के इस छायावादी युग मे नारी को सामंती रूढ़ियों से मुक्त कर, उसके

---

१ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ८५
२ वही पृ० ८६
३ सोहनलाल द्विवेदी भैरवी पृ० १६
४ वही पृ० १७

आदर्श रूप को सम्मुख रखने का कार्य कर छायावादी कवियो ने राष्ट्रीय आंदोलन के समाज सुधारक अंग को अपना सहयोग प्रदान किया। नैतिकता की पुरानी रूढ़ियो को तोड़ कर उसने मानव विवेक पर आधारित प्रेम संबधी नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की, सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म संस्कार का बीजारोपण किया, मध्य वर्ग को व्यावसायिक प्रयोजन शीलता तथा अत्यन्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण से मुक्त कर आदर्शवाद के उच्च आकाश में विचरण करने की प्रेरणा दी।[1] निराला की विधवा कविता मे नारी के नैतिकतापूर्ण उच्च आदर्श रूप की प्रतिष्ठा की गई है। प्रो० क्षेम ने अपनी पुस्तक छायावाद के गौरव चिह्न में यह सिद्ध किया है कि अप्रत्यक्ष एव मौन रूप से छायावादी कवियो ने गाधी जी की राष्ट्रीय भावना तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना को ही मुखरित किया है—

उसमे उदार गाधीवादी चेतना का औदार्य और भीतर ही भीतर बिना घोषणा किए ही वे जन मन में एक ऐसा उदार परिष्करण ला रहे थे जो देश में सद्य घटित सम्भावनाओ के सर्वथा अनुकूल था। समाज के बाह्य स्तर पर जैसा मन परिष्कार राजनीति के क्षेत्र से गाधी जी कर रहे थे साहित्य की भूमि से छायावादी युग भी अपने विश्वासी पाठको मे वसी ही सास्कृतिक परिष्कृति सम्भव कर रहा था।[2]

मैथिलीशरण गुप्त स्त्री के स्वावलम्बन में विश्वास रखते हैं। साकेत एव पचवटी में उन्होंने सीता के जिस स्वावलम्बी स्वरूप की ओर दृष्टि आकृष्ट की है वह अप्रत्यक्ष रूप से उनके अपने युग की नारी की प्रगति से सबधित भावना है। काव्य में समाज-सुधार संबधी प्रत्यक्ष चित्रो का प्राय अभाव है। रूपनारायण पाण्डेय की स्त्री शिक्षा कविता मिलती है। इतिवृत्तात्मक शैली में रचित समाज सुधार की कविताए युगीन काव्य की विशेषता थी।

स्वभाषा प्रेम की शिक्षा

निज भाषा राष्ट्रीयता का एक प्रमुख तत्त्व है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने निज भाषा पर प्यार का सदेश दिया है। गाधी जी के सदृश उनके मतानुसार भी भाषा ही अवनति से आक्रान्त अधकार में भूले भटके भारत को अपने मधुर स्निग्ध स्पर्श से पार लगा सकती है। सुभद्राकुमारी चौहान ने मातृ मन्दिर कविता में स्वभाषा हिन्दी का भविष्य अति उज्ज्वल देखा था। वे राष्ट्र के प्रत्येक कार्य के लिए अपने देश की भाषा के प्रयोग में विश्वास रखती थी। उन्होंने लिखा था—

तू हो आधार देश की पार्लमेन्ट बन जाने में।
तू होगी सुख सार देश के उजड़े क्षेत्र समान में।।[5]

---

१ नामवरसिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां पृ० २८
२ प्रो० क्षेम छायावाद के गौरव चिह्न पृ० ३२
३ रूपनारायण पाडेय पराग पृ० ३२
४ मैथिलीशरण गुप्त स्वदेश संगीत। पृ० ७३
५ सुभद्राकुमारी चौहान मुकुल पृ १०

राष्ट्रीय एकता एवं विकास के लिए अपनी भाषा ही सहायक होती है। गाँधी जी अपनी विदेशी भाषा की अपेक्षा अपनी भाषा में देशवासियों को शिक्षित करना अधिक श्रेयस्कर समझते थे। परन्तु स्वभाषा प्रेम की शिक्षा देने वाली कविताएँ हिन्दी साहित्य में अधिक उपलब्ध नहीं होतीं।

साम्प्रदायिक एकता

गांधी जी तथा अन्य राष्ट्रीय नेताओं द्वारा साम्प्रदायिक एकता का जो प्रयास किया जा रहा था उसका उल्लेख हिन्दी काव्य में भी मिलता है। अधिकांश कवि साम्प्रदायिकता की भावना से मुक्त थे। वे हृदय से हिन्दू मुस्लिम सांस्कृतिक एकता के समर्थक थे। अंग्रेजों ने भेद-नीति द्वारा हिन्दू मुसलमानों को धर्म तथा जाति के आधार पर विभाजित कर राष्ट्रीयता के उद्रेक में बाधा डालने की कुटिल नीति प्रचारित की थी। अतः कविवर त्रिशूल जी भेद का भण्डाफोड़ कर एकता के सूत्र में बंधने के लिए भारत के युवक वर्ग को प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं—

उठो युवकगण उठो भेद का भण्डा फोड़ो
आड़े आवें अगर रूढ़ि के बन्धन तोड़ो ॥
सम्मुख उन्नति पथ प्रशस्त है इसे न छोड़ो
राष्ट्र बनाओ और देश से नाता जोड़ो।
जाग्रत हो आलोचना उन भावों का ध्यान हो।
भारत के सम्मान हो तुम्हीं देश की आन हो ॥[1]

कवि की यह महती अभिलाषा थी कि सम्पूर्ण देश एकय सूत्र में बंध कर राष्ट्र के विकास में योग दे तथा स्वातन्त्र्य की सोमसुधा का पान कर भारत की मृतप्राय राष्ट्रीयता तथा भारतीयता को जाग्रत कर स्वराज्य की वंशी बजाये।[2] श्रीधर पाठक ने भारत की सभी जातियों की एकता सभी धर्मों के भ्रातृ भाव में भारत का उत्थान माना था। उन्होंने गांधी जी के स्वर में स्वर मिला कर गांधी जी के साम्प्रदायिक एकता के रचनात्मक कार्य को अपना सहयोग दिया है —

हिन्दू मुसलमान ईसाई
बौद्ध पारसी, सभी भाई
मंदिर मूरत, तीरथ, मसजिद
मक्का प्राग, हज्ज, हरद्वारा ॥
प्यारा हिन्दुस्तान हमारा ॥[3] (३० १ २१)

'सर्वे धुम राज्य मक्ति की खान प्रेम की पावें शक्ति महान्' अर्थात् प्रेम श्रद्धा विश्वास भ्रातृ-अनुराग सेवा सरलता मन वचन कर्म की पवित्रता तथा धर्म

१ त्रिशूल राष्ट्रीय मंत्र पृ० १०
२ वही पृ० १५
३ श्रीधर पाठक भारत-गीत प० १२६

की एकता द्वारा समस्त विश्व को प्रेम का सन्देश दे भारत की राष्ट्रीयता विकसित हो सकती है—पाठक जी का ऐसा दृढ मत था।[1] अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध की राष्ट्रीयता अहिंसात्मक और अधिक सहिष्णु न हो कर कुछ प्रतिहिंसात्मक थी।[2] किन्तु साम्प्रदायिक एकता के व भी बहुत बडे समर्थक थ। हिन्दुओं को सावधान करत हुए हरिऔध जी ने यह कहा है कि अपने भाइयो के साथ फूट बैर और एक दूसरे को दबाने का ही यह बदला मिला है कि देश को विधर्मियों के अधिकार म विवश हो कर रहना पडता है।[3] मथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू धम एव जातीयता की विशालता का परिचय देकर भारत की अन्य विधर्मी जातियो के प्रति सहिष्णु भाव प्रकट किया है —

हिन्दू धम मुक्ति का द्वार
करे प्रवेश सब ससार।

गाधी जी भी हिन्दू धर्म के उस विस्तृत एव विशाल रूप को मान्यता दत थे, जिसम सभी धर्मों का समावेश हो सकता था। गुप्त जी की विचारधारा गाधी जी की धार्मिक एकता की नीति के अनुकूल है।

हिन्दू में साम्प्रदायिक एकता के प्रयास-वश ही गुप्त जी ने पारसी मुसलमानों और ईसाइयों के प्रति एकत्व भावना मे पूण काव्य लिखा है। पारसियों से अति पुरातन धर्मगत एकता का सम्बन्ध है —

वेद अवस्ता दो हो नाम॥
पुरातत्व के हैं विश्राम॥[4]

मुसलमान भी इसी देश के वासी हैं। मुसलमान भाइयो की प्रतिहिंसा की भावना को शान्त करत हुए और हिन्दू भाइयो को उनसे प्रेम सम्बन्ध स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करते हुए राष्ट्र-कवि ने लिखा है —

डालो अपने ऊपर दृष्टि
तुम अधिकांश यहीं की सृष्टि॥[5]

ईसाइयों को धार्मिक एकता के नाते अग्रेजी शासको का बहुत विश्वास था और वे राष्ट्रीयता स विमुख थे। उनकी इस भ्रान्त धारणा का निवारण करते हुए कवि ने कहा था —

१ श्रीधर पाठक भारत गीत पृ० १२६
२ अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध चुभते चौपदे प ८
३ वही पृ० २६
४ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० ११४
५ वही पृ० १८८
६ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० १८९

करो न तुम औरों की आस,
रक्खो भारत का विश्वास ॥[१]

इसी प्रकार 'गुरुकुल' की रचना द्वारा मैथिलीशरण गुप्त ने हिन्दू सिक्ख एकता पर बल दिया है।

सियारामशरण गुप्त ने साम्प्रदायिक एकता के लिए जीवन अर्पण करने वाले अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के बलिदान की कथा लिख कर काव्य द्वारा साम्प्रदायिकता के विष को मारने का प्रयत्न किया है। रूपनारायण पांडेय ने 'हिंदू मुस्लिम एकता' नामक कविता रच कर साम्प्रदायिक एकता का प्रचार किया था।[३]

हिंदी नाट्य साहित्य में रचनात्मक कार्यक्रम

स्वदेशी—चर्खा, खादी तथा अन्य ग्रामोद्योग —नाटकों में भी खादी चर्खा के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। जयशंकर प्रसाद के कामना नाटक में गांधी जी की राष्ट्रीय विचारधारा के इस तत्व का पूर्ण विकास मिलता है। गांधी जी नगर के कृत्रिम जीवन कल मशीनों की अपेक्षा ग्राम के नैसर्गिक एवं प्रकृत जीवन तथा हस्तकला उद्योग के पक्षपाती थे। अतः प्रसाद जी के इस नाटक में जिस द्वीप एवं जाति का प्रारम्भ में वर्णन किया गया है वह प्रकृति के बीच स्वाभाविक जीवन व्यतीत करती है। चर्खा कातना कई घोटना कृषि-कार्य में हाथ बटाना तथा प्रेमपूर्वक सम्मिलित भाव से रहना इनकी विशेषता है। प्रच्छन्न रूप से इस नाटक में प्रसाद जी ने अंग्रेजी प्रशासकों द्वारा प्रचारित पूंजीवादी व्यवस्था मद्यपान हिंसा, व्यभिचार आदि का अशान्ति का कारण माना है। गांधी जी के सदृश प्रसाद जी ने भी देशवासियों को पुनः प्राचीन नैसर्गिक किन्तु संघर्ष विहीन शान्तिमय जीवन व्यतीत करने के लिए प्रेरित किया है। भारत का कल्याण इसी में था कि वह अपने ग्रामोद्योगों का विकास करता।

उग्र जी ने महात्मा ईसा नाटक में प्रच्छन्न रूप से गांधी जी के सत्याग्रह आन्दोलन के वर्णन के साथ ईसा तथा उनके शिष्यों को मोटे वस्त्रों में दिखा कर राष्ट्रीय संग्राम के लिए गाढ़े अथवा खादी को आवश्यक बताया है।

महाराणा प्रतापसिंह अथवा देशोद्धार नाटक' में नाट्यकार लक्ष्मीनारायण ने अपने युग की राष्ट्रीय भावना तथा चर्खाखादी आदि रचनात्मक कार्य का आरोपण ऐतिहासिक महापुरुष महाराणा प्रताप तथा उनके पारिवारिक जीवन में भी किया है। महाराणा प्रताप आभूषण, साड़ियाँ आदि परित्याग कर मोटे वस्त्र धारण करने का आदेश देते हैं और उनका पुत्र अमर खादी के वस्त्र धारण करने का प्रण करता है —

---

२ मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृ० २०२

३ रूपनारायण पांडेय पराग पृ० १२८

पहन के खादी में बढ़ू गा देश सेवा धम पर।
प्राण जाये तो जाये पर बढ़ता रहू गा कम पर ॥[1]

इस प्रकार स्वदशी खादी चर्खा आदि का उल्लेख कतिपय नाटकों म मिल जाता है।

नाटकों में ग्राम-सुधार की काय प्रणाली का वणन

मथिलीशरण गुप्त ने अनघ' नामक गीति नाटय म भगवान बुद्ध का साधना वतार मघ गाव भर के सुधार का सारा भार अपने ऊपर ल लेता है। वह अहिंसात्मक नीति का पालन करता हुआ समाज तथा शासक वग के अ याय स सघष कर मानव धम की स्थापना करना चाहता है। इस नाटक में गुप्त जी ने आदश ग्राम पंचायत का रूप रखा है जिससे गाव के झगडे आपस मे सुलझ जायें।[2] ग्राम-सुधार की कार्य प्रणाली क सबध म गुप्त जी का अभिमत है कि ग्रामवासियो के सम्मिलित उद्योग मेलो उत्सवों द्वारा सेवा-सुधार एव प्रमप्रचार का काय कर ग्राम-सुधार सभव है।[3] 'मघ ने ग्राम सुधार का पूण प्रयत्न कर ग्रामो की उन्नति की थी।

पजाब केसरी' नाटक में बाबू जमनादास महरा न लाला लाजपतराय के जीवन चरित्र की झलक दिखात हुए सुधार कार्य क क्रियान्वित रूप का वणन भी किया है। देश की दुदशा से व्यथित होकर लालाजी ने राष्ट्रीय पुर्निर्माण का व्रत लिया था। इस नाटक म वे राष्ट्रीय स्वय सेवकों की सहायता स अकाल भूकम्प आदि दैवी विपत्तियां एव विदशी शासको की क्रूर नीति से पीड़ित ग्रामीण जनता की सेवा करत दृष्टिगत होते हैं। पजाबकेसरी द्वारा उत्साहपूण शब्दो मे लेखक ने कहलाया है— भाइयो ! जाओ म आग चलता हू तुम पीछे-पीछे आओ ग्राम ग्राम म घसकर पहले उन भूख भाइयो की अन्न से भेंट कराओ। हम किसी तरह बच रहेंगे तो अ याय की दुहाई मचायेंगे और ईश्वर से प्राथना करगे कि हम अन्न प्राप्त हो।[4]

सेठ गोविन्ददास के प्रकाश नाटक म प्रकाश द्वारा ग्राम-सुधार के काय का आयोजन किया गया है। प्रकाशच-द्र सत्य-समाज की स्थापना द्वारा गाव म सुधार कार्य प्रारम्भ करने की योजना निर्धारित कराता है।[5] इस नाटक की रचना सन् ३० के सत्याग्रह आन्दोलन के उपरान्त हुई थी। लेखक न इस बात का सकेत किया है कि यदि सत्य मार्गों द्वारा ग्राम और नगर निवासियो के दु खो का परिमाजन हो जाता तो

१ लक्ष्मीनारायण महाराणा प्रतापसिंह अथवा देशोद्धार नाटक पृ० ३१
१ मथिलीशरण गुप्त अनघ पृ० ६२
२ वही पृ० ८०
३ पजाब कसरी पृ० ४१
४ वही पृ० ५१
५ सेठ गोविन्ददास प्रकाश पृ ५५